कविता-कौमुदी

[पहला भाग—हिन्दी]

सम्पादक

पंडित रामनरेश त्रिपाठी

प्रधान विक्रेता—

हिन्दी मन्दिर, प्रयाग

विषय-सूची

कौमुदी-कुञ्ज

कविता-कौमुदी

पहला भाग

भूमिका

काव्य साहित्य का उत्तम अग है। काव्य से मनुष्य को जैसा अलौकिक आनन्द प्राप्त होना है वैसा और किसी प्रकार के साहित्य से नही। काव्य का एक छोटा-सा पद श्रोताओं मे इतना अधिक प्रभाव उत्पन्न कर सकता है, जितना किसी वाग्मीवर का लम्बा-चौड़ा व्याख्यान नही। काव्य से आनन्द और उपदेश दोनो प्राप्त होते है। काव्य के रूप में नीति के वचन जितना आकर्षण उत्पन्न करते है, उतना तत्वज्ञान के रूप में नही। आख्यायिकाओ द्वारा दिये गए उपदेश में भी वह माधुर्य नही जो काव्य के उपदेश मे है। काव्य कवि के हृदय का गान है, उसकी बुद्धि का सौन्दर्य है। जिस कवि का हृदय जितना सुन्दर होता है, वह उतना ही मधुर गान कर सकता है। वह गान भक्तो के मुख से सुनकर भगवान् रीझ जाते है। भगवान् कहते है—

नाह वसामि वैकुण्ठे योगिना हृदये न च।
मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद ' श्रीमद्भागवत।

काव्यशास्त्र के आचार्यो ने काव्य के भिन्न-भिन्न लक्षण बतलाये है। किसी ने रसात्मक वाक्य को काव्य कहा है; किसी ने चमत्कारयुक्त उक्ति को काव्य माना है; किसी ने मनोहर अर्थ उत्पन्न करनेवाले शब्दों को काव्य कहा है; और किसी ने शब्द और अर्थ दोनो को काव्य कहा है। यह तो ठीक है कि शब्द और अर्थ परस्पर अभिन्न है, इसलिए शब्द और अर्थ दोनो मिलकर ही काव्य कहलाता है। पर शब्द और अर्थ काव्य का शरीर मात्र है, काव्य की आत्मा तो रस है। चाहे गद्य हो या पद्य, जिस सदर्भ मे रस प्रवाहित हो, वर्णन इतना सुन्दर हो कि पढ़ते ही मन उसमे तल्लीन होकर एक प्रकार के अलौकिक आनन्द का अनुभव करने लगे, वह काव्य है। काव्य मे शब्द-चमत्कार और अर्थ-चमत्कार

दोनो होने चाहिये। किन्तु अर्थ-चमत्कार प्रधान है, शब्द-चमत्कार गौण। केवल शब्द के आडम्बर से काव्य नही बन सकता। छन्द उत्तम हो, शब्द-सगठन ललित हो, अनुप्रास कर्णप्रिय हो, पर रस का अभाव हो, तो वह रचना काव्य नही केवल पद्य है। वह कान को प्रिय लग सकती है, हृदय को नही, काव्य तो हृदय की वस्तु है।

रस क्या वस्तु है? रस का साधारण अर्थ है स्वाद। पाठक या श्रोता के हृदय मे वासना रूप से स्थित हर्ष, शोक, भय, विस्मय, हास आदि जब कवि की चमत्कारयुक्त वाणी से जागृत होते है, तब उसे एक अपूर्व आनन्द का अनुभव होने लगता है। वह आनन्द ऐसा अद्भुत होता है कि मन उस समय उसी मे लीन हो जाता है, उसे अपने अन्य सब व्यापार भूल जाते है। जैसे योगी समाधि में ब्रह्मानन्द-सुधा के पान मे तन्मय हो जाता है, और अन्य विषय-व्यापार भूल जाता है, वैसा ही आनन्द काव्य से सहृदय मनुष्य के हृदय मे उत्पन्न होता है। उसी अलौकिक आनन्द को रस कहते है। जब विभाव, अनुभाव और सचारी भाव से स्थायीभाव व्यक्त होता है, तब रस की उत्पत्ति होती है।

जिससे भावना स्पष्ट हो वह विभाव कहलाता है। विभाव दो प्रकार का होता है, आलम्बन और उद्दीपन। जिसके आश्रय से रस की स्थिति हो, उसे आलम्बन, और जिससे रस का उद्दीपन होता है उसे उद्दीपन विभाव कहते है। जिन चिह्नो के द्वारा रस का अनुभव होता है, उन्हे अनुभाव कहते है। अनुभाव भाव का कार्यरूप है। हास्य, मधुर सभाषण और स्नेहयुक्त दृष्टिनिक्षेप आदि अनुभाव कहलाते है। जो भाव रसों में सचार करते है, वे सचारी भाव कहलाते है; और जो भाव रसोंमें स्थिर रहते है, स्थायी वे भाव कहलाते है। रति, हास, शोक, क्रोध, उत्साह, भय, ग्लानि, आश्चर्य और निर्वेद ये नौ स्थायी भाव है। इन्ही से क्रमश. शृगार, हास्य, करुण, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त ये नौ रस उत्पन्न होते है। प्रत्येक रस के उत्पन्न होने में विभाव, अनुभाव और सचारी का स्थायीभाव के साथ रहना

आवश्यक है। सचारी भाव को व्यभिचारी भाव भी कहते है। व्यभिचारी भाव के ३३ भेद है। यथा—निर्वेद, ग्लानि, शंका, असूया, श्रम, मद, धृति, आलस्य, विषाद, मति, चिंता, मोह, स्वप्न, विबोध, स्मृति, अमर्ष, गर्व, उत्सुकता, अवहित्थ, दीनता, हर्ष, व्रीड़ा, उग्रता, निद्रा, व्याधि, मरण, अपस्मार, आवेग, त्रास, उन्माद, जडता, चपलता, और वितर्क। ये स्थायीभाव रूपी समुद्र मे छोटी-बड़ी लहरो के समान उठते और नष्ट होते रहते है। इनका प्रभाव चिरस्थायी नही होता। हृदय-हीन जड़ पुरुष के हृदय मे काव्य से रस उत्पन्न नही होता।

रस के साथ ही काव्य मे गुण की भी आवश्यकता है। शब्द और अर्थ गुणयुक्त होने चाहिये। गुण रस से पृथक् नही रह सकता। गुण रस का धर्म है। गुण के तीन भेद है—माधुर्य, ओज और प्रसाद। अनुस्वारयुक्त वर्णो का अधिक प्रयोग, टवर्ग का बिल्कुल अभाव और समास की न्यूनता कविता का माधुर्यगुण है। संयुक्ताक्षर, रेफ और टवर्ग का अधिक प्रयोग, दीर्घ समासयुक्त उद्धत रचना मे कविता का ओजगुण कहा जाता है। और जो शब्द-योजना और समास मनोहर हों और सुनते ही जिनका अर्थ समझ मे आ जाय, उनमे प्रसादगुण कहा जाता है।

काव्य की भाषा सदा अर्थ का अनुसरण करती हुई होनी चाहिये। शृङ्गार, करुण, हास्य और शांत रस के वर्णन मे माधुर्य-गुण-युक्त भाषा का और अद्भुत, वीर, रौद्र, भयानक और वीभत्स रस में ओज गुण-युक्त भाषा का प्रयोग करना चाहिये। चन्द और भूषण की कविता में ओज गुण की अच्छी बहार देखने को मिल सकती है। प्रसाद की आवश्यकता तो सब रसो मे रहती है। प्रसाद-गुण से रहित काव्य को तो काव्य कहना ही न चाहिये।

काव्य का माधुर्य देखना हो तो जयदेव-रचित गीत-गोविन्द मे देखिये—

उन्मदमदनमनोरथ पथिकवधूजनजनितविलापे ।
अलिकुलसंकुलकुसुमसमूहनिराकुलवकुलकलापे ॥

*   *   *

पतति पतत्रे विचलित पत्रे शङ्कित भवदुपयानम् ।
रचयति शयन सचकित नयन पश्यति तव पन्थानम् ॥

कितनी मधुर शब्द-योजना है ! कितना सरल प्रवाह है । हिन्दी-कविता मे भी माधुर्य गुण खूब है । देखिये—

कङ्कन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि ।
कहत लखन सन राम हृदय गुनि ॥

*   *   *

कबहुँक हौ इहि रहनि रहौगो ।
परहित निरत निरन्तर मन क्रम वचन नेम निबहौगो ॥
परुष बचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौगो ।
विगत मान सम सीतल मन परगुन अवगुन न कहौगो ॥
परिहरि देह जनित चिता दुख सुख समबुद्धि सहौगो ।
तुलसिदास प्रभु इहि पथ रहि अविचल हरि भक्ति लहौगो ॥

*   *   *

यह तो गुणो की बात हुई । काव्य मे दोष का भी विचार बहुत आवश्यक है । शब्द-दोष, अर्थ-दोष, रस-दोष आदि कई प्रकार के दोष है । श्रुतिकटुत्व, अश्लीलता, ग्राम्यता, अप्रसिद्धता, सदिग्धता, क्लिष्टता, पुनरुक्ति, छदोभग, यतिभंग आदि दोषो से बचना चाहिये ।

काव्य मे अलङ्कार की भी आवश्यकता है । केशवदास ने कहा है—

भूषण बिना न सोहई, कविता बनिता मित्र ।

गुण और अलङ्कार मे भेद है । गुण रस के बिना नही रहते, पर अलङ्कार रस के बिना भी रह सकते है । अलङ्कार रस के सहायक होते है । शब्द और अर्थ मे उत्कर्ष प्रदान कर वे रस की वृद्धि करते है । पर जहा रस नही, वहां केवल अलङ्कार भी उक्ति में वैचित्र्य उत्पन्न कर देते है ।

रस के सहायक छद भी है। मंदाक्रान्ता, द्रुतविलम्बित, शिखरिणी और मालिनी छद मे शृङ्गार, शात और करुण रस अधिक मनोहर हो जाते है। भुजङ्गप्रयात, वंशस्थ और शार्दूलविक्रीड़ित मे वीर, रौद्र और भयानक रस विशेषप्रभावोत्पादक हो जाते है। हिन्दी छन्दों में सवैया और बरवै मे शृङ्गार, करुण और शात रस, छप्पय मे वीर, रौद्रऔर भयानक रस; घनाक्षरी, दोहा, चौपाई और सोरठा मे प्रायः सभी रस उद्दीप्त होते है। सवैया और बरवै मे वीररस का काव्य नीरस हो जायगा। काव्य में विरोधी और सहायक रसों का भी ध्यान रखना चाहिये। वीर या रौद्ररस के वर्णन मे शृङ्गार, हास्य और करुण रस की उपस्थिति से रस की सिद्धि नही हो सकती। हास्यरस से शृङ्गाररस वृद्धि पाता है, पर वीभत्स, भयानक और करुण रस से उसकी सिद्धि मे बाधा पहुंचती है। हास्यरस करुणरस का घातक है। कवि ही नही, अच्छे वक्ता भी रसो के शत्रुओ और मित्रो की जानकारी से अपने विषय को बहुत प्रभावोत्पादक बना लेते है।

आगे के कोष्ठक मे यह विषय अधिक स्पष्ट कर दिया जाता है—

संख्या	रस	रस के मित्र	रस के शत्रु
१	शृङ्गार,	हास्य, अद्भुत।	करुणि, वीभत्स, रौद्र, वीर, भयानक।
२	हास्य,	शृङ्गार, अद्भुत।	भयानक, करुण, वीर।
३	अद्भुत,	भयानक।	रौद्र।
४	शांत,	करुण।	वीर, शृङ्गार, रौद्र, हास्य, भयानक।
५	रौद्र,	भयानक।	हास्य, शृङ्गार, अद्भुत।
६	वीर,	रौद्र।	शात, शृङ्गार।
७	करुण,	शांत।	हास्य, शृङ्गार।
८	भयानक,	अद्भुत, रौद्र, वीर।	शृङ्गार, हास्य, शात।
९	वीभत्स।	+	शृङ्गार।

कवि कौन है? कवि सृष्टि के सौन्दर्य का मर्मज्ञ है। वह एक ऐसा यन्त्र है; जिसके द्वारा सृष्टि का सौन्दर्य देखा जाता है। कवि सौन्दर्य

का उपभोग करता है, और जब उन्मत्त होजाता है, तब उसके प्रलाप रूप मे उसकी उन्मत्तता का कुल प्रसाद सहृदय-जनो को मिल जाता है। वह प्रलाप ही काव्य है। तत्ववेत्ता और कवि में अन्तर है। तत्ववेत्ता मस्तिष्क का निवासी है और कवि हृदय का। हृदय त्रिगुणात्मक सृष्टि का केन्द्र है। कवि उसी केन्द्र में स्थित होकर सृष्टि का निरीक्षण करता है। हृदय मनुष्य मात्र के है। पर कुछ तो हृदय के मर्म समझते ही नही; कुछ समझते तो है, पर उनकी वाणी मे इतनी शक्ति नही होती कि वे उसे प्रकट कर सके। कवि हृदय की बाते समझता भी है और उसे कह भी सकता है। साधारण जन और कवि मे यही अन्तर है।

कवीना मानस नौमि तरन्ति प्रतिभाम्भसि।
यत्र हसवयासीव भुवनानि चतुर्दश ॥

अर्थात् कवि के हृदयरूपी मानसरोवर को मै नमस्कार करता हू; जिसके प्रतिभारूपी जल मे चौदहो भुवन हस की तरह तैरा करते है।

अग्रेज कवि शेक्सपियर ने कहा है—

The lunatic, the lover and the poet,
Are of imagination all compact

अर्थात् पागल, प्रेमी और कवि, इनकी कल्पनाए एक-सी होती है।

कवि जब एक अलौकिक आनन्द की दशा मे जागृत होता है, तब लोग उसे पागल कहते है। प्रेमी की भी ऐसी ही दशा होती है। पर प्रेमी अपने आनन्द को प्रकट नही कर सकता; वह एकान्त मे अकेले आनन्द का अनुभव करना पसन्द करता है। और कवि स्वय अनुभव करके दूसरों को बाँटता भी है। दोनो मे यही अन्तर है। दोनो का अन्तर इस शेर से और भी साफ हो जाता है—

इश्क कहता है कि आलम से जुदा हो जाओ।
हुस्न कहता है जिधर जाओ नया आलम है॥

प्रेमी इश्क का उपासक होता है और कवि हुस्न का।

कवि की कोई बात सौन्दर्यहीन नही होती, सब मे कुछ-न-कुछ

चमत्कार होता है। उसकी दृष्टि साधारण लोगो की दृष्टि से भिन्न होती है। उसका कथन निराले ढग का होता है। ससार की तुच्छ-से-तुच्छ बातो मे भी वह सौन्दर्य ढूँढ निकालता है। गढ़ो मे बरसात का पानी जमा होकर जब सूख जाता है तब उसमे कीचड़ शेष रह जाती है। जब कीचड़ का पानी भी सूख जाता है तब उसमे दरारे पड जाती है। यह ससार की ऐसी साधारण-सी घटना है कि गढे के पास से आने-जाने वाले लोग कभी इस घटना पर ध्यान भी नही देते। किन्तु कवि की दृष्टि से वह कहाँ छूट सकता है? तुलसीदास ने कीचड ऐसे तुच्छ पदार्थ को और उस पर बीती हुई प्रकृति की एक अत्यन्त साधारण घटना को सौन्दर्य से चमत्कृत कर दिया। वे कहते हैं—

हृदय न विदरेउ पक जिमि, बिछुरत प्रीतम नीर।
जानत हौ मोहि दीन्ह विधि, यह जातना-सरीर॥

अर्थात्, प्रियतम जल के बिछुडते ही कीचड़ का हृदय फट गया, किन्तु मेरा नही फटा। इससे जान पडता है कि विधाता ने मुझे यातना भोगने के लिए ही यह शरीर दिया है।

कीचड़ के मन की वेदना कवि के सिवा साधारण जन कैसे समझ सकते है?

ससार मे कौन मनुष्य नही रोया? मनुष्य-जीवन मे रोना सब से पहला काम है। रोने के साथ आँखो से आँसुओ की धारा बहती है। आँसू किसने नही देखा? पर कवि की दृष्टि से सब नही देखते। आँसुओं के साथ रहीम ने एक अद्भुत रहस्य खोज निकाला है।

"रहिमन" अँसुवा नयन ढरि, जिय दुख प्रकट करेय।
जाहि निकारो गेह ते, कस न भेद कहि देय॥

जिसे हम घर से निकाल देगे, वह घर का भेद अवश्य प्रकट कर देगा। जैसे आँसुओ ने निकल कर हृदय का दु ख बता दिया।

कवि सौन्दर्य देखता है। चाहे वह सौन्दर्य बहिर्जगत् का हो, चाहे अन्तर्जगत् का। जो केवल बाहरी सौन्दर्य का ही वर्णन करता है, वह

कवि है; पर जो मनुष्य के मन के सौन्दर्य का भी वर्णन करता है वह महाकवि है । भीतरी सौन्दर्य के वर्णन करने में ही कवि की कवित्व-शक्ति का पता चल सकता है। देखिये तुलसीदास ने बाहरी और भीतरी दोनां सौन्दर्यों का एक साथ कितना सुन्दर वर्णन कर दिया है—

बिष्णु कहा अस बिहँसि तब, बोलि सकल द्विजराज ।
बिलग बिलग होइ चलहु सब, निज निज सहित समाज ॥
बर अनुहारि बरात न भाई । हँसी करइहउ परपुर जाई ॥
बिष्णु बचन सुनि सुर मुसकाने । निजनिज सेन सहित बिलगाने ॥
मन ही मन महेस मुसुकाही। हरि के ब्यङ्ग बचन नहिं जाही ॥

"मन ही मन महेस मुसुकाही" लिखकर तुलसीदास ने कवित्वशक्ति का अद्भुत परिचय दिया है । शकर के मन मे विष्णु के लिए अगाध प्रेम है। उस प्रेम के समुद्र को तुलसीदास ने इस चौपाई के एक चरण रूपी नन्हे से बूंद मे भर कर रख दिया है।

बाहरी सौन्दर्य तो सुचतुर चित्रकार के चित्र मे भी देखने को मिल सकता है, पर मन का सौन्दर्य महाकवि की वाणी ही मे मिलता है । चित्रकार विम्बोष्ठी, चारुनेत्रा, हिमकरवदना, कान्तकुन्तला, पृथुलजघना कामिनी का ऐसा मनोहर चित्र बना सकता है कि सभव है वैसा चित्र कवि अपनी कविता मे न खीच सके। पर चित्रकार उस रमणी के हृदय को कैसे दिखला सकता है ? वह सेनापति के इस छंद का भाव कैसे चित्रित कर सकता है ?

फूलन सो बाल की बनाइ गुही बेनी लाल
भाल दीन्ही बेदी मृगमद की असित है ।
अग अग भूषन बनाइ ब्रजभूषन जू
बीरी निज कर तै खवाई अति हित है ॥
ह्वै कै रसबस जब दीबे को महावर के
सेनापति स्याम गह्यो चरन ललित है ॥

चूमि हाथ नाथ के लगाइ रही आखिन सों
कही, प्रानपति ! यह अति अनुचित है ॥

"यह अति अनुचित है" बताकर कवि ने जो स्त्री के हृदय की छटा दिखलाई है, वह चित्रकार नही दिखला सकता ।

कवि की कविता का प्रभाव स्वयं कवि के हृदय पर नही पड़ता । वह शृगार रस की मनोहर कविता लिखता है । कितने ही युवक-युवती उसकी कविता पढकर प्रेमोन्मत्त हो जाते है । पर स्वय कवि उस कविता के लिख चुकने पर निश्चिन्त-सा होकर अपने मामूली काम मे लग जाता है । वह वीर-रस की कविता लिखता है । सभव है, उसकी कविता पढकर कोई व्यक्ति युद्ध मे निर्भयता से प्राण दे दे । पर कवि महाशय तो उस कविता की रचना करने के बाद शायद नहाने-धोने और खाने-पीने मे लग जाया करते है । वे कविता पढते-पढते युद्ध-क्षेत्र की ओर दौडते हुए नही दिखाई पडेगे । उनकी करुण और शातिरस की कविता पढकर कोई सहृदय चाहे ससार से विरक्त, राग-द्वेष से रहित हो जाय । पर कवि महाराज अपना शरीर सजाने मे शायद ही कभी त्रुटि करे । इन बातों के लिखने का अभिप्राय यह है कि कवि का हृदय जल में कमलपत्र की तरह निर्लेप होता है । उसपर उसकी ही कल्पना या रचना का कोई प्रभाव नही पड़ता । सस्कृत के एक पडित ने इस पर कवि का गूढ परिहास करते हुए यह लिखा है—

कवि करोति काव्यानि स्वादु जानन्ति पण्डिता. ।
सुन्दर्या अपि लावण्यं पतिर्जानाति नो पिता ॥

कवि काव्य रचता है, पर स्वाद पण्डित जानते है । जैसे, सुन्दरी स्त्री के लावण्य को उसका पति जानता है, (उत्पन्न करनेवाला) पिता नही ।

कवि अपने लिए कविता नही रचता, दूसरो के लिए रचता है । एकान्त स्थान में बैठकर, इन्द्रियासक्ति परित्याग करके वह सहृदय रसिकजनो के लिए काव्य रचता है । कवि के समान परोपकारी कौन है ?

कवि कैसी ही हीन दशा मे क्यो न हो, वह स्वभाव मे राजा और उदारता मे हरिश्चन्द्र से कम नही होता। किसी राजा को एक बडा देश विजय करने मे उतना आनन्द नही होता, जितना कवि को एक शब्द किसी स्थान पर ठीक बैठा देने मे होता है। शब्द ही उसकी सम्पत्ति है, वही उसकी सेना है। शब्दों से वह विश्व का हृदय जीतने की शक्ति रखता है। जब वह काव्य रचने बैठता है, तब उसके ब्रह्माड मे शब्दो के समूह-के-समूह चक्कर लगाते है। कवि उनमे से पकड़-पकडकर उन्हे उपयुक्त स्थानो पर सजा देता है। कभी-कभी कौडी के मोल के शब्द को वह ऐसे स्थान पर जड़ देता है, जहा वह हीरे की तरह चमक उठता है। "कहु" (कही) एक साधारण शब्द है। पर श्रीधर पाठक ने उसके हाथ मे सुधा-भवन की चाबी ही सौंप दी है।

यही स्वर्ग सुरलोक यही सुरकानन सुन्दर।
यहि अमरन कौ ओक यही कहु बसत पुरन्दर॥ 'काश्मीर सुखमा'

"यही कहु बसत पुरन्दर" मे "कहु" पुरन्दर से भी अधिक प्रभावशाली बन गया है। काश्मीर मे पाठकजी को पुरन्दर के मिलने से कितना आनन्द होता, इसका अनुभव अकेले पाठकजी ही कर सकते है। पर "कहु" सहृदय रसिक पाठको को घर बैठे इन्द्र-मिलन से भी अधिक आनन्द प्रदान कर रहा है। कवि और शब्द की विचित्र महिमा है। शब्द कवि को अमर बना देते है और कवि शब्द को भाग्यवान्।

कवि दो प्रकार के होते है। एक कवि केवल अपनी कथा कहता है। अर्थात् अपनी प्रतिभा द्वारा केवल अपने हृदय के सुख-दुःख, कल्पना और अनुभव को कविता रूप मे प्रकट करता है। वर्तमान काल में रवीन्द्रनाथ ठाकुर इसी श्रेणी के कवि है। दूसरे प्रकार का कवि समस्त देश, समग्र जाति या युग की कथा कहता है। वह कवि केवल निमित्त मात्र होता है, उसके द्वारा समग्र जाति की सरस्वती बोलती है। उसकी रचना किसी व्यक्ति विशेष की रचना नही रह जाती। उसकी रचना सम्पूर्ण समाज की मिलकियत हो जाती है। तुलसीदास एक व्यक्ति का नाम था।

एक जनसमूह की सरस्वती उनके द्वारा प्रकट हुई । उन्होने उस जनसमूह के हृदय की बात कही । वह जनसमूह तुलसीदास के कथन को अपनी सम्पत्ति समझता है । इसीसे वह कथन अजर और अमर होगया । कितने ही ऐसे अपढ और ग्रामीण मनुष्यो के मुख से भी कभी-कभी—

होइ है वहि जो राम रचि राखा ।

* * *

जाकर जापर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलत न कछु सदेहू ॥

आदि सुन पडता है, जो तुलसीदास को जानते भी नही । इसका कारण यह है कि वे अपनी वस्तु का उपयोग करते है । तुलसीदास के लिए उनको केवल इसीलिए कृतज्ञ होना चाहिये कि तुलसीदास ने उनके हृदय की बातों को पद्य-रूप मे करके बोलने मे आसान बना दिया । तुलसीदास अपनी रचना मे व्याप्त होकर अदृष्य हो गये । लोग उनके वचन को अपना-सा मानकर बोलते है । यही कवि की व्यापकता है । जो कवि व्यापक नही, उसकी कविता जब कभी उदाहरण रूप मे उपस्थित होती है, तब उसके साथ उसका नाम भी लगा रहता है । पर तुलसीदास के वचनो के साथ उनके नाम की आवश्यकता नही पडती, क्योकि तुलसीदास दूध और शक्कर की तरह समाज मे घुल-मिल गये है । यही उनका अमरत्व है; यही उनका महा-कवित्व है । आज उनकी अमर-वाणी से धार्मिक हिन्दुओं के मन्दिर, घर, मुख और श्रवण गूज रहे है । इसीप्रकार हिन्दी के और भी कितने ही अमर कवि है, जैसे कबीर, सूर, मीराबाई आदि; जो हिन्दू-समाज मे अपने लिए खास स्थान रखते है । वह कैसी शुभ घड़ी थी, जब उनकी वाणी से या लेखनी से एक वाक्य निकल गया और वह हजारो मुखो से प्रतिध्वनित हो उठा । न जाने उनकी किस तपस्या के फल से, किस मत्र की साधना से उनकी वाणी रूपी तागे का अन्त नही आता और अब तक उसमे सहस्रो हृदय-सुमन पिरोये जा रहे है।

कवि की योग्यता के सम्बन्ध मे नारद ने "सगीत-मकरन्द" मे यह श्लोक लिखा है—

शुचिर्दक्ष शान्त. सुजनविनत. सूनृततर.
कलावेदी विद्वानतिमृदुपद. काव्यचतुर
रसज्ञो दैवज्ञः सरस हृदय सत्कुलभव
शुभाकारश्छन्दोगुणगणविवेकी स च कवि

इतने गुण जिस पुरुष मे हों, वह ससार में कितना भाग्यशाला होगा ! कवि होना कैसे सौभाग्य की बात है ! !

आजकल की हिन्दी-कविता की ओर जब हम ध्यान देते है, तब बहुत निराश होना पडता है। कोरी तुकवन्दी को कविता का नाम दिया जारहा है; बक को हंस और कौवे को मोर बताया जारहा है। जिस पद्य में न रस है, न माधुर्य, न प्रसाद और न अलङ्कार, उसे कविता को उपाधि से विभूषित किया जा रहा है। और उसके रचयिता को समाचार पत्रो के चाटुकार सम्पादक कविवर, कवि-केसरी, कवि सम्राट्,कवि-कुजर कवि-पुङ्गव, कवीन्द्र आदि कहकर उसकी रचना के द्वारा अपने पत्र की ग्राहक-संख्या बढाने के प्रयत्न मे है। यह कितने खेद की बात है ! कवि की जिम्मेदारी इतनी बडी है कि तुलसीदास भी कवि होने का दावा नही करते थे। किन्तु आजकल नीरस तुकबन्दी करने वाला भी कवि-सम्राट् कहकर आघोषित किया जाता है। ऐसा करके प्रशंसक लोग अपनी काव्य-शास्त्र सम्बन्धी अनभिज्ञता की घोषणा करते है या पद्य-रचयिता की प्रशसा ! यह सोचने की बात है। प्रशसा तो वह है जो यथार्थ हो। असत्य प्रशंसा तो निन्दा ही का एक रूप है।

लिखते-लिखते अन्त मे मै कुछ कड़ी बाते लिख गया। इसके लिए मुझे खेद है; पर मेरा उद्देश्य यह नही कि इससे किसी सम्पादक या कवि का जी दुखे। मै तो सिर्फ यह चाहता हूँ कि काव्य-शास्त्र का अच्छी तरह अध्ययन कर लेने के वाद लोग कविता रचने का श्रम करे। आज-कल की खड़ी वोली की कविता में काव्य के गुण न होने से पढ़ते समय ऐसा जान पड़ता है मानो जीभ के मैदान पर अक्षर लट्टु चला रहे है। ऊपर काव्य और कवि के सम्बन्ध में जो कुछ लिखा गया है, वह उत्ते-

जित करने के लिए एक सकेत मात्र है । हमारे युवक कविगण इधर ध्यान देंगे तो उनके द्वारा हिन्दी मे उत्तम कविता की सृष्टि होने की पूर्ण सम्भावना है । कविता-कौमुदी मे जो कविताये संग्रह की गई है, उनमे काव्य के सभी गुण मिलेगे। काव्यशास्त्र का थोड़ा-बहुत भी ज्ञान रखने वाले को इन कविताओ मे अन्य पाठको की अपेक्षा अधिक आनंद प्राप्त होगा। इसलिए मैने यह विषय कुछ विस्तार से लिख दिया है।

यहाँ तक तो काव्य और कवि सम्बन्धी बाते हुई । अब कविता-कौमुदी की चर्चा और रह गई। कविता-कौमुदी के चौथे सस्करण तक इसके प्रत्येक सस्करण मे कुछ न कुछ परिवर्तन और परिवर्द्धन होते आये है। जबतक मेरी तृप्ति नही हो गई, तब तक मै परिवर्तन को रोक नही सका। अब कविता-कौमुदी का यह रूप सदा के लिए निश्चित हो गया है। अब परिवर्तन की गुजाइश, मेरी राय मे, नही रह गई।

हिन्दी-ससार ने इस पुस्तक का बड़ा आदर किया। जहाँ इसे कलकत्ता, पटना और काशी के विश्वविद्यालयो ने एम० ए०, बी० ए० और एफ० ए० के कोर्स मे स्थान दिया, वहाँ हिन्दी-साहित्यिको ने इस ढंग की पुस्तको मे इसे सर्वोच्च स्थान देकर आदर किया है । मै इसे अपनी आशातीत सफलता समझ कर उत्साहित होता हूँ।

इस पुस्तक के कवियो की कविताएँ चुनने मे मैने किसी खास विषय को लक्ष्य मे नही रखा। जिस कविता मे मुझे कवि की प्रतिभा दिखाई पड़ी, मैने उसे ही चुन लिया। कवि के हृदय को असली रूप मे पाठकों के सामने लाने मे मैने कोई बाधा नही पहुँचाई। इस कारण कुछ कविताएँ ऐसी भी आ गई है, जो अश्लील कही जा सकती है। किन्तु उनमे कवि का चमत्कार है, इससे विवश होकर उन्हे चुनना ही पडा। जो कवि जिस रस के लिए प्रसिद्ध है उसकी उसी रस की कविता अधिक सख्या मे दी गई है। इस कारण से यह पुस्तक साधु-सन्त, साहित्य-रसिक, हास्य-प्रिय, प्रेमी, शृंगारी और नीति जानने की इच्छा वाले सभी श्रेणी के लोगो के लिए उपयोगी हो गई है । मुझे कितनी ही बार यात्रा में

प्रस्तावना

कविता सृष्टि का सौन्दर्य है, कविता ही सृष्टि का सुख है, और कविता ही सृष्टि का जीवन-प्राण है। परमाणु मे कविता है, विराट् रूप में कविता है, विन्दु मे कविता है, सागर मे कविता है, रेणु में कविता है, पर्वत मे कविता है, वायु और अग्नि मे कविता है, जल और थल में कविता है, आकाश मे कविता है, प्रकाश मे कविता है, अन्धकार में भी कविता है, सूर्य, चन्द्र और तारागण मे कविता है, किरण और कौमुदी मे कविता है, मनुष्य मे कविता है, पशु मे कविता है, पक्षी मे कविता है, वृक्ष मे कविता है, जिधर देखो कविता ही का साम्राज्य है। प्रकृति काव्यमय है, सारा ब्रह्माण्ड एक अद्भुत महाकाव्य है। जिस मनुष्य ने इस सारगर्भित रसमयी कविता के आनन्द का स्वाद चखा, वह भाग्यवान् है। जिसने इस सरस्वती-मन्दिर मे कुछ शिक्षा ग्रहण की और मनन किया वही पण्डित है। जिसने इस पवित्र प्रवाह मे अपने को बहा दिया, वही विरक्त है। जिसने इस अमृत-प्रवाह मे डूबकर, दो-चार कलश भरकर, प्यासे थके हुए रोगी वा मृतप्राय यात्रियो को कुछ बूंदे पिलाकर उन्हे शक्ति दी और पुनर्जीवित किया, वही कवि है।

ईश्वरीय सौन्दर्य को—प्राकृतिक कविता को भाषा की छटा द्वारा संसार को दरसाना ही कवि का कर्त्तव्य है। जितना गहरा वह अपनी प्रतिभा द्वारा इस-सौन्दर्य-सागर में डूबता है, उतना ही अधिक वह अपने कर्त्तव्य मे सफल होता है। ससार के पदार्थों और घटनाओ को सभी देखते हैं, परन्तु जिन आँखों से उन्हे कवि देखता है वे निराली ही होती है। गँवार के लिए पहाडों के भीतर से आती हुई नदी एक नदी मा है; कवि के लिए उस श्वेतवस्त्रा शोभायुक्त लाजवती का नाचता हुआ

शरीर शृङ्गार की रङ्गभूमि है। आँख वही, पर चितवन मे भेद है।'
विहारी ने यह तो सच कहा है—

अनियारे दीरघ नयन, किती न तरुनि समान ।
वह चितवन कछु और है, जिहि वस होत सुजान ॥

किन्तु विहारी ने इस रसीले दोहे मे केवल वाहरी आँखो ही के रस का वर्णन किया—और वह भी अधूरा। वास्तव मे वश करनेवाली आँखों मे इतना भेद नही होता, जितना वश होनेवाली आँखो मे। हीरे की परख जौहरी की आँखें करती है, कुब्जा के सौन्दर्य्य की पहचान रस-प्रवीण कृष्ण ही को होती है, पदार्थ रूपी चित्रो मे चितेरे के हाथ की महिमा कवि की ही आँखे पहचानती है, प्राकृतिक दैवी सङ्गीत उसी के कान सुनते है। विज्ञानवेत्ता पदार्थों के वाहरी अङ्गो की छानवीन करता है, और उनके अवयवों का सम्वन्ध ढूँढता है, नीतिज्ञ उनसे मनुष्य-समाज के लिए परिणाम निकालता है; किन्तु उनके आन्तरिक सौन्दर्य्य की ओर कवि ही का लक्ष्य रहता है। वैज्ञानिक और नीतिज्ञ भी जैसे-जैसे अपने लक्ष्य की खोज मे गहरे डूवते है, वैसे-वैसे कवि के समीप पहुँचते जाते है। सभी विद्याओ और शास्त्रों का अन्त और उनकी सफलता कविता में लीन होने ही मे है। कवि के सम्वन्धमे कहा है—

जानाते यन्न चन्द्रार्कौ जानन्ते यन्न योगिनः ।
जानीते यन्न भर्गोऽपि तज्जानाति कवि.स्वयम् ॥

यह कवि और कविता का आदर्श है, इसी आदर्श की ओर सच्चा कवि जाता है। जितना ही वह उसके समीप पहुँचता है, उतना ही वह प्रभावशाली और उसकी कविता स्थायी होती है। भाषा तो केवल एक पहनावा मात्र है। उसकी कविता वास्तव मे संसार के लाभ के लिए होती है; क्योकि कवि की सृष्टि मे सम्पूर्ण प्रजातन्त्र है, समष्टिवाद का शुद्ध व्यवहार है। यहाँ स्वतंत्रता है, स्वच्छन्दता है, अपरिमित सम्पत्ति है। कोई रोकनेवाला नहीं, जितना चाहो उसमे से लेते जाओ, वह घटती नहीं। तुममें केवल इच्छा और शक्ति की आवश्यकता है।

हिन्दी बोलनेवालो का यह सौभाग्य है कि कविता के ऊचे आदर्श के समीप तक पहुचने वाले कई कवि ऐसे हुए है जिन्होंने हिन्दी भाषा द्वारा अपनी अमूल्य वाणी से ससार का उपकार किया है। मनुष्य-जाति सदा उनकी ऋणी रहेगी। कबीर, सूर और तुलसी—अहा! इनके नामो का स्मरण करते ही किस दीप्यमान सौन्दर्य और पवित्र आनन्द की सृष्टि के द्वार खुल जाते है—इनके भावो को जिसने समझा, वह सच्चा पण्डित है; इनके मर्म को जिसने पाया, वह स्वय महात्मा है। ससार साहित्य की चर्चा करता है, काच को हीरा जानकर उसके पीछे दौड़ता है, खेल के गुड्डे को बालक समझकर उसका विवाह करता है; और अपनी करतूत पर अभिमानी बनता है। अनेक भाषाए अपने-अपने काच के टुकड़ो को सामने रख हीरे का दम भरती है, किन्तु जैसा कबीर जी ने कहा है—

सिहन के लहड़े नहीं, हसन की नहिं पांत।
लालन की नहिं बोरिया, साधु न चले जमात॥

कवियो के भी लहड़े नही होते। वह काल, वह देश भाग्यवान् है जहा एक भी कवि उत्पन्न हो जाय। कबीर, सूर और तुलसी यह हिन्दी भाषा ही के नही, ससार-साहित्य के लाल है, परखनेवाले की आवश्यकता है। कबीर के दोहो और शब्दों की परख कौन करता है? सूर के पदो और तुलसी की चौपाइयो को कौन तोलता है? मात्रा और अक्षरों के गिननेवाले समालोचक? छिः। परखने के लिए कुछ हृदय की सामग्री चाहिए, पुस्तकों के आडम्बर की आवश्यकता नही। इन कवियो के हँसने और रोने का अर्थ कौन समझता है? इनके वाक्यों के मर्म तक कौन पहुचता है? स्वयं कोई मस्त प्रेमी, कोई कविता का मतवाला, जो शुद्ध हृदय से, अभिमान छोड़, इस सृष्टि के भीतर नम्रता-पूर्वक शिष्य बनकर आता है।

"ढाई अक्षर प्रेम का, पढ़े सो पण्डित होय।"

कुछ काच पहचाननेवाले समालोचक हिन्दी-भाषा मे साहित्य की

कमी देखते है। गाव का रहनेवाला, जिसने अपनी गाव की दुकान मे रंग-विरग के कांच के टुकड़े देखे है, नगर मे आकर जव एक वडे जौहरी की दुकान मे जाता है तो अपने गांव की दुकान के समान रंगीले काचों को न देखकर वहुमूल्य मणियों का तिरस्कार करता है, और कहता है—हमारे गाव की दुकान के समान यहा मणिया तो है ही नही। ठीक यही दशा इन समालोचको की है। "यह गाहक करवीन के, तुम लीनी कर वीन।" यदि मणि की परख न हो तो मणि का दोष नहीं, परखनेवाले का दोष है। किन्तु कांच का भी संसार मे काम है, ये भी चमकीले होते है, देखने मे अच्छे लगते है। कांच के टुकडे भी वन्य है, उनमे भी सौन्दर्य है, वे आनन्द वढाते है—किन्तु हीरो और लालो की वात कुछ और ही है।

इस "कविता-कौमुदी" की छटा, सग्रह होने के कारण वादलो से छनकर आती है, तो भी अंवकार दूर करने के लिए पर्याप्त है। इसमे अमूल्य मणियों की लड़िया है, साथ-साथ रगीले काच के टुकडों की वन्दनवारे भी है। वहुत से कांच के टुकड़े बहुमूल्य है, इनका भी शृंगार शोभायमान है; और अपने-अपने स्थान पर सभी आदरणीय है।

प्रयाग,
मार्गशीर्ष शुक्ल ३, सवत् १९७४

पुरुषोत्तमदास टण्डन

हिन्दी का संक्षिप्त इतिहास

भाषा

हृदय एक पुष्प है, भाषा उसका विकास है और भाव गन्ध है ।

हृदय एक वाद्य-यन्त्र है, रसना रीड है, इच्छा उगली है और भाषा झंकार है ।

भाषा विचार का साकार रूप है ।

भाषा से देश जाना जाता है । हम देश के जल, वायु, अग्नि, पृथ्वी और आकाश के सक्षिप्त रूप है । हम स्वयं देश है । भाषा हमारी कीर्ति है ।

विचार भाषा का पुत्र है, कार्य पौत्र है, और सम्मति कन्या है, जो प्रदान की जाती है, और दूसरे घर मे जाकर वृद्धि पाती है ।

प्रत्येक पूरी बात को वाक्य कहते है । प्रत्येक वाक्य शब्दों का समूह है । प्रत्येक शब्द एक सार्थक ध्वनि है । भाषा वाक्यों का समूह है ।

चार पैर, पूछ, सीग आदि अगो से युक्त एक पशु विशेष का नाम हमने गाय रख लिया है । गाय शब्द और गाय पशु से कोई साक्षात् सम्बन्ध नही; परन्तु गाय शब्द के उच्चारण से गाय पशु का बोध तत्काल हो जाता है ।

यदि हमने सब वस्तुओ और सब क्रियाओ का नाम रख लिया होता तो अपने मनोगत भावों के प्रकट करने मे हमे बडी ही कठिनता पडती । हाथ मुह आदि के संकेतों से हम अपने मनोभाव पूर्ण रूप से प्रकट ही न कर सकते । ससार के व्यवहार मे कभी उन्नति न होती ।

साधारण रूप से भाषा के दो भेद किये जा सकते है। एक व्यक्त, दूसरा अव्यक्त । विचारों को पूर्ण रूप से प्रकट करनेवाली मनुष्य की भाषा

व्यक्त कहलाती है, और पशु-पक्षी की बोली अव्यक्त। पशु-पक्षी अपनी बोली से दुःख, सुख, भय आदि मनोविकारो को प्रकट करने के सिवाय कोई नई बात नही बतला सकते। जब हम सोचते है तब भीतर ही भीतर मन से हम एक प्रकार की बातचीत करते रहते है। यदि हम चाहें तो उसी बातचीत को एकत्र करके लिख ले सकते है। बहुत समय बीत जाने पर भी हम उस लेख को देखकर यह स्मरण कर सकते हैं कि किसी दिन हमने अपने मन से इस विषय पर बातचीत की थी। भाषा बिना यह सुगमता कैसे हो सकती है?

व्यक्त भाषा के दो भाग है—कथित और लिखित। जब कोई मनुष्य हमारे सामने होता है, तब उसके लिए अपने विचार प्रकट करने मे हम कथित भाषा काम मे लाते है। और जब हमे अपने विचार किसी दूर वाले मनुष्य के पास भेजने पड़ते है, या भविष्य के लिए चिरस्थायी रखने पड़ते है, तब हम लिखित भाषा का उपयोग करते है।

हमारे पूर्वजों ने लिखित भाषा के लिए शब्द की एक-एक मूल ध्वनि का एक-एक चिन्ह नियत कर लिया है, जिन्हे अक्षर या वर्ण कहते है। पहले भाषा मे केवल कान ही काम देता था, वर्णो की रचना से आंख भी भाषा के लिए उपयोगी हो गई।

पहले लोग कथित भाषा से ही काम लेते थे। बड़े-छोटे सब प्रकार के विचार केवल कथन द्वारा प्रकट किये जाते थे। जो विचार सुननेवाले को प्रिय लगते थे, उन्हें वह स्मरण रखता था; और अप्रिय विचारों को चाहे वे भविष्य में उसके लिए लाभदायक ही हों, वह उपेक्षा के भाव से देखता था। इसका परिणाम यह होता था कि आगे चलकर उसे यदि पूर्वकाल के अप्रिय विचारों की ही आवश्यकता पड़ती थी तो फिर उसे सोचना पड़ता था। परन्तु अक्षर-लिपि की उत्पत्ति से यह असुविधा दूर हो गई। अब विचार चिरस्थायी किये जा सकते है। आज जो कुछ हम सोचते है उसे लिखित भाषा के रूप मे रख सकते है और हजारो वर्ष बीत जाने पर भी वे देखे जा सकते हैं। अक्षर-लिपि की ही सहायता से

तो हम आज वाल्मीकि, व्यास, कालिदास और तुलसीदास के विचारों का इस प्रकार जान सकते है, मानो वे स्वय हमारे सामने आकर कर रहे हों।

भाषा सदा स्थिर नही रहती। उसमे परिवर्तन होता रहता है। हजारों वर्ष पहले जो भाषा बोली वा लिखी जाती थी, आज उसका वह रूप नही है। भाषा का नया और पुराना रूप मिलान कर देखने से यह बात आसानी से जानी जा सकती है कि परिवर्तन किस प्रकार से हुआ है। भाषा-तत्व के पडितों का कथन है कि जब भाषा मे परिवर्तन रुक जाता है तब उसकी उन्नति भी रुक जाती है। सभ्यता के साथ भाषा का घनिष्ट सम्बन्ध है। सभ्यता की वृद्धि के साथ भाषा की भी वृद्धि होती है। उसमे नये विचार और उन विचारो के द्योतक नये शब्द मिलते रहते है, और भाषा का भण्डार बढ़ता रहता है। भाषा में परिवर्तन कैसे होता है ? विचार करने से इसके ये कारण जान पडते है—स्थान, जल-वायु और सभ्यता का प्रभाव और उच्चारण का भेद। बहुत से शब्द जो एक देश के लोग बोल सकते है, दूसरे देश के लोग नही बोल सकते। शीत-प्रधान देशो में ऐसे शब्दो का बहुत प्रयोग होता है, जिनसे मुख को अधिक खोलना न पड़े; जैसे अग्रेजी भाषा के अधिकांश शब्द। उष्ण प्रधान देशों मे ऐसे शब्द अधिक बोले जाते है जिनसे मुख का अधिक भाग खोलना पडता है; जैसे भारतीय भाषाओं के शब्द। एक ही देश में भी भिन्न-भिन्न जलवायु के कारण एक ही शब्द के उच्चारण मे कभी-कभी बडा अन्तर पाया जाता है। मरुस्थलो के निवासी कण्ठ से बोले जानेवाले शब्दो का अधिक प्रयोग करते है। बंगाल के निवासी सस्कृत-शब्दों का भी विचित्र उच्चारण करते है।

कुछ विद्वानों का अनुमान है कि सृष्टि के आरम्भ काल मे सब मनुष्य एक ही स्थान—मध्य एशिया मे रहते थे और उस समय उनकी भाषा एक थी। कुछ विद्वानो का कथन है कि आर्य लोग पहले-पहल तिब्बत से भारतवर्ष मे उतरे। वही से वे काबुल होकर पश्चिम की ओर फैल गये। जो हो; जीविका की खोज मे या अन्य किसी कारण से वे

इत्यादि, इन शब्दो की समानता से यह प्रमाणित किया जाता है कि हम सब के पूर्वज कभी एक ही भाषा बोलते थे। आदिम स्थान से, जहा पर सब साथ ही साथ रहते थे, जो लोग पश्चिम को गये, उनसे ग्रीक, लैटिन, अग्रेजी आदि भाषा बोलनेवाली जातियों की उत्पत्ति हुई। और जो लोग पूर्व को गये, उनके दो भाग हो गये। एक भाग फारस को गया और दूसरा काबुल होता हुआ भारतवर्ष पहुचा। पहले दल ने ईरान मे मीडी भाषा के द्वारा फारसी भाषा की सृष्टि की, और दूसरे दल ने सस्कृत का प्रचार किया। सस्कृत का अर्थ है सुधरी हुई भाषा। सस्कृत के पहले जो भाषा बोली जाती थी, इसका नाम प्राकृत था। वेदो मे कुछ मत्र पहली प्राकृत म पाये जाते है। व्याकरण बन जाने पर उसी पहली प्राकृत का सुसस्कृत रूप "सस्कृत" नाम से प्रसिद्ध हुआ। सस्कृत को नियमित करने मे पाणिनि का व्याकरण सब से प्रसिद्ध है। सस्कृत से दूसरी प्राकृत का जन्म हुआ। और इसी दूसरी प्राकृत से ही हिन्दी आदि भाषाए निकली है।

आर्य भाषा के मुख्य दो विभाग है, एशिया खड की भाषाए और युरोप खड की भाषाएं। यहा सक्षेप से आर्य, भाषा, उसकी शाखा-प्रशाखाओं और अन्य स्वतन्त्र भाषाओं का विवरण दिया जाता है—

एशिया-खड की भाषाये—

(१) **हिन्दुस्तान की भाषाएं**—सस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश।

देशी भाषाए—हिन्दी, बङ्गला, उड़िया; मराठी, गुजराती, सिन्धी, पजाबी, जिप्सी लोगो की भाषा। जिप्सी लोग हिन्दुस्तान के मूल निवासी थे। उनका कोई खास निवास-स्थान नही, वे सदा भटकते फिरते है। बारहवी शताब्दी मे वे ईरान, आर्मिनिया, ग्रीस, रोमानिया, हगरी और बोहेमिया के मार्ग से युरोप मे घुसे।

(२) **ईरान की भाषाएं**—जेन्द-जरदस्त के अनुयायियो की प्राचीन भाषा। जेन्द-अवस्था नामक प्राचीन ग्रन्थ इसी भाषा मे है। दारा, जरक्सस और उसके वशजो के समय के लेखो की भाषा, (ई० पू० ५ वी शताब्दी)।

पहलवी—ई० सन् २२६ से ६५१ तक।

फारसी—ईरान के पूर्वी भाग में अधिकतर बोली जाती हुई भाषा, जब मुसलमानों ने ईरान पर विजय पाई, उस समय की भाषा ।

आधुनिक फारसी—फिरदौसी के "शाह्नामे" की भाषा । पुरानी और नई फारसी मे विशेष अन्तर नही है । आर्मीनियन, पश्तो, काकेशश, बुखार,ईरान,तुर्किस्तान और रूस की सरहद के पहाडी लोगो की भाषाये, जो सस्कृत या फारसी से मिलती है ।

(३) युरोप-खंड की भाषाएं——

१—टयूटॉनिक भाषाये—इसके तीन रूप है—

(१) लो जर्मन—अंग्रेजी, डच, फ्लेमिश ।

(२) हाई जर्मन—जर्मन ।

(३) स्कैंडिनेवियन—आइस्लैंडिक, स्वीडिश,डेनिश,नार्वीजियन ।

२—कैल्टिक भाषाये—ब्रिटेन, वेल्श, आयरिश, गेलिक (स्काटलैंड के पहाड़ी देश की भाषा), मैंक्स (मेन द्वीप की भाषा) ।

३—इटैलिक भाषाये— लेटिन, अस्कन, (दक्षिण इटली की प्राचीन भाषा), अम्ब्रियन (इटली के ईशान कोण की प्राचीन भाषा), सेबाइन ।

लेटिन से निकली हुई भाषायें—इटेलियन,फ्रेंच, प्रोवेन्कल, स्पेनिश,पोर्चुगीज,रीटोरोमेनिक (दक्षिण स्विट्जरलैंड की भाषा), वोलेचियन (तुर्किस्तान के उत्तरी प्रान्तवाले और मोल्डेविया की भाषा) ।

४—हेलेनिक भाषाये—प्राचीन ग्रीक (इसमे अटिक,आयोनिक,डोरिक और इओलिक, बोलिया समाविष्ट है), आधुनिक ग्रीक ।

५—स्लैवोनिक भाषायें—अग्निकोण की स्लेवोनिक—रशियन,इलिरिक (सर्वियन, क्रोयेटियन, करिन्थिया और स्टिरिआ की भाषाये)

पश्चिम की स्लेवोनिक—पोलिश, वोहोमियन, पोलेवियन, स्लेवेकियन और सर्वियन (ल्युसेटिअन बोलिया) ।

६—लैटिक भाषाये—प्राचीन प्रशियन, लेटिशया लेवोनियन (कुरलड और लिवोनिया की भाषा)

लिथुएनियन (पूर्व प्रशिया और रूस के कोवनो और विलना प्रान्त की बोलियां)।

युरोप निवासियों में यहूदी, फिन, लेप, हंगेरियन और तुर्क लोग आर्य-भाषा नही बोलते।

७—सेमेटिक भाषाये—आर्य-भाषाओ के सिवाय संसार में और जो भाषाये बोली जाती है, वे सेमेटिक भाषायें कहलाती है। इनके ये भेद है—

(१) सिरिया की भाषा।

(२) असीरिया और बैबिलन की भाषा।

(३) हिब्रू, फिनिशियन, समेरिटन, प्यूनिक।

(४) अरबी, माल्टा और अबिसिनिया की भाषाये।

८—अन्य भाषाये—आर्य-भाषाओ और सेमेटिक-भाषाओं के अतिरिक्त पृथ्वी पर नीचे लिखी अन्य भाषाये भी बोली जाती है—

(१) यूराल और अलाई की भाषायें।

हगेरियन, फिनिश और लपिश, सोमाय की प्रान्तिक भाषायें, तुर्की, मगोलियन बोलियां, तुगुशियन बोलियां।

(२) द्रविड—तामिल, तेलुगू, मलयालम, कन्नड़।

कोरिया, कमसकटका, क्यूराइल की भाषाये।

जापानी और लु-चू की बोली।

मलाया, मलक्का, जावा, सुमात्रा, मेलनीशिया की भाषाये।

काकेशिया की बोलिया।

(३) दक्षिण अफ्रिका की बोलिया।

(४) चीनी भाषा।

इण्डोचाइनीज भाषा (स्यामी, ब्रह्मी, आनामीज और कम्बोडियन भाषाये, तिब्बती।)

(५) बास्क।

उत्तर और दक्षिण अमेरिका के असली निवासियों की भाषा।

अब हम यह दिखलाना चाहते है कि उच्चारण-भेद से भाषाओं में भिन्नता कैसे हो जाती है। प्रत्येक भाषा को विद्वान् और ग्रामीण मनुष्य भिन्न-भिन्न प्रकार से बोलते है। विद्वान् लोग शब्दो का शुद्ध उच्चारण करते है, ग्रामीण लोग उसे अपनी इच्छानुसार सुगम बना लेते है। इससे किसी प्रधान भाषा की बिगड़ते-बिगड़ते कई नई बोलिया बन जाती है। यहा हम कुछ ऐसे शब्द उपस्थित करते है, जिनका अर्थ एक है, परन्तु विद्वानों और ग्रामीणों के उच्चारण मे अन्तर है। जैसे—

शुद्ध शब्द	उच्चारण-भेद	शुद्ध शब्द	उच्चारण भेद
भूमि	भूई	आकाश	अकास, आकास
पानीय	पानी	सूर्य	सूरज
शरीर	सरीर	श्वास	सास

विद्वानों और ग्रामीणों का यह उच्चारण-भेद नया नही है। रामायण के समय मे भी शिष्ट-समाज मे बोली जानेवाली भाषा भिन्न थी, और सर्वसाधारण के बोल-चाल की भाषा भिन्न। वाल्मीकि-रामायण सुन्दर काण्ड, सर्ग ३०, श्लोक १७, १९ मे अशोकवृक्ष पर हनुमानजी चिन्ता करते है—

> अहं ह्यतितनुश्चैव वानरश्च विशेषत.।
> वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह सस्कृताम्॥
> यदि वाच प्रदास्यामि द्विजातिरिव सस्कृताम्।
> रावणं मन्यमाना मा सीता भीता भविष्यति॥
> अवश्यमेव वक्तव्यं मानुष वाक्यमर्थवत्।

अर्थात्, मे तो लघु शरीरी और वानर हू। पर यहा मनुष्यो की वाणी संस्कृत बोलूगा। यदि द्विजाति के समान सस्कृत बोलूगा तो सीता मुझे रावण समझकर डर जायगी। इसलिए मुझे अर्थयुक्त साधारण मनुष्यो की बोलचाल की भाषा बोलनी चाहिये।

इससे प्रकट होता है कि रामायण के समय मे साधारण मनुष्यों की भाषा देववाणी संस्कृत से भिन्न थी। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य सस्कृत

बोलते थे और शूद्र सस्कृत शब्दो के अशुद्ध उच्चारणवाली कोई अन्य भाषा। अशोक के शिला-लेखो और पातञ्जलि के ग्रन्थों से भी पता चलता है कि आज से कोई बाईस सौ बरस पहले उत्तर भारत मे एक ऐसी भाषा प्रचलित थी, जो कई बोलियो से मिलकर बनी थी। सस्कृत-भाषा व्याकरण के नियमो से ऐसी जकड़ी हुई है कि उसके विकार-ग्रस्त होने की कोई सम्भावना नही है। स्त्री, बालक और शूद्र से सस्कृत भाषा का ठीक-ठीक उच्चारण नही बन सकने के कारण सस्कृत मे जब कुछ अशुद्ध शब्दों का प्रयोग होने लगा, तब उससे एक नवीन भाषा पाली का प्रादुर्भाव हुआ। पाली बौद्ध-धर्म की पवित्र भाषा है। बौद्ध-साहित्य प्रायः इसी भाषा में है। लका, श्याम और ब्रह्मदेश मे यह भाषा बोली जाती है। पाली मे २/५ शुद्ध सस्कृत शब्द है और ३/५ सस्कृत शब्दो के विकृत रूप। इसके बाद प्राकृत का नम्बर है। यह सस्कृत के विकृत शब्दो से लदी हुई भाषा है। प्राकृत शब्द "प्रकृत" से बना है, और उसका अर्थ है स्वाभाविक। सर्व-साधारण लोग अपने अशुद्ध उच्चारण के कारण कही सस्कृत भाषा का रूप बिगाड़ न दे, इसलिए विद्वानो ने प्राकृत-भाषा का एक नया रूप स्वीकार किया और उसका व्याकरण बनाकर उसे एक स्वतन्त्र भाषा बनादी। प्राकृत का सबसे पुराना व्याकरण वररुचि का बनाया हुआ मिलता है। पाली की अपेक्षा प्राकृत मे सस्कृत के विकृत शब्द बहुत अधिक है। कालिदास ने शकुन्तला नाटक मे स्त्री और सेवकवर्ग के मुह से प्राय. प्राकृत भाषा का ही प्रयोग कराया है। इससे अनुमान होता है कि कालिदास के समय मे स्त्रियो और साधारण श्रेणी के लोगो मे प्राकृत भाषा का ही विशेष प्रचार था। प्राकृत मे कई स्वतन्त्र काव्य भी लिखे गये है।

सस्कृत शब्दो का प्राकृत और हिन्दी मे कैसा रूप बन गया है इसे दिखाने के लिए कुछ शब्द प्रस्तुत किये जाते है—

सस्कृत	प्राकृत	हिन्दी
विद्युत	बिज्जु	बिजली

संस्कृत	प्राकृत	हिन्दी
श्मश्रु	मस्सू	मूछ
शय्या	सेज्जा	सेज्ज
कुष्ठ	कोट्ठ	कोढ़
तैलम्	तेल्ल	तेल
कृष्ण	कन्हो	कान्ह (व्रजभाषा)
पितृगृह	पिइघर	पीहर
कर्पट.	कप्पडो	कपड़ा
शिथिल	सढिल	ढीला
एकादश	एआरह	ग्यारह
यज्ञोपवीत	जण्णोवइअ	जनेऊ
खदिर	खइर	खैर
वचन	बयण	बैन (व्रजभाषा)
अश्रु	असु	आसू
सप्त	सत्त	सात
सर्प	सप्प	सांप
स्तम्भ	थम्भ	खम्भ
कर्म	कम्म	काम
हस्त	हत्थ	हाथ
भगिनी	बहिनी	बहन
वार्त्ता	बत्त	बात
दुग्ध	दुद्ध	दूध
कर्ण	कन्न	कान
घृतम्	घिअम्	घी
मेघ.	मेहो	मेह
गम्भीरम्	गहिरम्	गहरा, इत्यादि;

ऊपर के प्रमाणो से यह बात समझ मे आ सकती है कि प्रत्येक प्रच-

लित भाषा मे नवीन भावो के द्योतक नवीन शब्द और उसी भाषा के अपभ्रंश नित्य ही बढ़ते रहते है। जब ऐसे शब्दों की अधिकता होती है तब वे सब अपभ्रश शब्द और कुछ उस प्रचलित भाषा के विशुद्ध शब्द मिलकर एक नई बोली का रूप धारण करते है, और फिर अपनी उन्नति का नवीन क्षेत्र तैयार कर लेते है।

प्राकृत का विकास होते-होते उससे तीन शाखाये फूट निकली—मागधी, शौरसेनी और महाराष्ट्री। मागधी मगध देश वा बिहारकी भाषा थी। शौरसेनी शूरसेन प्रदेश अथवा मथुरा के आस-पास की और महाराष्ट्री महाराष्ट्र प्रान्त की भाषा थी। मागधी और शौरसेनी के मिश्रण से एक और भाषा का जन्म हुआ था, जिसे अर्द्ध-मागधी कहते थे। इस भाषा मे जैन-धर्म के कुछ ग्रन्थ लिखे गये थे।

विक्रम सवत् के लगभग आठ-नौ सौ बरस तक प्राकृत भाषा का प्रचार रहा। इसके बाद उसमे कुछ परिवर्तन प्रारम्भ हुआ। धीरे-धीरे वह यहां तक बढ़ा कि उसमे से अपभ्रश नाम से एक नवीन भाषा का प्रादुर्भाव हुआ। "अपभ्रश" शब्द का अर्थ है—"बिगड़ी हुई भाषा"। प्राकृत के अन्तिम वैय्राकरण हेमचन्द्र सूरि ने, जो बारहवी शताब्दी में हुए थे, अपने "सिद्ध हेम शब्दानुशासन" नामक व्याकरण-ग्रथ के आठवे अध्याय में अपभ्रश भाषा का उल्लेख किया है, और उसका व्याकरण भी लिखा है। उन्होने उस समय के ग्रन्थो से चुनकर उदाहरणार्थ सैकड़ो पद्य भी लिख दिये है, जिससे उस समय की प्रचलित भाषा की खासी झलक दिखाई पड़ती है। उदाहरणार्थ अपभ्रश भाषा का एक पद्य हम यहा देते है—

> भल्ला हुआ जु मारिया, बहिणि महारा कन्तु।
> लज्जेज्जतु बयसिअहु, जद भग्गा घर एन्तु॥

अर्थात्, हे बहन! अच्छा हुआ जो मेरा पति मारा गया। यदि भागा हुआ घर आता तो मै सखियो मे लज्जित होती।

अपभ्रश भाषा उस समय केवल मामूली भेद के साथ भारत के बहुत से प्रदेशों में बोली जाती थी। हेमचन्द्र के मरने के बाद, थोड़े ही

वर्षो मे, भारत मे राज्य-विप्लव हुआ। आपस की फूट से एक विशाल साम्राज्य टुकडे-टुकडे हो गया। स्नेह-सम्वन्ध टूट गया। छोटे-छोटे सैकड़ो राज्य कायम हुए। एक राज्य के निवासी दूसरे राज्य के निवासियों को शत्रु समझने लगे। विदेशी विजेताओं के पैर जमे और भारत की फूट से वे लाभ उठाने लगे।

इस राज्य-क्रान्ति का प्रभाव भाषा पर भी पड़ा। परस्पर ईर्ष्या-द्वेष के कारण व्यावहारिक सम्बन्ध सकुचित हुआ। उसी के साथ-साथ भाषा की एकरूपता मे भी अन्तर आने लगा। प्रदेशो का सम्बन्ध-विच्छेद होते ही उनमे व्यापक भाषा अपभ्रश भी प्रत्येक प्रान्त मे भिन्न-भिन्न रूप मे विकसित होने लगी। भिन्न-भिन्न प्रान्तो की प्राकृत का "अपभ्रश" रूप भिन्न-भिन्न हुआ। शौरसेनी का अपभ्रंश "नागर" अपभ्रंश कहलाता है। व्रजभाषा शौरसेनी प्राकृत का रूपान्तर है। हमारी हिन्दी भाषा दो अपभ्रंशों से मिलकर बनी है, एक नागर अपभ्रश, जिससे पश्चिमी हिन्दी और पंजाबी का जन्म हुआ; दूसरे अर्ध-मागधी का अपभ्रश, जिससे पूर्वी हिंदी निकली है जो अवध, बुन्देलखण्ड और छत्तीसगढ मे बोली जाती है।

पश्चिमी हिन्दी के अन्तर्गत और भी कई बोलिया है। जैसी, अवधो अवध मे, बुन्देली बुन्देलखण्ड में, व्रजभाषा मथुरा के आसपास, कन्नौजी गङ्गा-यमुना के मध्य और उत्तर के प्रदेश मे और हिन्दुस्तानी दिल्ली और मेरठ के आसपास के प्रदेश मे बोली जाती है।

अपभ्रंश भाषा प्रकृत और प्रान्तीय भाषाओं के मध्य की भाषा है। प्राकृत के वाद अपभ्रश और अपभ्रश के बाद प्रान्तीय भाषाओं की सृष्टि हुई है। अपभ्रंश भाषा से पुरानी हिन्दी, व्रजभाषा और गुजराती का बहुत अधिक सम्बन्ध है।

प्रारम्भ मे पश्चिमी हिन्दी का जो रूप था उससे राजस्थानी और गुजराती की उत्पत्ति हुई। डा० टोसीटोरी का मत है कि पन्द्रहवी शताब्दी तक पश्चिमी राजपूताना और गुजरात मे एक ही भाषा बोली जाती थी,

इसे वे प्राचीन राजस्थानी भाषा कहते है । यही भाषा गुजराती और मारवाडी का मूल है।

अपभ्रश भाषाएं ग्यारहवे शतक तक प्रचलित थी। इसके बाद इसकी भिन्न-भिन्न शाखाये निकली, और पन्द्रहवे शतक तक पहुँचते-पहुँचते वे अपने भिन्न-भिन्न वातावरण मे फूलने और फलने लगी । हिन्दी भाषा मुख्यत. तीन प्रकार के शब्दो से बनी है, तत्सम, तद्भव और देशज । तत्सम वे शब्द कहलाते है, जो सीधे सस्कृत से आये है। सस्कृत मे उनका जो रूप है, देशी भाषाओं मे भी वही है। जैसे, बल, हल, बन, मन, धन, जन, दूर, सूर, नदी, शीत, वर्षा, समुद्र, बसन्त, साधु, सन्त, दिन, राजा, कवि, काम, क्रोध, दर्शन, मनुष्य । तद्भव वे शब्द है, जो मूल मे तो सस्कृत के शब्द है, पर वे अपभ्रश अर्थात् बिगड़े हुए रूप मे प्रचलित है। जैसे, बच्चा (वत्स), राय (राजा), आग (अग्नि), कान (कर्ण), काज (कार्य), सूख (शुष्क), सुई (सूची), बरस (वर्ष), रात (रात्रि), सब (सर्व), माथा (मस्तक), सिर (शीर्ष), नेवला (नकुल), भात (भक्त), दूध (दुग्ध) आदि। देशज वे शब्द है जो या तो भारत के आदिम निवासियों की बोलियो से लिये गये है, या कार्य या पदार्थ के रूप या ध्वनि के अनुसार बना लिये गये है । देशज शब्द सस्कृत या प्राकृत से कोई सम्बन्ध नही रखते । देशज शब्द जैसे पगडी, रोड़ा, पेट, झाड़ झखाड़, गंडेरी, धूमधाम, ओस, कढाई, टीला, होड, मामा, खिड़की, तथा, खड़-खडाहट, बड़बड़ाना, चट, धड़ाम, ऊटपटाग, झिलमिल, चीचपड़ आदि।

संस्कृत भाषा हिन्दी, पजाबी, सिन्धी, गुजराती, मराठी, उड़िया और बंगला भाषाओ की मातृभाषा है। बंगला, उड़िया और मराठी मे तत्सम शब्द बहुत हैं। हिन्दी और गुजराती मे उससे थोडा कम और पजाबी और सिन्धी में तो सब से कम है। ऐतिहासिक दृष्टि से इसका कारण यह जान पड़ता है कि सिन्ध और पजाब मे विदेशियों के बार-बार आक्रमण होते रहे। इससे आर्य, विशेषकर ब्राह्मण उन प्रान्तो से पूरब की ओर हटते आये। उन प्रांतो मे खासकर अहीर, गूजर और जाटों के जत्थे रह गये।

अतएव स्वभावत. उनकी भाषा से तत्सम शब्द कम होते गये और उनके स्थान मे तद्भव और देशज शब्द भरते गए। व्रजभाषा मे तत्सम की अपेक्षा तद्भव शब्द ही अधिक है।

तत्सम, तद्भव और देशज शब्दो के सिवाय हिन्दी मे बहुत से विदेशी शब्द भी मिल गये है, और अब भी मिलते जा रहे है। हिन्दी का शब्द-भण्डार बराबर बढता जा रहा है। मुसलमान जब इस देश मे आये, तब उनकी भाषा अरबी, तुर्की या फारसी के भी बहुत से शब्द हिन्दी मे मिल गए। पोर्चुगीज और अंग्रेजो के आने पर भी शब्द-वृद्धि हुई, और अंग्रेजी शब्दो का ताता तो अभी तक चला आ रहा है। विदेशी शब्दो के सिवाय अन्य प्रान्तीय भाषाओ के भी कुछ शब्द हिन्दी मे आ मिले है। सब के थोड़े-थोड़े उदाहरण आगे दिये जाते है—

अरबी—अक्ल, इख्त्यार, इम्तिहान, एतराज, औरत, हाल, सिफ़ारिश, अदालत, मुकदमा, तारीख तनख्वाह, हूबहू, इन्साफ, ऐब, उमदा, खबर, खर्च, तकरार, दलील, दुनिया, मज़कूर, मश्गूल, शरबत, सलाह, हुक्म आदि।

फारसी—अजमायश, आदमी, उम्मीदवार, आबादी, खरीद, गुमास्ता, बाग़, चश्मा, दूकान, चाकू, ताज़गी, गुज़रान तन्दुरुस्ती, दस्तावेज़, दरिया, प्याला, कमर, दाग, मोज़ा, गुलाब, साबुन, होशियार, हवा, हज़ार आदि।

तुर्की—तोप, लाश, बोतल आदि।

पोर्चुगीज—अंग्रेज, पिस्तोल, पलटन, कप्तान, कमरा, नीलाम, इंजीनियर, चा, काफी, गोदाम, (गोडाउन), चाबी आदि।

अंग्रेजी—कोर्ट, अपील, टिकट, कलक्टर, डाक्टर, टेबल, पेंसिल, पेंशन, बूट, फार्म, बोर्डिंग, डिग्री, ग्लास, फंड, रेल, वारंट, रसीद, रबर, लालटेन, पतलून, मील, इंच, फुट, वास्कट, म्यूनिसिपैलिटी, सेविंग बैंक, सोडावाटर, होटल, हास्पिटल, बोतल, पास, रजिस्ट्री, नोटिस, समन, स्कूल, कमेटी, फीस, स्लेट, टीन, प्रेस, इन्स्पेक्टर, बैरिस्टर, मास्टर, कान्स्टेब्ल आदि।

मराठी—प्रगति, लागू, बाजू, (तरफ) आदि।

बगला — उपन्यास, प्राणपण, गल्प, डोंगी आदि।

इस समय हिन्दी-भाषा के तीन मुख्य रूप है। पहला विशुद्ध हिन्दी, जिसमे तत्सम और तद्भव शब्दो का ही बाहुल्य रहता है, अन्य भाषा के शब्द उसमे प्रवेश नही कर सकते। दूसरा हिन्दुस्तानी, जिसमे रोज-मर्रा की बोलचाल के सब शब्द, चाहे वे किसी भाषा के क्यो न हो, आ सकते है। तीसरा उर्दू, जिसमे अरबी और फारसी शब्दो की बहुलता रहती है। उर्दू कोई भिन्न भाषा नही, वह हिन्दी का एक रूपान्तर मात्र है। "हिन्दुस्तानी" नाम अग्रेजों का रक्खा हुआ है, पर यह दिल्ली और उसके आसपास के जिलो मे बहुत प्राचीन-काल से बोली जाती है। मुसलमानो के संसर्ग से जैसे "उर्दू" नाम से हिन्दी का एक नया रूप अलग हो गया, वैसे ही यदि कोई बनाना चाहे तो अग्रेजी और हिन्दी के मिश्रण से भी एक नया रूप बन सकता है। आजकल कालेज, स्कूल और मीटिंगो मे इस नये रूप का दर्शन होता है; पर अभी तक उसका नामकरण नही हुआ है। यदि मुसलमानो की तरह अग्रेज भी इस देश मे आकर बस जाय तो सम्भव है हिन्दी और अग्रेजी के मिश्रण से उनकी एक "बाजारी" बोली अलग बन जाय।

हिन्दी का पुराना नाम

हिन्दी का पुराना नाम हिन्दवी या हिन्दुई है, जिसका अर्थ है हिन्दुओं की भाषा। यहा हिन्दी के विषय मे कुछ कहने के पहले "हिन्दू" शब्द पर विचार कर लेना उचित जान पड़ता है।

भारतवर्ष की आर्य-जाति का "हिन्दू" नाम क्यो और कब से पड़ा? यह विचारणीय बात है। सस्कृत-साहित्य मे "हिन्दू" शब्द का कही उल्लेख नही। न तो वेदों मे, न उपनिषदो मे, न स्मृतियो मे और न पुराणों मे ही इस शब्द का कही पता है। फिर यह कहाँ से आया और इसमे कौन सा ऐसी विशेषता देखकर इतनी बडी एक सुसभ्य जाति ने इसे ग्रहण कर लिया? इस प्रश्न का उत्तर देना सहज नही।

मेरुतन्त्र में एक स्थान पर "हिन्दू" शब्द आया है; इस सम्बन्ध के कुछ श्लोक हम यहाँ उद्धृत करते है—

पश्चिमाम्नाय मन्त्रास्तु प्रोक्ता पारस्य भाषया ।
अष्टोत्तर शताशीतिर्येषा ससाधनात्कलौ ॥
पञ्चखाना सप्तमीरा नवसाहा महाबला. ।
हिन्दूधर्म प्रलोप्तारो जायन्ते चक्रवर्तिना: ॥
हीनञ्च दूषयेत्येव हिन्दूरित्युच्यते प्रिये ।
पूर्वाम्नाये नवशत षडशीति प्रकीर्तिता ॥
फिरङ्ग भाषया मन्त्रा येषा संसाधनात्कलौ ॥
अधिपा मण्डलानाञ्च सग्रामेष्वपराजिता: ॥
इङ्गरेजा नव षट्पञ्च लण्डजाश्चापि भाविन ।

शिवरहस्य मे भी एक स्थान पर ऐसा कहा गया है—

हिन्दूधर्म प्रलोप्तारो भविष्यन्ति कलौयुगे ।

हमे मेरुतन्त्र और शिवरहस्य के ये श्लोक पीछे से मिलाये हुए जान पड़ते है । क्योंकि पूर्वकाल मे यदि हिन्दू-धर्म कोई धर्म होता तो उसका उल्लेख स्मृति और पुराणो मे कही न कही अवश्य होता । अतएव हम इन श्लोको को किसी सुचतुर सस्कृतज्ञ की करामात समझकर अप्रामाणिक समझते है ।

हिन्दू शब्द हमे फारसी भाषा मे मिलता है । फारसी का एक पद्य सुनिये—

अगर आँ तुर्क शीराजी बदस्त आरदद दिले मारा ।
बखाले हिन्दुवश बख्शम समरकन्दो बुखारारा ॥

यह आज से कोई साढे पाँच सौ बरस पहले का हाफिज शीराजी का शेर है, इसमे हिन्दू शब्द "काले" के अर्थ मे आया है । गयासुल्लोगात में हिन्दू शब्द का अर्थ ऐसा लिखा है—

"हिन्दू दर महाविरे फारसियाँ बमानी दुज़्द व राहज़न मी आयद ।"

इसमे हिन्दू शब्द का अर्थ काफिर और डाकू किया गया है । यदि

'हिन्दू शब्द का अर्थ काला, काफिर, चोर, गुलाम ही है तो उसे भारत-वासियों ने अपने उत्तम आर्य नाम के स्थान पर क्यों स्वीकार कर लिया? हमे गयासुल्लोगात का अर्थ द्वेषवश लिखा जान पड़ता है। तो क्या फारसी के हिन्दू शब्द के काले अर्थ ही मे हमारा नाम हिन्दू पड़ा है ? नही; भिन्न-भिन्न भाषाओं मे एक ही शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थ होते है। नीम शब्द ही को लीजिये। फारसी मे नीम का अर्थ आधा है और हिन्दी मे नीम एक वृक्ष का नाम है। "नीम हकीम" कहने से यह अर्थ नही लगा लेना लेना चाहिये कि नीम वृक्ष ही हकीम है। यदि हमारा नाम हिन्दू किसी अच्छे अर्थ मे रक्खा गया है तो किसी अन्य भाषा में इस शब्द का अर्थ चोर, डाकू होने से हम चोर डाकू नही हो सकते। हाँ, यदि किसी ने चोर, डाकू और काले के ही अर्थ मे हमारा नाम हिन्दू रक्खा है और हमने उसे स्वीकार कर लिया है, तो हमारे लिए अवश्य कलङ्क की बात है। परन्तु हमारा हिन्दू नाम नया नही, आज से पाच हजार वर्ष पहले की पार-सियों की मुख्य धर्म-पुस्तक दसातीर मे हमारे देश का नाम "हिन्दू" लिखा मिलता है। इसके प्रमाण मे उक्त पुस्तक से कुछ वाक्य हम यहाँ उद्धृत करते है—

अकनू बिरहमने व्यास नाम अज़ हिन्द आमक बसदाना के अकल चुनानस्त। (जरतुश्त की ६५ वी आयत)

अर्थात् व्यास नाम का एक ब्राह्मण हिन्द से आया है ,जिसके समान कोई पण्डित नही।

चू व्यास हिन्दी बलख आमद । गस्तास्प ज़रतुश्तरा वखवांद । (१६३वी आयत)

जब हिन्द का रहनेवाला व्यास बलख आया तव (ईरान के राजा) गस्तास्प ने ज़रतुश्त को बुलवाया।

आगे फिर लिखा है—

मन मरदे अम हिन्दी निज़ादे।

मैं हिन्द मे पैदा हुआ एक पुरुष हूँ।

बै हिन्द बाज़ गश्ते ।

फिर वह हिन्द को लौट गया ।

इन प्रमाणो से यह प्रकट होता है कि महर्षि व्यास के समय मे ईरान वाले इस देश को "हिन्द" कहते थे । व्यास ने स्वय अपने देश का नाम हिन्द और अपने को हिन्द का निवासी कहा है । यह वैसी ही बात है जैसे आजकल हम लोग अँग्रेजों को समझाने के लिए उनके सामने अपने देश का नाम इण्डिया और अपना नाम इण्डियन बतलाते है ।

अब प्रश्न यह है कि ईरान वाले इस देश को हिन्द क्यों कहते थे ? हमारी समझ मे हिन्द शब्द सिन्धु का अपभ्रंश है । ईरानी भाषा मे 'स' का उच्चारण प्राय 'ह' होता है । इससे सिन्धु का हिन्दु हो जाना असम्भव नही है । सम्भव है, उस समय वे लोग सिन्धु नद के इस पार के देश को हिन्द और यहाँ के निवासियो को हिन्दी या हिन्दू नाम से पुकारते रहे हो । ग्रीक भाषा में सिन्धु का नाम इण्डस मिलता है, और इसी से इण्डिया शब्द की उत्पत्ति हुई जान पड़ती है । उच्चारण-भेद से सिन्धु का किसी ने हिन्द बना लिया, किसी ने इण्डस ।

मेरी राय में अब इस बात मे सन्देह नही रह जाता कि हमारे देश का नाम हिन्द और हमारा नाम हिन्दू इस देश मे मुसलमानों के आने से बहुत पहले ही पड चुका था । मुसलमानो ने हमारा यह नाम नही रक्खा ।

सुप्रसिद्ध सर जार्ज ग्रियर्सन की भी "हिन्दू" शब्द के सम्बन्ध मे यही राय है । इग्लैण्ड से १९-९-१९ के भेजे हुए अपने पत्र में वह लिखते है.—

You are quite right in stating that हिन्द is a Persian word, and is the Persian equivalent of सिन्धु. The Persians called the whole of India by this name. The old form of "हिन्दू" was हिन्दी, which is derived form an older form हैन्दव, which is the equivalent of the Sanskrit सैन्धव, not of सिन्धु.

The word हिन्दी means a native of हिन्द, that is a native of India, an Indian, But, in Persian, हिन्दू or हिन्दी meant a person of the Hindu religion. Thus Amir Khusro says of Sultan Firoz Shah Khilzi, in his "Ghurratul Kamal," "what ever like fell into the king's hands was pounded into bits under the feet of elephants. The Musalmans, who, were Hindis, had their lives spared" You will thus see that, when applied to a language. Hindi properly means any Indian language. Bengali and Marathi are just as much Hindi as the language we now call Hindi. The use of the word Hindi in its modern sense, is quite late. Its proper name is हिन्दुई *i. e*, the language of Hindus, as opposed to Urdu, the language of Musalmans.

अब प्रश्न यह है कि इस शब्द का उल्लेख हमारे सस्कृत ग्रथो मे क्यो नही मिलता। मेरी समझ मे इसका कारण यही जान पड़ता है कि हिन्दू शब्द सस्कृत भाषा का नही है; और हमने यह नाम स्वयं नही रक्खा है, बल्कि विदेशी हमे इस नाम से पुकारते थे। जैसे अमेरिका, यूरोप आदि देशो के लोग हमे इडियन नाम से पुकारते है। परन्तु हम लोग अपनी पुस्तको मे अपने को हिन्दू ही लिखते है, इडियन नही लिखते। अब प्रश्न यह है कि विदेशियो का रक्खा हुआ "हिन्दू" नाम हमने स्वीकार क्यो कर लिया ? इसका उत्तर यही है कि पूर्वकाल मे भारत और ईरान मे घनिष्ट सम्बन्ध था; दोनों देशो की भाषा मे बहुत कुछ समानता थी; दोनों देशों के रीति-रस्म मे बहुत कुछ एकता थी; पुराण-ग्रंथो मे दोनो देशों में वैवाहिक सम्बन्ध तक की चर्चा पाई जाती है।

अतएव नित्य के ससर्ग से हमारे लिए उनके रक्खे हुए हिन्दू नाम को पहले हमने कौतूहल-वश स्वीकार किया; फिर धीरे-धीरे इस नाम ने हमारे उर्वर मस्तिष्क मे अपनी जड जमा ली। परन्तु हमने सस्कृत-ग्रथों मे अपना प्राचीन नाम ही कायम रक्खा, केवल बोलचाल मे हम अपने को हिन्दू कहने लगे।

कितनी ही विदेशी जातिया इस देश में आई और मिल-जुलकर एक हो गई। इसी तरह यह हिन्दू नाम भी विदेश से आया और यहा हमारा हो गया। अतएव हिन्दू नाम को घृणा की दृष्टि से देखने का हमे कोई कारण प्रतीत नही होता। यह हिन्दू नाम हमारे और ईरानवासियो के प्राचीन सम्बन्ध की यादगार है।

हम ऊपर लिख आये है कि मुसलमानो ने हमारा नाम हिन्दू नही रक्खा, पृथ्वीराज रासो से भी यह प्रमाणित हो सकता है। चन्दबरदाई ने रासो के अनेक स्थलो पर हिन्दू और हिन्दुस्तान शब्द लिखे है। चन्दबरदाई से पहले मुसलमानों को इस देश मे आये ही कितने दिन हुए थे कि उनका रक्खा हुआ नाम एक विशाल जाति मे इतना प्रचार पा जाता कि एक वीर और स्वजात्याभिमानी कवि अपनी कविता मे उस नाम को स्थान देता ? स्वदेश और स्वजाति के जिस नाम से समाज अच्छी तरह परिचित रहता है, कवि लोग उनके लिए प्राय. वही नाम अपनी कविता मे लिखते है। आजकल भी हिन्दी-भापा के कवि अपनी कविता मे आवश्यकता पड़ने पर अपने देश का नाम भारत या हिन्दुस्तान ही लिखते है, इंडिया नही। अब यह बात ध्यान मे आ सकती है कि चन्दबरदाई से हजारो वर्ष पहले, जबकि पृथ्वी-मंडल पर मुसलमानो का कही अस्तित्व भी नही था, हमारी आर्य-जाति हिन्दू, हिंदुस्तान नाम को अपना चुकी थी। इसी से चन्द कवि को इन शब्दो के बहुल प्रयोग मे कोई हिचकिचाहट नही हुई।

हमारे देश का नाम हिन्द, यहा के निवासियों का नाम हिन्दी या हिन्दू और हमारी भाषा का नाम हिन्दवी या हिन्दी बहुत पुराना है।

पहले देश का नाम, फिर निवासियो का नाम, फिर भाषा का नाम रक्खा गया।

अमीर, ख़ुसरो की एक पहेली मे हिन्दी शब्द आया है; वह यह है--

फारसी बोले आईना। तुरकी सोचे पाईना।
हिन्दी बोलते आरसी आये। मुह देखे जो इसे बताये॥

हिन्दी का एक पुराना नाम 'भाषा" भी है। महा महोपाध्याय पडित सुधाकर द्विवेदी स्वरचित गणक तरगिणी के ३३वे पृष्ठ पर भास्वती की भाषा-टीका का एक उदाहरण उद्धृत करते है। उसमे भाषा शब्द आया है। उसका एक वाक्य यह है--

"सो देख कै बनमाली शिष्यार्थ भाषा टीका कीन्ह"

यह टीका स० १४८५ की बनी है। तुलसीदास ने रामायण मे "भाषा "शब्द लिखा है--

भाषा निबद्धमति मजुलमातनोति।
* * *
भाषा भनित मोरि मति थोरी।

पर उन्होने अपने फारसी पचनामे मे हिन्दवी शब्द का प्रयोग किया है। स० १६८० मे लिखी हुई गोरा-बादल की कथा मे जटमल ने "हिंदवी" शब्द का प्रयोग किया है। आजकल भी बहुधा पुस्तको के नामों और टीकाओं मे हिन्दी के स्थान पर "भाषा" शब्द प्रयुक्त होता है, जैसे भाषा भास्कर, भाषा टीका आदि। पादरी आदम साहब लिखित उपदेश-कथा मे, जो स० १८९४ मे दूसरी बार छपी, इस भाषा का नाम "हिन्दुवी" लिखा है। "पदार्थ विद्यासार" नामक पुस्तक मे जो स० १९०३ मे छपी है, "हिन्दी भाषा" नाम आया है। मलिक मुहम्मद जायसी ने अपनी पद्मा-वत मे लिखा है---

तुरकी अरबी हिन्दवी, भाषा जेती आहि।
जामे मारग प्रेम का, सबै सराहै ताहि॥

मालूम होता है कि पहले हिन्दू लोग इस भाषा को "भाषा" और मुसलमान लोग "हिन्दुई" या "हिन्दुवी" कहते थे।

सवत् १८६१ के बने हुए 'प्रेमसागर" मे लल्लूलालजी ने इस भाषा का नाम "खड़ी बोली" लिखा है। उन्होंने ही एक जगह अपनी भाषा का नाम "रेख्ते की बोली" लिखा है। जान पडता है, भाषा का नाम "रेख्ता" उस समय रक्खा गया, जब इसमें अरबी, फारसी के शब्द भी मिलने लगे।

हिन्दी-गद्य

हिन्दी-गद्य का प्राचीन उदाहरण नही मिलता। महाराज पृथ्वीराज के समय के दो एक पत्रों की प्रतिलिपि, महात्मा गोरखनाथ, गोस्वामी विठ्ठलनाथ, गंगा भाट, गोस्वामी गोकुलनाथ और नाभादासजी आदि की पुस्तको से गद्य के कुछ उदाहरण आगे दिये जांयगे; वे हिन्दी-गद्य के यथार्थ उदाहरण नही कहे जा सकते। क्योंकि वे पत्र और पुस्तके भिन्न-भिन्न प्रदेशो की बोलियो में लिखी गई है। हिन्दी-गद्य के उस रूप का, जो देहली के आस-पास विकास पा रहा था, जिसमे अमीर खुसरो ने अपनी पहेलिया लिखी, जिसे ब्रजभाषा ने दबा लिया था और जो पहले रेख्ता और आजकल खडी बोली के नाम से प्रसिद्ध है, कोई उदाहरण नही मिलता। अमीर खुसरो का जन्म सवत १३१२ मे हुआ। उसने जो छद लिखे है, वे अवश्य ही उस समय की बोलचाल की भाषा मे लिखे गये है। उसके छन्दो के विषय ही ऐसे है, जो रोजमर्रा की बोलचाल मे ही लिखे जाते है। उदाहरण के लिए यहां उसके कुछ छद लिखे जाते है—

तरवर से एक तिरिया उतरी, उसने बहुत रिझाया।
बाप का उसके नाम जो पूछा, आधा नाम बताया।
आधा नाम पिता पर प्यारा, बूझ पहेली मोरी।
अमीर खुसरो यो कहे, अपने नाम निबोरी।

* * *

बीसो का सिर काट लिया। ना मारा ना खून किया॥

* * *

वह आवे तब शादी होय, उस बिन दूजा और न कोय ।
मीठे लागे वाके बोल, ऐ सखि साजन ? ना सखि ढोल ।

* * *

"उसने बहुत रिझाया", "आधा नाम बताया", "बीसो का सिर काट लिया" आदि बिलकुल खड़ी बोली के वाक्य है । हिन्दी का यह रूप अमीर खुसरो के वक्त मे अवश्य रहा होगा । "उसने बहुत रिझाया" मे "ने" का प्रयोग भी ध्यान देने योग्य है । ब्रजभाषा की कविता मे "ने" का प्रयोग बहुत ही कम देखा जाता है । तुलसीदास के रामायण मे "ने" हई नही । किन्तु अमीर खुसरो ने "ने" का प्रयोग किया है । "मीठे लागे वाके बोल" ये ब्रजभाषा के शब्द है । इन उदाहरणों से प्रकट होता है कि ब्रजभाषा और हिन्दी दोनो का विकास साथ ही साथ हो रहा था । श्रीकृष्ण की जन्मभूमि की भाषा होने के कारण अपभ्रंश शब्दो की बहुलता से काव्य-रचना मे प्रयोग-सुलभ (सुगम) और कर्ण-मधुर होने के कारण वैष्णव कवियों और भक्तो ने ब्रजभाषा को ही प्रधानता दी । जितने काव्य लिखे गए, सब ब्रजभाषा मे । हिन्दी की तरफ किसी ने दृष्टि ही नही की । तो भी वह दिल्ली के आसपास के जिलो मे बोली जाती रही, और अब भी बोली जाती है ।

चन्दबरदाई हिन्दी का आदि कवि कहा जाता है । पर हिन्दी का जो रूप उसकी कविता मे दिखाई पडता है, उससे भी विशेष स्पष्ट रूप उस समय वर्तमान था । यह बात अमीर खुसरो की कविता से अच्छी तरह समझ मे आ जाती है । चन्दबरदाई और अमीर खुसरो के बीच मे सिर्फ ६४ वर्ष का अन्तर है । इतने थोडे अर्से मे चन्दबरदाई की हिन्दी इतना विकास नही पा सकती कि वह खुसरो की हिन्दी हो सके । खुसरो के थोडे ही दिन बाद कबीर हुए । कबीर की कविता भी खुसरो की हिन्दी में मिलती है । कविता-कौमुदी मे कबीर की कविताएं देखिये । कितने ही पद और पद्य ऐसे मिलेंगे जो आजकल की हिन्दी मे कहे गए जान पडते है । इससे मालूम होता है कि हिन्दी का विकास स्वतन्त्र रूप से होता

ग्रा रहा है। चन्दबरदाई के समय में हिन्दी का एक ग्रलग रूप था, जिसका प्रयोग उसने ग्रपनी कविता मे कही-कही किया है। उसे हम हिन्दी का आदि कवि इसी से मानते है कि उसके समकालीन या पहले के ग्रौर किसी कवि की हिन्दी-कविता उपलब्ध नही। किन्तु यह वात निस्सन्देह कही जा सकती है कि उस समय शुद्ध हिन्दी मे भी कविता होती थी, और देहली के ग्रासपास ग्राजकल की खड़ी वोली की तरह हिन्दी वोली जाती थी। कारक, वचन, लिंग ग्रौर पुरुष का प्रयोग खुसरो के समय मे भी वैसा ही होता था, जैसा ग्राजकल है। खुसरो की भाषा हमे इस सन्देह मे डाल देती है कि क्या वास्तव में हिन्दी का जन्म वारहवे शतक में हुग्रा ? मेरी राय मे खुसरो की व्याकरणसम्मत हिन्दी के लिए उसका जन्मकाल कई सौ बरस पीछे हटाना पड़ेगा ग्रौर यह मानना पड़ेगा कि हिन्दी का ग्रादि कवि चद नही, बल्कि कोई ग्रौर होगा, जिसका पता नही।

मुसलमानों ने ग्रपने ग्ररबी-फारसी के शब्दो को हिन्दी मे मिलाने का प्रयत्न भी किया। अमीर खुसरो ने इसी खयालसे खालिकबारी लिखी थी। बहुत से ग्ररबी-फारसी के शब्द सस्कृत शब्दो के साथ, जहाज के पीछे छोटी नाव की तरह, जोड़ दिये गए, जो ग्राज तक जुड़े ही चलते है। जैसे, कागज-पत्र शादी-ब्याह, खत-पत्र, चिट्ठी-रसा ग्रादि। शाहजहा के समय तक हिन्दी मे ग्ररबी-फारसी के इतने शब्द ग्रा चुके थे कि उर्दू के नाम से हिन्दी का एक नया रूपान्तर बन गया। उर्दू को बादशाही दरबार ग्रौर कचहरियों मे जगह मिली। महावरों से उसकी नीव दृढ़ की गई ग्रौर रसीली कविताग्रो से उसका शृङ्गार किया गया। वेचारी हिन्दी पहले तो व्रजभाषा की छाया मे पनप न सकी, फिर उर्दू ने उसका रास्ता रोका। सवत् १८६० मे व्रजभाषा से मिली-जुली ग्रागरा के ग्रासपास की बोली मे एक पुस्तक लिखी गई। उन्नीसवी शताब्दी के ग्रन्त तक हिन्दी का विकास लल्लूलालजी के ही प्रारम्भ किये हुए रास्ते पर होता रहा। बीसवी शताब्दी के प्रारम्भ मे हिन्दी का रूप ही बदल गया ग्रौर उसने एक नये युग मे प्रवेश किया। हिन्दी का मूल

जन्मस्थान दिल्ली के आसपास का प्रदेश है। ब्रजभाषा तथा युक्तप्रात की कई बोलियो और उर्दू के कुञ्जों से निकलकर हिन्दी अब अपने असली रूप मे विकास पा रही है। अब हिन्दी व्याकरणसम्मत एक शुद्ध और सब प्रकार के शब्दो से पूर्ण भाषा है। हिन्दी-गद्य मे प्राय. सब विषयों के ग्रथ तैयार हो चुके है और होते जाते है। भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त के विद्वानो द्वारा यह भारत की राष्ट्रभाषा स्वीकार की गई है। इसका साहित्य भण्डार जिस तेजी से बढ रहा है, उसे देखते हुए हम हर्ष से कहते है कि थोडे ही वर्षो मे यह भारत की प्रातीय भाषाओ मे सर्वोत्तम साहित्यिक-स्थान ग्रहण करेगी।

गद्य-हिन्दी के क्रम-विकास का कोई उदाहरण हमे नही मिला। जो कुछ पुरानी पुस्तके हमे मिली है, वे हिन्दी मे नही, बल्कि उसके भिन्न-भिन्न रूपान्तरों मे लिखी हुई है। हिन्दी का वास्तविक विकास स० १९०० से होने लगा है। यहाँ हिन्दी के पुराने रूपान्तरो और वास्तविक हिन्दी, दोनों के कुछ उदाहरण दिये जाते है—

महाराज पृथ्वीराज के समय के कुछ पत्र मिले है, उनमे से दो की प्रतिलिपि यहाँ दी जाती है।

श्रीहरा एकलिंगो जयति

श्री श्री चित्रकोट बाई साहब श्री पृथुकुवर बाई का वारण गाम मोई आचारज भाई रूसीकेसजी बाँचजो अपन श्री दली सुं भाई लगरी राय जी आग्रा है जो श्रीदली सुं श्री हजूर को बी खास रुका आयो है जो मारो भी पदारवा की सीखवी है नेदली काका जी षेद है जो कागद बाचत चला आवजो थानेमा आगे जाइगे पडेगा थाके वास्ते डाक बेठी है श्री हजूर बी हुक्म बेगीयो है जो थे ताकीद सुं आवजो थारे मन्दर को व्याव कामारथ अवार करोगा दली सुं आग्रा पाछे करोगा ओर थे सवेरे दन अठे आद्यसो स० ११४५ चैत सुदी १३। सही

यह विक्रम स० १२३५ का पत्र है, उस समय जो सवत् प्रचलित था वह विक्रम सवत् से ९० वर्ष कम है। ऊपर के पत्र का अर्थ यह है—

श्री हरि एकलिंगजी की जय हो। मोई ग्राम निवासी आचार्य भाई ऋषीकेशजी को चित्तौर से वाई साहव श्री पृथाकुँवरि वाई का संवाद वाँचना। आगे भाई श्री लगरीरायजी श्री दिल्ली से आये हैं और श्री दिल्ली से हुजूर का खास रुक्का भी आया है जिससे मुझको भी दिल्ली जाने की आज्ञा मिली है। काका जी अस्वस्थ है। सो कागज वाँचते चले आओ। तुमको हमसे पहले जाना पडेगा। तुम्हारे वास्ते डाक वैठाई गई है। श्री हुजूर(समरसिंह)ने भी आज्ञा दी है। सो ताकीद जानकर जल्दी आओ। जो तुम्हारे मन्दिर की स्थापना जल्दी स्थिर हुई है सो हम लोगों के दिल्ली से लौटने पर होगी। इतनी जल्दी आओ कि दिन का सवेरा वहाँ हो तो शाम यहाँ हो। मिती चैत सुदी १३, सवत् ११४५।

दूसरा पत्र—मेवाड़ की एक सनद, सं० १२२६

स्वस्ति श्री श्री चित्रकोट महाराजाधीराज तपे राजश्री श्री रावल जी श्री समरसी जो वचनातु दा अमा आचारज ठाकुर रुसीकेष कस्य थाने दली सु डायजे लाया अणी राज मे ओषद थारी लेवेगा ओषद ऊपरे मालकी थाकी है जो जनाना में थारा वसरा टाला ओ दूजो जावेगा नहीं और थारी वैठक दली मे ही जी प्रमाण परधान वरोवर कारण होवेगा।

भावार्थ

श्री चित्रकोट (चित्तौर) के महाराजाधिराज रावल समरसिंह की आज्ञा से आचार्य ऋषीकेश को—तुमको दिल्ली से दायजे मे लाया। राज्य मे तुम्हारी दवा ली जायगी, दवा पर तुम्हारा अधिकार है, और अन्तःपुर मे तुम्हारे वशजो के सिवाय दूसरा नही जायगा, और दरवार मे तुमको प्रधान के वरावर आसन मिलेगा, जैसे दिल्ली मे था।

सं० १४०७—महात्मा गोरखनाथ जी

स्वामी तुम्हे तो सतगुरु अम्हे तो सिष सबद एक पूछिवा, दया करि कहिवा, मन न करिवा रोस। पराधीन उपरान्ति वन्धन नाही, सु आधीन उपरांति मुकुति नाही।

सं० १६००—गोस्वामी बिट्ठलनाथ जी

प्रथम की सखी कहत हैं, जो गोपीजन के चरण विषै सेवक की दासी करि जो इनके प्रेमामृत में डूब के इनके मन्दहास्य ने जीते हैं अमृत समूह ता करि निकुज विषै शृगार रस श्रेष्ठ रसना कीनी सो पूर्ण होत भई।

सं० १६२६—गगा भाट (चंद छंद बरनन की महिमा से)

इतनो सुन के पातशाह जी श्री अकबर शाहाजी आदसेर सोना नरहरदास चारन को दिया।

सं० १६४८—गोस्वामी गोकुलनाथ जी

(चौरासी और दो सौ बावन वैष्णवो की वार्ता से) श्री गुसाई जी के सेवक एक पटेल की वार्ता। सो वह पटेल वैष्णवराज नागर मे रहे तो हतो। वा पटेल वैष्णव के दो बेटा हते और एक स्त्री हती।

सं० १६६०—नाभादास जी

अव श्री महाराज कुमार प्रथम वशिष्ठ महाराज के चरन छुइ प्रनाम करत भये।

सं० १६६६—गोस्वामी तुलसीदास

सं० १६६९ समये कुमार सुदी तेरसी बार शुभदीने लिषीत पत्र अनन्दराम तथा कन्हई के अस विभाग पूर्वसु जे आग्य दुनहु जने मागा जे आग्य मैशे प्रमान माना।

सं० १६७०—बनारसीदास जी

सम्यग् दृष्टी कहा सो सुनो। सशय, विमोह, विभ्रम ए तीन भाव जामैं नाही सो सम्यग दृष्टी।

सं० १६८०—जटमल (गोरा बादल की कथा से)

हे वान कीसा चित्तौड गढ़ के गोरा बादल हुआ है जीनकी वार्ता की किताव हीदवी में वनाकर तैयार करी है। ये कथा सोल से अस्सी के साल में फागुन सुदी पूनम के रोज बनाई।

सं० १७६७—सूरति मिश्र (कविप्रिया की टीका से)

सीस फूल सुहाग अरु वेदा भाग ए दोऊ आये पावड़े सोहे सोने के कुसुम तिन पर पैर धरि आये है।

सं० १७८६—दास

धन पाये ते मूर्खहू बुद्धिवन्त ह्वैजातु है । और युवावस्था पाये ते नारी चतुर ह्वैजाति है । उपदेश शब्द लक्षणा सो मालूम होता है औ वाच्यहू मे प्रगट है।

सं० १८६०—लल्लूलाल जी

निदान श्रीकृष्णचन्द्र के पास वैठा सुन-सुन घवडा कर अर्जुन वोला कि हे देवता तू किसके आगे यह वात कहै है और क्यो इतना खेद करै है।

सं० १८६०—सदल मिश्र (नासकेतोपाख्यान से)

कुड मे क्या अच्छा निर्मल पानी कि जिसमें कमल कमल के फूलो पर भौरे गूँज रहे थे, तिस पर हस सारस चक्रवाकादि पक्षी भी तीर तीर सोहावन शब्द वोलते, आसपास के गाछो पर कुहू कुहू कोकिलें कुहुक रहे थे जैसा बसतऋतु का घर ही होय।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पश्चात् हिन्दी-गद्य का विकास वड़ी तेजी से हुआ। इससे पहले लोगों का ध्यान पद्य की ही ओर विशेष रहा, गद्य मे पुस्तके कम लिखी गई। किन्तु हरिश्चन्द्र के वाद गद्य लिखने की ओर विद्वानो की इतनी रुचि हुई, कि पद्य का स्थान पीछे पड़ गया। पद्य से गद्य की विशेष उन्नति हुई, पद्य पिछड गया और गद्य ने एक परिमार्जित रूप धारण कर लिया। यहाँ हम हिन्दी-गद्य के नये युग के क्रम-विकास के कुछ उदाहरण उपस्थित करते है—

सं० १९११—राजा शिवप्रसाद

जब विपत के दिन आते है तो सारे सामान ऐसे ही बन्ध जाते है। निदान राजा नल ने चलते समय दमयन्ती की साड़ी काटकर आधी उसके बदन पर रहने दी।

सं० १९२०—स्वामी दयानन्द

वह सत्य नही कहाता जो सत्य के स्थान मे असत्य और असत्य के स्थान मे सत्य का प्रकाश किया जाय, किन्तु जो पदार्थ जैसा है, वैसा ही कहना, लिखना और मानना सत्य कहाता है।

सं० १९२६—भारतेन्दु हरिश्चन्द्र

फिर महाराज अपव्यय ने खूब लूट मचाई। अदालत ने भी अच्छे हाथ साफ किये। फैशन ने तो बिल और टोटल के इतने गोले मारे कि चंटाढार कर दिया, और शिफारिश ने भी खूब ही छकाया।

पंडित बालकृष्ण भट्ट

शब्द की आकर्षण-शक्ति न्यूटन की आकर्षण-शक्ति से लवमात्र भी कम नही कही जा सकती। वल्कि शब्द की इस शक्ति को न्यूटन की आकर्षण-शक्ति से विशेष कहना चाहिये। इसलिये कि जिस आकर्षण-शक्ति को न्यूटन ने प्रकट किया वह केवल प्रत्यक्ष मे काम दे सकती है।

पंडित महावीरप्रसाद द्विवेदी

उनके कथन का अवतरण देकर मल्लिनाथ ने उन्हे फटकार बताई है और लिखा है कि प्रसग भी देखते हो या मनमानी हाकते हो। तुम्हे इस प्रयोग को सही साबित ही करना है तो पाणिनि-व्याकरण के पीछे न पडकर और व्याकरण देखो। (किरातार्जुनीय)

अनाज महगा होने से किसानो ही पर आफत नही आती; किन्तु मेहनत मजदूरी करनेवाले और लोगो पर भी आती है, यही नही, सभी लोगों पर उसका असर पड़ता है। (सम्पत्तिशास्त्र)

बाबू श्यामसुन्दरदास

इस गद्य की उत्पत्ति से यह तात्पर्य नही है कि पहले गद्य था ही नही; किसी न किसी रूप मे था। नही तो क्या लोग पद्य मे बातचीत करते थे? गद्य बोलचाल मे अवश्य था, पर भिन्न-भिन्न प्रान्तों और स्थानो मे भिन्न-भिन्न रूप मे था। जिन्हे हम आजकल बोलियो का नाम देते है, जैसे आगरे के निकट ब्रजभाषा बोली जाती है।

बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन

ईश्वरीय सौन्दर्य को—प्राकृतिक कविता की भाषा की छटा द्वारा संसार को दरसाना ही कवि का कर्तव्य है। जितना ही गहरा वह अपनी

प्रतिभा द्वारा इस सौन्दर्य-सागर मे डूबता है, उतना ही अधिक वह अपने कर्त्तव्य मे सफल होता है ।

पं० पद्मसिंह शर्मा

बिहारी की सखी का परिहास बड़ा ही लाजवाब है । रसिक मोहन सुनकर फडक ही गये होगे । इससे अच्छा साफ सच्चा सीधा और दिल मे गुदगुदी करनेवाला मीठा मजाक साहित्य-संसार मे शायद ही हो ।

हिन्दी-पद्य

हिन्दी-गद्य से पद्य मे विशेष उन्नति हुई है । पद्य के द्वारा थोडे समय और थोड़े शब्दों मे अधिक प्रभावोत्पादक बाते कही जा सकती है । उसके कठस्थ रखने में सुविधा होती है । अक्षरों, मात्राओं और पदों का नियमबद्ध सगठन होने से उसके पढ़ने मे भी आनन्द आता है । तथा पद्य का सम्बन्ध गान-विद्या से है और गान-विद्या मनुष्यमात्र को प्रिय है, यहा तक कि वह पशु-पक्षी तक का हृदय भी माहित करने की शक्ति रखती है, इन कारणों से पद्य की ओर लोगों की स्वाभाविक रुचि बढती गई । गद्य मे उपर्युक्त गुण नही, इसी से पूर्वकाल मे उसका प्रचार भी कम हुआ । परन्तु उपर्युक्त गुण न रहने पर भी आजकल पद्य की अपेक्षा गद्य का प्रचार अधिक क्यो है ? इसका कारण यह है कि गद्य म ही ससार का प्रतिदिन का व्यवहार चलता है । बोलकर जो कुछ काम हम लोग करते कराते है, सबमे गद्य का उपयोग करते है । इसलिए थोडे ही परिश्रम से अपने मानसिक भावों को गद्य द्वारा प्रकट करने की शक्ति मनुष्य मे आ सकती है । पद्य मे यह सुगमता नही । उसके लिए अधिक परिश्रम करना पड़ता है, नियम सीखने पड़ते है, मस्तिष्क के विचारो को पद्य के पेचीले रास्ते से घुमा फिराकर निकालना पडता है, इसी से उसमे अधिक समय लगता है । अधिक से अधिक परिश्रम करने पर भी मनुष्य पद्य मे इतनी पटुता नही प्राप्त कर सकता कि उसके द्वारा वह गद्य की तरह धाराप्रवाह रूप से बातचीत कर सके । पद्य के लिए

प्रतिभा है, पद्य-रचना के अधिकारी वे ही है । गद्य-रचना आसान है, क्योंकि वही प्रतिदिन की बोलचाल है । उसमे उन्नति करना सर्वसाधारण के लिए सुगम है।

गद्य की अपेक्षा पद्य मे जो विशेषताए है, सस्कृत-साहित्य मे भी उन पर विशेष ध्यान दिया गया है। हाथ-मुह धोने, दातुन करने, बाल सँवारने आदि साधारण कामो की बातें भी मनु आदि ने पद्य मे कही है । वही क्रम हिन्दी के आदि-काल मे भी ग्रहण किया गया । उस समय के प्रतिभा-सम्पन्न लोगों को जो कुछ कहना हुआ, उन्होने सब पद्य मे कहा। आजकल मनुष्यों के जीवन-चरित्र प्राय: गद्य में लिखे जाते है, पूर्वकाल मे पद्य में लिखे जाते थे । इसमे सन्देह नही कि गद्य की अपेक्षा पद्य मे लिखा हुआ जीवन-चरित्र अधिक प्रभावशाली हो सकता है; परन्तु पद्य-रचना का कार्य उतना सुगम नही, जितना गद्य का ।

हिन्दी-पद्य के विषय में दो एक बातें और कहने की है । वे ये हैं कि सस्कृत-कविता में जैसा वर्णवृत्तो का प्राधान्य है, वैसा हिन्दी में नही। पुराने कवियो मे तो शायद ही किसी ने वर्णवृत्तों में कविता की हो । यदि किसी ने की भी है, तो वर्णवृत्त के नियम का उसने अच्छी तरह से पालन नही किया है । मात्रिक छन्दो में अपने भावों को सरलतापूर्वक वर्णन करने में उसे जैसी सफलता मिलती है वैसी वर्णवृत्तो मे नही । पुराने कवियों के विषय मे एक यह बात भी ध्यान देने के योग्य है कि उनमें ऐसे कवियों की सख्या अधिक है जिन्होंने अन्य छन्दों की अपेक्षा घनाक्षरी और सवैया छन्दों में ही अधिक रचना की है । यो तो तुलसी ने दोहे चौपाई में ही सारी राम-कथा कह डाली है, बिहारी ने दोहो ही दोहों में रस भरा है, चन्द और केशव ने विविध छन्दो मे अपने मनोभाव प्रकट किये है; किन्तु घनाक्षरी और सवैया लिखने वाले कवियों की ही सख्या अधिक है । आजकल इन छन्दो की उतनी कदर नही रही । अब कितने ही नये छन्दों का प्रचार बढ़ रहा है । आजकल वर्णवृत्तों मे भी कविता सफलता के साथ होने लगी है ।

हिन्दी-पद्य-रचना के विषय मे एक बात विशेष उल्लेख के योग्य है कि इसमे प्रारम्भकाल से ही तुकबन्दी का प्रचार है । संस्कृत मे जैसे अतुकान्त कविता का बाहुल्य है, हिन्दी मे वैसा ही, बल्कि उससे भी विशेष, तुकबन्दी का प्राधान्य है । मात्रिक छन्दो मे तुकबन्दी के बिना भाषा का माधुर्य कम हो जाता है । हा, वर्णवृत्तो मे अतुकान्त रूप नही खटकता । पहले के कवि वर्णवृत्तों में प्राय नही के बराबर ही कविता रचते थे, अतः बेतुकी की ओर उनका ध्यान ही नही गया ।

हिन्दी और वैष्णव

वैष्णव सम्प्रदाय में चार भेद है—विष्णु-सम्प्रदाय, रामानुज-सम्प्रदाय, मध्व-सम्प्रदाय और वल्लभ-सम्प्रदाय । इन चारो सम्प्रदायो के मुख्य आचार्य विष्णु, रामानुज, मध्व और वल्लभ थे । विष्णुस्वामी द्रविड़ देश के रहने वाले थे । इनका जन्म दिल्ली मे किसी राजा के मन्त्री के घर हुआ था । इन्होंने शाङ्कर-मत का खंडन किया है । रामानुज स्वामी भी द्रविड-देश-निवासी थे । इनके पिता का नाम "केशव" और माता का "मति" था । मध्वाचार्य का जन्म मदरास के रजतपीठ जि० कनारा में सं० १२५४ मे हुआ । इनके पिता का नाम मध्यगेह भट्ट था । वल्लभाचार्य का जन्म सं० १५३५ मे आन्ध्रदेश (दक्षिण) मे हुआ । इन्होंने भागवत दशमस्कध का पद्य में अनुवाद किया है ।

राम और कृष्ण वैष्णवो के प्रधान उपास्य-देव है । ये विष्णु के अवतार माने जाते है । चन्दबरदायी ने रासो के पहले ही छद में गुरु को नमस्कार कर साकार लक्ष्मीश विष्णु को स्मरण किया है । आगे चलकर उसने दस अवतारो की कथा अलग-अलग लिखी है । इससे मालूम होता है कि उसके चित्त पर वैष्णव धर्म का विशेष प्रभाव था । और हिन्दी का आदि कवि भी वही माना जाता है । अतएव यह कहा जा सकता है कि वैष्णवो ही ने हिन्दी का उसके जन्मकाल से लालन-पालन किया है । हिन्दी के साथ वैष्णवो का अधिक सम्बन्ध होने का एक

कारण और भी है। वह यह है कि हिन्दी उस प्रदेश की भाषा है, जहां वैष्णवों के आराध्यदेव राम और कृष्ण ने अवतार धारण किया था। जिस स्थान पर उन्होने लीला की, उस स्थान, वहा के निवासियो और उनकी भाषा से वैष्णवों का प्रेम होना स्वाभाविक ही है। राम और कृष्ण का कीर्तन करने में वैष्णव कवियो का एक ताता-सा बँध गया। हिन्दी मे आज तक शायद ही ऐसा कोई कवि हुआ हो जिसने किसी न किसी रूप मे राम-कृष्ण का गुण-गान न किया हो।

पन्द्रहवी शताब्दी में स्वामी रामानन्द हुए। उन्होने मानो हिन्दी-भाषा में वैष्णव धर्म की नीव दृढ कर दी। उनके पश्चात् ही भक्त-शिरोमणि सूरदास ने स० १५४० मे जन्म लिया। सूरदास ने अपनी कविता के द्वारा हिन्दी का गौरव मुसलमान सम्राट् अकबर के दरबार तक फैला दिया। इसी शताब्दी में दक्षिण देश से आकर स्वामी वल्लभाचार्य ने कृष्णभक्ति को और भी चमत्कृत कर दिया। सूरदास और वल्लभाचार्य की संयुक्त शक्ति ने वैष्णव-सम्प्रदाय में कृष्ण-भक्ति की एक बाढ़-सी ला दी। इसी अवसर में स्वामी हरिदास, हितहरिवश और नन्ददास की मधुर ध्वनि गूँजने लगी। वैष्णवदल मे एक से एक प्रतिभा-शाली कवियो ने जन्म लेकर हिन्दी-भाषा द्वारा-जनता का मन ऐसा खीच लिया कि देश मे चारों ओर हिन्दी कविता सहस्र धारा होकर उमड़ चली। अभी लोग इस आनन्द-लहरी मे स्नान करके तृप्त हो ही रहे थे कि हिन्दी-कवियों के शिरोमणि तुलसीदास आ पहुँचे। इनकी कलम ने हिन्दी मे वैष्णव-धर्म को अजर अमर बना दिया। आज इनके समान प्रतिभाशाली कवि हिन्दी में कोई नही। आज अपढ सपढ सब मे तुलसी-दास वैष्णव-धर्म की चर्चा करते हुए पाये जाते है। तुलसीदास के समान आज भारतवर्ष भर मे किसी हिन्दी-कवि का आदर नही।

वैष्णव कवियो की कविता का रस चखकर मलिक मुहम्मद जायसी और रहीम ऐसे कितने ही मुसलमान कवि अपनी कविता द्वारा वैष्णव-

धर्म का प्रचार करने लगे । और रसखान तो जाति-पाँति सब छोड़कर स्वयं वैष्णव हो गये।

सूर और तुलसी के पीछे हिन्दी के जितने कवि हुए, सब राम और कृष्ण के कीर्तन में उत्तरोत्तर वृद्धि करते चले आये। ग्रामीण कवियों ने अपनी रोज की बोलचाल मे भी कविता रची। उसके द्वारा गांव के अपढ़ लोगो में वैष्णव-धर्म का खूब प्रचार हुआ। एक उदाहरण देखिये—

हरे हरे केसवा हरु रे कलेसवा तोरा के रटत महेसवा रे।
तोरे नाम जपत वा पुजत वा सबसे प्रथम गनेसवा रे॥
जल बरसैला धान सरसैला सुख उपजैला मघवा रे।
प्रागदास प्रहलदवा के कारन रघवा ह्वै गैले वघवा रे॥

* * *

गाँव के लोग अपनी रोजमर्रा की बोलचाल की कविता को बड़े ध्यान से सुनते और खूब समझते है। तात्पर्य यह कि हिन्दी-भाषा द्वारा वैष्णव-धर्म का सम्मान बढ़ा और वैष्णव-धर्मके साथ हिन्दीका प्रचार हुआ।

हिन्दी और जैन

जैन-साहित्य में हिन्दी का रूप सोलहवी शताब्दी से स्पष्ट होने लगा है। उसके पहले वह प्राकृत और अपभ्रंश में ऐसी गुंथी थी कि हम उसे हिन्दी नहीं कह सकते। सं० १५८० में ठकुरसी नामक एक कवि ने "कृपण-चरित्र" नामक एक छोटी-सी कविता-पुस्तक लिखी। उसमें से एक छप्पय हम यहां उद्धृत करते है—

कृपण कहै रे मीत मज्झु घरि नारि सतावै।
जात चालि धणु खरचि कहै जो मोह न भावै॥
तिहि कारण दुव्वलौ रयण दिन भूख न लागै।
मीत मरणु आइयौ गुज्झु आंखौ तू आगे॥
ता कृपण कहैरे कृपण सुनि मीत न कर मन मांहि दुखु।
पीहरि पठाइ दै पापिणी ज्यों को दिण तूं होइ सुखु॥

* * *

इस छन्द मे हिन्दी भाषा की एक स्पष्ट मूर्ति निकल आने मे बहुत थोड़ी कसर दिखाई पड़ती है।

सत्रहवीं शताब्दी में सुप्रसिद्ध जैन कवि बनारसीदास हुए। इनका जन्म सं० १६४३ में, जौनपुर नगर में हुआ। इन्होने अपनी कविता में हिन्दी का रूप स्पष्ट कर दिया। इनके रचे चार ग्रन्थ, बनारसीविलास, नाटक समय-सार, अर्द्धकथानक, और नाममाला (कोष) प्रसिद्ध है। अर्द्धकथानक इनका सबसे अच्छा ग्रन्थ है। इसमे इन्होने अपना ५५ वर्ष का आत्म-चरित लिखा है। इस ग्रन्थ से इनकी कविता की थोड़ी-सी बानगी आगे दिखलाते है।

सं० १६७३ में आगरे मे प्लेग का प्रकोप हुआ। उसका वर्णन इन्होंने ऐसा किया है—

इस ही समय ईति बिस्तरी, परी आगरे पहिली मरी।
जहां तहां सब भागे लोग, परगट भया गांठ का रोग ॥
निकसै गाठि मरै छिन माहि, काहू की बसाय कछु नाहिं।
चूहे मरै वैद्य मर जाहिं, भयसो लोग अन्न नहिं खाहिं ॥

*　　*　　*

जब अकबर बादशाह के मरने का समाचार जौनपुर पहुचा, उस समय वहां के निवासियों की क्या दशा हुई, उसका वर्णन सुनिये—

इसही बीच नगर में सोर। भयो उदंगल चारिहु ओर ॥
घर घर दर दर दिये कपाट। हटवानी नहिं बैठे हाट ॥
भले वस्त्र अरु भूषण भले। ते सब गाडे धरती तले ॥
घर घर सबनि बिसाहे सस्त्र। लोगन पहिरे मोटे वस्त्र ॥
ठाढौ कम्बल अथवा खेस। नारिन पहिरे मोटे वेस ॥

*　　*　　*

ऊंच नीच कोऊ न पहिचान। धनी दरिद्री भये समान।
चोरी धारि दिसै कहु नाहिं। योंही अपभय लोग डराहिं ॥

*　　*　　*

एक वार वनारसीदास परदेश मे अपने साथियो के सहित कही ठहरे, इतने मे पानी वरसने लगा। तव सव भागकर सराय मे गये, वहा जगह नही थी। वाजार मे कही खड़े होने का स्थान नही था। सवके किवाड़ बन्द थे। उस समय का वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—

फिरत फिरत फावा भये, वैठो कहै न कोइ।
तलै कीच सो पग भरे, ऊपर वरसत तोइ॥
अवकार रजनी विपै, हिमरितु अगहन मास।
नारि एक वैठन कह्यो, पुरुप उठचो लै वास॥

* * *

वनारसीदास प्रतिभावान् कवि थे। इनके पश्चात् भूवरदास आदि और भी कई अच्छे कवि हुए, जिन्होने हिन्दी-भापा मे वड़ी ललित कविताएं रची है। जैन विद्वानो ने पूर्वकाल से ही हिन्दी की उन्नति और उसके प्रचार में हाथ वंटाया है। आज भी हिन्दी के लिए उनका उद्योग कम नही।

हिन्दी और सिक्ख

सिक्खों के आदि गुरु नानकदेव ने हिन्दी का वहुत प्रचार किया। उन्होंने यात्राए भी वड़ी दूर-दूर की की थी। सिक्ख विद्वानो का कथन है कि वे जहां-जहां जाते थे वहा हिन्दी ही मे धर्मोपदेश करते थे। उनके कहे हुए वचन सव हिन्दी ही मे है। सिक्खो के पाचवे गुरु अर्जुनदेवजी हिन्दी के एक प्रसिद्ध लेखक थे। अपने से पहले हुए गुरुओं की वाणी का संग्रह करके "गुरु ग्रंथ साहव" की रचना उन्होंने ही की है। यह सिक्खो का धर्म-ग्रन्थ है, और अव तक करतारपुर मे मौजूद है। गुरु तेगवहादुर ने औरंगजेव को हिन्दी ही में संसार की असारता का उपदेश दिया था।

सिक्ख-सम्प्रदाय में हिन्दी का सवसे अधिक सम्मान गुरु गोविन्दसिंह के समय मे हुआ। गुरु गोविन्दसिंह का वर्णन कविता-कौमुदी मे आ गया है। ये स्वयं हिन्दी के अच्छे कवि थे। हिन्दी में शिक्षा देने के लिए

इन्होने कई पाठशालाए खोली थी। इनके सिवा भाई सन्तोषसिह ने भी हिन्दी का वहुत कुछ हित-साधन किया है। ये सिक्खों में हिन्दी के महाकवि कहे जाते है। इनके रचे "सूर्यप्रकाश" नामक ग्रन्थ को सिक्ख लोग बड़े चाव से पढते है।

काशी मे शिक्षा प्राप्त करने के लिए गुरु गोविन्दसिह के भेजे हुए सन्त गुलावसिह ने भी हिंदी की बड़ी सेवा की है। इनके लिखे हुए चार ग्रन्थ आजकल उपलब्ध होते है। सब हिन्दी में है, और वेदान्त-प्रेमी सिक्खों मे उनका बड़ा आदर है।

वर्तमानकाल मे भी सिक्ख-सम्प्रदाय मे ज्ञानी ज्ञानसिह द्वारा हिन्दी का अच्छा प्रचार हो रहा है। इन्होने हिन्दी कविता मे "ग्रन्थप्रकाश" नामक ग्रंथ की रचना की है।

हिन्दी और गुजराती

गुजराती का हिन्दी के साथ बहुत निकट का सम्बन्ध है। अच्छी हिन्दी जाननेवाला थोड़े ही परिश्रम से गुजराती सीख सकता है।

गुजरात में गुजराती भाषा के साहित्य का जन्म नरसी मेहता और मीराबाई के समय से हुआ। मीराबाई की जीवनी और कुछ कविताएं कविता-कौमुदो मे दी हुई है। उससे यह साफ प्रकट होता है कि मीराबाई की कविता की भाषा कैसी है। कही-कही मारवाड़ी और गुजराती वोलचाल के शब्द आ गए है, नही तो वह विशुद्ध हिन्दी ही है। यहा हम नरसी मेहता का एक पद लिखते है। उससे पाठक आसानी से समझ लेगे कि गुजराती और हिन्दी मे कितना अन्तर है।

वैष्णव जन तो तेने कहिए जो पीड़ पराई जाणे रे।
परदु खे उपकार करे तोए, मन अभिमान न आणे रे॥
सकल लोकमा सहुने वन्दे, निन्दा न करे केनी रे।
वाच, काछ, मन निश्चल राखे धन धन जननी तेनी रे॥
समदृष्टी ने तृष्णा त्यागी पर स्त्री जेने मात रे।
जिह्वा थकी असत्य न बोले परधन नव झाले हाथ रे॥

मोह माया व्यापे नहि जेने दृढ़ वैराग्य जेना मनमां रे।
रामनामशुं ताली लागी, सकल तीरथ तेना तनमां रे॥
वणलोभी ने कपटरहित छे काम क्रोध निवार्या रे।
भणे नरसैयों तेनु दर्शन करतां कुल एकोतेर तार्या रे॥

बहुत थोड़े शब्द इसमें ऐसे हैं, जो हिन्दीवाले न समझ सकते हों; परन्तु भाव तो सब समझ लेंगे।

नरसी मेहता के पहले गुजरात में गुजराती भाषा बोली तो जाती थी, किन्तु उसका कोई साहित्य नहीं था। ब्रजभाषा की कविता को ही विद्वान् और कवि लोग पढ़ते और लिखते थे। गुजराती में ब्रजभाषा का साहित्य है। उसका एक मुख्य कारण यह है कि वल्लभ-सम्प्रदाय का आदर गुजरात में बहुत है। वल्लभ-सम्प्रदाय का भक्ति-साहित्य ब्रजभाषा में बहुत है। इससे गुजरात में धार्मिक-भाव के साथ ब्रजभाषा का भी प्रभाव बढ़ गया।

गुजराती कवियों ने हिन्दी के बहुत-से छन्दों को अपनाया है और उनमें रचनाएँ की हैं।

हिन्दी में जैसे तुलसीदास की चौपाई, सूरदास के पद और गिरधर की कुण्डलिया प्रसिद्ध हैं, वैसे ही गुजराती में नरसी मेहता की प्रभाती, मीराबाई के भजन, सामल के छप्पय, दयाराम की गरबियाँ, और नर्मदाशंकर के रोला छन्द की महिमा है। सुप्रसिद्ध कवि दयाराम की कविता तो हिंदी से बहुत ही मिलती-जुलती है। लीजिए, एक उदाहरण देखिये—

[illegible] श्रीरंग रहे तू जुदा मेरी।
[illegible] हूँ खुशामद मैं तेरी॥
[illegible] खिलाता हूँ तुझे।
[illegible] न सुनाती मुझे॥
[illegible] सुनाऊँ साफ तेरा।
[illegible] आखिर [illegible] मेरा॥

बंगला और मराठी की अपेक्षा गुजराती का हिन्दी से अधिक सम्बन्ध है। इस समय भी गुजराती साहित्य में हिन्दी की बहुत छाया वर्तमान है।

हिन्दी और मुसलमान

मुसलमान जब से इस देश में आये, तभी से हिन्दी के साथ उनका घनिष्ट सम्बन्ध रहा। राज्य का सब कामकाज हिन्दी में ही होता था। मुहम्मद कासिम, महमूद गज़नवी और शहाबुद्दीन गोरी ने हिन्दुस्तान में अपना दफ्तर हिन्दी मे ही रक्खा था। उनकी तवारीखों से इन बातों का साफ-साफ पता चलता है। हसन गांगू ब्राह्मणी ने अपने हिसाब का दफ्तर गांगू ब्राह्मण को सौंपा था।

अमीर खुसरो ने हिन्दी में बहुत से दोहे, पहेलिया, गीत, दो अर्थी, अनमिल और मुकरनी आदि लिखे। अमीर खुसरो का जन्म सं० १३१२ और मरण सं० १३८२ मे हुआ। दिल्ली मे अब तक उनकी कब्र है और उस पर मेला भी लगा करता है। उन्होंने खालकबारी नामक एक पुस्तक लिखी, जिसमें अरबी, फारसी, तुर्की शब्दों के पर्यायवाची हिन्दी शब्द पद्य मे बताये गये है। हिन्दुओं को मुसलमानों की भाषा से और मुसलमानों को हिन्दुओं की भाषा से परिचित कराने का खुसरो ने यह सब से पहला प्रयत्न किया था। खुसरो ने जिस हिन्दी में छन्द रचे है, वह अवश्य ही उनके समय की बोलचाल की भाषा होगी। और किसी कवि की कविता उस हिन्दी में नही मिलती। यहा खुसरो की कविता के कुछ नमूने दिये जाते है—

खालकबारी

बया बिरादर आवरे भाई। बनशान मादर बैठ री माई।
मुश्क काफूर अस्त कस्तूरी कपूर। हिन्दवी आनन्द शादा और सरूर।
मूश चूहा गुर्बं बिल्ली मार नाग। सोज़नो रिश्तः बहिन्दी सुई ताग ॥

* * *

आंखों का एक नुसखा

लोध फिटकरी मुर्दासङ्ग । हल्दी, जीरा एक-एक टङ्ग ॥
अफ़ीम चनाभर मिर्च चार । उरद बराबर थोथा डार ।
पोस्त के पानी पोटली करे । तुरत पीर नैनो की हरे ॥

❋ ❋ ❋

पहेलियां

तरवर से एक तिरिया उतरी उसने बहुत रिझाया ।
बाप का उसके नाम जो पूछा आधा नाम बताया ।
आधा नाम पिता पर प्यारा बूझ पहेली मोरी ।
"अमीर खुसरो" यों कहे अपने नाम "न बोली" ॥ "निबोरी" ।

फ़ारसी बोले आईना । तुरकी सोचे पाईना ।
हिन्दी बोलते आरसी आये । मुह देखे जो इसे बताये ॥
"आईना" ।

बीसो का सिर काट लिया । ना मारा ना खून किया ॥
"नाखून" ।

जलकर उपजे जल मे रहे । आखो देखा "खुसरो" कहे ॥
"काजल" ।

आदि कटे ते सब को पारे । मध्य कटे ते सब को मारे ।
अन्त कटे ते सब को मीठा । सो "खुसरो" मै आंखो दीठा ।
"काजल" ।

पहेलियों के सिवा खुसरो ने स्त्रियों के गाने के लिए बहुत से गीत भी लिखे थे । नमूने के तौर पर उनका एक गीत यहा दिया जाता है—

अम्मा, मेरे बाबा को भेजो जी, कि सावन आया ।
बेटी, तेरा बाबा तो बुड्ढा री, कि सावन आया ॥
अम्मा, मेरे भाई को भेजो जी, कि सावन आया ।
बेटी तेरा भाई तो बाला री, कि सावन आया ॥

अम्मा, मेरे मामू को भेजो जी, कि सावन आया ।
वेटी, तेरा मामू तो बाका री, कि सावन आया ।

खुसरो की "मुकरनिया" भी बहुत मशहूर है ।

मुकरनी--

सिगरी रैन मोहि सग जागा ।
भोर भई तब बिछुड़न लागा ॥
उसके बिछुड़े फाटत हिया ।
क्यो सखि, साजन ? ना सखि, "दिया" ॥ १ ॥
सरब सलोना सब गुन नीका ।
वा बिन सब जग लागे फीका ।
वाके सर पर होवे कौन ।
ऐ सखि, साजन ? ना सखि, "लौन" ॥ २ ॥
वह आवे तब शादी होय ।
उस बिन दूजा और न कोय ।
मीठे लागे वाके बोल ।
ऐ सखि, साजन ? ना सखि, ढोल ॥ ३ ॥

एक दिन खुसरो राह में चले जारहे थे । चलते-चलते प्यास लगी । एक पनघट पर पहुचे । चार पनिहारिने पानी भर रही थी । खुसरो ने पानी मागा । उनमें से एक इन्हे पहचानती थी । उसने अपनी सहेलियों से कहा कि देख. खुसरो यही है, जिसके गीत गाये जाते हैं । उनमे से एक ने खुसरो से कहा, मुझे खीर की कविता सुनाओ, तब पानी पिलाऊगी । दूसरी ने चरखे पर, तीसरी ने ढोल पर और चौथी ने कुत्ते पर कविता सुननी चाही । खुसरो ने चारों का उत्तर एक ही छन्द मे दिया--

खीर पकाई जतन से चरखा दिया जला ।
आया कुत्ता खा गया, तू बैठी ढोल बजा ॥ ला,पानी पिला ॥

इस तरह के बेसिर-पैर के छन्द का नाम अनमिल है । खुसरो कभी-कभी "ढकोसला" भी कहा करते थे । एक ढकोसला यह है ।--

भादों पक्की पीपली, चू चू पड़े कपास ।
बी महतरानी दाल पकाओगी, या नङ्गा ही सो रहूं ॥

खुसरो ने "दो सखुने" भी बहुत से कहे है । कुछ ये है—

गोश्त क्यो न खाया—डोम क्यों न गाया ? गला न था ।
जूता क्यों न पहना—समोसा क्यों न खाया ? तला न था ।
अनार क्यों न चखा—वज़ीर क्यों न रखा ? दाना न था ।
पण्डित क्यों पियासा—गदहा क्यों उदासा ? लोटा न था ।
पण्डित क्यों न नहाया—धोबिन क्यों मारी गई ? धोती न थी ।
सौदागर रा च मे बायद—बूचे को क्या चाहिये ? दोकान ।
तिश्ना रा श मे बायद—मिलाप को क्या चाहिये ? चाह ।
शिकार बचा मे बायद करद—कूवते मगज को क्या चाहिये ? बादाम ।

खुसरो के मुहल्ले में चम्मो नाम की एक वुढिया की दूकान थी । वह लागों को भांग और चरस पिलाया करती थी । भंगेड़ियों और गंजेड़ियों का एक खास जमघट उसके यहा लगा रहता था । खुसरो उसी रास्ते से दरवार आते-जाते और टहलने निकला करते करते थे । बुढ़िया कभी-कभी हुक्का भरकर सामने खड़ी होजाती । खुसरो यह खयाल करके कि बुढ़िया का दिल दुखाना ठीक नही, कभी-कभी एक-दो फूक ले लेते थे । एक दिन उसने कहा, "आप कवि है । हजारों गीत, गजल, राग, रागिनी लिखा करते है, कोई चीज इस दासी के नाम से भी बना दीजिये । आपकी कृपा से इस दासी का भी नाम रह जायगा ।" इसके बाद वह तकाजे पर तकाजे पर करने लगी । एक दिन खुसरो ने उसके नाम से यह कह ही डाला—

औरों की चौपहरी वाजे चिम्मो की अठपहरी ।
वाहर का काई आये नाही आयें सारे शहरी ॥
साफसूफकर आगे राखे जिसमे नाहीं तूसल ॥
औरों के जहं सीक समावे चिम्मो के तहं मूसल ॥

अर्थात्, वादशाहों के यहां तो सिर्फ चार पहर ही नौबत बजती है, इसके यहां आठो पहर कूंडी, सोटा वजता रहता है । वाहर का कोई आता

नही, शहर ही के सफेदपोश आते है । भङ्ग को साफ-सूफ़ करके यह आगे रखती है, जिसमे जरा भी कूड़ा-करकट नही होता । ऐसी गाढ़ी भाग छनती है कि औरो की भाग मे जहा सीक खड़ी हो सकती है, वहा चिम्मो की भाग मे मूसल खड़ा होजाता है ।

कहना नही होगा कि ख़ुसरो की बदौलत चिम्मो का भी नाम रह गया । ख़ुसरो ने फारसी और हिन्दी की मिलावट के छन्द भी लिखे है । उनमें एक यह है:—

ज़े हाल मिसकी मकुन तग़ाफुल दुराय नैना बनाय बतिया ॥
कि तावे हिजरा न दामे ऐ जा ! न लेहु काहे लगाय छतिया ॥
शबाने हिजरा दराज़ चू ज़ुल्फ़ व रोज़े वसलत चु उम्र कोतह ।
सखी पिया को जो मै न देखू तो कैसे काटू अंधेरी रतिया ॥

ख़ुसरो ने एक मौके पर यह दोहा कितना सुन्दर कहा है—

गोरी सोवै सेज पर, मुख पर डारे केस ।
चल ख़ुसरो घर आपने, रैन भई चहुं देश ॥

* * *

अकबर के समय मे तो हिन्दी का महत्व बहुत बढ़ गया था । अकबर का जन्म सं० १५९९ मे अमरकोट मे हुआ । १६६२ वि० तक उसने राज किया । वह विशेष पढ़ा-लिखा न था, पर प्रतिभाशाली और सत्सगी था । उसके दरबार मे हिन्दी के अच्छे-अच्छे कवि, पण्डित और गवैये रहते थे । उसका समय हिन्दी का स्वर्ण-युग कहा जा सकता है । कुछ छन्द यहां लिखे जाते है, जो अकबर के बनाये हुए कहे जाते है.—

(१)

जाको जस है जगत मे, जगत सराहै जाहि ।
ताको जीवन सफल है, कहत अकब्बर साहि ॥

(२)

साहि अकब्बर एक समै चले कान्ह विनोद बिलोकन बालहि ।
आहट ते अबला निरख्यो चकि चौंकि चली करि आतुर चालहि ॥

त्यो बलि बेनी सुधारि धरी सु भई छवि यो ललना अरु लालहि ।
चम्पक चारु कमान चढावत काम ज्यो हाथ लिये अहि वाल्हि ॥

(३)

केलि करै विपरीत रमै सु अकव्बर क्यो ;स इतो सुख पावै ।
कामिनी को कटि किंकिनि कान किधौ गनि पीतम के गुन गावै ॥
बिन्दु छुटो तन मे सु लालट तें यो लट मे लटको लगि आवै ।
साहि मनोज मनो चित मैं छवि चद लये चकडोर खिलावै ॥

अपने बेटे जहागीर को भी अकवर ने हिन्दी सिखाई,और अपने पोते खुसरो को तो छः वर्ष की अवस्था ही मे हिन्दी सीखने के लिए भूदत्त भट्टाचार्य के सुपुर्द कर दिया था । शाहजहा अपनी मातृभाषा के समान हिन्दी-भाषण मे अधिकार रखता था । शाहजहा के दरवार मे हिन्दी-कवियो का अच्छा सम्मान था । उसका वड़ा लड़का दारा तो हिन्दी और सस्कृत मे अपने वाप-दादो से भी वढकर निकला । उसने उपनिषदो का फ़ारसी भाषा मे उल्था किया । औरङ्गजेव यद्यपि हिन्दुओ से वड़ा द्वेष रखता था, हिन्दी से विमुख वह भी नही था । एक वार शाहजादा मुहम्मद आज़म ने कुछ आम औरङ्गजेव के पास भेजे और प्रार्थना की कि इनके नाम रख दो । औरङ्गजेब ने बेटे को लिखा—"तुम स्वय विद्वान् होकर बूढे वाप को क्यो कष्ट देते हो ? खैर, तुम्हारी प्रसन्नता के लिए आमों का नाम मैंने 'सुधारस' और 'रसना-विलास' रक्खा है"—

शाही दरबारों मे हिन्दी-गवैयो का भी वड़ा आदर था । तानसेन को अकबर ने पहले ही मुजरे में एक करोड का इनाम दिया था । बैरमखा खानखाना ने बाबा रामदास को एक लाख रुपये एक ही दिन दे डाले थे । शाहजहां ने महापात्र जगन्नाथराय त्रिशूली के बराबर रुपये तौल दिये थे । उसी ने कलावन्त लाल खाँ को गुणनिधि की उपाधि दी थी । हिन्दी का इतना आदर था कि मुसलमान गवैये भी हिन्दी की राग-रानिया गाते थे । हिन्दू गवैयो का तो कहना ही क्या है, मुसलमान गवैये अब तक भी हिन्दी राग-रागनियां गाते है ।

मुसलमानी राजत्वकाल का इतिहास और हिन्दी का इतिहास यदि मिलाकर देखा जाय तो यह देखकर बड़ा आश्चर्य होता है कि मुसलमानों की उन्नति के साथ हिन्दी की उन्नति हुई है और उनके अध पतन के साथ एक बार हिन्दी का भी रंग फीका पड गया है। जब मुसलमानी शासन का सूर्य उन्नति पर था, हिन्दी के बडे-बड़े प्रतिभाशाली कवि उसी समय मे हुए थे। मुसलमानो की उन्नति के समय हिन्दी इस तरह फूली फली कि उसके सुमधुर सुगन्ध और स्वाद से आजकल हम लोग बहुत आनन्द पा रहे हैं। हिन्दी के इस नाते से मुसलमानो की ओर हमारा प्रेम बढ़ जाता है। हिन्दी की इस उन्नति से मुसलमानो को गर्व होना चाहिए।

बहुत से मुसलमान कवियो ने हिन्दी मे कविता की हैं। उनमें से कुछ के नाम नीचे लिखे जाते हैं। साथ ही यह भी लिख दिया जाता है कि उनके रचे हुए कौन-कौन से ग्रथ उपलब्ध हैं—

कवि	ग्रन्थ
१—अमीर खुसरो	फुटकर
२—मलिक मुहम्मद जायसी	कविता-कौमुदी में वर्णन देखिये।
३—अकबर	फुटकर
४—कादिरबख्श	,,
५—अब्दुलर्रहीम खानखाना	कविता-कौमुदी मे वर्णन देखिये।
६—उसमान	,, ,, मे देखिये।
७—सैयद इब्राहीम (रसखान)	,, ,, ,,
८—मुबारक	,, ,, मे देखिये।
९—अहमद	वेदान्त कविता
१०—वहाब	बारहमासा
११—अब्दुर्रहमान	यमक शतक
१२—जलील	फुटकर
१३—याकूब खाँ	रसिक-प्रिया की टीका
१४—जुल्फिकार	सतसई का टीका

कवि	ग्रन्थ
१५—अनवर खाँ	अनवर चंद्रिका
१६—प्रेमी यमन	अनेकार्थ नाम माला
१७—आजम	नखशिख
१८—सैयद गुलाम नवी	रसप्रवोध, अङ्गदर्पण
१९—तालिव अली	नखशिख
२०—नवी	फुटकर
२१—आलम	कविता-कौमुदी देखिये।

किसी-किसी मुसलमान कवि न तो हिन्दी मे ऐसी अच्छी कविता की है, कि उसके एक-एक पद पर कितने ही हिन्दू कवियो की कविता न्योछावर कर दी जा सकती है। अत मे बड़े साहस और सतोष के साथ हम यह कह सकते है कि पिछले सहृदय मुसलमान बादशाहो और कवियो ने हिन्दी की जो सेवा की है वह कभी न कभी अवश्य हिन्दू-मुसलमानो के भाषा विषयक विरोध को दूर करने मे समर्थ होगी।

हिन्दी और उर्दू

उर्दू कोई स्वतन्त्र भाषा नही, वह हिन्दी का एक रूपान्तर मात्र है। हिन्दी में अरवी, फारसी और तुर्की के कुछ शव्दो के आजाने से वह कोई नई भाषा नही कहला सकती। और जब हिन्दी उर्दू का व्याकरण एक है तो वह अलग स्वतन्त्र भाषा कैसे कहला सकती है? इसी तरह आजकल कालेजों में अंग्रेजी शव्दो से लसी हुई जो हिन्दी वोली जाती है, वह कोई नई भाषा नही कहला सकती। हिन्दी और उर्दू मे सिर्फ इतना ही अतर है कि हिन्दी देवनागरी लिपि मे लिखी जाती है और सस्कृत शव्दो की उसमें वहुलता रहती है; उर्दू फारसी लिपि में लिखी जाती है और उसमें अरवी और फारसी के शव्दो की अधिकता रहती है। गुजराती भाषा के भी दो रूप है, एक पारसियो की गुजराती, दूसरी गुजरातियों की गुजराती। पारसियो की गुजराती मे अरबी, फारसी के शव्द अधिक

होते हैं और गुजरातियों की गुजराती मे सस्कृत और अपभ्रश के शब्द। पर गुजराती भाषा के अलग-अलग नाम नही । दोनो रूपों का एक ही नाम है। ऐसा ही सम्बन्ध हिन्दी और उर्दू का है।

मुसलमानो के आने के पहले ही से अरबी, फारसी और तुर्की के शब्द यहा भी भाषा मे प्रचलित थे। यह बात चदबरदाई की कविता से स्पष्ट मालूम होती है। जब मुसलमानो का ससर्ग इस देश में बढा, तब उनकी भाषा के बहुत से शब्द भी हमारी बोलचाल मे बढ गए। बोल-चाल समझने के सुभीते के लिए हिन्दू-मुसलमान दोनो ने हिन्दी मे अरबी फारसी के शब्दो को मिलने दिया । शाहजहा के वक्त में इस मिश्रित भाषा का नाम उर्दू पड गया । "उर्दू" नाम होने के पहले ही कबीर, सूर और तुलसी की कविता मे अरबी फारसी के बहुत से शब्द व्यवहृत हुए हैं । तुर्की में उर्दू शब्द का अर्थ है "लश्कर का बाजार"। यह मिली-जुली बोली लश्कर के बाजार में, जहाँ मुल्क-मुल्क और शहर-शहर के आदमी जमा होते थे, बोली जाती थी । वही से इस बाजारू हिन्दी का नाम उर्दू हुआ । इसका एक पुराना नाम "रेख़ता" भी है। कबीर साहब ने कुछ "रेख़ते" लिखे हैं, पर वहाँ "रेख़ता" उनके एक खास छन्द का नाम है, बोली का नही। यद्यपि उनके रेख़तो की भाषा "रेख़ता" ही है ।

शम्सुलउलमा मौलवी मुहम्मद हुसेन साहब आजाद ने "आवेहयात" के छठे पृष्ठ पर जो यह लिखा है कि "इतनी बात हर शख़्स जानता है कि हमारी उर्दू ज़बान ब्रजभाषा से निकली है" (पृष्ठ ६); "सस्कृत और ब्रजभाषा की मिट्टी से उर्दू का पुतला बना है" (पृष्ठ ३४) वह ठीक नही है। उर्दू ब्रजभाषा से नही निकली, बल्कि हिन्दी ही का नाम उर्दू रख लिया गया है। अमीर खुसरो की पहेलियो और कबीर के रेख़तो से स्पष्ट मालूम होता है कि हिन्दी चन्दवरदाई के पहले से स्वतन्त्र रूप से बोली जाती रही है, और उसी में अरबी फारसी के शब्द जगह पाकर घुस बैठे। जिस भाषा का नाम शाहजहाँ के वक्त मे "उर्दू" पड़ा, वह

उसके बहुत पहले से बोली जाती रही हैं। वह व्रजभाषा के समान ही पुरानी भाषा है। हम उर्दू को व्रजभाषा से निकली हुई नही मानते, वह हिन्दी है; सिर्फ उसका नाम नया रक्खा गया है। यह एक बड़ी दिलचस्प बात है कि अरबी फारसी के शब्दों को मजबूर होकर हिन्दुस्तानी ढाँचे में ढल जाना पडा है। उन्होने अपने को हिन्दी-व्याकरण के हवाले कर दिया, जिसने उनके तन पर अपना जामा पहना दिया। कुछ ऐसे उदाहरण दिये जाते हैं।

प्राय: सभी शब्दों का बहुवचन हिन्दी व्याकरण के नियमानुसार है। जैसे, आदमी का आदमियों—

मेवा का	मेवों	न कि	मेवाजात
निशान का	निशानो	न कि	निशानात
मुश्किल का	मुश्किलो	न कि	मुश्किलात
दफा का	दफाओं	न कि	दफात
औरत का	औरतों, औरते	न कि	मस्तूरात
मज़दूर का	मज़दूरों	न कि	मजदूरान

इत्यादि; अब कुछ लोग उर्दू में अरबी फारसी के शब्दों का असली बहुवचन लिखने लगे हैं। पर ऐसा करके वे भाषा को और भी कठिन बना रहे हैं और उसकी सीमा सकुचित कर रहे है। मामूली बोलचाल में उन शब्दों का हिन्दी-रूप ही प्रचलित है और रहेगा।

फारसी शब्दों से बहुत सी क्रियाए भी हिन्दी के ढग पर बन गई है। जैसे—

शरम से	शरमाना
गुज़र से	गुज़रना
फरमान से	फ़रमाना
कबूल से	कबूलना
बदल से	बदलना
बख़्श से	बख़्शना

काहिली से कहलाना
मुनकिर से मुकरना इत्यादि।

कुछ क्रियाए करना, होना आदि शब्दो के सयोग से बन गई ह । जैसे; खुश होना, ज़िक्र करना, रवाना होना, दिल लगाना इत्यादि ।

कुछ शब्द ऐसे है, जिनका धड़ तो हिन्दुस्तानी है और सिर फारसी। जैसे; समझदार, गाडीख़ाना, पानदान, पीकदान, मोदीख़ाना, हाथीवान इत्यादि।

कुछ ऐसी-ऐसी चीजे भी, जो इस मुल्क में बाहर से आईं, अपना नाम साथ लाईं । जैसे, साबुन, शीशा, मशक, काज़ी, हुक्का, चिलम, नैचा, कुर्ता, चोगा, आस्तीन, पायजामा, इज़ार, रुमाल, शाल, दुशाला, तकिया, बुरका, चपाती, पुलाव, अचार, बेदमुश्क, रकाबी, तश्तरी, चमचा, किश्ती, चाय आदि।

बहुत से अरबी फारसी के शब्दों का इतना प्रयोग बढ गया है कि अब उनके स्थान पर सस्कृत या प्राकृत के पर्यायवाची शब्द ढूढ़कर रक्खे जाय तो या तो कुछ अर्थ ही न निकलेगा या भाषा इतनी कठिन हो जायगी कि सर्वसाधारण तो क्या, शिक्षित हिन्दू भी कठिनता से समझ सकेगे। जैसे—

मजदूर, वकील, कलम, दवात, स्याही, मसखरा, नसीहत, चादर, सूरत, तोता, पर, जुलाब, गुलाब, तग, जीन, रकाब, नाल, कोतल, जहाज़, मस्तूल, परदा, दालान, तनख्वाह, मल्लाह, ताज़ा, गलत, सही, रसद, कारीगर, तराजू, शतरंज। शतरज ख़ास हिन्दुस्तान की चीज है। पर अब इसके असली नाम "चतुरग" से शायद ही कुछ लोग परिचित हो। ऊपर के शब्दो के पर्यायवाची शब्द सस्कृत मे अवश्य है, पर हिन्दी में उनका प्रयोग बन्द हो गया। अब पाटल के स्थान पर गुलाव ने अधिकार जमा लिया है।

हिन्दी के इस नये रूपान्तर मे कवियो ने कमाल का हाथ दिखाया। उन्होने उर्दू को खूब सवारा; महावरो के आभूषण से खूब सजाया; ईरान

का शोखी, नजाकत और चुलबुलापन सिखाया। सब तरह से सज-धज-कर वह रसिको के गले का हार हो गई। उर्दू कवियो से अपनी रचना का विषय हिन्दुस्तान से नही, बल्कि ईरान से लिया। सस्कृत और हिन्दी में जितने स्त्री-पुरुष के प्रेम सम्बन्धी काव्य लिखे गये है, उन सब में स्त्री पुरुष पर आसक्त दिखाई गई। रामायण मे सीता के हृदय में राम से पहले प्रेमांकुरित हुआ है। भागवत मे रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण के पास अपना प्रणय-सदेश पहले भेजा। इसी तरह दमयन्ती नल पर संयोगिता पृथ्वीराज पर आसक्त दिखाई गई है। अग्रेजी कवियो का मार्ग इससे जरा सा जुदा है। वहाँ स्त्री पर पुरुष आसक्त होता है। वह अपना प्रणय पहले प्रकट करता है। यही उनके देश की प्रथा भी है। पर उर्दू-कवियों ने बिलकुल ही उलटा और अप्राकृतिक मार्ग पसन्द किया है। उन्होंने पुरुष पर पुरुष को आसक्त दिखाया, और उसी नीव पर अपना महल खड़ा किया है। उनके महल की नींव की ईंटें हिन्दुस्तान से नही, बल्कि ईरान से ली गईं। उर्दू ने फारसी से यह सभ्यता सीखी। इसके सिवा विषय भी नया चुना गया। हिन्दी को मनुष्य-समाज से बाहर जाने का बहुत कम मौका मिलता है। चन्द्रोदय, सूर्योदय, वन, पर्वत, नदी, निर्भर देखने का अवकाश उसे बहुत कम है। प्रेम, विरह, भक्ति, नीति और हास-परिहास ही से उसे फुर्सत नहीं। वसन्त का विकास होनेपर वह हृदय को नवीन-प्रेम, नवीन-भक्ति और नवीन-आनन्द से सजा लेती है। विरहावस्था में ही वह कोयल और पपीहे के स्वर से कुछ वेदना अनुभव करती है; नहीं तो सदा वह समाज का आनन्द अनुभव करने में निमग्न रहती है। आवश्यकता पड़ने पर वह वीरो को वीररस से उन्मत्त कर देती है। समय पड़ने पर नीति के उत्तम उपदेश देती है। मौके पर मनोविनोद से भी नहीं चूकती। ज्ञान, वैराग्य, भक्ति तो उसके जीवन का लक्ष्य ही मालूम होता है। पर उर्दू का ढंग निराला होता है। वह हमेशा बाग में डेरा डाले रहती है। कभी-कभी वह यार के कूचे में हो आती है, पर बहुत-सा वक्त वह बुलबुल की फ़रियाद सुनने, उसकी ओर से वकालत करने

और सैयाद को बुरा-भला कहने ही मे व्यतीत करती है। और वह बुलबुल भी यहां का नही, ईरान का है। हिन्दुस्तान मे बैठे ईरान के बुलबुल का पक्ष समर्थन करना, उसकी ओर से बकझक करना, कल्पना से अपनी और उसकी दशा का मिलान करना, ध्यान के नेत्र से उसके उजडे हुए घोंसले को देखकर आह भरना, यह सब उर्दू के चमत्कार के काम है। वह सास नही लेती, आह भरती है। बल्कि यह कहना चाहिए कि आह भरने के लिए ही वह सास लेती है। वस्ल का मौका उसे बहुत ही कम मिलता है। हिज्र की पीड़ा से रात-दिन वह तड़पा करती है। तड़पना ही उसके जीवन का लक्ष्य है। इश्क, वफा, दाम, बुलबुल घोंसला, सैयाद, चमन, गुल, बहार, ख़िजा, वस्ल, हिज्र, कफन, कब्र, जनाजा, आह, दिल, जिगर, कमर, बागबा, शिकवा, ख्वाब, बोसा, जुल्फ, तीर, चश्म, तडप, खून, मौत, सितम, सनम, और नाला शिकवा ही मे उसने अपनी उम्र के सैकड़ो बरस बिता दिये। इनके आगे कदम रखने की उसे फ़ुरसत ही न मिली। उसने अपने प्यारों को दुनिया के काम का न रक्खा। उन्हे खीचकर उसने इश्क की आग में डाल दिया, जहा वे हमेशा तडपते रहे। इश्क की दीमक उनके दिलो को जिन्दगी भर चाटती रही।

एक ने अपना यह अनुभव बयान किया है—

इश्क का मनसब लिखा जिस दिन मेरी तकदीर में।
आह की नकदी मिली सहरा मिला जागीर मे॥

* * *

वे कल्पित हिज्र ही में सदा आह भरते रहते है। वस्ल से उन्हे हिज्र में मजा भी ज्यादा आता है। एक ने कहा—

वस्ल में हिज्र का गम हिज्र मे मिलने की ख़ुशी।
कौन कहता है जुदाई से विसाल अच्छा है॥

* * *

उर्दू के कवि उड़ान मे कभी-कभी हिन्दी-कवियो से बहुत ऊँचे जाते है, इसमे सन्देह नही। हिन्दी में एक बिहारी ही ऐसे कवि हुए है, जो

दूर की कौड़ी लाने मे उर्दू-कवियो से मोरचा ले सकते है । नही तो सव सीधे-सादे, प्रेमी, भक्त और नीतिज्ञ हैं । हवा में महल खडा करना वे वहुत कम जानते है । उर्दू के कवि मरकर भी देखते रहते है कि यार उनके जनाज़े के साथ है कि नही । कब्र मे गड़े रहकर भी वे यार के क़दमो की आवाज़ पहचानते रहते है कि वह कब्र पर फूल चढाने आया कि नही । यार के हाथो अपना कत्ल कराते है और उसकी तलवार के स्पर्श का सुख अनुभव करते है । कभी-कभी वे इसीलिए भी मर जाते है कि बहुत दिनों से विरक्त उनका यार उनकी मृत्यु का समाचार सुन कर उनके घर आये । ये सव करामात की वातें गरीव हिन्दी-कवियों मे नही ।

फारसी मे इश्क की दो सूरते है, इश्क हकीकी और इश्क़ मजाज़ी । उर्दू में इश्क मजाज़ी ही का अधिक चलन है । इश्क हकीक़ी के रसिक वहुत थोडे कवि हुए है । किन्तु उन्होने जो कुछ कहा है, वह अद्‌भुत है, अनुपम है । आसी इसी श्रेणी के कवि है । गालिव को हम उर्दू-साहित्य का सम्राट् मानते है । ऐसा प्रतिभाशाली कवि उर्दू में कोई नही हुआ । क्या भाषा, क्या भाव,क्या प्रभाव, गालिब सव पर गालिब है । वे यद्यपि उर्दू के विषय की सीमा से वाहर वहुत कम आये, पर तो भी जो कुछ कहा, वह लासानी है । सुन्दर मंजी हुई भाषा, रत्न की तरह झलकते हुए भाव, मद का-सा प्रभाव और किसी की कविता में नही । एक-एक शेर लाखों की क़ीमत का है ।

अव उर्दू के कवियों ने रास्ता वदला है । ज़ुल्फो की लपेट से नजात पाकर, आह-ऊह का धंधा छोड़कर अव वे मुल्क और कौम की ओर झुके है । इस रास्ते के रहवर हाली को समझना चाहिए । आज़ाद, चकवस्त, हसरत और अकवर ने इस रास्ते को खूव आरास्ता कर दिया है । अकबर को मरे अभी थोड़े दिन हुए, किन्तु अपने समय मे वह लासानी थे । न हिन्दी में कोई वैसा कवि था,न उर्दू में । उनकी साफ सुथरी उर्दू भाषा, मजेदार महावरे, कहने का अनोखा-ढंग कुछ निराला ही है ।

यहा तक तो विषय की बाते हुई । अब भाषा की ओर आइये। हिन्दी-कवियो की अपेक्षा उर्दू-कवि भाषा की स्वच्छता पर बहुत ध्यान देते है। उनके यहां महावरो का बहुत खयाल किया जाता है। उर्दू तो महावरों ही की भाषा है। थोडे ही से शब्द ऐसे है, जिनके प्रयोग में लखनऊ और दिल्ली वालो मे मतभेद है, बाकी सब मजा-मजाया दुरुस्त है। पहले-पहल उर्दू पर ब्रजभाषा का प्रभाव पड रहा था। उसके पुराने कवि "से" की जगह "सो" लिखते थ। पर धीरे-धीरे सब कट-छटकर विशुद्ध खड़ी बोली का रूप रह गया।

स्थानाभाव से इस विषय को हम यही समाप्त करते है। अब आगे उर्दू के कवियों के कुछ चुने हुए शेर हम अपने पाठकों की सेवा मे उपस्थित करते है। आइये, उर्दू कवियों की लच्छेदार बातें सुनिये, उनकी ऊँची उड़ान देखिये, चुभ जाने वाले खयालात का मुलाहज़ा फरमाइये, दिल मे गुदगुदी पैदा करने वाले शेरो की करामात देखिये और अनुभव कीजिये कितना आनन्द है! कितना माधुर्य है! हिन्दी का यह उद्यान कितना विकसित हो रहा है!

काबा बुतखाना कलेसा सौमेआ,
फिरते है दर-दर कि तेरा घर मिले।
कुछ न पूछो कैसी नफरत हम से है,
हम है जब तक वह हमें क्यो कर मिले? — आसी।

बस कि दुश्वार है हर काम का आसा होना।
आदमी को भी मुअस्सर नही इन्साँ होना॥ — गालिब।

कह सके कौन कि यह जलवह गरी किसकी है?
परदह छोड़ा है वह उसने कि उठाये न बने॥
इश्क पर जोर नही, है यह वह आतिश "गालिब"।
कि लगाये न लगे और बुझाये न बने॥
इशरते कतरा है दरिया मे फ़ना हो जाना।
दर्द का हद से गुज़रना है दवा हो जाना॥

मेहरबा होके बुलालो मुझे चाहो जिस वक्त ।
मै गया वक्त नही हू कि फिर आ भी न सकू ॥
इस सादगी पै कौन न मर जाय ऐ ख़ुदा ।
लड़ते है और हाथ मे तलवार भी नही ॥
शब को किसी के ख्वाब मे आया न हो कही ।
दुखते है आज उस बुते नाजुक बदन के पाव ॥
रहिये अब ऐसी जगह चलकर जहा कोई न हो ।
हमसख़ुन कोई न हो और हमज़बा कोई न हो ॥
बे दरो दीवार सा इक घर बनाना चाहिये ।
कोई हमसाया न हो और पासबां कोई न हो ॥
पड़िये गर बीमार तो कोई न हो तीमारदार ।
औ' अगर मर जाइये तो नौहे ख्वा कोई न हो ॥
उनको देखे से जो आ जाती है मुह पर रौनक ।
वे समझते है कि बीमार का हाल अच्छा है ॥
मुनहसर मरने पै हो जिसकी उम्मीद ।
नाउम्मेदी उसकी देखा चाहिये ॥
मुहब्बत मे नही है फर्क जीने और मरने का ।
उसीको देखकर जीते है जिस काफिर पे दम निकले ॥
हमको मालूम है जिन्नत की हकीकत लेकिन ॥
दिल के ख़ुश रखने को "गालिब" यह खयाल अच्छा है ॥

गालिब ।

दिल के फफोले जल उठे सीने के दाग से ।
इस घर को आग लग गई घर के चिराग से । एक लड़का ।

शाम ही से बुझा-सा रहता है ।
दिल हुआ है चिराग मुफलिस का ॥
सुबह गुज़री शाम होने आई "मीर"
तू न चेता औ बहुत दिन कम रहा ॥

सख्त काफिर था जिसने पहले "मीर"
मज़हबे इश्क इख्तियार किया। मीर।

सनम सुनते हैं तेरे भी कमर है।
कहा है ! किस तरफको है ? किधर है ? जुरअत।

मैं गो कि हुस्न में ज़ाहिर में मिस्ल माह नही।
हज़ार शुक्र कि बातिन मेरा सियाह नही ॥ नासिख।

सियहबख्ती मे कब कोई किसी का साथ देता है ?
कि तारीकी मे साया भी जुदा होता है इन्सा से। नासिर अली।

तिरछी नज़रो से न देखो आशिके दिलगीर को।
कैसे तीरदाज हो सीधा तो कर लो तीर को ॥ नासिख।

आखे नही चेहरा पर तेरे फकीर के,
दो ठीकरे है भीख के दीदार के लिये ॥ आतिश।

यह मजनू है, नही आहू है लैला।
पहनकर पोसती निकला है घर से ॥
जिसे तू सीग समझे है, यह है खार।
लगे है पाव में, निकले है सर से ॥ नसीर।

उम्र सारी तो कटी इश्क बुतां मे "मोमिन"।
आखिरी वक्त मे क्या खाक मुसल्मा होगे ? मोमिन।

तुम मेरे पास होते हो, गोया।
जब कोई दूसरा नही होता ॥ मोमिन।

लाई हयात आये, कज़ा ले चली, चले।
अपनी खुशी न आये न अपनी खुशी चले।
लोग घबरा के यह कहते है कि मर जायेंगे।
मर के गर चैन न पाया तो किधर जायेंगे। ज़ौक।

नशये इश्क का गर ज़ौक दिया था मुझको।
उम्र का तग न पैमाना बनाया होता ॥ ज़ौक।

ज़िन्दगी ज़िन्दादिली का नाम है।
मुर्दा दिल खाक जिया करते हैं॥
हाय, क्या चीज़ ग़रीवुल्वतनी होती है।
वैठ जाता हू जहा छाव घनी होती है। हफ़ीज़।

समुन्दर कर दिया नाम उसका नाहक सवने कह-कहकर।
हुये थे जमा कुछ आसू मेरी आंखो से वह-वहकर॥ सौदा।

बंद होजाती हैं सायारों की आंखें खौफ से।
फेंकता हू जव मैं दिल से आहे आतिशवार को॥ नासिख।

तारे तो ये नही मेरी आहो से रात की।
सूराख पड़ गये है तमाम आसमान मे॥ मीरतक़ी।

न करता ज़ब्त मै नाला तो फिर ऐसा धुवा होता।
कि नीचे आसमां के एक नया और आसमा होता। ज़ौक़।

यही सोज़े दिल है तो महशर में जलकर।
जहन्नुम उगल देगा मुझको निगलकर॥ अमीर मीनाई।

अफसुर्दा दिल के वास्ते क्या चादनी का लुत्फ।
खिपटा पड़ा है मुर्दा सा गोया कफन के साथ॥ ज़ौक।

दिल के आईने में है तसवीरे-यार।
जव ज़रा गर्दन झुकाई देख ली॥

लटों में कभी दिल को लटका दिया।
कभी साथ वालों के झटका दिया॥ मीरहसन।

ज़माना होगया अकवर तेरी सीधी निगाहों से।
खुदा न खास्ता तिरछी नज़र होती तो क्या होता॥ अकबर।

सोहवत तुझे रकीव से मै अपने घर मे दाग।
कीधर पतंग, शमअ कहा अंजुमन कुजा॥ सौदा।

खुलता नही दिल वद ही रहता है हमेशा।
क्या जाने कि आ जाता है तू इसमें किधर से॥ ज़ौक़।

जग मे आकर इधर उधर देखा ।
तू ही आया नज़र जिधर देखा ॥ मीरदर्द ।
यों नज़ाकत से गरा सुर्मा है चश्मे यार को ।
जिस तरह हो रात भारी मर्दुमे बीमार को ॥ नासिख ।
शक्ल.तो देखो मुसब्विर खीचेगा तसवीरे-यार ।
आप ही तसवीर उसको देखकर हो जायगा ॥ ज़ौक़ ।
न हो महसूस जो पै किस तरह नकशे में ठीक उतरे ।
शबीहे यार खिचवाई कमर बिगड़ी, दहन बिगड़ा ॥ मसहफी ।
नाज़ुक है,न खिचवाऊंगा तस्वीर मै उसकी ।
चेहरा न कही अक्स के बदले उतर आये ॥ अर्शद देहलवी ।
दिल ! क्योकर मै उस रुखसारे-रोशन के मुकाबिल हू ।
जिसे खुरशीदे-महशर देखकर कहता है मै तिल हू ॥ अकबर ।
नातवानी ने बचाई जान मेरी हिज्र में ।
कोने-कोने ढूढ़ती फिरती कज़ा थी मै न था ॥ ज़फ़र ।
इन्तहाये-लागरी से जब नजर आया न मै ।
हँसके वो कहने लगे बिस्तर को झाड़ा चाहिये ॥ नासिख ।
मुझ जुल्फ के मारे को न जज़ीर पिन्हाओ ।
काफ़ी है मेरी कैद को एक मकडी का जाला ॥
नज़ीर अकबराबादी ।
छूट जाये ग़म के हाथो से जो निकले दम कही ।
खाक़ ऐसी ज़िन्दगी पर तुम-कही और हम कही ॥ ज़ौक ।
कौन होता है बुरे वक़्त की हालत का शरीक ।
मरते दम आख को देखा है कि फिर जाती है ॥ कोई ।
क्या नज़ाकत है कि आरिज़ उनके नीले पड़ गये ।
हमने तो बोसा लिया था ख्वाब मे तसवीर का ॥ कोई ।
न था कुछ तो खुदा था कुछ न होता तो खुदा होता ।
डुबोया मुझको होने ने न होता मै तो क्या होता ॥

हुई मुद्दत कि "गालिब" मर गया पर याद आता है।
वह हर एक बात पर कहना कि यो होता तो क्या होता ।। ग़ालिब
इन आबलो से पाव के घबरा गया था मैं।
जी खुश हुआ है राह को पुरखार देखकर ।। ग़ालिब।
मरता हूं इस आवाज़ पर हरचंद सर उड़ जाय।
जल्लाद को लेकिन वह कहे जाय कि "हा और" ।। ग़ालिब।
कर्ज की पीते थे मै, लेकिन समझते थे कि हां।
रङ्ग लायेगी हमारी फाकामस्ती एक दिन ।। ग़ालिब।
चल ऐ बादे सबा आहिस्ता चल, बेदार होता है।
मना कर कलियो को चटखे न मेरा यार सोता है ।। कोई।
वहां पहुंच के यह कहना सबा सलाम के बाद।
कि तेरे नाम की रट है खुदा के नाम के बाद ।। आसी।
समझो हमारे इश्क की हद अपने हुस्न से।
आईनादार हालते बुलबुल है रूय गुल ।। आसी।
हाय, इक चाद के टुकडे ने सितारों की तरह।
मुद्दतो शाम से ता सुबह जगाया हमको ।। आसी।
घट गई वस्ल मे फुरकत मे बढी थी जितनी।
रात आशिक की कभी दिन के बराबर न हुई ।। आसी।
इश्क कहता है कि आलम से जुदा हो जाओ।
हुस्न कहता है जिधर जाओ नया आलम है ।। आसी।
बेखुदी ले गई कहा हमको।
देर से इन्तज़ार है अपना ।। आसी।
शिकस्ता दिले इश्क की जान क्या।
नज़र तुमने फेरी कि वह मर गया ।। आसी।
सब्र मुश्किल है आरज़ू बेकार।
क्या करे आशिकी में क्या न करें ।। हसरत।
हैफ उस चार गिरह कपडे की किस्मत "ग़ालिब"।

जिसकी किस्मत मे हो आशिक का गरेबा होना ॥ ग़ालिब ।

खजर को चूस-चूस के कहते हैं मेरे ज़ख्म ।
ज़ालिम मज़े भरे हुए तुझ मे कहा के है ॥ अमीर मीनाई ।

चंद तसवीरे बुता चन्द हसीनो के ख़तूत ।
बाद मरने के मेरे घर से यह सामा निकला ॥ दर्द ।

आखे न जीने देगी तेरी बेवफा मुझे ।
इन खिड़कियो से झाक रही है कज़ा मुझे ॥ बहर लखनवी ।

कही ऐसा न हो तुझ पर भी कोई वार चल जाये ।
अजल हटजा कि झुझलाया हुआ इस वक्त कातिल है ॥ अमीर

वो शब को मेरी कब्र पै क्या चाल चल गये ।
सदहा चिराग नक्श कफ़े पा से जल गये ॥
कमसिनी है तो ज़िदें भी है निराली उनकी ।
इस पै मचले है कि हम दर्दे जिगर देखेगे ॥ फसाहत

रुखे रोशन के आगे शमा रखकर वह यह कहते है ।
उधर जाता है देखें या इधर परवाना आता है ॥ दाग ।

वो निहायत हमे मगरूर नज़र आते है ।
पास बैठे है मगर दूर नज़र आते है ॥ दाग ।

पडे है सूरते नक्शे कदम न छेड़ो हमे ।
हम और खाक में मिल जायेगे उठाने से ॥ आसी ।

अल्लाह रे ज़ालिम तेरे कानून की बन्दिश ।
लबबन्द, ज़बाबन्द, दहनबद, नज़रबद ॥
अब्दुलमजीद ख्वाजा, अलीगढ ।

न अब दिन है मेरे अपने न राते है मेरी अपनी ।
वह यह क्या कर गये अल्लाह शब भर मेहमां होकर ॥
आरिफ, देहलवी ।

हाली के अशआर

जहा मे "हाली" किसी पै अपने सिवा भरोसा न कीजियेगा ।
यह भेद है अपनी ज़िन्दगी का बस इसका चर्चा न कीजियेगा ॥
होगी न कद्र जान की कुरबां किये बगैर ॥
ऐब यह है कि करो ऐब हुनर दिखलाओ ।
वर्ना या ऐब तो सब फर्दे बशर करते है ॥
बादे सबा गई फूक क्या जाने कान मे क्या ?
फूले नही समाते गुन्चे जो पैरहन मे ॥
पिघलते है साचे में ढलने की खातिर ।
लगाते है गोता उछलने की खातिर ॥
ठहरते है दम लेके चलने की खातिर ।
वह खाते है ठोकर संभलने की खातिर ॥
सबब को मरज़ से समझते है पहले ।
उलझते है पीछे सुलझते है पहले ॥
न राहत तलब है न मुहलत तलब वह ।
लगे रहते है काम मे रोज़ो शब वह ॥
नही लेते है दम एकदम बे सबब वह ।
बहुत जाग लेते है सोते है तब वह ॥
वह थकते है और चैन पाती है दुनिया ।
कमाते है वह और खाती है दुनिया ॥ हाली ।

अकबर के अशआर

बुतो की मदह से कुल शायरी उर्दू की ममलू है ।
शिकस्त उर्दू जो पायेगी तो मै समझूगा बुत टूटा ॥
इश्क नाजुक मिज़ाज है बेहद ।
अक्ल का बोझ उठा नही सकता ॥
कोई मरे तो पूछ कि क्या ले गया वह साथ ।
बिल्कुल फजूल बहस है वह छोड़ क्या गया ॥

पाकर ख़िताब नाच का भी ज़ौक हो गया ।
सर हो गये तो बाल का भी शौक हो गया ॥
तग दुनिया से दिल इस दौरे फलक में आ गया ।
जिस जगह मैने बनाया घर सडक में आ गया ॥
एक दिन और कयामत खिसक आयेगी इधर ।
और क्या अर्ज करू आप से कल क्या होगा ॥
कहा है हममें अब ऐसे सालिक की राह ढूढी कदम उठाया ।
जो है तो ऐसे ही रह गये है किताब देखी कलम उठाया ॥
हँसके दुनिया मे मरा कोई कोई रोके मरा ।
ज़िन्दगी पाई मगर उसने जो कुछ हो के मरा ॥
जी उठा मरने से वह जिसकी ख़ुदा पर थी नज़र ।
जिसने दुनिया ही को पाया था वह सब खो के मरा ॥
मौलवी गो कि है शमसुलउल्माय फिर भी है सुस्त ।
रेंगते फिरते है परवानये बे शब की तरह ॥
पादरी से मिले पहले तो क्या शेख को उज्र ।
देखिये पीर का नम्बर तो है इतवार के बाद ॥
मै अपने आप में उन शायरो मे फर्क पाता हू ।
सखुन उनसे संवरता है सखुन से मै सवरता हू ॥
हम उर्दू को अरबी क्यो न करे उर्दू को वह भाषा क्यो न करे ?
बहसों के लिये अखबारो मे मज़मून तराशा क्यो न करे ?
आपस मे अदावत कुछ भी नही लेकिन इक अखाड़ा कायम है ।
जब इससे फलक का दिल बहले हम लोग तमाशा क्यों न करें ?
तुझे हम शायरो मे क्यो न अकबर मुतखब समझे ।
बया ऐसा कि दिल माने ज़बा ऐसा कि सब समझें ॥
बागे उमीद के फल होते है रोज़ ज़ाया ।
हमको ख़ुदा बचाये औलादे डारविन से ॥

डारविन साहब हक़ीकत से निहायत दूर थे।
मै न मानूगा कि मूरिस आपके लगूर थे ॥
वेपरद. नज़र आई कल जो चद वीवियां।
अकवर ज़मी में गैरते कौमी से गड गया ॥
पूछा जो उनसे आपका परदा वह क्या हुआ।
कहने लगी कि अक़्ल पै मरदो के पड़ गया ॥
अपने मंमूवे तरक्की के हुये सब पायमाल।
वीज जो मगरिवने वोया वह उगा और फल गया ॥
बूट डासन ने बनाया हमने इक मज़मू लिखा।
मुल्क मे मज़मूं न फैला और जूता चल गया ॥
रकीवों ने रपट लिखवाइ है जा जा के थाने मे।
कि अकबर ज़िक्र करता है खुदा का इस ज़माने में ॥
दुनिया में हू दुनिया का तलवगार नही हू।
बाज़ार से गुज़रा हू खरीदार नही हू ॥
ज़िन्दा हू मगर ज़ीस्त की लज्ज़त नही बाकी।
हरचद कि हू होश मे हुशियार नही हू ॥
वह गुल हू खिज़ा ने जिसे बरबाद किया है।
उलझू किसी दामन से मै वह खार नही हूं ॥
चर्ख ने पेशे कमीशन कह दिया इज़हार मे।
कौम कालिज में और उसकी ज़िन्दगी अखबार में ॥
लोग कहते है कि है आप निहायत काविल।
मै इसी सोच में रहता हू कि किस काबिल हू ॥
तालिब-इल्मो को ले जावो कमेटी मे न तुम।
कही ऐसा न हो यह कौम प आशिक हो जाय ॥
वाकी नही वह रग गुलिस्तान हिन्द मे।
मिहनत का है अब काम कुलिस्तान हिन्द में ॥
मुद्दत से होश में हूं नज़रे दिले जवां हूं।

लेकिन खुला न अब तक मैं कौन हू, कहा हू ?
जैसा मौसिम हो मुताबिक उसके मै दीवाना हू ।
मार्च मे बुलबुल हू जौलाई मे परवाना हू ॥
फरमा गये है यह खूब भाई घूरन ।
दुनिया रोटी है और मज़हब चूरन ॥
ख़िलवते नाज़ मे क्या शान खुद आराई है ।
हुस्न खुद आलिमे हैरत मे तमाशाई है ॥
अनार आते जो काबुल के तो पडते सबके हिस्से मे ।
अमीर आये तो हमको क्या मजे है लाड मिन्टो के ॥
खीचो न कमानो को न तलवार निकालो ।
जब तोप मुकाबिल है तो अख़बार निकालो ॥
शेखजी के दोनो बेटे बाहुनर पैदा हुये ।
एक है खुफिया पुलिस मे एक फासी पा गय ॥
पेट मसरूफ है कलर्की मे ।
दिल है ईरान और टर्की मे ॥
बिरगिड के मौलवी को क्या पूछते हो क्या है ?
मगरिब की पालिसी का अरबी मे तरजुमा है ॥
कदरदानो की तबीअत का अजब रग है आज ।
बुलबुलो को है यह हसरत कि वह उल्लू न हुये ॥
मेरा टट्टू भी जियादा मगरकी है शेख साहब से ।
कि वह मोटर मे चढते है यह मोटर से भडकता है ॥
दिलेरी सिखाते है हमको यह कहकर ।
जहन्नुम से डरना बडी बुजदिली है ॥
फिरगी से कहा पेशन भी लेकर बस यही रहिये ।
कहा, जीने को आये है यहा मरने नही आये ॥
काफी है अमीरो को कवानीन गवर्मेंट ।
मज़हब की ज़रूरत तो गरीबो के लिये है ॥

मेम ने शेख़ को डाटा तो पुकारा वह गरीब ।
देखिये तोप ने लाठी को दवा रक्खा है ॥
तुम्हारे हुस्न मे सायस का भी दिल उलझता है ।
कमर को देखकर वह खते उकलैदिस समझता है ॥
क़ौम के गम मे डिनर खाते हैं हुक्काम के साथ ।
रज लीडर को वहुत है मगर आराम के साथ ॥
खुदा की राह मे पहले वसर करते थे सख्ती से ।
महल मे बैठकर अब इश्के कौमी मे तडपते है ॥
सनद कैसी ? जमाल इनमे अगर है, होगा खुद ज़ाहिर ।
कोई सार्टीफिकट से ख़ूबसूरत हो नही सकता ॥
जो अस्ल व नकल से वाकिफ है उसने दिल को है रोका ।
मुबारिक हो तुम्ही को चाटना लड्डू ये फोटो का ॥
हम ऐसी कुल किताबे काबिले जब्ती समझते है ।
कि जिनको पढके लडके वाप को खब्ती समझते है ॥
क्या गनीमत नही यह आज़ादी ।
सास लेते है वात करते है ॥
अगराज़ वढ गया है आराम घट गया है ।
खिदमत में है वह लेज़ी और नाचने को रेडी ॥
तालीम की ख़राबी से होगई बिल आखिर ।
शौहर परस्त बीबी पब्लिक पसद लेडी ॥
तोप खिसकी, प्रोफेसर पहुचे ।
जब वसूला हटा, तो रदा है ॥
मेहरबानी से मुझे गोदाम की कुन्जी ला दी ।
लेकिन अब गेहूं नही बाकी फ़कत घुन क्या करे ?

इक़बाल की एक गज़ल

सारे जहा से अच्छा हिन्दोस्ता हमारा ।
हम वुलबुले है इसकी यह गुलिस्ता हमारा ॥

गुरबत मे हम अगर है रहता है दिल वतन मे ।
समझो वही हमे भी दिल हो जहा हमारा ॥
परबत जो सब से ऊचा हमसाया आसमा का ।
वह सन्तरी हमारा वह पासबा हमारा ॥
गोदी मे खेलती है जिसकी हज़ारो नदिया ।
गुलशन है जिसके दम से रश्के जिना हमारा ॥
ऐ आबरूद गगा, वह दिन है याद तुझको ।
उतरा तेरे किनारे जब कारवा हमारा ॥
मज़हब नही सिखाता आपस मे बैर रखना ।
हिन्दी है हम वतन है हिन्दोस्ता हमारा ॥
यूनान मिस्र रोमा सब मिट गये जहा से ।
बाकी मगर है अब तक नामो निशा हमारा ॥
कुछ बात है कि हस्ती मिटती नही हमारी ।
सदियो रहा है दुश्मन दौरे जमा हमारा ॥
'इकबाल' कोई महरम अपना नही जहा मे ।
मालूम क्या किसी को दरदे पिन्हा हमारा ॥

* * *

यह उर्दू कविता का दिग्दर्शनमात्र है । इसमे पुराने और नये दोनों ढग के नमूने आ गए । नये रग-ढग देखकर पाठक समझ जायेगे कि उर्दू अब गुलशन से निकल कर शहर-समाज मे आरही है ।

यहा तक तो उर्दू शायरी की बाते हुई । उर्दू-गद्य का भी भण्डार बहुत बड़ा है । उसमे प्रायः सभी विषयों के कुछ-न-कुछ ग्रन्थ लिखे जा चुके है । सरकारी दफ्तरो में, और कई रियासतों में उर्दू का ही बोल-बाला है । उर्दू के बडे-बडे मशायरे होते है और उसका साहित्य बढाने के उपाय सोचे जाते है । इधर हिन्दी का प्रभाव बढता हुआ देखकर कुछ अदूर-दर्शी लोग हिन्दी-उर्दू का प्रश्न उठाकर हिन्दू-मुसलमानों में वैमनस्य फैलाने की कोशिश कर रहे है । यह बड़े खेद की बात है ।

हिन्दू और मुसलमान इस देश की दो आखे हैं। एक दूसरे की अवहेलना करेगा तो कब तक निर्वाह होगा। शिक्षित मुसलमान जानते हैं कि हिन्दुओ की कलम से ही उर्दू आज इस दरजे को पहुची है। भला हिन्दू अब उसपर कुठाराघात क्यो करेगे ? इसी तरह मुसलमान कवियो ने हिन्दी की जो कुछ सेवा की है, वैसी सेवा हिन्दी के कितने कवियो ने की है ? रहीम और रसखान की तुलना हम हिन्दू कवियो मे किससे करे ? मुसलमानो को अपने पूर्वज हिन्दी-सेवी मुसलमानो की कृतियो पर गर्व होना चाहिये। विरोध की क्या बात है ! जब हिन्दू-मुसलमानो का चोली-दामन का साथ है तब एक को दूसरे की भाषा वेष-भूषा से नफरत क्यो होनी चाहिये ? प्रत्येक हिन्दू को उर्दू सीखनी चाहिये और प्रत्येक मुसलमान को हिन्दी। मेरी तो दृढ धारणा है कि उर्दू जाने बिना कोई भी व्यक्ति हिन्दी का सुलेखक नही हो सकता। अबतक उर्दू की भाषा-शैली हिन्दी से कई अशो मे बढकर है। उर्दू मे मुहावरो का जैसा सुन्दर प्रयोग होता है, वैसा प्रयोग हिन्दी में वे ही लेखक कर सकते है, जिन्हे उर्दू का ज्ञान है। आपस के विरोध को छोड़कर हिन्दू और मुसलमान दोनो को चाहिये कि वे जहा तक कर सके, चाहे हिन्दी के चाहे उर्दू के साहित्य की वृद्धि करे। मनुष्य सुगमता और सरलता का स्वभाव से ही पक्षपाती है। हिन्दी बोलने और लिखने में उसे सुभीता दिखाई पडेगा तो मुसलमानो के हजार विरोध करने पर भी हिन्दी की उन्नति रुक नही सकती। इसी तरह उर्दू मे उसे आसानी होगी तो हिन्दुओ के हजार सिर पटकने पर भी उसका उरूज बन्द नही हो सकता। अरबी, फारसी और तुर्की के जितने शब्द हिन्दी मे आ चुके है, हिन्दुओ को 'उन्हे अपनालेना चाहिये, उनसे काम लेना चाहिये। इसी तरह मुसलमानो को सस्कृत के प्राचीन शब्दो से कोई परहेज न होना चाहिये। ऐसे सद्विचार से हम आपस मे सद्व्यवहार कायम रख सकेगे, और वाक्शक्ति ऐसी पवित्र वस्तु को हम परस्पर विद्वेष ऐसे कुत्सित कार्य का कारण न बनने देगे।

हिंदी-कविता

हिन्दी का उत्पत्तिकाल विक्रम की आठवी शताब्दी के लगभग माना जाता है। तव से आज तक हिन्दी-साहित्य के स्थूल रूप से पाच भाग किये जा सकते है—

१—उत्पत्तिकाल—८०० वि० से १२०० वि० तक

२—प्रारम्भकाल—१२०० वि० से १५०० तक

३—प्रौढकाल—१५०० वि० से १७५० तक

४—उत्तरकाल—१७५० से १९०० तक

५—वर्त्तमानकाल—१९०० से

उत्पत्तिकाल के मुख्य कवि—चद, जल्ह, जगनिक।

प्रारम्भकाल के मुख्य कवि—विद्यापति, अमीर खुसरो, कबीर, नानक आदि।

प्रौढकाल के मुख्य कवि—सूर, तुलसी, मीराबाई, हितहरिवश, दादूदयाल, गग, रहीम, केशवदास, रसखान, सेनापति, सुन्दरदास, बिहारी, भूषण, मतिराम, लाल, घन आनन्द, देव, वृन्द।

उत्तरकाल के मुख्य कवि—दास, दूलह, गिरिधर, ठाकुर, पदमाकर, ग्वाल, दीनदयाल, रघुराज, द्विजदेव, लक्ष्मणसिंह, गिरधरदास।

मुख्य लेखक—लल्लूलाल, सदलमिश्र, राजा लक्ष्मणसिंह।

वर्त्तमानकाल के मुख्य कवि—हरिश्चद्र, बदरी नारायण चौधरी, विनायक राव, प्रतापनारायण मिश्र, अम्बिकादत्त व्यास, लाला सीताराम, नाथूराम 'शङ्कर' शर्मा, जगन्नाथप्रसाद 'भानु', श्रीधर पाठक, सुधाकर द्विवेदी, महावीरप्रसाद द्विवेदी, राधाकृष्णदास, बालमुकुन्द गुप्त, अयोध्यासिंह उपाध्याय, लाला भगवानदीन, जगन्नाथदास 'रत्नाकर', राय देवीप्रसाद 'पूर्ण', सैयद अमीर अली, जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, कामताप्रसाद गुरु, रामचरित उपाध्याय, मिश्रबन्धु, किशोरीलाल गोस्वामी, गिरिधर शर्मा, माधव शुक्ल, गयाप्रसाद शुक्ल 'सनेही', रूपनारायण पाण्डेय,

सत्यनारायण, मन्नन द्विवेदी, मैथिलीशरण गुप्त, लोचनप्रसाद पाण्डेय, लक्ष्मीधर वाजपेयी, बदरीनाथ भट्ट, माखनलाल चतुर्वेदी, रामचन्द्र शुक्ल आदि। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के समय से हिन्दी का नया युग प्रारम्भ होता है। हरिश्चन्द्र ने कविता का विषय भी बदला और भाषा-शैली मे भी कुछ नवीनता सन्निविष्ट की। उसी समय से खडीबोली की कविता को भी प्रोत्साहन मिला और उसमे भी भावोद्दीपन होने लगा।

हिन्दी-साहित्य का आकाश अगणित उज्ज्वल नक्षत्रो से देदीप्यमान होरहा है। हिन्दी-साहित्य का उपवन अनेक मनोमोहक सुरभित सुमनों से सुशोभित है। हिन्दी-साहित्य का अमृत-प्रवाह असख्य स्रोतों से प्रवाहित होकर रसिको के हृदय की भूमि को सुधा-सलिल से सीचकर उसमे नवजीवन का सचार कर रहा है। हिन्दी-साहित्य का मधुरनाद एक-एक कण्ठ से निकलकर सहस्र-सहस्र कण्ठ से प्रतिध्वनित होरहा है। आइये एक बार हिन्दी-साहित्य की थोड़ी-सी माधुरी का मजा चखिये।

हिन्दी मे भक्त-प्रेमी और शृगारी कवियो की सख्या सबसे अधिक है। भक्त और प्रेमी कवियो में कबीर, नानक, सूरदास, तुलसीदास, मीरा दादू और रसखान का स्थान बहुत ऊचा है। कबीर ने जो कुछ कहा है, उसमे अनुभव की मात्रा अधिक है, कल्पना की बहुत कम। कबीर ने जो कुछ कहा, स्पष्ट, सत्य और निष्पक्ष कहा है। कबीर कहते है—

सुख के माथे सिलि परै, जो नाम हृदय से जाय।
बलिहारी वा दुक्ख की, जो पल-पल नाम रटाय॥

सच्चा भक्त, सच्चा प्रेमी ही सासारिक सुखो को लात मारकर दुःख को गले लगा सकता है।

ईश्वर-स्मरण के विषय मे कबीर कहते है—

माला तो कर मे फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवा तो दहुँ दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं॥

प्रेम के विषय मे कबीर कहते है—

प्रेम न बाड़ी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै, सीस देइ लै जाय ॥
प्रेम-प्रेम सब कोइ कहै, प्रेम न चीन्है कोइ।
आठ पहर भीना रहै, प्रेम कहावै सोइ ॥
प्रेम छिपाया ना छिपै, जा घट परगट होय।
जो पै मुख बोलै नही, नैन देत है रोय ॥
कबिरा प्याला प्रेम का, अन्तर लिया लगाय।
रोम रोम मे रम रहा, और अमल क्या खाय ॥
नैनो की करि कोठरी, पुतली पलग बिछाय।
पलको की चिक डारिकै, पियको लिया रिझाय ॥
प्रीतम को पतिया लिखू, जो कहु होय बिदेस।
तन मे मन मे नैन मे, ताको कहा सदेस ॥
गगन गरजि बरसै अमी, बादल गहिर गभीर।
चहुँ दिसि दमकै दामिनी, भीजै दास कबीर ॥
सुन्न मडल मे घर किया, बाजै सबद रसाल।
रोम रोम दीपक भया, प्रकटे दीनदयाल ॥

प्रेम की कैसी विषद् महिमा है ! कैसा स्वाभाविक वर्णन है ! हिन्दी कवियों ने विशुद्ध प्रेम का जैसा उज्ज्वल वर्णन किया है, वैसा अन्य भाषा में बहुत कम है।

विद्यापति कहते है —

सेई परित अनुराग बखनइत तिले तिले नूतुन होइ।

अर्थात्, वही प्रीति, वही अनुराग प्रशसा के योग्य है जो तिल-तिल नवीन होता जाय।

आगे विद्यापति असीम अनुराग का अनुभव करते है —

जनम अवधि हम रूप निहारल नयन न तिरपित भेल।
सेहो मधुर बोल स्रवनहि सूनल स्रुति पथे परस न गेल ॥

अर्थात्, जन्म-भर हमने (अपने प्रिय का) रूप देखा; किन्तु आंखें

तृप्त न हुई। जन्म-भर हमने वही मधुर वाणी सुनी,पर सुनने की इच्छा बनी ही रही। प्रेम का यह कितना सुन्दर वर्णन है !

अब आगे बढ़िये, हिन्दी-साहित्य की लम्बी सडक सघन छाया से आच्छादित है। जगह-जगह पर पथिकाश्रम है, उपवन है, कुञ्ज है, सर, सरिता, निर्झर के मनोरम दृश्य है, रसिक पथिको को सब प्रकार का आराम देने के लिए सुकविसमुदाय प्रत्येक समय उपस्थित रहता है। मार्ग-भर में न कही उजाड है, न ऊसर, न वन, न बयावान। जिस पथिक की जैसी रुचि हो, वह वैसा ही सुखोपभोग कर सकता है। आइये, कुछ दूर तक इस मार्ग पर हम लोग भी चले।

यह सूरदास जी हाथ मे तम्बूरा लिये अपने आश्रम के द्वार पर विराजमान है। ये श्रीकृष्ण के बालचरित और गोपियो के विरह की बाते सुना रहे है।

मैया मेरी मै नहिं माखन खायो ।
भोर भयो गैयन के पाछे मधुबन मोहिं पठायो।
चार पहर बंशीवट भटक्यो सांझ परे घर आयो ॥
मै बालक बहियन को छोटो छींको किस विध पायो।
ग्वाल बाल सब बैर परे है बरबस मुख लपटायो ॥
तूं जननी मन की अति भोरी इनके कहे पतियायो।
जिय तेरे कछु भेद उपज है जान परायो जायो ॥
यह ले अपनी लकुट कमरिया बहुतहि नाच नचायो।
सूरदास तब विहंसि जसोदा ले उर कठ लगायो ॥

कितना सुन्दर वर्णन है, कितनी स्वाभाविकता, कितना सौन्दर्य है ! श्रीकृष्ण के विरह मे गोपियां व्याकुल होकर आपस मे कहती हैं—

जब ते पनिघट जाऊं सखीरी वा जमुना के तीर।
भरि भरि जमुना उमडि चलत है इन नैनन के नीर॥

श्रीकृष्ण के चले जाने पर पनघट का वह हास-विलास कहां ? अब तो आंसुओ से जमुना उमड आती है।

सूरदास प्रीति करनेवालों से कहते हैं—

प्रीति करि काहू सुख न लह्यो ।

*　　　*　　　*

जिन कोउ काहू के वश होहि ॥

फिर वही प्रेम की महिमा इस प्रकार गाते हैं—

देखो करनी कमल की, कीनो जल सो हेत ।
प्रान तज्यो प्रेम न तज्यो, सूख्यो सरहि समेत ॥
दीपक पीर न जानई, पावक परत पतग ।
तनु तो तिहि ज्वाला जर्यो, चित न भयो रस भग ॥
सव रस को रस प्रेम है ।

विरह ही प्रेम का प्राण है । विरह न हो तो प्रेम का आनन्द आ ही नही सकता है । माता यशोदा श्रीकृष्ण के विरह मे कह रही है—

मेरे कुवर कान्ह बिनु सब कुछ वैसहि धर्यो रहै ।

सारा ब्रज श्रीकृष्ण के विरह में व्याकुल, श्रीकृष्ण ब्रज के विरह मे बेचैन ।

आगे हढिये । वीच-वीच मे ये बहुत-से काव्य-कुटीर हैं, जिनमे से अनेको प्रकार के मधुर नाद निकलकर दिशाओं मे गूज रहे हैं । सब जगह थोड़ा-थोडा ठहरने से बहुत देर होगी । लीजिये, यह मीराबाई का आश्रम है । मीरा कहती है—

घायल सी घूमत फिरू रे मेरा दरद न जाने कोय ।

सच है, "घायल की गति घायल जानै" दूसरा कौन जान सकता है !

वावल बैद बुलाइया रे पकड दिखाई म्हारी बाह ।
मूरख बैद मरम नहि जानै करक करेजे माह ॥
जाओ बैद घर आपने रे म्हारो नाव न लेय ।
मैं तो दाधी विरह की रे काहे कू औषद देय ॥
खिन मन्दिर खिन आगने रे खिन खिन ठाढी होय ।
घायल ज्यो घूमू खडी रे म्हारी बिथा न बूझे कोय ॥

काढ़ि कलेजा मै धरू रे कौआ तू ले जाय।
ज्या देस्या म्हारो पिव बसै रे वै देखत तू खाय ॥

विरह का कैसा मार्मिक वर्णन है। प्रेम का कितना सुन्दर रूप है। आगे बढ़िये। यह कविशिरोमणि तुलसीदास का आश्रम आ गया। तुलसी रामभजन मे मग्न है। संसार में सर्वत्र उन्हे राम ही राम दिखाई पड़ रहे है। मनुष्य, पशु, पक्षी, लता, वृक्ष, देवता, राक्षस सब मे उनको अपने राम की मूर्ति दिखाई पड रही है। इनका आश्रम सबसे बड़ा है। इनके पास राजा, रक, फकीर सब आते है। इनका दरबार बहुत बड़ा है। ये कहते है—

जेहिके जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलत न कछु सदेहू।
परहित बस जिनके मनमाही। तिनकह जग दुर्लभ कछु नाही ॥

ये व्यग और हास-परिहास मे भी बड़े पटु है। श्रीराम से कहते है—

गर्ब करहु रघुनन्दन जनि मन माह।
आपन रूप निहारहु सियकै छाह ॥

अर्थात्, हे राम अपने रूप का घमड न कीजिए, जरा अपने रूप का सीता की छाया से मिलान तो कीजिये। सीता की तुलना आप क्या कर सकते है?

सीता के अग-रग का वर्णन करते हुए तुलसी कहते है—

चंपक हरवा अग मिलि अधिक सुहाइ।
जानि परै सिय हियरे जब कुम्हिलाइ ॥
सिअ तुव अङ्ग रग मिलि अधिक उदोत।
हार बेलि पहिरावौं चपक होत ॥

सीता जब राम के साथ बन को चली, उस समय सीता की मृदुता का वर्णन करने मे तुलसी ने अप्रतिम पटुता दिखाई है।

पुरते निकसी रघुवीर वधू धरि धीर दये मग मे डग द्वै।
झलकी भरि भाल कनी जलकी पटु सूखि गये मधुराधर वै ॥

फिर बूझति है चलनोऽब कितो पिय पर्नकुटी करिहौ कित ह्वै ।
तिय की लखि आतुरता पिय की अखिया अति चारु चली जल च्वै ॥

कितना सीधा-सादा वर्णन है ! कितना मर्मभेदी भाव है !

आगे चलिये । यह रसखान का आश्रम है । रसखान प्रेम मे मस्त है । इनका आलाप सुनिये—

मानस हौं तो वही रसखान वसौ ब्रज गोकुल गाव के ग्वारन ।
जौ पसु हौं तो कहा वस मेरो चरो नित नद की धेनु मझारन ॥
पाहन हौं तो वही गिरि को जो धर्यो कर छत्र पुरन्दर धारन ।
जो खग हौं तो बसेरो करौ मिलि कालिंदी कूल कदब की डारन ॥

* * *

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहू पुर कौ तजि डारौ ।
आठहु सिद्धि नवौ निधि को सुख नद की गाय चराय बिसारौ ॥
रसखानि कवौं इन आखिन सो ब्रज के बन बाग तड़ाग निहारौ ।
कोटिन हू कलधौत के धाम करीर के कुजन ऊपर वारौ ॥

सच्चा प्रेमी ही ससार के वैभव को इस तरह लात मारता है ।

यह मार्ग बहुत लम्बा है । आइये, एक सुगम मार्ग से चले । इस मार्ग में बडे-बडे कुज है । आइये, पहले सतकुज में थोड़ा विश्राम ले ले । यहां सब सत कवि जमा है । कबीर, रैदास, धर्मदास, नानक, दादू, मलूक, सुन्दरदास, चरनदास, पलटू, धरनी, बुल्ला, भीखा, दरिया आदि सत यहा अपने-अपने ध्यान मे मस्त हैं । प्रत्येक के मुह से उसका अनुभव निकलता जा रहा है । सुनिये—

जब मैं था तब हरि नही, अब हरि है मैं नाहि ।
प्रेमगली अति साकरी, तामे दो न समाहि ॥ कबीर ।

प्रभु जी तुम दीपक हम बाती । जाकी जोति बरै दिनराती ॥ रैदास ।

झरि लागै महलिया, गगन घहराय ।
खन गरजै खन बिजुली चमकै, लहर उठे सोभा बरनि न जाय ॥
धर्मदास ॥

काहे रे बन खोजन जाई।
पुष्प मध्य ज्यों बास बसत है मुकुर माहिं जस छाई।
तैसे ही हरि बसै निरन्तर घटही खोजो भाई॥ नानक।

सरग नरक सँसै नही, जियने मरन भय नाहिं।
राम बिमुख जे दिन गये, सो सालै मन माहि॥ दादू।

दाया करै धरम मन राखै, घर मे रहै उदासी।
अपना सा दुख सब का जानै, ताहि मिलै अबिनासी॥ मलूक।

तौ सही चतुर तू जान परबीन अति परै जनि पीजरे मोह कूवा।
पाइ उत्तम जनम, लाइलै चपल मन, गाइ गोबिन्द गुन जीत जूवा॥
सुन्दर।

चरनदास यों कहत है, सुनियो सत सुजान।
मुक्ति मूल आधीनता, नरक मूल अभिमान॥ चरनदास।

सुनि लो पलटू भेद यह, हसि बोले भगवान।
दुख के भीतर मुक्ति है, सुख मे नरक निदान॥ पलटू।

इसी सत-कुञ्ज मे हम दो देवियों को भी बैठ देखते है। ये कह रही है—

सीस कान मुख नासिका, ऊचे ऊंचे नांव।
"सहजो" नीचे कारने, सब कोउ पूजै पाव॥ सहजोबाई।

बौरी ह्वै चितवत फिरू, हरि आवे केहि ओर।
छिन उट्ठू छिन गिरि परू, राम दुखी मन मोर॥ दयाबाई।

अब आगे बढिये। यह प्रेम-कुञ्ज है। यहा कौन-कौन है? देखिये, यहां घन आनन्द, आलम और शेख, सीतल, ठाकुर और बोधा प्रेम मे मतवाले, इश्क मे चूर, बैठे-बैठे प्रेम की लहर ले रहे है। हर एक के मुह से उसका अनुभव फूटा पडता है।

पर कारज देह को धारे फिरौ परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ।
निधिनीर सुधा के समान करौ सब ही विधि सज्जनता सरसौ॥

"घन आनद" जीवन दायक हो कछू मोरियो पीर हिये परसौ ।
कवहू वा बिसासी सुजान के आगन मो असुवान को लै बरसौ ॥

घन आनद ।

मन की अटक तहा रूप को विचार कहा,
रीझिव की पैंड़ो और बूझि कछु न्यारी है ।

आलम ।

पैंडो सम मूवो वेंड़ो कठिन किवार द्वार द्वारपाल नही तहा सबल भगति है । सेख भनि तहा मेरे त्रिभुवन राय है जु दीनबन्धु स्वामी सुरपतिन को पति है ॥ वैरी को न वैर बरिआई को न परबेस हीने को हटक नाही छीनै को सकति है । हाथी की हकार पल पाछे पहुचन पावै चीटी की चिघार पहले ही पहुचति है ।

सेख ।

हम खूब तरह से जान गये जैसा आनद का कद किया ।
सब रूप सील गुन तेज पुञ्ज तेरे ही तन मे बद किया ॥
तुझ हुस्न प्रभा की बाकी ले फिर विधि ने यह फरफद किया ।
चम्पकदल, सोनजुही, नरगिस, चामीकर, चपला, चद किया ॥

सीतल ।

यह प्रेम कथा कहिये किहि सो सौ कहे सो कहा कोऊ मानत है ।
पर ऊपरी धीर बधायो चहै तन राग न वा पहिचानत है ॥
कहि ठाकुर जाहि लगी कसकै सु तो को कसकै उर आनत है ।
बिन आपने पाय बिवाय गये कोऊ पीर पराई न जानत है ॥

ठाकुर ।

लोक क लाज और साक प्रलोक को वारिये प्रीति के ऊपर दोऊ ॥
गाव को गेह को देह को नातो सनेह मे हा तो करै पुनि सोऊ ॥
बोधा सुनीति निबाह करै धर ऊपर जाके नही सिर होऊ ॥
लोक की भीति डरात जो मीत तौ प्रीति के पैडे परे जनि कोऊ ॥

बोधा ।

और आगे वढिये। यह नीत-निकुञ्ज है। इसमें आप को राजनीति और लोक-व्यवहार के पंडित मिलेगे। न ये प्रेमी है,न विरही,न शृङ्गारी है, न वीर। ये, मनुष्य को संसार मे किस ढग से रहना चाहिए, इस बात की शिक्षा दे रहे है। इनमे मुख्य-मुख्य नीति-निपुणो के नाम ये है—

नरहरि, रहीम, वृन्द, वैताल, घाघ और गिरिधर। जरा देर के लिए ठहर जाइये और इनके उपदेश सुन लीजिये।

ज्ञानवान हठ करै निधन परिवार वढावै।
वधुवा करै गुमान धनी सेवक ह्वै धावै॥
पंडित किरिया हीन राड़ दुरवुद्धि प्रमाने।
धनी न समझै धर्म नारि मरजाद न माने॥
कुलवत पुरुष कुल विधि तजै, वधु न मानै वधु-हित।
सन्यास धारि धन संग्रहै, ये जग मे मूरख विदित॥ नरहरि :

रहिमन अँसुवा नयन ढरि, जिय दुख प्रकट करेय।
जाहि निकारौ गेह ते, कस न भेद कहि देय॥ रहीम।

सव सों आगे होय कै, कवहुं न करिये वात।
सुवरे काज समाज फल, विगरे गारी खात॥ वृन्द।

मरै वैल गरियार मरै वह अडियल टट्टू।
मरै करकसा नारि मरै वह खसम निखट्टू॥
वाँभन सो मरि जाय हाथ लै मदिरा प्यावै।
पूत वही मरि जाय जो कुल में दाग लगावै॥
अरु वेनियाव राजा मरै तवै नीद भरि सोइये।
वैताल कहै विक्रम सुनो एते मरे न रोइये॥ वैताल।

भुइयाँ खेड़े हर ह्वै चार। घर ह्वै गिहिथिन गऊ दुधार॥
अरहर की दाल जडहन का भात। गागल निवुआ औ घिउ तात॥
सह रस खड दही जो होय। वाँके नैन परोसै जोय॥
कहें घाघ तव सवही झूठा। उहा छाँड़ि इहवै वैकुंठा॥

घाघ।

जाकी धन धरती हरी ताहि न लीजै सग ।
जो सग राखे ही बनै तो करि राखु अपग ।।
तौ करि राखु अपग फेरि फरकै सु न कीजै ।
कपट रूप बतराय ताहि को मन हरि लीजै ।।
कह गिरिधर कविराय खुटक जैहे नहि ताकी ।
कोटि दिलासा देउ लई धन धरती जाकी ।। गिरिधर

अब आगे एक वन मिलेगा । इसका नाम है, वीरवन । इसमे केवल दो ही चार झोपडे नजर आते है । दो तो सामने है, एक भूषण का, दूसरा लाल का । वाकी टूटी-फूटी हालत मे है । वीरो को फुरसत कहाँ कि वे शाति से वैठने के लिए कुज-निकुज की रचना करे । दोनो वीर अपनी-अपनी कुटी के सामने टहल-टहलकर कुछ कह रहे है । सुनिये—

बिना चतुरग सग वानरन लैकै,
बाँधि बारिधि को लक रघुनन्दन जराई है ।
पारथ अकेले द्रोन भीपम सो लाख भट,
जीति लीन्ही नगरी विराट मे बड़ाई है ।।
भूपन भनत ह्वै गुसलखाने मे खुमान,
अवरग साहिबी हथ्थाय हरि लाई है ।
तौ कहा अचंभो महाराज शिवराज सदा,
बीरन के हिम्मतै हथ्यार होत आई है ।। भूषण ।

उद्यम ते सम्पति घर आवै । उद्यम करै सपूत कहावै ।।
उद्यम करै सग सव लागै । उद्यम ते जग मे जस जागै ।।
समुद उतरि उद्यम तें जैये । उद्यम ते परमेश्वर पैये ।। लाल ।

इस वीरवन मे आपको विशेष आनन्द न आया होगा । लीजिये, सामने एक वहुत बड़ा उद्यान है । वहाँ चलकर विश्राम कीजिये ।

इस उद्यान का नाम है, शृगारोद्यान । इसके दो भाग है, एक भाग में सूरदास, नंददास, परमानददास, कृष्णदास, कुंभनदास, छीतस्वामी, गोविन्दस्वामी, चतुर्भुजदास, हितहरिवश, हरिदास, विट्ठल विपुल, रसिक

गोविन्द, भगवतरसिक, विहारीदास, ध्रुवदास, हठी, सीतलदास, सहचरिशरण, किशोरीअलि, अलबेली अली, श्रीभट्ट, गदाधर भट्ट, व्यासजी, नागरीदास, हितवृन्दावनदास, आनंदघन, रसखान, सूरदास मदनमोहन, नारायण स्वामी, ललित माधुरी और ललित किशोरी के प्रेम-निकेतन अलग-अलग बने हुए हैं; किन्तु सबके रंग-ढंग, रहन-सहन, विषय-वृत्त एक-से हैं।

चलिये, पहले इस प्रेम-निकेतन की सैर कर लें। यहाँ विशुद्ध-प्रेम की चर्चा है। सात्विक-शृंगार का आनंद है। सब राधाकृष्ण के सौन्दर्य, राधाकृष्ण की क्रीड़ा का वर्णन करने में निमग्न हैं। यहाँ मन पर सांसारिक विषयों का प्रभाव नहीं। यहाँ प्रेम है, भक्ति है, सौन्दर्योपासन है, और हृदय की निर्मलता का उज्ज्वल विकास है। यहाँ की प्रेमकथा मनुष्य के चरित्र को कलुषित नहीं करती, किन्तु उज्ज्वल, पावन और निष्कलंक करती है।

यहाँ—या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोय।
ज्यों-ज्यों डूबै स्यामरँग, त्यों-त्यों उज्ज्वल होय॥

यहाँ के एक-एक प्रेमी का, एक-एक सौन्दर्योपासक का रहस्य समझने के लिए एक-एक जन्म चाहिए। यहाँ प्रेम है, आनंद है, सच्चा सुख और सच्ची शांति है। यहाँ का स्वर, यहाँ का राग, यहाँ का गान, यहाँ की तान सुनकर हृदय रखनेवाला मनुष्य यहाँ ही का होकर रहता है। आइये, शृंगारोद्यान के दूसरे भाग की सैर करें।

यहाँ केशव, विहारी, मतिराम, देव, पद्माकर, ग्वाल, पजनेस और द्विजदेव के बड़े-बड़े रंग-बिरंगे सजे-सजाये महल हैं। छोटे-बड़े और भी सैकड़ों सुन्दर घर इधर-उधर दिखाई पड़ रहे हैं। स्त्री यहाँ की अधिष्ठात्री देवी है। यहाँ सांसारिक विषय-वासना का ही साम्राज्य है। यहाँ मनुष्य-जीवन का लक्ष्य स्त्री-सुखोपभोग ही माना जाता है। यहाँ स्त्रियों के हाव-भाव और कटाक्ष से घायल विरहियों का जमघट है। दूती और कुटनियों का बाजार गर्म है। नायक और नायिकाओं की अनेक जातियाँ

यहाँ विद्यमान है । अभिसार-स्थानो की भरमार है । कुलवधुओं से लुक-छिपकर बाते करना, उन्हे उडा लाना, अविवाहिता नववयस्काओ से दूषित प्रेम करना, हर मौसम और हर अवस्था के लिए तैयार किये हुए नुसखो के अनुसार विषय-विलास करना, रात-दिन चोटी से लेकर अँगूठे तक स्त्री के अगो की चर्चा में निमग्न रहना, यही यहाँ का धधा है, यही यहाँ का जीवन है । इस उद्यान के कवियो ने हिन्दी-ससार मे विषयानुराग की मात्रा खूब बढा दी, व्यभिचार की वृद्धि की, निकम्मेपन की जड जमाई, वैवाहिक-पवित्रता पर आक्रमण किया । मै यह केवल परिणाम की बाते कहता हूँ ! उन कवियों के राग सुन्दर, वर्णन करने के ढग मनोहर और स्त्री-पुरुषो के मनोभावो को व्यक्त करने की उनकी क्षमता प्रशसनीय है । यदि मन पर विषयवासना का बुरा असर पडने का भय न हो तो मनोविनोद के लिए उनकी वाणी अनमोल चीज है । आइये, कुछ श्रवण कीजिये । केशव को एक बडा दुख है । वह क्या ?

केसव केसनि अस करी, जस अरिहूँ न कराहिं ।
चद्रबदनि मृगलोचनी, बाबा कहि-कहि जाहिं ।।

बिहारी को मार्ग में चलते-चलते रति-क्रीड़ा का स्मरण आ रहा है—

नाक चढै सीबी करै, जितै छबीली छैल ।
फिरि-फिरि भूलि उहै गहै, पिय कँकरीली गैल ।।

मतिराम, नेह की आग से जल रहे है—

नैन जोरि मुख मोरि हँसि, नैसुक नेह जनाय ।
आग लेन आई हिये, मेरे गई लगाय ।।

देव का तो कहना ही क्या है । ये तो सिर से पैर तक प्रेम के रंग में रगे हुए, आजन्म विषय-सिन्धु में गोता खाते रहे । इन्होने बडे अनुभव से कहा है—

जोगहू से कठिन संयोग पर नारी को ।

पद्माकर इनमे से किसी से कम नही । इनका एक नुसखा सुनिये ।

गुलगुली गिलमै गलीचा है, गुनाजन है,
चादनी है, चिक है, चिरागन की माला है ।
कहै पदमाकर है गजक गिजाहू सजी,
सय्या है, सुरा है औ सुराही है सुप्याला है ॥
सिसिर के पाला को न व्यापत कसाला तिन्है,
जिनके अधीन एते उदित मसाला है ।
तान तुक ताला है, विनोद के रसाला है,
सुवाला है दुसाला औ विसाला चित्रसाला है ॥

किसी गरीव को यह सुख-सामग्री दुर्लभ है । पदमाकर ने सर्दी का इलाज वताया । अव ग्वाल से गर्मी की दवा सुन लीजिय ।

जेठ को न त्रास जाके पास ये विलास होय,
खस के मवास पै गुलाब उछरचो करै ।
विही के मुरब्बे डब्बे चांदी के वरक भरे,
पेठे, पाग केवरे मे वरफ परचो करै ॥
ग्वाल कवि चन्दन चहल मे कपूर चूर,
चदन अतन तन वसन खरचो करै ।
कजमुखी, कंजनैनी, कज के विछौनन पै,
कजन की पखी करकज ते करचो करै ॥

वाह वा, क्या सुन्दर सुख-स्वप्न है ! गरीवों को यहां भी गुंजाइश नही । आइये पजनेस का काव्यामृत पान कीजिये । इनकी प्राणप्यारी के उरोज कैसे है, सुनिये ।

उरज उठौना चक्रवाकन के छौना कैवो,
मदन खिलौना ये सलौना प्रानप्यारी के ।

द्विजदेव की तो वात ही निराली है । ये राजा महाराजा है । सुख की सव सामग्री से इनका महल खूब सुसज्जित है । इनकी व्यथा सुनिये—

वह मन्द चलै किन भेरी भटू पग लाखन की अखिया अटका ।

इसी विषयी समाज के एक सदस्य ने एक स्त्री को सलाह दी है—

बावरी जो पै कलक लग्यो तो निसक ह्वै क्यो नहि अङ्क लगावति ।।

अब इन्हे छोडिये । उर्दू शायरों की महफिल के रग-ढग की ही यह मडली है । वहा भी जीते जी मौत है, यहा भी वैसी ही आह-ऊह है । अन्तर इतना ही है कि वहा अप्राकृतिक प्रेम की चर्चा है । यहा प्रकृति की सीमा के भीतर ही सब आमोद-प्रमोद हैं ।

आगे आइये । उद्यान के दोनो भागो के बीच मे यह किसका महल है ? इसके द्वार पर लिखा है—

परम प्रेमनिधि रसिकवर, अति उदार गुन खान ।
जग-जन रजन आसु कवि, को हरिचन्द समान ।।
जग जिन तन समकरि तज्यो, अपने प्रेम प्रभाव ।
करि गुलाब सो आचमन, लीजत वाको नाव ।।

यह भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का बगला है । ये उद्यान के दोनो भागो की सैर किया करते है । ये बडे प्रेमी, बडे रसिक, बडे उदार और विलासी पुरुष है । इन्होने उद्यान के बीचो-बीच से एक नई सडक निकलवाई है । उस पर अनेक कवियो ने अपने बगले बनवाये है । कुछ के नाम ये है — प्रतापनारायण मिश्र, नाथूराम शकर शर्मा, श्रीधर पाठक, अयोध्या-सिह उपाध्याय, राय देवीप्रसाद 'पूर्ण', मैथिलीशरण गुप्त आदि । ये सब अपनी-अपनी मौज मे मस्त है । अभी तक इनके बगलो मे शोभा सजावट का नाम नही । नये ढग से सजाने का प्रयास किया जा रहा है । कुछ समय लगेगा । इनका कोई कुज नही, जहा सबसे एक साथ मिला जाय । हा, एक क्लब जरूर है, जहा कभी-कभी दो-चार जमा हुआ करते है, और भारत विषयक नीरस चर्चा करके कालयापन कर जाते है । हरिश्चद्र की पहुच दोनो ओर थी, इसलिए उनके बगले मे नया और पुराना दोनो प्रकार का सौन्दर्य विकसित हो उठा है । आइये, प्रत्येक से अलग-अलग मिलकर कुछ वार्तालाप कीजिये ।

हरिश्चन्द्र कहते है—

जिय पै जु होव अधिकार तौ बिचार कीजै,
लोकलाज भलो बुरो भले निरधारिये ।
नैन, स्रौन कर, पग सबै परवस भये,
उतै चलिजात इन्हे कैसे कै सभारिये ॥
हरीचद भई सब भाति सो पराई हम,
इन्है ज्ञान कहि कहो कैसे कै निवारिये ।
मन मे रहै जो ताहि दीजिये बिसारि,
मन आपै बसै जामे ताहि कैसे कै बिसारिये ॥

एक दूसरे ढग का सुनिये—

सीखत कोउ न कला उदर भरि जीवत केवल ।
पसु समान सब अन्न खात पीवत गंगाजल ॥
धन विदेश चलि जात तऊ जिय होत न चंचल ।
जड़ समान ह्वै रहत अकलहत रचि न सकत कल ॥
जीवत विदेश की वस्तु लै, ता बिन कछु नहिं करि सकत ।
जागो जागो अब सांवरे, सब कोउ रुख तुमरो तकत ॥

यहां से अब हम नई सडक पर चल रहे हैं ।

तब लखिहौ जहं रह्यो एक दिन कचन बरसत ।
तहं चौथाई जन रूखी रोटिहुं कहं तरसत ॥
जहं आमन की गुठली अरु बिरछन की छालैं ।
ज्वार चून महं मेलि लोग परिवारहिं पालैं ॥
नौन तेल लकरी घासहुं पर टिकस लगै जहं ।
चना चिरौंजी मोल मिलै जहं दीन प्रजा कहं ॥

प्रतापनारायण मिश्र ।

शकर के सेवक दुलारे सब लोगन के
नीति के निकेत निगमागम पढ़त हैं ।

जीवन के चारों फल चाखन की चाह कर
उन्नति की ओर निसिबासर बढत है ।।
भारती के भूषण प्रतापशील पूषण से
जिनकी कृपा से पर दूषण कढत है ।
ऐसे नर नागर तरेंगे भवसागर को
प्यारे परमारथ के पोत पै चढत है ।।

नाथूराम शकर शर्मा ।

वदनीय वह देश, जहा के देशी निज अभिमानी हों ।
बाधवता मे बधे परस्पर परता के अज्ञानी हो ।।
निन्दनीय वह देश जहा के देशी निज अज्ञानी हो ।
सब प्रकार परतन्त्र पराई प्रभुता के अभिमानी हो ।।

श्रीधर पाठक ।

आशा की है आमत महिमा, धन्य है देवि आशा ।
जो छूके है मृतक बनते प्राणियो को जिलाती ।।

अयोध्यासिंह उपाध्याय ।

लक्ष्मी दीजै, लोक मे मान दीजै । विद्या दीजै, सभ्य सतान दीजै ।।
हे हे स्वामी, प्रार्थना कान कीजै । कीजै कीजै, देश कल्याण कीजै ।।

देवीप्रसाद पूर्ण ।

जिसकी रज मे लोट-लोटकर बड़े हुये है ।
घुटनो के बल सरक-सरक कर खड़े हुये है ।।
परमहस सम बाल्यकाल मे सब सुख पाये ।
जिसके कारण धूल भरे हीरे कहलाये ।।
हम खेले कूदे हर्षयुत, जिसकी प्यारी गोद मे !
हे मातृभूमि ! तुझको निरख मग्न क्यो न हों मोद मे !

मैथिलीशरण गुप्त ।

अब यही ठहरिये । यह मार्ग अभी वन रहा है । रास्ते मे ककड़-पत्थरो के ढेर लगे है । न छाया है, न पानी का कही ठिकाना है । यही

से लौट चलिये। फिर कभी इस मार्ग की सैर की जायगी।

आइये, एक कुज मे बैठकर इस बात पर गौर करे कि हमने क्या देखा और कैसा देखा!

ऊपर हिन्दी-साहित्य की एक हलकी-सी झलक दिखा दी गई। शृगारी-कवियों मे सात्विक प्रेमी वृन्दावनवासी कृष्ण-भक्तों की रचनाओ के उदाहरण नही दिये गये। जिन्हे विस्तृत रूप से देखना हो, कविता-कौमुदी मे देख सकते है। अन्य कवियों के भी काव्य की छटा कौमदी मे देखने को मिलेगी। इसी से उदाहरण बहुत थोड़े दिये गये। अब स्थूल-रूप से हिन्दी-साहित्य पर दृष्टि डालिये।

हिन्दी-कविता के दो रूप है, एक ब्रजभाषा का, दूसरा हिन्दी का, जिसे "खडीबोली" भी कहते है। ब्रजभाषा का भडार खडीबोली के भडार से बहुत बढा-चढा है। ब्रजभाषा के कवियो के टक्कर का एक भी कवि अभी तक खड़ी बोली मे नही हुआ है। किन्तु खडीबोली की कविता की ओर लोगों की रुचि जिस तेजी से बढ रही है, उसे देखकर यह कहना पड़ता है कि यह खडीबोली के किसी महाकवि के शीघ्र आविर्भूत होने की शुभ सूचना है। सैकड़ों हजारों सोते निकल रहे है, शीघ्र ही वे महानद के रूप मे परिणत हो जायगे। नन्ही-नन्ही लकड़िया प्रज्वलित हो रही है, शीघ्र ही किसी बडे कुन्दे मे अग्नि का अवतार होने वाला है। प्रकाश फैल जायगा, दिशा उज्ज्वल हो जायगी, फिर इस बात को कोई कभी याद भी न करेगा कि इस कुन्दे के सुलगाने मे कितनी चैलियो ने आत्मत्याग किया था।

ब्रजभाषा के कवियों को भाषा के सम्बन्ध में जितनी स्वतन्त्रता थी, हिन्दी के कवियों को उसकी चौथाई भी नही। ब्रजभाषा का कवि अपनी आवश्यकता के अनुसार शब्दो को तोड़-मरोड़कर सडक तैयार कर लेता है। आवश्यकतानुसार कंकड़-पत्थर को काट-छाटकर वह सहज मे ही उन्हे जमा देता है। उसपर उसके भावों से लदा हुआ छकड़ा आसानी से चल निकलता है। वह आनन्द को आनद, अनन्द और अनन्दा कर

सकता है। तुलसीदास ने गरीबनेवाज को गरीबनेवाजू करके पराई चीज को भी अपने साँचे मे ढाल लिया। वह खाता है को खात, गाता है को गावत और अक को आक, नि शक को निसाक और बक को बाक कर सकता है। कारको का प्रयोग भी वह मनमाना कर लिया करता है। उसे बड़ी स्वतत्रता है। किन्तु हिन्दी-कवि को ऐसा सौभाग्य नही प्राप्त है। उसके सामने बड़ा बन्धन है। जो रोडा जैसा है, उसे वैसा ही—बिना काट-छांट किये, जमाना पड़ता है। उसे जरा-भर भी तराश-ख़राश करने का अधिकार नही। वह आनन्द को आनँद भी नही कर सकता, जाओगे को जावगे भी नही बना सकता। उसके आस-पास की जमीन ऊबड-खाबड है। उसी मे से होकर उसका सँकरा रास्ता है। इससे वह अपने छकड़े पर थोडा-थोडा माल लादकर लाता है। बताइये, कैसी मुसीबत है। जितना माल व्रजभाषा का कवि एक बार मे लाता है, हिन्दी का कवि उसे चार बार मे। ग्राहको को उसके लिए बहुत देर तक इन्तजार करना पड़ता है। उर्दू-कवियो ने इस तकलीफ को समझा है, उन्होंने कुछ उद्दंडता से काम भी लिया है। आवश्यकता पडने दर उन्होने अपना नियमित मार्ग छोडकर इधर-उधर भी हाथ-पैर फैला दिये है। वे अपना काम निकालना जानते है, किसी का कुछ बिगडे, इसकी उन्हे परवा नही। उर्दू का एक शेर सुनिये—

> खुलता नहीं दिल बन्द ही रहता है हमेशा।
> क्या जाने कि आजाता है तू इसमे किधर से।। (ज़ौक)

इस शेर मे "है", "जाने", "जाता है" और "इसमे", इन बेचारों का ढांचा तो देखने मे पूरा है, पर जान अधूरी है। "है", "ने", "ता", और "मे" का रूप देखने मे तो दीर्घ है, किन्तु उच्चारण में वे ह्रस्व है। हिन्दीवाले बेचारो का इतनी स्वतन्त्रता भी प्राप्त नही। उर्दू वाले और को "औ" और "पर" को "प" लिखकर भी अपना भाव प्रकट कर सकते है, किन्तु हिन्दी मे यह गुनाह माना जाता है। हिन्दी मे शब्दो के रूप और उच्चारण मे अतर नही होना चाहिए। नियमित सकरे रास्ते

ही से चलना चाहिए; किन्तु हर एक वार माल पूरा आना चाहिए, थोड़े माल से ग्राहको का जी नही भर सकता। ऐसा करने के लिए हिन्दी के कुछ कवि उर्दू वालो का ही रास्ता पकड़ना चाहते है। वर्तमान कवियों मे इस मत के पोषक पडित अयोध्यासिह उपाध्याय कहे जा सकते है। दूसरा दल कहता है कि नही, रास्ता सकरा है तो क्या, मर्यादा का उल्लंघन करना ठीक नही, रास्ते ही पर चलो; माल थोड़ा आवे तो ग्राहकों को उतने ही मे सतुष्ट होने का अभ्यास वढाना चाहिए। इस दल के मुखियो मे वावू मैथिलीशरण जी गुप्त का नाम लिया जा सकता है। तीसरा एक दल और है। वह कहता है कि व्रजभाषा और खडीवोली दोनो के रास्ते के वीच से चलो। क्रिया तो खडीवोली ही की रखो; किन्तु थोडे-से व्रजभाषा के सज्ञा शब्द और क्रियाविशेषणो को भी मिला लो। इस दल के अगुआ राय देवीप्रसाद 'पूर्ण' और पण्डित नाथूराम 'शङ्कर' शर्मा है। 'पूर्ण' तो अपनी मानवलीला पूर्ण कर गये। 'शङ्करजी' उस मार्ग पर खडे होकर लोगों को उसकी सुगमता सुझा रहे है।[1] किन्तु अधिक सख्या दूसरे दलवालो की है। वे गद्य-पद्य दोनो का मार्ग एक करना चाहते है। मार्ग संकरा है, इसकी उन्हे चिन्ता नही। वे कहते है कि सस्कृतवालो को देखो, उन्होने मर्यादा के भीतर रहकर कैसा कमाल किया है, कैसा कठिन व्रत निभाया है। हम लोग अभी ऐसा नही कर सकते, इसमें रास्ते के संकरेपनका दोष नही। अभी हम लोगो में प्रतिभा ही नही जागृत हुई। प्रतिभाशाली के लिए सीधे-टेढ़े किसी रास्ते मे भी रुकावट नही।

यह तो रास्ते की वात हुई। अव यह देखना है कि व्रजभाषा और हिन्दी दोनो मे कैसा माल आ चुका है और अव कैसा आरहा है।

हिन्दी-कविता में प्रारम्भ से लेकर भारतेन्दु हरिश्चन्द्र तक मुख्यत. चार-पाच विषयों ही का प्राधान्य रहा है—भक्ति, प्रेम, शृङ्गार, वीर और नीति। इनमें सवसे बड़ा समुद्र शृङ्गार का हुआ। कितने ही कवि तो उसमें आजीवन डूवे रहे, कुछ वीच में उतराये भी तो आगे तैरने की

[1] आपका स्वर्गवास हो चुका है।

उनमे शक्ति ही न रही, और कितने उसके किनारे ही पर नहाते-धोते और खेलते रह गये।

भक्त कवियों ने अपने अनुभव की बात कही है। वे प्रेमी थे, ज्ञानी थे और सदाचारप्रिय थे। हिन्दू-समाज की जीवनशक्ति को उन्होंने बल-प्रदान किया है। हिन्दुओं में जो कुछ ज्ञान, भक्ति, वैराग्य और सदाचार की चर्चा है, उसमे से अधिकाश हिन्दी-कवियो की सम्पत्ति है। कौन कह सकता है कि हिन्दुओ के दैनिक व्यवहार मे तुलसी, सूर और कबीर की प्रेरणा नही है। हिन्दी का भक्ति-साहित्य बडा उज्ज्वल, बड़ा सुन्दर और बड़ा मधुर है। उसमे प्राणो को आराम, मन को आनन्द और आत्मा को शान्ति मिलती है।

वीर रस की कविता हिन्दी मे अधिक नही। जो कुछ है, उसका सम्बन्ध हृदय से कम, शरीर से अधिक है।

नीति की कविता वीर रस की कविता से अधिक है। और समाज मे उसका प्रचार भी है। हिन्दी की यह सम्पदा अवश्य देखने की चीज है।

शृगार के विषय मे मुझे कुछ अधिक कहना है, इसी से मैंने उसे सब के अत मे चुना है। हिन्दी-कवियो में शृगारी कवियो की सख्या सब से अधिक है। इनमें कुछ तो बहुत उच्च-कोटि के है, उन्होने हृदय के सौन्दर्य पर बडी ललित कविता की है। भक्त कवियो ने जहा कही प्रसगवश शृगार का वर्णन किया है, उसमे विशुद्ध प्रेम और मानव-स्वभाव की सच्ची झलक दिखाई पड़ती है। वे सदाचार की सीमा के बाहर नही गये है। किन्तु सिर से पैर तक शृगार में डूबे हुए कवियों ने सदाचार को लात मारी है। उन्होने नायक-नायिका-भेद को कविता का सब से प्रधान अग बना डाला है। नायिकाओं को पता ही नही, किन्तु कवियो ने उनके सैकड़ो भेद कर डाले। सबकी अलग-अलग भाषा, सब के अलग-अलग भाव, वेष, भूषा और चाल; बिलकुल नया ससार ही रच दिया। इस ससार मे सदाचार की गध नही। अभिसार-स्थान की सजावट है, दूतियों की दौड़ है, वाक्यविलास है, विरहोच्छ्वास और

बेकली है। कोकिल और पपीहो के हजारो अपराध गिनाये जा रहे है, उन्हे लाखो गालिया दी जा रही है। उन बेचारो को इसका पता भी नही। विरह के वर्णन मे तो और गजब ढाया गया है। एक विरहिणी पार्वती की पूजा करने गई थी। जैसे ही उसने हाथ मे माला लेकर पार्वती के गले में डालना चाहा, वैसे ही, हाथ लगते ही माला राख हो गई। तब उस विभूति को शिवजी को चढाकर वह वापस आई। विरह की आच हृदय ही में होती है, किन्तु कवियों को वहीं तक उसे रखने में सन्तोष नही हुआ। उन्होने हाथ में भी उसकी दाहक शक्ति पहुचा दी। एक विरहिणी पनघट पर जल लाने गई। घडा भरकर सिर पर रखते ही वह विरह की आच से सूख जाता था। फिर उतारकर फिर भरती और सिर पर रखते ही वह फिर सूख जाता। दिनभर इसी चढाव उतार मे लगी रही।

बिहारी ने एक विरहिणी का वर्णन इस प्रकार किया है—

इत आवत चलि जाति उत, चली छ सातिक हाथ।
चढी हिंडोरे सी रहै, लगी उसासनि साथ॥

अर्थात्, विरह के मारे वह इतनी कमजोर हो गई है कि सास लेने और छोडने के साथ वह छ-सात हाथ आगे-पीछे आती-जाती रहती है। सास रूपी हिंडोले पर चढी हुई इधर से उधर झूलती रहती है।

ऐसा तो उस नायिका का हाल था। अब यह बात यहा समझ मे नही आती कि जब वह हवा से भी इतनी हलकी होगई थी तो तितली का रूप बनाकर अपने प्रियतम के पास क्यो न उडकर चली गई?

ग्वाल कवि ने एक विरहिणी का हाल ऐसा लिखा है—

द्वार लै आई लिवा आगन में ठाढी रही,
अर पै पसारबे में आन हाथ लै गयो।

है, डाक और तार का भी पूरा प्रबन्ध है फिर भी किसी विरही के घर से यह खबर नहीं आती कि उसकी विरहिणी की आह से उसका घर जल गया या किसी कोयल या पपीहे की बोली से उसकी स्त्री मर गई। मालूम होता है, इस बला को पुराने कवि अपने साथ ही स्वर्ग ले गये।

दूसरा नम्बर नख-शिख वर्णन करनेवाले कवियो का है। इन्होने नायिका के जिस अग को छुआ है उसे अन्तिम सीमा तक पहुचा दिया है। चितवन से किसी को घायल होते सुना हो तो उसे वज्र और बिजली बना डाला। बीच मे जरा-सी उठी हुई नाक अच्छी लगी तो उसे इतना झुकाया कि तोते की-सी नाक बनाकर तब दम लिया, चाहे वे अपनी स्त्री की तोते ऐसी टेढी नाक को स्वय पसन्द न करे। स्तनो की कठोरता अच्छी लगी तो उसे पहाड बना डाला, नायिका दबकर मर जाय तो मरे, इनका क्या बिगड़ा। नायिका की कमर पतली होने मे कुछ सुभीता समझ पडा तो उसके पीछे पड गये। ससार की पतली-से पतली चीजे याद की गई और कमर को उनसे भी पतली कहा गया। पतलेपन की दौड यहाँ तक बढी कि केशवदास ने उसका अस्तित्व ही मिटा दिया। बस, अब आगे कहाँ जाओगे ? जो चीज ही नही, उससे अधिक पतली और क्या हो सकती है। केशवदास ने कहा है—

सूम कैसो दान महामूढ कैसो ज्ञान

* * *

यह तेरी कटि निपट कपट कैसो हितु है।

चलो छुट्टी हुई। इस प्रकार के कविगण प्रतिदिन नितम्ब और स्तनों के बीच मे, नाभि के पास, कटिप्रदेश देखते रहे हैं, फिर भी कहते है कि कटि हई नही। इस झुठाई का भी कुछ ठिकाना है ! कल्पना के पीछे ये लोग ऐसे उडे कि असली वस्तु ही को भूल गए। अत्युक्ति और उत्प्रेक्षा को इतना महत्त्व दिया कि स्वाभाविकता ही से हाथ धो बैठे।

उर्दू के सौदा कवि ने एक शेर मे कहा—

समुन्दर कर दिया नाम उसका नाहक सब ने कह-कहकर।

हुये थे जमा कुछ आँसू मेरी आँखों से बह-बहकर ॥

यह झूठ की अन्तिम सीमा है। इससे आगे कोई बढ नही सकता। एक ही पिनक मे चले जाते हुए इन कवियो को देख कर कोई-कोई कवि इनकी दिल्लगी भी उडाने लगे। एक कवि कहता है—

मास की गरेथी कुच कचन कलस कहे,
मुख चन्द्रमा जो असल्लेषमा को घर है।
दोऊ कर कमल मृनाल नाभी कूप कहे,
हाड़ ही को जघा ताहि कहे रम्भा तर है।
हाड को दसन ताहि हीरा मूगा मोती कहे,
चाम को अधर ताहि कहे बिम्बा फर है।
एती झूठी जुगती बनावे औ कहावे कवि,
तापर कहत हमे सारदा को बर है ॥

उर्दू-कवियो की मिथ्यावादिता से मौलाना हाली भी नाराज हुए थे। वे कहते है—

बुरा शेर कहने की गर कुछ सजा है,
अवस झूठ बकना अगर ना रवा है।
तो वह महकमा जिसका काजी खुदा है,
मुकर्रर जहाँ नेक व बद की जजा है।
गुनहगार वाँ छूट जावेगे सारे,
जहन्नुम को भर देगे शायर हमारे।

शृङ्गारी-कवि-मडल के सब से अन्तिम कवि भारतेन्दु हरिश्चन्द्र थे। शृङ्गार मे जो कुछ कहना-सुनना बाकी था, उसे उन्होने कहकर समाप्त किया। इसके सिवाय उन्होने कुछ और भी कहा। उसे देखकर नये कवियो ने अपना रुख बदलना प्रारम्भ किया। वह रुख यहाँ तक बदला कि अब शृगार का कोई नाम भी नही लेता। आजकल के कवि हाथ धोकर भारत के पीछे पड गए है, कोई भारत को कायर बनाता है, कोई अभागा कहता है, कोई उसे पुरानी कहानी सुनाकर उठाना चाहता है,

और कोई उसकी जी भर कर भर्त्सना करता है। कविता मे कुछ दम नही, किन्तु जय, जय की इतनी भरमार है कि ऐसी आशङ्का होती है कि इतने जयजयकार के भय से कही भारत यह देश छोडकर भाग न जाय। भारत के पीछे रो-धोकर यह भेडियाधसान किसी और तरफ चलेगी, तब उसे भी अन्तिम सीमा तक खदेड़कर दूसरे को पकडेगी। हिन्दी-कवियो मे यह विशेषता देखी जाती है कि वे जिधर पिल पडे, उधर से वे तब तक नही मुडते, जब तक उसमे कुछ अस्तित्व रहता है।

खड़ीबोली की कविता को सबसे अधिक प्रोत्साहन पडित महावीर प्रसादजी द्विवेदी से मिला है। द्विवेदीजी ही के उद्योग से आज खड़ी-बोली की कविता का एक रूप देखने को मिल रहा है। सरस्वती ने इस क्षेत्र मे बडा काम किया है। अब भविष्य मे, बहुत आशा है कि विशुद्ध खड़ीबोली मे भी व्रजभाषा के समान भावपूर्ण कविता होने लगेगी। अभी तो खडीबोली की कविता मे भावो का चमत्कार देखने को बहुत ही कम मिलता है।

हिन्दी की वर्तमान दशा

हिन्दी की वर्तमान दशा बहुत ही आशापूर्ण है। देश के एक कोने से दूसरे कोने तक हिन्दी के लिए अनुराग जागृत हुआ है। प्रत्येक प्रान्त के प्रमुख नेताओ और विद्वानो ने एक स्वर से हिन्दी को राष्ट्रभाषा स्वीकार किया है। सुलेखको और सुकवियो की सख्या दिन-प्रति-दिन बढती जा रही है। नये-नये समाचार-पत्र निकल रहे है। हिन्दी के पुस्तकालयो की सख्या बडी तेजी से बढ रही है। बडे-बड़े नगरो मे हिन्दी से सम्बन्ध रखने वाली सस्थाए खुलती जारही है। पुस्तक-प्रकाशकगण, अच्छे लेखको से मौलिक ग्रन्थ लिखवाकर, अन्य भाषाओ के उत्तम ग्रन्थो का अनुवाद कराके और उन्हे आवश्यकतानुसार सचित्र, सजिल्द तैयार कराके हिन्दी-साहित्य का कलेवर बढाते जा रहे है। हिन्दू लोग तो हिन्दी की ओर खिचते ही आ रहे है, मुसलमानों मे भी हिन्दी के लिए बडी रुचि उत्पन्न हुई है। देशभक्त मुसलमान हिन्दी सीखने का उद्योग करते पाये जाते है।

इस समय देश मे हिन्दी की दो बड़ी सस्थाएं काम कर रही है—एक हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन और दूसरे नागरी-प्रचारिणी सभा, काशी।

हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन सार्वदेशिक सस्था है। उसका प्रधान कार्यालय प्रयाग मे है। वह मद्रास मे हिन्दी-प्रचार के लिए हजारो रुपये मासिक व्यय कर रहा है और सफलता भी प्राप्त कर रहा है।' प्रतिवर्ष सर्वोत्तम ग्रन्थकार को वह बड़े सम्मान के साथ बारह सौ रुपये पुरस्कार के देता है। भारत के कई प्रान्तो मे उससे सम्बद्ध प्रान्तीय हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के कार्यालय है, जो सम्मेलन के उद्देश्यो की पूर्ति मे तत्पर रहते है। काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन से पुरानी है। हिन्दी और नागरी लिपि के लिए खासकर युक्तप्रान्त वालों में अनुराग उत्पन्न करने का श्रेय इस सभा ही को है। सभा ने हिन्दी की प्राचीन पुस्तकों की खोज का बहुत ही उपयोगी काम किया है। पुराने काव्य-ग्रथो का अनुसंधान, उत्तमोत्तम ग्रथो का सम्पादन और प्रकाशन, हिन्दी के एक वृहत् कोष की रचना, ये सब काम सभा का गौरव बहुत ऊंचा करते है। सभा जन्म से ही हिन्दी-साहित्य की बहुमूल्य सेवा कर रही है।

मासिक पत्रिकाओ में सरस्वती, माधुरी, प्रभा और श्रीशारदा सब से अच्छी है। इनका मूल भी दृढ़ है और क्षेत्र भी विस्तृत है। साप्ताहिक पत्रो मे प्रताप, अभ्युदय, कर्मवीर का प्रभाव और प्रचार अधिक है। दैनिक-पत्रों मे दैनिक-भारतमित्र, स्वतत्र, आज और कलकत्ता समाचार हिन्दी जानने वाली जनता की बहुमूल्य राजनीतिक सेवा कर रहे है। विद्यार्थियों के लिए विद्यार्थी और बालसखा आदि पत्र निकल रहे है। स्त्रियों के लिए स्त्रीदर्पण, गृहलक्ष्मी और ज्योति आदि मासिक पत्र-पत्रिकाए विशेष उल्लेखनीय है।'

'अब सम्मेलन का इस संस्था से संबंध नहीं रहा है। सम्मेलन वर्धा में 'राष्ट्र-भाषा प्रचार समिति' नामक एक नई संस्था का अहिन्दी भाषी प्रांतों में हिन्दी-प्रचार के लिए संचालन कर रहा है।

'मासिक साप्ताहिक व दैनिक पत्रों की स्थिति में भी बहुत परिवर्तन

हिन्दी के वर्तमान सुकवियो मे 'पडित नाथूराम शकर शर्मा, पडित श्रीधर पाठक, पडित अयोध्यासिह उपाध्याय, लाला भगवान दीन, बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर, प० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी, पडित कामताप्रसाद, पडित रामचरित उपाध्याय, मिश्रबन्धु, पंडित गिरिधर शर्मा, पडित माधव शुक्ल, पडित गयाप्रसाद शुक्ल सनेही', पडित रूपनारायण पाडेय, बाबू मैथिलीशरण गुप्त, बाबू जयशङ्कर, प्रसाद, पडित रामचन्द शुक्ल, पडित लोचनप्रसाद पाण्डेय, पडित लक्ष्मीधर वाजपेयी, पडित बदरीनाथ भट्ट, पडित माखनलाल चतुर्वेदी, ठाकुर गोपालशरण सिंह, पाडेय मुकुट-धर शर्मा, बाबू सियारामशरण गुप्त, बाबू गोविन्ददास, पण्डित हरिप्रसाद द्विवेदी (वियोगी हरि) आदि की कृतियो से हिन्दी-साहित्य का उपवन सुरभित हो चला है। सुलेखकों में पण्डित महावीरप्रसाद द्विवेदी, पडित पद्मसिह शर्मा, पण्डित अम्बिकाप्रसाद बाजपेयी, पण्डित गौरीशकर हीरा-चन्द ओझा, बाबू श्यामसुन्दर दास, बाबू गणेशशङ्कर विद्यार्थी, बाबू ब्रज-नन्दन सहाय, श्रीयुत प्रेमचन्द, पण्डित रामजी लाल शर्मा, पण्डित चन्द्र-शेखर शास्त्री, पण्डित माखनलाल चतुर्वेदी, पण्डित बनारसीदास चतुर्वेदी, पण्डित माधव राव सप्रे, प० किशोरीलाल गोस्वामी, बाबू रामदास गौड बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन, पण्डित कृष्णाकात मालवीय, पण्डित लक्ष्मण-नारायण गर्दे, बाबू रामचन्द वर्मा और श्रीयुत नाथूराम प्रेमी आदि का स्थान बहुत ऊचा है। सुकवियो मे प्राय सभी सुलेखक है। भिन्न भाषा-भाषी प्रान्तो मे भी हिन्दी के अच्छे ज्ञाताओ की सख्या बढती जा रही है। इस समय बङ्गाल, गुजरात, महाराष्ट्र, आन्ध्र मद्रास आदि भारत के प्रायः सभी प्रान्तों के लोगों में हिन्दी के जानकार या लेखक मिलेंगे।

इस तरह हिन्दी-साहित्य का बढता हुआ वटवृक्ष एक दिन कैलास से कन्याकुमारी तक, अटक से कटक तक अपनी सुखद शीतल छाया से तैंतीस

हो चुका है। पुराने कई पत्र बन्द हो गये है और कई नये अच्छे पत्र निकलने लगे है।

'इनमें कई महानुभाव स्वर्गीय हो चुके है।

कोटि भारतवासियों को शांति और सुख प्रदान करेगा। सारे देश में एक भाषा के प्रचार से हम में एक राष्ट्रीयता जागृत होगी, पारस्परिक प्रेम, ऐक्य और बन्धुत्व की वृद्धि होगी और घनिष्टता और सहानभूति का भाव पुष्ट होगा।

हिन्दी जीती-जागती भाषा है। उसकी ग्राहिका-शक्ति बड़ी प्रबल है। उसने अरबी, फारसी और तुर्की भाषाओं के हजारों शब्द हजम कर लिये, अब अंग्रेजी भाषा के शब्दों को वह चुन-चुनकर अपनाती जाती है। विदेशी भाषाओं के जो शब्द अपनी भाषा में खप गये, वे सब हिन्दी की मिलकियत होगए। अच्छे लेखक उन शब्दों से बराबर काम लेने लगे हैं। नये-नये महावरों का भी रोज-रोज समावेश होता जाता है। एक दिन सर्वांगसुन्दर हिन्दी-भाषा भारत की भाषाओं में प्रधान पद को सुशोभित करेगी।

कविता-कौमुदी

पहला भाग

चन्दबरदाई

चन्दबरदाई का नाम राजपूताने में बहुत प्रसिद्ध है। वह भारतवर्ष के अन्तिम हिन्दू सम्राट् महाराज पृथ्वीराज चौहान का राजकवि, मित्र और सामन्त था। वह भट्ट जाति के जगात (वर्तमान राव) नामक गोत्र का था। उसके पूर्वज पजाब के रहनेवाले थे, और उनकी यजमानी अजमेर के चौहानो के यहा थी।

चन्द का जन्म लाहौर में हुआ था। ऐसा कहा जाता है कि चद और पृथ्वीराज का जन्म एक ही तिथि को हुआ था और एक ही तिथि को दोनो ने शरीर भी छोड़ा। पृथ्वीराज का जन्म सवत् १२०५ में और मृत्यु १२४८ मे हुई। अतएव चद के भी जन्म-मरण का समय यही समझना चाहिए।

चन्द के पिता का नाम राववेण और विद्या-गुरु का नाम गुरुप्रसाद था। वह षट्भाषा, व्याकरण, काव्य, साहित्य, ज्योतिष, वैद्यक, मन्त्र-शास्त्र, पुराण, नाटक और गान आदि विद्याओ में बड़ा निपुण था। वह जालन्धरी (जालपा) देवी का उपासक था।

चंद ने दो विवाह किये थे। उसकी पहली स्त्री का नाम कमला उपनाम मेवा और दूसरी का गौरी उपनाम राजोरा था। उसके ग्यारह सन्तति हुई, दस लड़के और एक लडकी। लड़की का नाम राजबाई था। चंद के दसो पुत्रो में जल्ह बड़ा योग्य था। पृथ्वीराज की बहन पृथाबाई का विवाह, 'रासो' के अनुसार, चित्तौर के रावल समरसिंह के साथ

हुआ था। पृथाबाई के साथ जल्ह भी रावल जी का दहेज में दिया गया था। जब शहाबुद्दीन के साथ पृथ्वीराज के अन्तिम युद्ध मे रावल समरसिंह जी मारे गए तब उनके साथ पृथाबाई सती हुई थी। सती होने के पहले पृथाबाई ने अपने पुत्र को एक पत्र लिखा था। जिसमें सूचना दी थी कि श्री हुजूर समर में मारे गये और उनके सग ऋषिकेशजी भी बैकुण्ठ को पधारे है। ऋषिकेशजी उन चार लोगों मे से है जो दिल्ली से मेरे सग दहेज में आये थे, इसलिए इनके वंशजों की खातिरी रखना। "ने पाछे मारा च्यारी गराँ का मनषाँ की षात्री राखजो। ई मारा जीव का चाकर हे जो थासु कदी हरामषोर नीवेगा"। यह पत्र माघ सुदी १२, संवत् १२४८ विक्रम का लिखा हुआ है। इससे प्रकट है कि जल्ह पृथाबाई के साथ चित्तौर गया था।

चंद ने पृथ्वीराज का चरित्र जन्म से लेकर अन्तिम युद्ध तक "पृथ्वीराज रासो" नामक महाकाव्य मे वर्णन किया है। अन्तिम लड़ाई के समय चद पृथ्वीराज के साथ उपस्थित नही था, वह देवी के एक मन्दिर मे बैठकर "रासो" को पूरा कर रहा था। इसलिए अन्तिम लडाई का वृत्तान्त वह नही लिख सका। पीछे से उसके पुत्र जल्ह ने उस युद्ध का वृत्तान्त लिखा। रासो में लिखा है कि पृथ्वीराज को शहाबुद्दीन ने पकड़ लिया था। वह उन्हे गजनी ले गया और उनकी दोनों आखे फोडवा कर उसने उन्हे कैदखाने मे डाल दिया। "रासो" लिखकर चद अपने घर आया और उसे जल्ह को देकर वह गजनी गया। वहां गौरी को प्रसन्न करके वह पृथ्वीराज से मिला। उसने कौशल से पृथ्वीराज के हाथ से शहाबुद्दीन को मरवा डाला। फिर राजा और कवि दोनो ने कटार से अपना-अपना प्राणात वही किया। पृथ्वीराज के साथ चद का जीवनचरित्र ऐसा मिला हुआ है कि उससे वह किसी तरह अलग नही किया जा सकता। चद पृथ्वीराज का लगोटिया मित्र था। वह सदा पृथ्वीराज के साथ रहता था। इसलिए जो-जो घटनाए उसने लिखी है, उनमे सत्य का अश बहुत अधिक है। उसने आखो-देखी बातें लिखी है।

चद महाकवि था। उसका बनाया हुआ "पृथ्वीराज रासो" हिन्दी में एक अपूर्व ग्रन्थ है। उसमे स्थान-स्थान पर कविता के नवो रसों का वर्णन बड़ी मार्मिकता से किया गया है। चद ने पृथ्वीराज का सम्पूर्ण चरित्र अपनी स्त्री गौरी से कहा है। जिस प्रकार तुलसीदास की चौपाई, सूरदास के पद, बिहारी के दोहे, गिरधर की कुण्डलिया और पद्माकर के घनाक्षरी छन्द प्रसिद्ध है, उसी प्रकार चद ने छप्पय लिखने मे बड़ा नाम पाया है।

"रासो" की कविता में सयुक्ताक्षरो की खूब भरमार है। पढते समय ऐसा मालूम होता है कि जीभ को खूब ऊबड़-खाबड रास्ता तै करना पड़ रहा है। पर उस रास्ते मे जो काव्य-रस के मनोहर पुष्प खिले हुए है उनकी सुगन्ध से मन मुग्ध हो जाता है। "रासो" मे वीर और शृङ्गार-रस की कविता बहुत है। उनमे बडा चमत्कार और बडी मनोमोहकता है।

चन्द की कविता की भाषा अच्छी तरह वे ही लोग समझ सकते है जिन्हे सस्कृत और राजपूताने की बोली का अच्छा ज्ञान हो। साधारण हिन्दी जानने वालों की समझ मे वह अच्छी तरह नही आ सकती।

"रासो" बहुत बडा ग्रन्थ है। समय-समय पर चद जो कविताए रचता था, उसे वह कण्ठस्थ रखता था, या कागज पर लिख लेता होगा। उन्हे पुस्तकाकार उसने ६० दिनो मे किया। रासो मे कुल ६९ अध्याय है। प्रत्येक अध्याय किसी न किसी ऐतिहासिक घटना को लेकर लिखा गया है। पृथ्वीराज ने अपने जीवन मे बहुत-सी लडाइया लड़ी थी और उन्होंने विवाह भी कई किये थे। रासो मे सब का विस्तार-पूर्वक वर्णन है। आजकल के ऐतिहासिक विद्वान् रासो मे वर्णित पृथ्वीराज और मुहम्मदगौरी-सम्बन्धी कई लडाइयो को सत्य नही मानते।

चद का जन्म लाहौर मे हुआ था और वहा मुसलमानो का अधिक संसर्ग था इसलिए चद की कविता मे अरबी, फारसी के भी बहुत-से शब्द आ गए है।

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा ने "रासो" को प्रकाशित किया है। अभी इससे भी अधिक शुद्ध-सस्करण के प्रकाशित होने की आवश्यकता है। आगे हम चंद की कविता के कुछ नमूने उद्धृत करते हैं—

पद्मावती समय

दूहा

पूरब दिस गढ़ गढ़न पति, समुद शिखर अति दुग्ग।
तहं सु विजय सुरराज पति, जादू कुलह अभग्ग॥ १॥
हसम हयग्गय देस अति, पति सायर म्रज्जाद।
प्रबल भूप सेवहिं सकल, धुनि निसान बहु साद॥ २॥

कवित्त

धुनि निसान बहु साद नाद सुरपच बजत दिन।
दस हजार हय चढ़त हेम नग जटित साज तिन।
गज असख्य गजपतिय मुहर सेना तिय संखह।
इन नायक कर धरी पिनाक धरभर रज रक्खह।
दस पुत्र पुत्रिय एक सम रथ सुरंग उम्मर डमर।
भंडार लछिय अगनित पदम सो पदमसेन कूवर सुघर॥ ३॥

दूहा

पदमसेन कूंवर सुघर, ता घर नारि सुजान।
ता उर इक पुत्री प्रकट, मनहुं कला ससि भान॥ ४॥

कवित्त

मनहु कला ससि भान कला सोलह सो बन्निय।
बाल वेस ससिता समीप अमृत रस पिन्निय।
विगसि कमल मृग भ्रमर बैन खंजन मृग लुट्टिया।
हार कीर अरु बिम्ब मोति नख सिख अहि घुट्टिया।
छत्रपति गयद हरि हस गति विह बनाय सचै सचिय।
पदमिनिय रूप पद्मावतिय मनहुं काम कामिनि रचिय॥ ५॥

दूहा

मनहु काम कामिनि रचिय, रचिय रूप की रास।
पशु पंछी सब मोहिनी, सुर नर मुनियर पास ॥ ६ ॥
सामुद्रिक लच्छन सकल, चौसठ कला सुजान।
जानि चतुरदस अंग षट, रति बसत परमान ॥ ७ ॥
सखियन संग खेलत फिरत, महलनि बाग निवास।
कीर इक्क दिप्पिय नयन, तब मन भयौ हुलास ॥ ८ ॥

कबित्त

मन अति भयौ हुलास बिगसि जनु कोक किरन रवि।
अरुन अधर तिय सधर बिम्ब फल जानि कीर छवि।
यह चाहत चख चकृत उह जु तक्किय झरप्पि झर।
चंच चहुट्टिय लोभ लियौ तब गहित अप्प कर।
हरषत अनन्द मन महि हुलस लै जु महल भीतर गई।
पंजर अनूप नग मनि जटित सो तिहि महं रष्षत भई ॥ ९ ॥

दूहा

तिहि महल रष्षत भई, गई खेल सब भुल्ल।
चित्त चहुट्ट्यो कीर सों, राम पढावत फुल्ल ॥ १० ॥
कीर कुँवरि तन निरखि दिखि, नख सिख लौ यह रूप।
करता करी बनाय कै, यह पदमिनी सरूप ॥ ११ ॥

कबित्त

कुट्टिल केस सुदेश पौह परचियत पिक्क सद।
कमल गंध वय संध हंस गति चलत मंद मंद।
सेत बस्त्र सोहै सरीर नख स्वाति बुन्द जस।
भमर भवहि भुल्लहि सुभाव मकरंद वास रस।
नैन निरखि सुख पाय सदिन मूरति रचिय।
उमा प्रसाद हर हेरियत मिलहि राज प्रथिराज जिय ॥ १२ ॥

दूहा

सुक समीप मन कुवरि को , लग्यो वचन कै हेत ।
अति विचित्र पंडित सुआ , कथत जु कथा अमेत ॥ १३ ॥

गाथा

पुच्छत वयन सु वाले उच्चरिय कीर सच्च सच्चाये ।
कवन नाम तुम देस कवन यद करय परवेस ॥ १४ ॥
उच्चरिय कीर सुनि वयन हिन्दवान दिल्ली गढ अयनं ।
तहा इन्द्र अवतार चहुआन तह प्रथिराजह सूर सुभारं ॥ १५ ॥

पद्धरी

पदमावतीहिं कुवरी सघत्त,
दुज कथा कहत मुनि सुनि सुवत्त ॥ १६ ॥
हिंदवान थान उत्तम सुदेस,
तहं उदित द्रुग्ग दिल्ली सुदेस ॥ १७ ॥
संभरि नरेस चहुआन थान,
प्रथिराज तहां राजत भान ॥ १८ ॥
वैसह बरीस षोड़स नरिंद,
आजान वाहु भुअ लोक यन्द ॥ १९ ॥
संभरि नरेस सोमेस पूत,
देवत रूप अवतार धूत ॥ २० ॥
सामत सूर सब्वे अपार,
भूजान भीम जिम सार भार ॥ २१ ॥
जिहि पकरि साह साहाब लीन,
तिहुँ वेर करिय पानीप हीन ॥ २२ ॥
सिंगिनि सुसद्द गुन चढि जजीर,
चुक्कै न सवद बेधंत तार ॥ २३ ॥
बल वैन करन जिमि दान पान,
सतसहस सील हरिचंद समान ॥ २४ ॥

साहस सुक्रम विक्रम जु वीर,
दानव सुमत्त अवतार धीर ॥ २५ ॥
दिस च्यार जानि मव कला भूप,
कद्रप्प जानि अवतार रूप ॥ २६ ॥

दूहा

कामदेव अवतार हुअ, सुअ सोमेसर नन्द ।
सहस किरन झलहल कमल, रिपि समीप वर विन्द ॥२७॥
सुनत श्रवन प्रथिराज जस, उमग बाल विधि अङ्ग ।
तन मन चित्त चहुवाँन पर, वस्यो सु रत्तह रङ्ग ॥२८॥
वेस विती ससिता सकल, आगम कियो बसत ।
मात पिता चिंता भई, सोधि जुगति कौ कत ॥२९॥

कवित्त

सोधि जुगति कौ कत कियौ तव चित्त चहो दिस ।
लयौ विप्र गुर वोल कही समझाय बात तस ।
नर नरिंद नरपती बडे गढ द्रुग्ग असेसह ।
सीलवन्त कुल सुद्ध देहु कन्या सु नरेसह ।
तव चलन देहु दुज्जह लगन सगुन वन्द दिय अप्प तन ।
आनन्द उछाह समुदह सिषर वजत नद्द नीसान घन ॥३०॥

दूहा

सवा लष्ष उत्तर सयल, कमऊ गढ दूरङ्ग ।
राजत राज कुमोदमनि, हय गय द्रिब्ब अभग ॥३१॥
नारिकेलि फल परठि दुज, चौक पूरि मन मुत्ति ।
दई जु कन्या वचन वर, अति अनन्द करि जुत्ति ॥३२॥

भुजङ्गप्रयात

विहसित वर लगन लिन्नौ नरिंदं,
वजी द्वार द्वार सु आनन्द दू द ॥३३॥
गढनं गढ पत्ति सब बोलि नुत्ते,
सब आइय भूप कटु बस जुत्ते ॥३४॥

चले दस सहस्स असव्वार जान,
पूरिय पैदल तेतीस थान ॥३५॥
मदं गल्लितं मत्त सै पच दती,
मनो साम पाहार बुगपति पती ॥३६॥
चलै अग्गि तेजी जु तत्ते तुखार,
चौवरं चौरासी जु सार्कत्ति भारं ॥३७॥
नगं कंठ नूप अनूपं सु लालं,
रगं पच रंग ढलक्कत ढालं ॥३८॥
मुर पंच सावद्द वाजित्र वाज,
सहस्सं सहन्नाय मृग, मोहि राज ॥३९॥
समुद सिर सिखर उच्छाह छाहं
रचित मंडपं तोरन श्रीयगाहं ॥४०॥
पदमावती विलखि वर वाल वेली,
कही कीर सों वात तव होइ केली ॥४१॥
झटं जाहु तुम्ह कीर दिल्ली सुदेसं,
वर चाहुआन जु आनौ नरेसं ॥४२॥

दूहा

आनौं तुम्ह चहुआन वर, अरु कहि इहैं संदेस ।
सांस सरीरहि जो रहे, प्रिय प्रथिराज नरेस ॥४३॥

कवित्त

प्रिय प्रथिराज नरेस जोग लिखि कग्गर दिन्नौ ।
लगु नव रग रचि सरव दिन्न द्वादस ससि लिन्नौ ॥
सें अरु ग्यारह तीस साष संवत परमानह ।
जोविश्री कुल सुद्ध वरनि वर रप्पहु प्रानह ॥
दिप्पत दिष्ट उच्चरिय वर इवक पलक विलम्व न करिय ।
अलमार रयन दिन पच महि ज्यो रुकमनि कन्हर वरिय ॥४४॥

दूहा

ज्यों रुकमनि कन्हर वरी, ज्यो वरि संभर कात ।
शिव मडप पच्छिम दिशा, पूजि समय स प्रात ॥४५॥
लै पत्री सुक यो चल्यौ, उड़्यो गगनि गहि बाव ।
जहं दिल्ली प्रथिराज नर, अट्ठ जाम मे जाव ॥४६॥
दिय कग्गर नृपराज कर, षलि वंचिय प्रथिराज ।
सुक देखत मन में हँसे, कियो चलन कौ साज ॥४७॥

कबित्त

उहै घरी उहि पलनि उहै दिन बेर उहै सजि ।
सकल सूर सामत लिये सब बोल बब बजि ।
अरु कवि चन्द अनूप रूप सरसै बर कह बहु ।
और सेन सब पच्छ सहस सेना तिय सष्षहु ।
चामडराय दिल्ली धरह गढपति कर गढ भार दिय ।
अलगार राज प्रथिराज तब पूरब दिस तब गमन किय ॥४८॥

दूहा

जा दिन सिषर बरात गय, ता दिन गय प्रथिराज ।
ताही दिन पतिसाह कौ, भइ गज्जनै अवाज ॥४९॥

कबित्त

सुनि गज्जनै अवाज चढयो साहाव दीन वर ।
खुरासान सुलतान कास काविलिय मीर धुर ।
जग जुरन जालिम जुझार भुज सार सार भुअ ।
धर धमकि भजि सेस गगन रवि लुप्पि रैन हुअ ।
उलटि प्रवाह मनौ सिन्धु सर रुक्कि राह अड्डौ रहिय ।
तिहि घरिय राज प्रथिराज सौ चन्द वचन इहि विधि कहिय ॥५०॥
निकट नगर जब जानि जाय वर विन्द उभय भय ।
समुद सिखर घन नद्द इद दुहु ओर घोर गय ।
अगवानिय अगिवान कुअर वगि वनि हय सज्जति ।
दिष्षन को त्रिय सवनि गौख चढि छाजन रज्जति ।

बिलखि अवास कुवरि वदन मनो राहु छाया सुरत।
झंषति गवष्षि पल पल पलकि दिखत पंथ दिल्ली सुपति ॥५१॥

पद्धरी

दिष्षंत पथ दिल्ली दिसान,
सुख भयो सूक जब मिल्यो आन ॥५२॥
सन्देश सुनत आनन्द नैन,
उमगीय बाल मनमथ्य सैन ॥५३॥
तन चिकट चीर डारयो उतारि,
मज्जन मयक नव सत सिंगार ॥५४॥
भूषन मगाय नख सिख अनूप,
सजि सेन मनो मनमथ्थ भूप ॥५५॥
सोव्रन्न थार मोतिन भराय,
झलहल करंत दीपक जराय ॥५६॥
सगह सखीय लिय सहस बाल,
रुकमनिय जेम मज्जत मराल ॥५७॥
पूजीय गवरि शंकर मनाय,
दच्छिनै अंग करि लगिय पाय ॥५८॥
फिर देखि देखि प्रथिराज राज,
हस मुद्ध मुद्ध चरपट्ट लाज ॥५९॥
करि पकरि पीठ हय पर चढाय,
लै चल्यो नृपति दिल्ली सुराय ॥६०॥
भइ खवरि नगर बाहिर सुनाय,
पदमावतीय हरि लीय जाय ॥६१॥
वाजी सु वंव हय गय पलान,
दौरे सुसज्जि दिस्सह दिसान ॥६२॥
तुम लेहु लेहु मुख जपि जोध,
हन्नाह सूर सब पहिरि क्रोध ॥६३॥

अग्गे जु राज प्रथिराज भूप,
पच्छै सु भयो वह सब सैन रूप ॥६४॥
पहुंचे सु जाय तत्ते तुरग,
भुअ भिरन भूप जुरि जोध जग ॥६५॥
उलटी जु राज प्रथिराज बाग,
थकि सूर गगन घर धसत नाग ॥६६॥
सामंत सूर सब काल रूप,
गहि लोह छोह वाहै सु भूप ॥६७॥
कम्मान बान छुट्टहि अपार,
लागत लोह इम सारि धार ॥६८॥
घमसान घान सब बीर खेत
घन श्रोन बहत अरु रुकत रेत ॥६९॥
मारे वरात के जोध जोह,
परि रुड मुड अरि खेत सोह ॥७०॥

दूहा

परे रहत रंन खेत अरि, करि दिल्लिय मुख रुक्ख ।
जीति चल्यो प्रथिराज रिन, सकल सूर भय सुक्ख ॥७१॥
पदमावति इम लै चल्यो, हरखि राज प्रथिराज ।
एतें परि पतिसाह की, भई जु आनि अवाज ॥७२॥

कबित्त

भाई जु आनि आवाज आय साहावदीन सुर ।
आज गहौं प्रथिराज वोल वुल्लत गजत घुर ।
क्रोध जोध जोधा अनन्त करिय पन्ती अनि गज्जिय ।
बान नालि हथनालि तुपक तीरह सब सज्जिय ।
पवै पहार मनो सार के भिरि भुजान गजनेस वल ।
आये हकारि हुंकार करि खुरासान सुलतान दल ॥७३॥

भुजङ्गप्रयात

खुरासान मुलतान खन्वार मीरं,
वलक सोवलं तेग अच्चूक तीरं ॥७४॥
रुहंगी फिरंगी हलवी समानी,
ठटी ठट्ट वल्लोच ढालं निसानी ॥७५॥
मंजारी-चखी मुक्ख जम्बक्क लारी,
हजारी हजारी इकें जोध भारी ॥७६॥
तिन पष्षरं पीठ हय जीन सालं,
फिरंगी कती पास सुकलात लालं ॥७७॥
तहां वाघ वाघ मरूरी रिछोरी,
घन सार सम्मूह अरु चौर झोरी ॥७८॥
एराकी अरब्बी पटी तेज ताजी,
तुरक्की महावान कम्मान वाजी ॥७९॥
ऐसे असिव असवार अग्गेल गोल,
भिरे जून जेते सुतत्ते अमोलं ॥८०॥
तिनं मद्धि सुलतान साहाव आपं,
इसे रूप सो फौज वरनाय जापं ॥८१॥
तिनं घेग्गियं राज प्रथिराज राजं,
चिहो ओर घनघोर नीसान वाजं ॥८२॥

कवित्त

वज्जिय घोर निसान रान चहुआन चिहो दिस ।
सकल सूर सामन्त समरि बल जंत्र मंत्र तस ।
उट्ठि राज प्रथिराज वाग लग मनो वीर नट ।
कढत तेग मनो वेग लगत मनो वीज झट्ट घट ।
थकि रहे सूर कौतिग गगन रगन मगन भइ श्रोन घर ।
हर हनपि वीर जग्गे हुलस हुरव रङ्गि नव रत्त वर ॥८३॥

दूहा

हुरव रङ्ग नव रत्त वर, भयो युद्ध अति चित्त ।
निस वासुर समुझि न परत, न को हार नह चित्त ॥८४॥

कबित्त

न को हार नह जित्त रहेइ न रहहि सूर वर ।
धर उप्पर भर परत करत अति जुद्ध महाभर ।
कहौ कमध कहौ मथ्थ कहौ कर चरन अन्त दुरि ।
कहौ कंव वहि तेग कहौ सिर जुट्टि फुट्टि उर ।
कहौं दन्त मन्त हय खुर षुपरि कुम्भ असडह रुड सव ।
हिन्दवान रान भय भानमुख गहिय तेग चहुआन जब ॥८५॥

भुजंगप्रयात

गही तेग चहवान हिंदवान रान,
गज जूथ परि कोप केहरि समानं ॥ ८६ ॥
करे रुण्ड मुण्ड करी कुम्भ फारे,
बर सूर सामन्त हुकि गर्ज भारे ॥ ८७ ॥
करी चीह चिक्कार करि कलप भग्गे,
मद तज्जियं लाज ऊमङ्ग मग्गे ॥ ८८ ॥
दौरे गज अन्ध चहुआन केरो,
करीय गिरद्द चिहौ चक्क फेरो ॥ ८९ ॥
गिरद्द उड़ी भान अन्धार रैंन,
गई सूधि सुज्झै नही मज्झि नैन ॥ ९० ॥
सिरं नाय कम्मान प्रथिराज राज,
पकरिये साहि जिमि कुलिङ्ग वाज ॥ ९१ ॥
लै चल्यौ सितावी करी फारि फौज,
परे मीर से पञ्च तहं खेत चौज ॥ ९२ ॥
रज पुत्त पच्चास जुज्झे अमोर,
वजै जीत के नद्द नसीन घोर ॥ ९३ ॥

दूहा

जीति भई प्रथिराज की, पकरि साह लै सङ्ग ।
दिल्ली दिसि मारिग लगो, उतरि घाट गिर गङ्ग ॥ ९४ ॥
वर गोरी पद्मावती, गहि गोरी सुरतान ।
निकट नगर दिल्ली गये, चत्रभुजा चहुआन ॥ ९५ ॥

कबित्त

वोलि विप्र सोधे लगन्न सुभ घरी परिट्ठय ।
हर बांसह मंडप वनाय करि भावरि गठिय ॥
ब्रह्म वेद उच्चरहिं होम चौरी जु प्रत्ति वर ।
पद्मावति दुलहिन दुल्लह प्रथिराज राज नर ॥
डण्ड्यो साह सहावदी अट्ठ सहस हय वर सुवर ।
दै दान मान षट भेस को चढ़े राज द्रुग्गा हुजर ॥ ९६ ॥

दूहा

चढे राज द्रुग्गह नृपति, सुमत राज प्रथिराज ।
अति अनन्द आनन्द सै, हिन्दवान सिरताज ॥ ९७ ॥

महोबा-खंड

आल्हा और पृथ्वीराज के युद्ध मे पृथ्वीराज के मूर्छित होने पर गिद्धनी का उसकी आख निकालने लगना और युद्ध भूमि मे घायल गिरे हुए सञ्जमराय का उसे अपना मास देकर राजा को बचाना ।

कबित्त

लोह लागि चहुंवान परे मुरछा ह्वै धरतिय ।
उड़ गीधनि बैठि कै चुञ्च वाहैनि विरत्तिय ।
देख्यो सञ्जमराय नृपति दृग दाढति पच्छिन ।
अपने तन कौ मास कांटि भखु दियो ततच्छिन ॥
अपनै सुनयन देख्यो नृपति अन्त समै भ्रम पल्लियब ।
आये विवान वैकुण्ठ के देह सहत धरि चल्लियब ॥

दूहा

गीधनि कौं पल भखु दियो, नृप कै नैन बचाय।
देह हँसत बैकुण्ठ को, पहुच्यो सञ्जमराय॥

चंद के अन्य दोहे

सरस काव्य रचना रचौ, खलजन सुनिन हसन्त।
जैसे सिंधुर देखि मग, स्वान सुभाव भुसन्त॥ १॥
तौ पुनि सुजन निमित्त गुन, रचिये तन मन फूल।
जू का भय जिय जानि कं, क्यो डारिये दुकूल॥ २॥
पूरन सकल बिलास रस, सरस पुत्र फलदान।
अन्त होइ सहगामिनी, नेह नारि को मान॥ ३॥
जसहीनो नागौ गिनहु, ढक्यो जग जसवान।
लपट हारै लोह छन, त्रिय जीतै बिन बान॥ ४॥
समदरसी ते निकट है, भुगति मुगति भरपूर।
विषम दरस वा नरन तें, सदा सरबदा दूरि॥ ५॥
पर योषित परसै नही, ते जीते जग बीच।
परतिय तक्कत रैन दिन, ते हारे जग नीच॥ ६॥

विद्यापति ठाकुर

महोपाध्याय विद्यापति ठाकुर मैथिल ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम गणपति ठाकुर, पितामह का जयदत्त ठाकुर और प्रपितामह का धीरेश्वर ठाकुर था। इनका जन्म मिथिला देश के विसपी ग्राम में हुआ था।

विद्यापति का जन्म किस सवत् में हुआ, इसका ठीक-ठीक पता नही चलता। बाबू नगेन्द्रनाथ गुप्त द्वारा सकलित विद्यापति की पदावली में राजा शिवसिंह के सिंहासनारोहण विषयक एक कविता है। उसके ऊपर के दो पद हम यहा प्रस्तुत करते है :—

२ ९ २ ४ २ ३ १

"अनल रन्ध्र कर लक्खन नरवय सक समुद्द कर आगनि ससी।
चैत कारि छठि जेठा मिलिओ वार वेहप्पय जाउ लसी॥"

इससे केवल इतना पता चलता है कि लक्ष्मणसेन (लक्खन) द्वारा प्रचारित सन् २९३ (शकाब्द १३२४, विक्रम संवत् १४५९) मे राजा शिवसिंह गद्दी पर बैठे। विद्यापति राजा शिवसिंह के दरबार में थे। दरबार में इनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी। राजा ने इनको बिसपी ग्राम दान दे दिया था। उसका दानपत्र अभी तक इनके वंशजो के पास है। उस पर सन् २९३ लिखा है। इससे अनुमान होता है कि राजा ने गद्दी पर बैठने की खुशी में बिसपी ग्राम विद्यापति को दे दिया था। राज-दरबार में अपनी विद्वत्ता के बल पर इतना सम्मान प्राप्त करने के समय किसी मनुष्य की आयु कम से कम कितनी होनी चाहिए, इसकी कल्पना करके सन् २९३ के उतना समय पहले विद्यापति का जन्म-काल अनुमान कर लेना चाहिए।

विद्यापति की पदावली मे बहुत से पद्य ऐसे है जिनमें राजा शिवसिंह और उनकी रानी लखिमा देवी का नाम आया है। शृंगार-रस का जहां कोई मधुर वर्णन आया है,वहा विद्यापति ने लिखा है कि इस रसको राजा शिवसिंह और लाखिमा देवी ही जानती है। रानी लाखिमा देवी के विषय में ऐसा कहने की स्वतन्त्रता जब कवि को प्राप्त थी, तब इससे प्रकट होता है कि विद्यापति को राजा शिवसिंह बहुत मानते थे।

छोटे भावों को भी दिखाने मे इन्होंने बड़ी पटुता दिखलाई है । हमने इनकी कविता मे से कुछ अच्छे-अच्छे पद चुनकर आगे सग्रह कर दिये है, उसके पढ़ने से पाठको को सहज ही मे यह पता चल जायगा कि इन्होंने भावो के झलकाने मे कितनी सूक्ष्मदर्शिता का परिचय दिया है। इनकी कविता को चैतन्य महाप्रभु बहुत पसद करते थे । वास्तव में इनकी कविता बडी ही श्रुतिमधुर और भाव-विभूषिता है ।

इनकी कविता की भाषा हिन्दी है । केवल थोड़े-से ऐसे शब्द है जो मिथिला मे बोले जाते है । अपनी कविता मे स्थान-स्थान पर इन्होंने ठेठ हिन्दी शब्दो का अच्छा प्रयोग किया ।

इनकी कविता के कुछ चुने हुए पद यहा हम उद्धृत करते है । बहुत-से पद चमत्कारपूर्ण होने पर भी हमने छोड दिये, क्योंकि उनके भावो मे अश्लीलता अधिक थी ।

नन्दक नन्दन कदम्बेरि तरु तरे धिरे धिरे मुरलि बजाव ।
समय संकेत निकेतन बइसल बेरि बेरि बोलि पठाव ।।

सामरी तोरा लागि अनुखने विकल मुरारि ।
जमुना का तिर उपवन उदवेगल फिरि फिरि ततहि निहार ।
गोरस बिके अबइते जाइते जनि जनि पुछ बनमारि ।।
तो हे मतिमान सुमति मधुसूदन बचन सुनह किछु मोरा ।
भनइ विद्यापति सुन बर जौवति बन्दह नन्दकिशोरा ।। १ ।।

कि कहब हे सखि आजुक बात, मानिक पड़ल कुबनिक हात ।
काच काचन न जानय मूल, गुन्जा रतन करइ समतूल ।
जे किछु कभु नहि कला रस जान, नीर खीर दुहुं करे समान ।
तन्हि सो कहाँ पिरित रसाल, बानर कण्ठे कि मोतिय माल ।
भनइ विद्यापति इह रस जान, बानर मुह कि शोभय पान ।। २ ।।

सजनी अपद न मोहि परबोध ।
तोड़ि जोड़िअ जाहां गेठे पए पड़ ताहा तेज तम परम विरोध ।।

सलिल सनेह सहज थिक सीतल ई जानइ सबे कोइ।
से जदि तपत कए जतने जुड़ाइ तइअग्रो विरत रस होइ॥
गेल सहज हे कि रिति उपजाइअ कुल ससि नीली रंग।
अनुभवि पुनि अनुभवए अचेतन पड़ए हुतास पतंग॥ ३॥

कालि कहल पिआ ए सांझहि रे जायब मोये मारू देश।
मोये अभागिली नहिं जानल रे सग जइतंग्रो योगिनी वेश॥
हृदय बड़ दारुन रे पिया बिनु बिहरि न जाइ।
एक शयन सखि सूतल रे अछल बालभु निस भोर।
न जानल कति खन तेजिगेल रे बिछुरल चकवा जोर॥
सून सेज हिय सालइ रे पियाए बिनु घर मोये आजि।
विनति करहु सुसहेलिनि रे मोहि देह अगिहर साजि॥
विद्यापति कवि गाओल रे आवि मिलत पिय तोर।
लखिमा देइ वर नागर रे राय शिवसिंह नहिं भोर॥ ४॥

हमर नागर रहल दूर देश, केऊ, नहिं कहि सक कुशल सदेश।
ए सखि काहि करब अपतोस, हमर अभागि पिया नहिं दोस।
पिया बिसरल सखि पुरुब पिरीति, जखन कपाल वाम सब विपरीति।
मरम क वेदन मरमहि जान, आन क दुख आन नहिं जान।
भनइ विद्यापति न पुरइ काम, कि करति नागरि जाहि विधि वाम॥५॥

लोचन धाए फेधायेल हरि नहिं आयल रे।
शिव शिव जिवओ न जाए आसे अरुझाएल रे॥

मन करि तहँ उड़ि जाइअ जहां हरि पाइअ रे।
पेम परसमनि जानि आनि उर लाइअ रे॥
सपनहु संगम पाओल रंग बढ़ाओल रे।
से मोर विहि विघटाओल निन्दओ हेरायल रे॥
भनइ विद्यापति गाओल धनि धइरज कर रे।
अचिरे मिलत तोहि बालम्भु पुरत मनोरथ रे॥६॥

सरसिज बिनु सर सर बिनु सरसिज
की सरसिज बिनु सूरे ।
जौवन बिनु तन तनु बिनु जौवन
की जौवन पिय दूरे ॥
सखि हे मोर बड़ दैव विरोधी ॥ ७ ॥

माधव कत तोर करब बड़ाइ ।
उपमा तोहर हम ककरा कहब कहितहु अधिक लजाइ ॥
जो श्रीखण्ड सौरभ अति दुर्लभ तौ पुनि काठ कठोर ।
जौं जगदीश निशाकर तौ पुन इकहि पक्ष इजोर ॥
मनि समान अओरो नहि दूसर तिन कहुं पाथर नामे ।
कनक कदलि छोट लज्जित भै रहु की कहु ठामहि ठामे ॥
तोहर सरिस एक तोह माधव मन होइछ अनुमाने ।
सज्जन जन सौं नेह कठिन थिक कवि विद्यापति भाने ॥ ८ ॥

सखि कि पुछसि अनुभव मोय ।
सेही पिरित अनुराग बखानइत तिले तिले नूतुन होइ ॥
जनम अवधि हम रूप निहारल नयन न तिरपित भेल ।
सेहो मधुर बोल स्रवनहि सुनल स्रुति पथे परस न गेल ॥
कत मधु जामिनअ रभसे गमाओल न बुझल कैसन केल ।
लाख लाखजुग हिअ हिअ राखल तइओ हिआ जुडन न गेल ॥
कत विदग्ध जन रस अनुगमन अनुभव काहु न पेख ।
विद्यापति कह प्राण जुडाइत लाखवे न मिलल एक ॥ ९ ॥

ब्रह्म कमण्डल वास सुवासिनी सागर नागर गृह वाले,
पातक महिष विदारण कारण धृत करवाल वीचि माले,
जय गंगे, जय गंगे, शरणागत भय भंगे ॥१०॥

पिय मोर बालक हम तरुणी,
कोन तप चुकलौह भैलौह जननी ।
पहिर लेल सखि इक दछिनक चीर,
पिया के देखत मोर दगध सरीर ॥

पिया लेलि गोद कै चललि बजार,
हटिया के लोग पुछे के लागु तोहार।
नहि मोर देवर कि नहि छोट भाइ,
पुरब लिखल छल स्वामी हमार॥११॥

सखी मोर पिया,
अबहुँ न आओल कुलिश हिया।
नखर खोआयलु दिवस लिखि लिख,
नयन अन्धयालु पिया पथ पेखि।
आयब हेत कहि मोर पिया गैला,
पूरबक तेज गुन बिसरिल भेला।
भनहि विद्यापति शुन अवराइ,
कानु समझाइते अब चलि जाइ॥१२॥

मधुपुर मोहन गेल रे मोरा विहरति छाति।
गोपी सकल बिसरलनि रे जत छिल अहिवाति॥
सुतिल छलहु अपन गृह रे निन्दई गेलउ सपनाइ।
कर सौ छुटल परसमनि रे कोन गेल अपनाइ॥
कत कहबो कत सुमिरब रे हम भरिय गराणी।
आनक धन सों धनवन्ति रे कुबजा भेल राणी॥
गोकुल चान चकोरल रे चोरी गेल चन्दा।
बिछुड़ि चललि दुहु जोड़ी रे जीव इह गेल धन्दा॥
काक भाष निज भाखह रे पहु आओत मोरा।
क्षीर खाड़ भोजन देव रे भरि कनक कटोरा॥
भनहि विद्यापति गाओल रे धैरज धर नारी।
गोकुल होयत सुहाओन फेरि मिलत मुरारी॥१३॥

अंगने आओव जब रसिया, पलटि चलब हम ईषत हसिया।
रस नागरि रमनी, कत, कत जुगुति मनहि अनुमानी।
आवेशे आचरे पिया धरबे, जाओब हम जतन बहु करबे।

कचुया धरब जब हठिया, करे कर बाधब कुटिल आध दिठिया।
रभस मागब पिय जबही, मुख मोडि विहसि बोलब नहि नहि।
सहजहि सुपुरुख भमरा, मुख कमल मधु पीयब हमरा।
नैखने हरब मोर गेयाने, विद्यापति कह धनि तुय धेयाने ॥१४॥

सरस बसत समय भल पाओलि दछिन पवन बहु धीरे।
सपनहु रूप वचन यक भाषिय मुख से दुरि करु चीरे॥
तोहर वदन सम चाद होअथि नहि जैयो जतन बिह देला।
कै बेरि काटि बनावल नव कय तैयो तुलित नहि भेला॥
लोचन तूअ कमल नहि भैसक से जग के नहि जाने।
से फिर जाय लुकैनह जल भय पकज निज अपमाने॥
भनहि विद्यापति सुन वर जौवित ईसभ लछमि समाने।
राजा शिवसिह रूपनरायन लखिमा देइ प्रति भाने ॥१५॥

जइत देखलि पथ नागरि सजनी आगरि सुबुधि सयानि।
कनकलता सम सुन्दरि सजनी विह निरमावल आनि॥
हस्ति गमनि जगा चलइत सजनी देखइत राजकुमारि।
जिनका यह न सुहागिन सजनी पाय पदारथ चारि॥
नील वसन तन घेरलि सजनी सिरै लेल चिकुर सभारि।
तापर भमर पिवय रस सजनी बैसल पख पसारि॥
केहरि सम कटि गुन अछि सजनी लोचन अबुज धारि।
विद्यापति यह गाओल सजनी गुन पाओलि अवधारि ॥१६॥

कबीर साहब

सयुक्त-प्रान्त मे शायद ही कोई ऐसा हिन्दू हो जो कबीर साहब को न जानता होगा। कबीर साहब के भजन मदिरो मे और सत्सग के अवसरो पर गाये जाते है। उनकी साखिया प्राय. कहावतो का काम दिया करती है।

कबीर साहब एक पथ के प्रवर्तक थे, जिसे कबीर-पथ कहते है।

कबीर-पंथियों मे निम्नश्रेणी के लोग अधिकाश पाए जाते हैं। उनमें से कुछ तो साधू हैं जो गावो मे कुटी बनाकर रहते हैं, और कुछ गृहस्थ हैं। कबीर-पंथी साधू सिर पर नोकदार पीले रग की टोपी पहनते हैं।

कबीर साहब कौन थे? कहां और किस समय मे वे उत्पन्न हुए? उनका असली नाम क्या था? बचपन मे वह कौन धर्मावलबी थे? उनका विवाह हुआ था या नही? और वह कितने समय तक जीवित रहे? इन बातो मे बड़ा मतभेद है। कबीर साहब की जीवनी लिखनेवाले भिन्न-भिन्न बातें बतलाते हैं। उनमे सत्य का अश कितना है, इसका पता लगाना सहज नही है। "कबीर-कसौटी" मे कबीर साहब का जन्म सवत् १४५५ वि० मे और मरण १५७५ वि० में होना लिखा है। कबीर-पथी लोग उनकी उम्र तीन सौ वर्ष की बतलाते है। उनके कथनानुसार कबीर साहब का जन्म १२०५ वि० मे और मरण १५०५ वि० मे हुआ है। इनमें से किसकी बात सत्य है? इसका निर्णय करना बड़ी खोज का काम है। कबीर-पंथ के विद्वानों की राय मे कबीर साहब का जन्म संवत् १४५५ ही सत्य कहा जाता है।

कबीर साहब ने अपने को जुलाहा लिखा है। एक जगह वह कहते है—

तू बाह्मन मैं काशी का जुलहा बूझहु मोर गियाना।

(आदि ग्रथ)

इससे अब इस बात मे तो कुछ सदेह रह ही नही जाता कि कबीर साहब जुलाहे थे। परन्तु वह जन्म के जुलाहे नही थे, यह कहावतो से मालूम होता है।

कहा जाता है कि सम्वत् १४५५ की ज्येष्ठ शुक्ला पूर्णिमा को एक ब्राह्मण की विधवा कन्या के पेट से एक पुत्र पैदा हुआ। लोक-लज्जावश उसने बालक को लहर तालाब (काशी) के किनारे फेंक दिया। संयोग से नीरू जुलाहा अपनी स्त्री नीमा के साथ उसी राह से आरहा था। उसने उस अनाथ बच्चे को घर लाकर पाला। पीछे वही कबीर नाम से विख्यात हुआ।

कबीर साहब बालकपन ही से बड़े धर्मपरायण थे। जब उनको सुध-

बुध होगई तब वह तिलक लगाकर राम राम जपा करते थे। एक जुलाहे के घर में रहकर तिलक लगाना और राम राम जपना असभव-सा प्रतीत होता है। परन्तु सगति का प्रभाव बड़ा विचित्र होता है, वह असभव को सभव कर देता है।

ऐसी कहावत है कि कबीर साहब स्वामी रामानद के शिष्य थे। स्वामी रामानद शेष रात्रि मे गगा-स्नान के लिए मणिकर्णिका घाट पर नित्य जाया करते थे। एक दिन इसी समय कबीर साहब घाट की सीढियो पर जाकर सो रहे। अधेरे मे स्वामीजी का पैर उनके ऊपर पड गया। तब वे कुलबुलाये। स्वामीजी ने कहा—"राम राम कह, राम राम कह" कबीर साहब ने उसी को गुरुमत्र मान लिया। उसी दिन से उन्होने काशी मे अपने को स्वामी रामानद का शिष्य प्रसिद्ध किया। यवन के घर मे पले होने पर भी कबीर साहब की प्रवृत्ति हिन्दू-धर्म की तरफ अधिक थी।

कबीर साहब अपने जीवन का निर्वाह अपना पैतृक व्यवसाय करके ही करते थे। यह बात वह स्वय स्वीकार करते है—

"हम घर सूत तनहिं नित ताना"।

कबीर साहब ने विवाह किया था या नही, इस विषय मे भी बड़ा मतभेद है। कबीर-पथ के विद्वान् कहते है कि लोई नाम की स्त्री उनके साथ आजन्म रही, परन्तु उन्होने उससे विवाह नही किया। इसी प्रकार कमाल उनका पुत्र और कमाली उनकी पुत्री थी, इस विषय मे भी विचित्र बाते सुनी जाती है—"डूबे बस कबीर के उपजे पूत कमाल" यह भी एक कहावत-सा प्रसिद्ध होरहा है। इससे पता चलता है कि कबीर ने विवाह अवश्य किया था और कमाल कबीर का पुत्र था। कमाल भी कविता करते थे, परन्तु उन्होने कबीर साहब के सिद्धान्तो के खडन करने ही मे अपनी सारी उम्र बितादी। इसीसे "डूबे बस कबीर के उपजे पूत कमाल" कहा गया है।

कबीर साहब बड़े ही सुशील [illegible] सदाचारी थे। एक दिन की

बात है कि उनके यहा बीस-पच्चीस भूखे फकीर आए। कबीर साहब के पास उस दिन कुछ खाने को नही था। इसलिए वे बहुत घबराये। लोई ने कहा—यदि आज्ञा हो तो मै एक साहूकार के बेटे से कुछ रुपया लाऊ, वह मुझ पर मोहित है, मै पहुची नही कि उसने रुपये दिये नही। कबीर साहब ने कहा—जाओ, ले आओ। लोई साहूकार के बेटे के पास गई और उसने उससे अपना अभिप्राय कह सुनाया। साहूकार के बेटे ने तत्काल धन देदिया। जब अन्त मे उसने अपना मनोरथ प्रकट किया, तब लोई ने रात मे मिलने का वादा किया।

दिन खाने-खिलाने मे बीत गया। रात हुई, चारो ओर अधेरा छा गया। सयोग से उस दिन पानी बरस रहा था। लोई ने कबीर साहब से सब वृतान्त कह दिया था, इससे कबीर साहब को चैन नही था। वह सोचते थे कि जिसकी बात गई, उसका सब गया। उन्होने हवा-पानी की कुछ भी परवा न की और कम्बल ओढ़कर स्त्री को कधे पर बिठा कर वह साहूकार के घर पहुचे; आप तो बाहर खड़े रहे और लोई भीतर चली गई। न तो उसके कपडे भीगे थे और न उसके पैरो मे ही कीचड़ लगी थी। यह देखकर साहूकार के लड़के ने इसका कारण पूछा। लोई ने सब सच-सच कह दिया। यह सुनकर साहूकार के बेटे की कुवृत्ति बदल गई। वह लोई के पैर पर गिर पड़ा और कहा—तुम मेरी मा हो। इतना कहकर वह बाहर आया और कबीर साहब के पैर से लिपट गया और उसी दिन से वह उनका सेवक बन गया।

कबीर साहब के जीवन-चरित्र में ऐसी बहुत-सी कथाए है जिनसे उनकी सत्यनिष्ठता प्रकट होती है।

कबीर साहब ने अपना अधिकार हिन्दू-मुसलमानो दोनो पर जमाया। आजकल भी हिन्दू-मुसलमान दोनो प्रकार के कबीर-पथी मिलते है, परन्तु सर्वसाधारण हिन्दू और मुसलमान दोनों का कबीर मत से बैर हो गया। हिन्दू-धर्म के नेता एक अहिन्दू के मुख से हिन्दू-धर्म का प्रचार देखकर भड़के और मुसलमान कबीर साहब के हिन्दू-आचार्य का शिष्य होने तथा हिन्दू-धर्म का प्रचार करने के कारण कट्टर विरोधी होगये। इस विरोध के कारण उनको बड़ी-बड़ी कठिनाइया भोगनी पड़ी। परन्तु उनके हृदय मे जो सत्य का दीपक जल रहा था, वह किसी के बुझा न बुझा।

कबीर साहब ने स्वय कोई पुस्तक नही लिखी। वे साखी और भजन बनाकर कहा करते थे और उनके चेले उसे कठस्थ कर लेते थे, पीछे से वह सब सग्रह कर लिया गया। कबीर-पथ के अधिकाश उत्तम-उत्तम ग्रन्थ उनके शिष्यो के रचे हुए कहे जाते है।

"खास ग्रन्थो" मे निम्न-लिखित पुस्तके है—

१—सुखनिधान, २—गोरखनाथ की गोष्ठी, ३—कबीर पाजी, ४—वलख की रमैनी, ५—आनन्द राम सागर, ६—रामानन्द की गोठी ७—शब्दावली, ८—मगल, ९—बसन्त, १०—होली, ११—रेखता, १४—झूलन, १३—ककहरा, १४—हिन्दोल, १५—बारहमासा, १६—चाचर, १७—चौतीसी, १८—अलिफनामा, १९—रमैनी, २०—साखी, २१—बीजक।

कबीर-पथियो मे बीजक का बड़ा आदर है। बीजक दो है—एक तो बड़ा, जो स्वय कबीर साहब का काशिराज से कहा हुआ बतलाया जाता है, और दूसरे बीजक को कबीर के एक शिष्य भग्गूदास ने सग्रह किया है। दोनो मे बहुत कम अन्तर है।

कबीर साहब का उलटा प्रसिद्ध है। मेरी समझ मे लोगो को अपनी ओर आकर्षित करने के लिए ही कबीर साहब ऐसा कहा करते थे। यो तो अर्थ लगानेवाले कुछ न कुछ उलटा-सीधा अर्थ लगा ही लेते है;

परन्तु खीच-तानकर लगाये गए ऐसे अर्थों मे कुछ विशेषता नही रहती। नमूने के लिए एक पद यहा दिया जाता है—

ठगिनी क्या नैना झमकावै, कबिरा तेरे हाथ न आवै ॥
कद्दू काटि मृदङ्ग बनाया नीबू काटि मजीरा।
सात तरोई मगल गावै नाचै बालम खीरा ॥
भैस पदमिनी आसिक चूहा मेढ़क ताल लगावै।
चोला पहिरि गदहिया नाचै ऊट बिसुनपद गावै ॥
आम डार चढि कछूआ तोड़ै गिलहरि चुनि चुनि लावै।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, बगुला भोग लगावै ॥

बे सिर-पैर की बाते है। तब भी कबीर-पथी लोग इनका कुछ-न-कुछ अर्थ बैठा ही लेते है।

कबीर साहब मूर्ति-पूजा के कट्टर विरोधी थे। यद्यपि ईश्वर का अवतार धारण करना भी वह नही मानते थे, परन्तु अपने को उन्होंने स्वय सत्य-लोक-वासी प्रभु का दूत बतलाया है। वह कहते है—

काशी मे हम प्रकट भये है रामानद चेताये।
समरथ का परवाना लाये हस उबारन आये ॥
(शब्दावली)

लोगो का ऐसा कथन है कि मगहर में प्राण-त्याग करने से मुक्ति नही मिलती। भला, सत्यान्वेषक कबीर इस बात को कैसे मान सकते थे? उन्होने लोगो का यह भ्रम मिटाने के लिए ही मगहर में जाकर शरीर छोड़ा। इस विषय मे उन्होने कहा है—

जो कबीर काशी मरे तो रामहिं कौन निहोरा।

* * *

जस काशी तस मगहा ऊसर हृदय राम जो होई।

कबीर साहब की कविता मे बड़ी शिक्षा भरी है। एक-एक पद से उनकी सत्य-निष्ठा प्रकट होती है। उन्होने जो कहा है, प्राय. सभी एक-से-एक बढकर है। हमने उन्हींमें से कुछ साखी और भजन चुन लिये

है। हमे कबीर साहब की साखी मे बड़ा आनन्द मिलता है। बातें तो छोटी-सी हैं, परन्तु उनमे अगाध ज्ञान भरा हुआ है।

हम यहा कबीर साहब की कुछ साखिया और भजन उद्धृत करते है—

साखी

गुरु गोविन्द दोऊ खडे, काके लागू पांय।
बलिहारी गुरु आपने, जिन गोविन्द दिया बताय॥ १॥
यह तन बिष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिलैं, तौ भी सस्ता जान॥ २॥
बहे बहाये जात थे, लोक बेद के साथ।
पैंड़ा मे सतगुरु मिलें, दीपक दीन्हा हाथ॥ ३॥
ऐसा कोई ना मिला, सत्त नाम का मीत।
तन मन सौपे मिरग ज्यो, सुनै बधिक का गीत॥ ४॥
सतगुरु साचा सूरमा, नख सिख मारा पूर।
बाहर घाव न दीखई, भीतर चकनाचूर॥ ५॥
सुख के माथे सिलि परै, (जो) नाम हृदय से जाय।
बलिहारी वा दुक्ख की, पल पल नाम रटाय॥ ६॥
लेने को सतनाम है, देने को अन दान।
तरने को आधीनता, बूड़न को अभिमान॥ ७॥
दुख मे सुमिरन सब करै, सुख मे करै न कोय।
जो सुख मे सुमिरन करै, तो दुख काहे होय॥ ८॥
सुमिरन की सुधि यों करै, ज्यो गागर पनिहार।
हालै डोलै सुरति मे, कहै कबीर विचार॥ ९॥
माला तो कर मे फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवा तो दहु दिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं॥१०॥
गगन मंडल के बीच मे, जहां सोहगम डोरि।
सबद अनाहद होत है, सुरत लगी तह मोरि॥११॥

कबिरा गर्ब न कीजिये, काल गहे कर केस।
ना जानौ कित मारि है, क्या घर क्या परदेस ॥१२॥
हाड जरै ज्यो लाकडी, केस जरै ज्यो घास।
सब जग जरिता देखि कर, भये कबीर उदास ॥१३॥
झूठे सुख को सुख कहै, मानत है मन मोद।
जगत चबेना काल का, कुछ मुख मे कुछ गोद ॥१४॥
पानी केरा बुदबुदा, अस मानुष की जात।
देखत ही छिपि जायगी, ज्यो तारा परभात ॥१५॥
रात गवाई सोय करि, दिवस गवायो खाय।
हीरा जनम अमोल था, कौड़ी बदले जाय ॥१६॥
आज कहै कल्ह भजूंगा, काल कहै फिर काल।
आज कालके करत ही, औसर जासी चाल ॥१७॥
आछे दिन पाछे गये, गुरु से किया न हेत।
अब पछतावा क्या करै, चिडिया चुग गई खेत ॥१८॥
काल करै सो आज कर, आज करै सो अब्ब।
पल मे परलै होयगी, बहुरि करैगा कब्ब ॥१९॥
कबिरा नौबत आपनी, दिन दस लेहु बजाय।
यह पुर पट्टन यह गली, बहुरि न देखौ आय ॥२०॥
पाचो नौबत बाजती, होत छतीसो राग।
सो मन्दिर खाली पड़ा, बैठन लागे काग ॥२१॥
कहा चुनावै मेड़िया, लम्बी भीति उसारि।
घर तो साढे तीन हथ, घना तो पौने चारि ॥२२॥
माटी कहै कुम्हार को, तू क्या रूँदै मोहि।
इक दिन ऐसा होइगा, मै रूँदूगी तोहि ॥२३॥
यह तन काचा कुम्भ है, लिए फिरै था साथ।
टपका लागा फूटिया, कछु नहि आया हाथ ॥२४॥

आये हैं सो जायगे, राजा रक फकीर।
एक सिघासन चढि चले, एक वधे जजीर ॥२५॥
आसपास जोधा खडे, सभी बजावें गाल।
मझ महल से लै चला, ऐसा काल कराल ॥२६॥
या दुनिया में आय के, छाडि देइ तू ऐंठ।
लेना होय सो लेइ ले, उठी जात है पैंठ ॥२७॥
कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोय।
आप ठगे सुख ऊपजै, और ठगे दुख होय ॥२८॥
ऐसी गति ससार की, ज्यो गाडर की ठाट।
एक पडा जेहि गाड मे, सबै जाहि तेहि बाट ॥२९॥
तू मत जानै बावरे, मेरा है सब कोय।
पिंड प्रान से बधि रहा, सो अपना नहिं होय ॥३०॥
इक दिन ऐसा होयगा, कोउ काहू का नाहिं।
घर की नारी को कहै, तन की नारी जाहिं ॥३१॥
नाम भजो तो अब भजो, बहुरि भजोगे कब्ब।
हरियर हरियर रूखडे, ईधन्न हो गये सब्ब ॥३२॥
माली आवत देखि कै, कलिया करी पुकार।
फूली फूली चुनि लिये, कालि हमारी बार ॥३३॥
हम जानै थे खाहिंगे, बहुत जमी बहु माल।
ज्यो का त्यों ही रहि गया, पकरि लै गया काल ॥३४॥
भक्ति भाव भादो नदी, सबै चली घहराय।
सरिता सोइ सराहिये, जो जेठ मास ठहराय ॥३५॥
जब लगि भक्ति सकाम है, तब लगि निष्फल सेव।
कह कबीर वह क्यो मिले, निकामी निज देव ॥३६॥
लागी लागी क्या करे, लागी बुरी बलाय।
लागी सोई जानिये, जो वार पार ह्वै जाय ॥३७॥

लागी लगन छूटै नही, जीभ चोंच जरि जाय।
मीठा कहा अगार मे, जाहि चकोर चवाय ॥३८॥
सोओं तो सुपने मिलै, जागौ तो मन माहिं।
लोचन राता सुधि हरी, बिछुरत कवहूं नाहिं ॥३९॥
ज्यों तिरिया पीहर वसै, सुरति रहै पिय माहिं।
ऐसे जन जग मे रहै, हरि को भूलै नाहिं ॥४०॥
कवीर हंसना दूर करु, रोने से करु चीत।
विन रोये क्यो पाइये, प्रेम पियारा मीत ॥४१॥
हंसौ तो दुख ना वीसरै, रोवौं वल घटि जाय।
मनही माहिं विसूरना, ज्यौ घुन काठहिं खाय ॥४२॥
हँस हँस केतन पाइया, जिन पाया तिन रोय।
हासी खेले पिउ मिलै, (तो) कौन दुहागनि होय ॥४३॥
सुखिया सव संसार है, खावै औ सोवै।
दुखिया दास कवीर है, जागै औ रोवै ॥४४॥
मांस गया पिञ्जर रहा, ताकन लागे काग।
साहिव अजहुं न आइया, मन्द हमारे भाग ॥४५॥
हवस करै पिय मिलन की, औ सुख चाहै अंग।
पीर सहे विनु पदमिनी, पूत न लेत उछंग ॥४६॥
विरहिनि ओदी लाकड़ी, सपचे औ धुंधुआय।
छूटि पड़ौं या विरह से, जो सिगरो जरि जाय ॥४७॥
पावक रूपी नाम है, सव घट रहा समाय।
चित चकमक चहुटै नही, धूवां ह्वै ह्वै जाय ॥४८॥
जो जन विरही नाम के, तिनकी गति है येह।
देही से उद्यम करै, सुमिरन करै विदेह ॥४९॥
विरहा विरहा मत कहो, विरहा है सुल्तान।
जा घट विरह न संचरै, सो घट जान मसान ॥५०॥

आगि लगी आकास मे, झरि झरि परै अगार।
कबिरा जरि कचन भया, कांच भया संसार ॥५१॥
कबिरा वैद बुलाइया, पकरि के देखी बाहि।
वैद न वेदन जानई, करक करेजे माहि ॥५२॥
जाहु वैद घर आपने, तेरा किया न होय।
जिन या बेदन निर्मई, भला करैगा सोय ॥५३॥
सीस उतारै भुइ धरै, तापर राखै पाव।
दास कबीरा यों कहै, ऐसा होय तो आव ॥५४॥
प्रेम न बाडी ऊपजै, प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै, सीस देइ लै जाय ॥५५॥
छिनहि चढ़ै छिन ऊतरै, सो तो प्रेम न होय।
अघट प्रेम पिंजर बसै, प्रेम कहावै सोय ॥५६॥
प्रेम प्रेम सब कोई कहै, प्रेम न चीन्है कोय।
आठ पहर भीना रहै, प्रेम कहावै सोय ॥५७॥
जब मै था तब गुरु नही, अब गुरु है हम नाहिं।
प्रेम गली अति सांकरी, ता मे दो न समाहि ॥५८॥
जा घट प्रेम न सचरे, सो घट जान मसान।
जैसे खाल लुहार की, सांस लेत बिन प्रान ॥५९॥
प्रेम तो ऐसा कीजियो, जैसे चंद चकोर।
घीच टूटि भुइं मा गिरै, चितवै वाही ओर ॥६०॥
जहा प्रेम तहं नेम नहि, तहा न बुधि व्यौहार।
प्रेम मगन जब मन भया, कौन गिने तिथि वार ॥६१॥
प्रेम छिपाया न छिपै, जा घट परगट होय।
जो पै मुख बोलै नही, नैन देत है रोय ॥६२॥
पीया चाहे प्रेम रस, राखा चाहै मान।
एक म्यान मे दो खड्ग, देखा सुना न कान ॥६३॥

कबिरा प्याला प्रेम का, अन्तर लिया लगाय।
रोम रोम मे रमि रहा, और अमल क्या खाय ॥६४॥
नैनो की करि कोठरी, पुतली पलग बिछाय।
पलकों की चिक डारि के, पिय को लिया रिझाय ॥६५॥
जल मे बसै कमोदिनी, चन्दा वसै अकास।
जा है जाको भावता, सो ताही के पास ॥६६॥
प्रीतम को पतिया लिखू, जो कहुं होय विदेस।
तन मे मन मे नैन मे, ताको कहा सदेस ॥६७॥
साईं इतना दीजिये, जा मे कुटुम्ब समाय।
मै भी भूखा न रहू, साधु न भूखा जाय ॥६८॥
बिनवत हौ कर जोरि कै, सुनिये कृपा-निधान।
साधु सगति सुख दीजिये, दया गरीवी दान ॥६९॥
क्या मुख लै बिनती करौ, लाज आवत है मोहिं।
तुम देखत औगुन करौ, कैसे भावौं तोहिं ॥७०॥
अवगुन मेरे वापजी, बकसु गरीवनिवाज।
जो मै पूत कपूत हौ, तऊ पिता को लाज ॥७१॥
साहिब तुमहि दयाल हौ, तुम लगि मेरी दौर।
जैसे काग जहाज को, सूझै और न ठौर ॥७२॥
सिख तो ऐसा चाहिये, गुरु को सब कछु देय।
गुरु तो ऐसा चाहिये, सिख से कछु नहिं लेय ॥७३॥
सिंहों के लेहडे नही, हंसो की नहिं पांत।
लालों की नहिं बोरिया, साधु न चलै जमात ॥७४॥
साधु कहावन कठिन है, ज्यो खांडे की धार।
डगमगाय तो गिरि परे, निचल उतरै पार ॥७५॥
गाठी दाम न वाधई, नहिं नारी से नेह।
कह कवीर ता साधु के, हम चरनन की खेह ॥७६॥

साधु हमारी आतमा, हम साधुन के जीव।
साधुन मद्धे यो रहौ, ज्यो पय मद्धे घीव ॥७७॥
जाति न पूछो साधु की, पूछि लीजिये ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान ॥७८॥
कबीर सगत साधु की, हरै और की ब्याधि।
संगत बुरी असाधु की, आठो पहर उपाधि ॥७९॥
कबीर संगत साधु की, जौ की भूसी खाय।
खीर खांड़ भोजन मिले, साकट संग न जाय ॥८०॥
कबीर सगत साधु की, ज्यो गधी का बास।
जो कछु गधी दे नही, तौ भी बास सुबास ॥८१॥
कबीर संगत साधु की, निष्फल कभी न होय।
होसी चदन बासना, नीम न कहसी कोय ॥८२॥
संगति भई तो क्या भया, हिरदा भया कठोर।
नौ नेजा पानी चढे, तऊ न भीजै कोर ॥८३॥
हरियर जानै रूखड़ा, जौ पानी का नेह।
सूखा काठ न जानही, केतहु बूडा मेह ॥८४॥
मारी मरै कुसंग की, ज्यो केले ढिग बेर।
वह हालै वह चीरई, साकट संग निबेर ॥८५॥
केला तबहि न चेतया, जब ढिग जामी बेरि।
अब के चेते क्या भया, कांटों लीन्हा घेरि ॥८६॥
समदृष्टी सतगुरु किया, मेटा भरम बिकार।
जहं देखों तहं एकही, साहिब का दीदार ॥८७॥
सहज मिलै सो दूध सम, मागा मिलै सो पानि।
कह कबीर वह रक्त सम, जामे ऐचातानि ॥८८॥
साधू ऐसा चाहिये, जैसा सूप सुभाय।
सार सार को गहि रहै, थोथा देइ उड़ाय ॥८९॥

आटा तजि भूसी गहै, चलना देखु निहार।
कबीर सारहि छाड़ि कै, करै असार अहार ॥९०॥
उतते कोई न बाहुरा, जाते बूझूं धाय।
इतते सबही जात है, भार लदाय लदाय ॥९१॥
उतते सतगुरु आइया, जा की बुधि है धीर।
भवसागर के जीव को, खेइ लगावै तीर ॥९२॥
जो आवै तो जाय नहिं, जाय तो आवै नाहिं।
अकथ कहानी प्रेम की, समझ लेहु मन माहिं ॥९३॥
सूली ऊपर घर करै, विष का करै अहार।
ताको काल कहा करे, जो आठ पहर हुसियार ॥९४॥
नांव न जानौं गांव का, बिन जाने कित जांव।
चलता चलता जुग भया, पाव कोस पर गांव ॥९५॥
सतगुरु दीनदयाल है, दया करी मोहिं आय।
कोटि जनम का पंथ था, पल मे पहुंचा जाय ॥९६॥
चलन चलन सब कोइ कहै, मोंहि अंदेशा और।
साहिब से परिचय नही, पहुचैंगे केहि ठौर ॥९७॥
कबीर का घर सिखर पर, जहां सिलहली गैल।
पांव न टिकै पिपीलिका, पंडित लादे बैल ॥९८॥
मरिये तो मरि जाइये, छूटि परै जंजार।
ऐसा मरना को मरै, दिन में सौ सौ बार ॥९९॥
कस्तूरी कुंडल बसै, मृग ढूंढै बन माहिं।
ऐसे घट मे पीव है, दुनिया जानै नाहिं ॥१००॥
द्वार धनी के पड़ि रहै, धका धनी का खाय।
कबहुंक धनी निवाजई, जो दर छाड़ि न जाय ॥१०१॥
जरा मीच व्यापै नही, मुआ न सुनियें कोय।
चलु कबीर वा देस को, जहँ बैद साइयां होय ॥१०२॥

साध सती औ सूरमा, ज्ञानी औ गज-दंद।
एते निकसि न बहुरे, जो जुग जाहि अनन्त ॥१०३॥
सिर राखे सिर जात है, सिर काटे सिर सोय।
जैसे बाती दीप की, कटि उजियारा होय ॥१०४॥
जूझेंगे तब कहेंगे, अब कछु कहा न जाय।
भीड पडे मन मसखरा, लडै किधौं भगि जाय ॥१०५॥
अगिन आच सहना सुगम, सुगम खडग की धार।
नेह निभावन एक रस, महा कठिन ब्योहार ॥१०६॥
सूरा नाम धराइ के, अब को डरपै बीर।
मंडि रहना मैदान में, सन्मुख सहना तीर ॥१०७॥
पतिबरता को सुख घना, जाके पति है एक।
मन मैली बिभिचारनी, ताके खसम अनेक ॥१०८॥
पतिबरता पति को भजे, और न आन सुहाय।
सिंह बचा जो लघना, तौ भी घास न खाय ॥१०९॥
नैनों अन्तर आव तू, नैन झापि तोंहि लेव।
ना मै देखौ और को, ना तोंहि देखन देव ॥११०॥
मै सेवक समरत्थ का, कबहु न होय अकाज।
पतिबरता नागी रहै, तो वाही पति की लाज ॥१११॥
सब आये उस एक में, डार पात फल फूल।
अब कहो पाछे क्या रहा, गहि पकड़ा जब मूल ॥११२॥
चन्दन गया विदेसड़े, सब कोइ कहै पलास।
ज्यों ज्यो चूल्हे झोंकिया, त्यों त्यों अधिकी बास ॥११३॥
लाली मेरे लाल की, जित देखों तित लाल।
लाली देखन मै गई, मै भी होगई लाल ॥११४॥
हम बासी वा देश जह, बारह मास बिलास।
प्रेम झिरै बिगसै कंवल, तेज पुज परकास ॥११५॥

कबीर जब हम गावते, तब जाना गुरु नाहिं।
अब गुरु दिल मे देखिया, गावन को कछु नाहिं ॥११६॥
ज्ञानी से कहिये कहा, कहत कबीर लजाय।
अंधे आगे नाचते, कला अकारथ जाय ॥११७॥
जो तोको काटा बुवै, ताहि बोव तू फूल।
तोहिं फूल को फूल है, वाको है तिरसूल ॥११८॥
दुर्बल को न सताइये, जाकी मोटी हाय।
बिना जीव की स्वास से, लोह भस्म होजाय ॥११९॥
ऐसी वानी बोलिये, मन का आपा खोय।
औरन को सीतल करै, आपहु सीतल होय ॥१२०॥
हस्ती चढिये ज्ञान की, सहज दुलीचा डारि।
स्वान रूप संसार है, भूसन दे झख मारि ॥१२१॥
आवत गारी एक है, उलटत होय अनेक।
कहि कबीर नहिं उलटिये, वही एक की एक ॥१२२॥
कथा कीरतन रात दिन, जाके उद्यम येह।
कह कबीर ता साधु की, हम चरनन की खेह ॥१२३॥
बन्दे तू कर बन्दगी, तौ पावै दीदार।
औसर मानुष जनम का, बहुर न बारम्बार ॥१२४॥
साधु भया तो क्या भया, बोलै नाहिं बिचार।
हतै पराई आतमा, जीभ बांधि तरवार ॥१२५॥
मधुर बचन है औषधी, कटुक बचन है तीर।
स्रवन द्वार ह्वै संचरै, सालै सकल सरीर ॥१२६॥
बोलत ही पहिचानिये, साहु चोर को घाट।
अन्तर की करनी सबै, निकसै मुख की बाट ॥१२७॥
जिन ढूढा तिन पाइयां, गहिरे पानी पैठ।
जो बौरा डूबन डरा, रहा किनारै बैठ ॥१२८॥

पढना गुनना चातुरी, यह तो बात सहल।
काम दहन मन बसि करन, गगन चढन मुस्कल ॥१२९॥
भय बिनु भाव न ऊपजै, भय बिनु होय न प्रीति।
जब हिरदे से भय गया, मिटी सकल रस रीति ॥१३०॥
कथनी मीठी खाड सी, करनी विष की लोय।
कथनी तज करनी करै, तौ विष से अमृत होय ॥१३१॥
लाया साखि बनाय करि, इत उत अच्छर काट।
कह कबीर कब लग जिये, जूठी पत्तल चाट ॥१३२॥
पानी मिलै न आपको, औरन बकसत छीर।
आपन मन निस्चल नही, और बंधावत धीर ॥१३३॥
मारग चलते जो गिरै, ताकौ नाही दोस।
कह कबीर बैठा रहै, ता सिर करडे कोस ॥१३४॥
रोड़ा होइ रहु बाट का, तजि आपा अभिमान।
लोभ मोह तृसना तजै, ताहि मिलै भगवान् ॥१३५॥
रोड़ा भया तो क्या भया, पथी को दुख देह।
साधू ऐसा चाहिये, ज्यो पैड़े की खेह ॥१३६॥
खेह भई तो क्या भया, उड़ि उड़ि लागै अग।
साधू ऐसा चाहिये, जैसे नीर निपग ॥१३७॥
नीर भया तो क्या भया, ताता सीरा जोय।
साधू ऐसा चाहिये, जो हरि ही जैसा होय ॥१३८॥
हरी भया तो क्या भया, जो करता हरता होय।
साधू ऐसा चाहिये, जो हरिभज निरमल होय ॥१३९॥
निरमल भया तो क्या भया, निरमल मागे ठौर।
मल निरमल ते रहित है, ते साधू कोई और ॥१४०॥
साच बराबर तप नही, झूठ बराबर पाप।
जाके हिरदे साच है, ताके हिरदे आप ॥१४१॥

सांचे स्राप न लागई, सांचे काल न खाय।
सांचा को साचा मिलै, सांचे मांहि समाय ॥१४२॥
साचे काइ न पतीजई, झूठे जग पतियाय।
गली गली गोरस फिरै, मदिरा बैठि बिकाय ॥१४३॥
सांचे को सांचा मिलै, अधिक बढ़े सनेह।
झूठे को सांचा मिलै, तड़दे टूटै नेह ॥१४४॥
जहां दया तहं धर्म है, जहा लोभ तहं पाप।
जहां क्रोध तह काल है, जहा छिमा तहं आप ॥१४५॥
बुरा जो देखन मै चला, बुरा न मिलिया कोय।
जो दिल खोजों आपना, मुझसा बुरा न कोय ॥१४६॥
दाया दिल में राखिये, तू क्यों निरदइ होय।
साईं के सब जीव है, कीड़ी कुजर सोय ॥१४७॥
कोटि करम लागे रहे, एक क्रोध का लार।
किया कराया सब गया, जब आया हंकार ॥१४८॥
दसो दिसा से क्रोध की, उठी अपरबल आगि।
सीतल सगति साधु की, तहा उबरिये भागि ॥१४९॥
बड़ा हुआ तो क्या हुआ, जैसे पेड़ खजूर।
पथी को छाया नही, फल लागै अति दूर ॥१५०॥
जहं आपा तहं आपदा, जह संसय तहं सोग।
कह कबीर कैसे मिटै, चारो दीरघ रोग ॥१५१॥
कबीर जोगी जगत गुरु, तजै जगत की आस।
जो जग की आसा करै, तो जगत गुरू वह दास ॥१५२॥
तन तुरंग असवार मन, कर्म पियादा साथ।
त्रिस्ना चली सिकार को, विषे वाज लिये हाथ ॥१५३॥
चलौ चलौ सब कोई कहै, पहुचै विरला कोय।
एक कनक अरु कामिनी, दुरगम घाटी दोय ॥१५४॥

पर नारी पैनी छुरी, मत कोइ लावो अंग ।
रावन के दस सिर गये, परनारी के सग ॥१५५॥
सब सोने की सुन्दरी, आवै बास सुबास ।
जो जननी ह्वै आपनी, तऊ न बैठे पास ॥१५६॥
छोटी मोटी कामिनी, सब ही विष की बेल ।
बैरी मारै दाव दै, यह मारै हसि खेल ॥१५७॥
जागत मे सोवन करै, सोवन मे लौ लाय ।
सुरति डोर लागी रहै, तार टूटि नहिं जाय ॥१५८॥
निन्दक नियरे राखिये, आगन कुटी छवाय ।
बिन पानी साबुन बिना, निर्मल करै सुभाय ॥१५९॥
तिनका कबहु न निंदिये, जो पायन तर होय ।
कबहू उडि आखिन परै, पीर घनेरी होय ॥१६०॥
दोष पराये देखि करि, चले हसन्त हसन्त ।
अपने याद न आवई, जिनका आदि न अन्त ॥१६१॥
माखी गुड़ मे गड़ि रही, पख रह्यो लपटाय ।
हाथ मलै औ सिर धुने, लालच बुरी बलाय ॥१६२॥
औगुन कहौ शराब का, ज्ञानवत सुनि लेय ।
मानुष से पसुआ करै, द्रव्य गाठि को देय ॥१६३॥
रूखा सूखा खाइ कै, ठडा पानी पीव ।
देखि बिरानी चूपड़ी, मत ललचावै जीव ॥१६४॥
कबीर साईं मुज्झ को, रूखी रोटी देय ।
चुपड़ी मागत मै डरू, रूखी छीन न लेय ॥१६५॥
सत्त नाम को छाड़ि कै, करै और को जाप ।
बेस्या केरे पूत ज्यो, कहै कौन को बाप ॥१६६॥
एकै साधै सब सधै, सब साधै सब जाय ।
जो गहि सेवै मूल को, फूलै फलै अघाय ॥१६७॥

पाहन पूजे हरि मिलै, तो मै पुजौ पहार।
तातें ये चाकी भली, पीस खाय ससार ॥१६८॥
काकर पाथर जोरि कै, मसजिद लई चुनाय।
ता चढि मुल्ला बाग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय ॥१६९॥
पोथी पढि पढ़ि जग मुआ, पडित हुआ न कोय।
ढाई अक्षर प्रेम का, पढ़े सो पडित होय ॥१७०॥
सपने मे साईं मिले, सोवत लिया जगाय।
आखि न खोलू डरपता, मति सुपना ह्वै जाय ॥१७१॥
सांझ पड़े दिन बीतवै, चकवी दीन्ही रोय।
चल चकवा वा देस को, जहा रैन ना होय ॥१७२॥
चात्रिक सुतहि पढ़ावही, आन नीर मति लेय।
मम कुल यही स्वभाव है, स्वाति बूंद चित देय ॥१७३॥
जूआ चोरी मुखबिरी, व्याज घूस पर नार।
जो चाहै दीदार को, एती वस्तु निवार ॥१७४॥
धरती करते एक पग, समुदर करते फाल।
हाथन परबत तौलते, तिनहूं खाया काल ॥१७५॥
तत्व तिलक माथे दिया, सुरति सरवनी कान।
करनी कंठी कठ मे, परसा पद निर्बान ॥१७६॥
गगन गरजि बरसै अमी, बादल गहरि गंभीर।
चहुंदिस दमकै दामिनी, भीजै दास कबीर ॥१७७॥
सुन्न मँडल मे घर किया, बाजै सबद रसाल।
रोम रोम दीपक भया, प्रकटे दीनदयाल ॥१७८॥
सौ जोजन साजन वसै, मानो हृदय मंझार।
कपट सनेही आगने, जानु समुदर पार ॥१७९॥
हरि से तू जनि हेत कर, कर हरिजन से हेत।
माल मुलुक हरि देत है, हरिजन हरि ही देत ॥१८०॥

कबिरा माला मनहिं की, और संसारी भेख।
माला फरे हरि मिलै, गले रहट के देख ॥१८१॥
साधू गाठि न बाधई, उदर समाना लेप।
आगे पाछे हरि खड़े, जब मागै तब देय ॥१८२॥
बात बनाई जग ठगा, मन परबोधा नाहिं।
कह कबीर मन लै गया, लख चौरासी माहि ॥१८३॥
कबिरा माला काठ की, बहुत जतन का फेर।
माला साँस उसास की, जामे गाठ न मेर ॥१८४॥
सती न पीसै पीसना, जो पीसै सो राड।
साधू भीख न मागई, जो मागै सो भाड ॥१८५॥
आव गई आदर गया, नैनन गया सनेह।
ये तीनो तब ही गये, जबहिं कहा कछु देह ॥१८६॥
कबिरा नवै सो आपको, पर को नवै न कोय।
घालि तराजू तोलिये, नवै सो भारी होय ॥१८७॥
तरवर तासु बिलम्बिये, बारह मास फलन्त।
सीतल छाया सघन फल, पछी केल करन्त ॥१८८॥
कबिरा हम गुर रस पिया, बाकी रही न छाक।
पाका कलस कुम्हार का, बहुरि न चढ़सी चाक ॥१८९॥
सब रग तात, रबाब तन, बिरह बजावे नित्त।
और न कोई सुनि सकै, कै साई कै चित्त ॥१९०॥
गुरु कुम्हार सिष कुम्भ है, गढ गढ काढ़ै खोट।
अन्तर हाथ सहार दै, बाहर बाहै चोट ॥१९१॥
केसन कहा बिगारिया, जो मूडो सौ बार।
मन को क्यों नही मूडिये, जामें विषय विकार ॥१९२॥
कबिरा रसरी पाव मे, कह सोवै सुख चैन।
स्वास नगारा कूच का, बाजत है दिन रैन ॥१९३॥

शब्दावली

(१)

मन फूला फूला फिरै जक्त मे कैसा नाता रे ॥ टेक ॥
माता कहै यह पुत्र हमारा बहिन कहै बिर मेरा ।
भाई कहै यह भुजा हमारी नारि कहै नर मेरा ॥
पेट पकरि माता रोवै बाह पकरि कै भाई ।
लपटि झपटि कै तिरिया रोवै हंस अकेला जाई ॥
जब लगि माता जीवै रोवै बहिन रोवै दस मासा ।
तेरह दिन तक तिरिया रोवै फेर करै घर बासा ॥
चार गजी चरगजी मगाया चढ़ा काठ की घोड़ी ।
चारो कोने आग लगाया फूक दियो जस होरी ॥
हाड़ जरै जस लाह कड़ी को केस जरै जस घासा ।
सोना ऐसी काया जरि गई कोई न आयो पासा ॥
घर की तिरिया देखन लागी ढूढ़ि फिरी चहु देसा ।
कहै कबीर सुनो भई साधो छोड़ो जग की आसा ॥

(२)

काया बौरी, चलत प्रान काहे रोई ॥ टेक ॥
काया पाय बहुत सुख कीन्हो नित उठि मलि मलि धोई ।
सो तन छिआ छार ह्वै जैहै नाम न लैहै कोई ॥
कहत प्रान सुनु काया बौरी मोर तोर सग न होई ।
तोहि अस मित्र बहुत हम त्यागा सङ्ग न लीन्हा कोई ॥
ऊसर खेत कै कुसा मगावै चाचर चवर कै पानी ।
जीवत ब्रह्म को कोई न पूजै मुरदा कै मिहमानी ॥
सब सनकादिक आदि ब्रह्मादिक सेस सहस मुख होई ।
जो जो जन्म लियो बसुधा में थिर न रह्यो है कोई ॥
पाप पुन्य है जन्म सघाती समुझि देखि नर लोई ।
कहत कबीरा अन्तर की गति जानत बिरला कोई ॥

(३)

आई गवनवाँ की सारी, उमिरि अबही मोरी बारी ।।टेक।।
साज समाज पिया लै आये और कहरिया चारी ।
बम्हना बेदरदी अचिरा पकरि कै जोरत गठिया हमारी ।।
सखी सब गावत गारी ।।
विधि गति बाम कछु समझ परत ना बैरी भई महतारी ।
रोय रोय अखिया मोर पोछत घरवा से देत निकारी ।।
भई सबको हम भारी ।।
गवन कराय पिया लै चाले इत उत बाट निहारी ।
छूटत गाव नगर से नाता छूटै महल अटारी ।।
करम गति टरै न टारी ।।
नदिया किनारे बलम मोर रसिया दीन्ह घूघट पट टारी ।
थरथराय तन कापन लागे काहू न देख हमारी ।।
पिया लै आये गोहारी ।।
कहँ कबीर सुनो भई साधो यह पदु लेहु बिचारी ।
अब के गौना बहुरि नहि औना करिले भेट अकवारी ।।
एक बेर मिलि ले प्यारी ।

(४)

हमन है इस्क मस्तानों हमन को होसियारी क्या ?
रहै आजाद या जग मे हमन दुनिया से यारी क्या ?
जो बिछुड़े है पियारे से भटकते दर बदर फिरते ।
हमारा यार है हम मे हमन को इन्तिजारी क्या ?
खलक सब नाम अपने को बहुत कर सिर पटकता है ।
हमन गुरु नाम साचा है हमन दुनिया से यारी क्या ?
न पल बिछुड़े पिया हम से न हम बिछुडे पियारे से ।
उन्ही से नेह लागी है हमन को बेकरारी क्या ?

कबीरा इस्क का माता दुई को दूर कर दिल से।
जो चलना राह नाजुक है हमन सिर बोझ भारी क्या ?

५

भज ले सिरजनहार, सुघर तनके पायके ।।टेक ।।
काहे रहौ अचेत कहां यह औसर पैहौ।
फिर नहिं ऐसी देह बहुरि पाछै पछितैहौ ।।
लख चौरासी जोनि में, मानुष जन्म अनूप।
ताहि पाय नर चेतत नाही, कहा रंक कहा भूप ।। सुघर० ।।
गर्भ वास में रह्यो कह्यो मैं भजिहौं तोही।
निसदिन सुमिरौं नाम कष्ट से काढौ मोहीं ।।
चरनन ध्यान लगाइके, रहौं नाम लौ लाय।
तनिक न तोहि बिसारिहौं, यह तन रहै कि जाय।। सुघर० ।।
इतना कियो करार काढिगुरु बाहर कीना।
भूलि गयौ यह बात भयौ माया आधीना ।।
भूलि बातें उद्र की, आन पड़ी सुधि एत।
बारह बरस बीतिगे या बिधि, खेलत फिरत अचेत ।।सुघर०।।
विषया बान समान देह जोबन मदमाती।
चलत निहारत छाँह तमक के बोलत बाती ।।
चोवा चन्दन लाइ के, पहिरें बसन रँगाय।
गलिया-गलियां झांकी मारैं,पर तिरिया लख मुसकाय।।सुघर०।।
तरुनापन गई बीत बुढापा आनि तुलाने।
कांपन लागे सीस जलत दोउ चरन पिराने ।।
नैन नासिका चूवन लागे, मुख तें आवत बास।
कफ पित कंठै घेर लियो है, छुटि गइ घर की आस ।। सुघर० ।।
मातु पिता सुत नारि कहौ काके सङ्ग जाई।
तन धन घर औ काम धाम सब ही छुटि जाई।

आखिर काल घसीटि है, पड़िहौ जम कै फन्द ।
बिन सतगुरु नहिं बाचिहौं, समुझ देख मतिमन्द ।। सुघर० ।।
सफल होत यह देह नेह सतगुरु से कीजै ।
मुक्ती मारग जानि चरन सतगुरु चित दीजै ।।
नाम गहौ निरभय रहौ, तनिक न व्यापै पीर ।
यह लीला है मुक्ति की, गावत दास कबीर ।। सुघर० ।।

(६)

जाग पियारी अब का सोवै । रैन गई दिन काहे को खोवै ।।
जिन जागा तिन मानिक पाया । तै बौरी सब सोय गँवाया ।।
पिय तेरे चतुर तू मूरख नारी । कबहुँ न पिय की सेज सँवारी ।।
हौं बौरी बौरापन कीन्हो । भर जोबन अपना नहिं चीन्हो ।।
जाग देख पिय सेज न तेरे । तोहि छाड़ि उठि गये सबेरे ।।
कहे कबीर सोई धन जागे । सबद बान उर अन्तर लागै ।।

(७)

या जग अंधा, मै केहि समुझावों ।। टेक ।।
इक दुइ होयँ उन्हे समुझावों, सबहि भुलाना पेट के धन्धा ।।मै केहि०।।
पानी कै घोडा पवन असवरवा, ढरकि परै जस ओस कै बुन्दा ।।मै केहि०।।
गहिरी नदिया अगम बहै धरवा, खेवनहारा के पडिगा फन्दा ।।मै केहि०।।
घर का बस्तु निकट नहिं आवत, दियना बारिके ढूढत अधा ।।मै केहि०।।
लागी आग सकल बन जरिगा, बिन गुरु ज्ञान भटकिगा बदा ।।मै केहि०।।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, इकदिन जाय लगोटी झार बंदा।।मैकेहि०।।

(८)

सूर संग्राम को देखि भागै नही, देखि भागै सोई सूर नाही ।
काम और क्रोध मद लोभ से जूझना, मडा घमसान तहं खेत माही ।।
शील औ साच सतोष साही भये, नाम समसेर तहं खूब बाजै ।
कहै कब्बीर कोई जूझि है सूरमा, कायरां भीड़ तह तुरत भाजै ।।

(९)

ज्ञान का गेंद कर सुरति का दंड कर, खेल चौगान मैदान माहीं
जगत का भरमना छोड़दे बालके, आयजा भेख भगवंत पाहीं
भेष भगवंत की सेस महिमा करै, सेस के सीस पर चरन डारै
कामदल जीतिके कंवल दल सोधिके, ब्रह्मको वेधि कै क्रोध मारै
पद्म आसन करै पवन परिचै करै, गगन के महल पर मदन जारै
कहत कब्बीर कोई संत जन जौहरी, करम की रेख पर मेख मारै

(१०)

माया महा ठगिनि हम जानी।
तिरगुन फांस लिये कर डोलै मधुरी बानी॥
केशव के कमला ह्वै बैठी शिव के भवन भवानी।
पंडा के मूरत ह्वै बैठी तीरथ में भई पानी॥
योगी के योगिन ह्वै बैठी राजा के घर रानी।
काहू के हीरा ह्वै बैठी काहू के कौड़ी कानी॥
भक्तन के भक्तिन ह्वै बैठी ब्रह्मा के ब्रह्मानी।
कहै कबीर सुनो हो सन्तो यह सब अकथ कहानी॥

(११)

पायो सत नाम, गरे कै हरवा।
सांकर खटोलना रहनि हमारी दुबरे दुबरे पांच कहरवा।
ताला कुंजी हमें गुरु दीन्ही जब चाहों तब खोलों किवरवा॥
प्रेम प्रीति की चुनरी हमारी जब चाहौं तब नाचौं सहरवा।
कहै कबीर सुनो भाई साधो बहुर न ऐबै एही नगरवा॥

(१२)

कैसे दिन कटिहै, जतन बताये जइयो॥
एहि पार गंगा वोहि पार यमुना
बिचवा मड़इया हमको छवाये जइयो॥

अंचरा फारि के कागद बनाइन
अपनी सुरतिया हियरे लिखाये जइयो ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो
बहिया पकरि के रहिया बताये जइयो ॥

(१३)

करम गति टारे नाहिं टरी।
मुनि बसिष्ट से पंडित ज्ञानी सोधि के लगन धरी।
सीता हरन मरन दसरथ को बन मे बिपति परी ॥
कहं वह फन्द कहां वह पारधि कह वह मिरग चरी।
सोता को हरि लैगौ रावन सुबरन लंक जरी ॥
नीच हाथ हरिश्चन्द्र बिकाने बलि पाताल धरी।
कोटि गाय नित पुन्न करत नृग गिरगिट जोनि परी ॥
पांडव जिनके आपु सारथी तिन पर विपति परी।
दुरजोधन को गरब घटायो जदुकुल नास करी ॥
राहु केतु औ भानु चन्द्रमा विधि सयोग परी।
कहत कबीर सुनो भई साधो होनी होके रही ॥

(१४)

सन्तो राह दोऊ हम दीठा।
हिन्दू तुरुक हटा नहि मानै, स्वाद सबन को मीठा ॥
हिन्दू बरत एकादसि साधै, दूध सिंघाड़ा सेती।
अन को त्यागै मन नहि हटकै, पारन करै सगोती ॥
रोजा तुरुक नमाज गुजारै, बिसमिल बांग पुकारै।
उनकी भिस्त कहां ते होइ है, सांझे मुरगी मारै ॥
हिन्दू दया मेहर को तुरकन, दोनों घट सो त्यागी।
वै हलाल वै झटका मारै, आगि दुनों घर लागी ॥
हिन्दू तुरुक की एक राह है, सतगुरु इहै बताई।
कहैं कबीर सुनो हो सन्तो, राम न कहेउ खोदाई ॥

(१५)

अरे इन दोउन राह न पाई ।

हिन्दू अपनी करैं बड़ाई सागर छुवन न देई ।
बेस्या के पायन तर सोवैं यह देखो हिन्दुआई ॥
मुसलमान के पीर औलिया मुरगी मुरगा खाई ।
खाला केरी बेटी ब्याहैं घरहि मे करैं सगाई ॥
बाहर से एक मुरदा लाये धोय धाय चढवाई ।
सब सखियां मिल जेवन वैठी घर भर करैं बड़ाई ॥
हिन्दुन की हिन्दुआई देखी तुरकन की तुरकाई ।
कहैं कबीर सुनो भाई साधो कौन राह ह्वै जाई ॥

(१६)

मन न रंगाये, रंगाये जोगी कपरा ।

आसन मारि मंदिर मे बैठे, नाम छाड़ि पूजन लागे पथरा ॥
कनवा फड़ाय जोगी जटवा बढ़ौले, दाढी बढ़ाय जोगी होइ गैले बकरा ।
जङ्गल जाय जोगी धुनिया रमौले, काम जराय जोगी बनि गैले हिजरा ।
मथवा मुड़ाय जोगी कपड़ा रंगौले, गीता बांचि कै होइ गैले लबरा ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, जम दरवजवां बांधल जैबे पकरा ॥

(१७)

रमैया की दुलहिन लूटा बजार ।

सुरपुर लूट नागपुर लूटा, तीन लोक मच हाहाकार ।
ब्रह्मा लूटे महादेव लूटे, नारद मुनि के परी पिछार ॥
स्त्रिङ्गी की मिङ्गीकरि डारी, पारासर कै उदर विदार ।
कनफूका चिरकासी लूटे, लूटे जोगेसर करत विचार ॥
हम तो वचिगे साहव दया से, शब्द डोर गहि उतरे पार ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, इस ठगनी से रहो हुसियार ॥

(१७)

घूघट का पट खोल रे, तोहे पीव मिलेंगे ।

घट घट मे वह साईं रमता, कटुक बचन मत बोल रे।
धन जोबन को गरब न कीजै, झूठा पचरङ्ग चोल रे॥
सुन्न महल मे दियना बारि ले, आसन सों मत डोल रे।
जोग जुगुत सो रङ्ग महल मे, पिय पायो अनमोल रे॥
कहैं कबीर आनन्द भयो है, बाजत अनहद ढोल रे॥

(१९)

तेरे दया धरम नहिं तन मे, मुखड़ा क्या देखै दरपनमे॥
घरबारी तो घर मे राजी, फक्कड़ राजी बन मे॥
ऐठी धोती पाग लपेटी, तेल चुवत जुलफन मे।
गली गली की सखी रिझाई, दाग लगाया तन मे॥
पाथर की एक नाव बनाई, उतरा चाहै छन मे।
कहत कबीर सुनो भई साधो, कायर चढै न रन में॥

(२०)

मेरा तेरा मनुवा, कैसे एक होइ रे।
मै कहता हौ आखिन देखी, तू कहता कागद की लेखी।
मै कहता सुरझावन हारी, तू राख्यो अरुझाइ रे॥
मै कहता तू जागत रहियो, तू रहता है सोइ रे।
मै कहता निरमोही रहियो, तू जाता है मोहि रे॥
जुगन जुगन समझावत हारा, कहा न मानत कोइ रे।
तू तो रगी फिरै विहगी, सब धन डारा खोइ रे॥
सतगुरु धारा निरमल बाहै, वा मे काया धोइ रे।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, तब ही वैसा होइ रे॥

(२१)

बीत गये दिन भजन बिना रे।
बाल अवस्था खेल गवायो, जब जवानि तब मान किया रे॥
लाहे कारन मूल गवायो, अजहु न मिटी तेरे मनकी तृषा रे।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, पार उतरि गये सन्त जना रे॥

(२६)

लोका मति का भोरा रे।
जो कासी तन तजै कबीरा रामै कौन निहोरा रे॥
राम भगति पर जाको हित चित ताको अचरज काहा।
गुरु प्रताप साधु सगति जग जीतै जाति जोलाहा॥
कहत कबीर सुनौ रे सन्तो भरम परौ जनि कोई।
जस कासी तस मगहा ऊसर हृदय राम जो होई॥

रैदास

रैदासजी कबीर साहब के समय मे हुए थे। ये जाति के चमार थे। इनके पिता का नाम रग्घू और माता का नाम घुरबिनिया था। इनका जन्म काशी में हुआ था। ये भी महात्मा रामानन्द के शिष्यो मे थे।

रैदासजी और कबीर साहब में बहुत वादविवाद हुआ करता था। रैदासजी जब कुछ सयाने हुए तब भक्तो और साधुओं की सेवा मे अधिक रहने लगे। जो कुछ कमाते, सब साधु-सन्तो को खिला-पिला दिया करते थे। यह बात इनके पिता रग्घू को अच्छी नही लगी। उसने स्त्री सहित रैदासजी को घर से अलग कर दिया। खर्च के लिए वह इनको एक कौड़ी भी नही देता था। रैदासजी जूता बनाकर किसी तरह अपना गुजर करते और रात-दिन भगवत्-चर्चा मे मग्न रहा करते थे। ये मास मदिरा को छूते तक न थे। १२० वर्ष की अवस्था मे इन्होने शरीर छोडा।

इनके विषय मे बहुत-सी करामात की कहानिया लोगो मे प्रसिद्ध है। गुजरात प्रात मे इनके मत को माननेवाले लाखों आदमी है जो अपने को रविदासी कहते है। ये मीराबाई के गुरु थे। इनकी कविता से इनकी बड़ी भक्ति प्रकट होती है। रैदासजी के बनाये हुए कुछ दोहे और पद हम यहा उद्धृत करते है—

(१)

हरि सा हीरा छाडि कै, करै आन की आस।

ते नर जमपुर जाहिगे, सत भाषै रैदास ॥

(२)

रैदास रात न सोइये, दिवस न करिये स्वाद ।
अहनिसि हरिजी सुमिरिये, छाड़ि सकल प्रतिवाद ॥

(३)

भगती ऐसी सुनहु रे भाई ।
आइ भगती तब गई बड़ाई ।
कहा भयो नाचे अरु गाये कहा भयो तप कीन्हे ।
कहा भयो जे चरन पखारे जौलौं तत्व न चीन्हे ॥
कहा भयो जे मूड़ मुड़ायो कहा तीर्थ व्रत कीन्हे ।
खाली दास भगत अरु सेवक परम तत्व नहिं चीन्हे ॥
कह रैदास तेरी भगत दूर है भाग बड़े सो पावे ।
तजि अभिमान मेटि आपा पर पिपलिक ह्वै चुनि खावे ॥

(४)

पहले पहरे रैन दे बनजरिया तैं जनम लिया ससार वे ।
सेवा चूकी राम की तेरी बालक बुद्धि गंवार वे ॥
बालक बुद्धि न चेता तू भूला माया जाल वे ।
कहा होय पीछे पछताये जल पहिले न बांधी पाल वे ॥
वीस बरस का भया अयाना थांभि न सक्का भार वे ।
जन रैदास कहै बनजरिया जनम लिया ससार वे ॥

(५)

राम मैं पूजा कहा चढ़ाऊं । फल अरु मूल अनूप न पाऊं ॥
थनहर दूध जो बछरू जुठारी । पुहुप भंवर जल मीन बिगारी ॥
मलयागिर बेधियो भुअंगा । विष अमृत दोउ एकै संगा ॥
मन ही पूजा मन ही धूप । मन ही सेऊं सहज सरूप ॥
पूजा अरचा न जानू तेरी । कह रैदास कवन गति मेरी ॥

(५)

रे चित चेत अचेत काहे बालक को देख रे।
जाति ते कोई पद नहि पहुचा राम भगति विशेष रे ॥
खट क्रम सहित जे विप्र होते हरि भगति चित दृढ नाहि रे।
हरि की कथा सोहाय नाही स्वपच तूलै ताहि रे ॥
मित्र शत्रु अजात सबते अन्तर लावे हेत रे।
लाग वाकी कहा जानै तीन लोक पवेत रे ॥
अजामिल गज गनिका तारी काटी कुजर की पास रे।
ऐसे दुरमत मुक्त कीये तो क्यो न तरै रैदास रे ॥

(७)

जो तुम गोपालहि नहि गैहौ।
तो तुमका सुख मे दुख उपजै सुखहि कहां ते पैहौ ॥
माला नाय सकल जग डहको झूठो भेख बनैहौ।
झूठे ते साचे तब होइ हो हरि की सरन जब ऐहौ ॥
कनरस, बतरस और सबै रस झूठहि मूड डुलैहौ।
जब लगि तेल दिया मे बाती देखत ही बुझ जैहौ ॥
जो जन राम नाम रग राते और रग न सोहैहौ।
कह रैदास सुनो रे कृपानिधि प्रान गये पछितैहौ ॥

(८)

प्रभु जी सगति सरन तिहारी।
जग जीवन राम मुरारी ॥
गली गली को जल बहि आयो सुरसरि जाय समायो।
सगत के परताप महातम नाम गगोदक पायो ॥
स्वाति बूद बरसै फनि ऊपर सीस विषै होइ जाई।
वही बूंद कै मोती निपजै सगत की अधिकाई ॥
तुम चदन हम रेड वापुरे निकट तुम्हारे आसा।
सगत के परताप महातम आवै वास सुवासा ॥

जाति भी ओछी करम भी ओछा, ओछा कसब हमारा।
नीचे से प्रभु ऊंच कियो है कह रैदास चमारा॥

(९)

अब कैसे छूटै नाम रट लागी॥ टेक॥
प्रभु जी तुम चंदन हम पानी। जाकी अंग अंग बास समानी॥
प्रभु जी तुम घन बन हम मोरा। जैसे चितवत चंद चकोरा॥
प्रभु जी तुम दीपक हम बाती। जाकी जोति बरै दिन राती॥
प्रभु जी तुम मोती हम धागा। जैसे सोनहि मिलत सोहागा॥
प्रभु जी तुम स्वामी हम दासा। ऐसी भक्ति करै रैदासा॥

धर्मदास

धर्मदासजी जाति के कसौंधन बनिये और बाँधवगढ़ के बड़े भारी महाजन थे। इनके जन्म और मरण के समय का ठीक पता नहीं चलता। परन्तु ये कबीर साहब के समकालीन थे, यह निश्चय है।

धर्मदास जी बालकपन ही से बड़े धर्मात्मा और भगवत्-चर्चा के प्रेमी थे, साधु-संतों और पंडितों का बड़ा आदर-सत्कार करते थे। इन्होंने दूर-दूर तक तीर्थों की यात्रा की थी।

मथुरा से आते समय कबीर साहब से इनका साक्षात् हुआ। कबीर साहब ने मूर्तिपूजा और तीर्थ व्रत आदि का खंडन मंडन करके इनका चित्त संत-मत की ओर झुकाया। फिर तो ये बराबर कबीर साहब से मिलते रहे और अपना संशय मिटाते रहे। "अमर सुख निधान" ग्रन्थ में इनकी और कबीर साहब की बातचीत विस्तार के साथ लिखी है। उनमें बहुत-सी ज्ञान की बातें हैं।

कबीर साहब की शरण में आने पर धर्मदासजी ने अपना सारा धन लुटा दिया। सं० १५७५ वि० में जब कबीर साहब परमधाम को सिधारे तब उनकी गद्दी धर्मदास जी को मिली। उससे पंद्रह या बीस वर्ष के बाद इन्होंने भी इस संसार को छोड़ा।

इनकी शब्दावली मे से कुछ पद चुनकर हम यहा उद्धृत करते है—

(१)

मोरे पियाँ मिले सतं ज्ञानी ।

ऐसन पिय हम कबहु न देखा, देखत सुरत लुभानी ॥
आपन रूप जब चीन्हा बिरहिन, तब पिय के मन मानी ॥
कर्म जलाय के काजल कीन्हा, पढे प्रेम की बानी ॥
जब हसा चले मानसरोवर, मुक्ति भरे जह पानी ॥
धर्मदास कबीर पिय पाये, पिट गई आवाजानी ॥

(२)

गुर पैंया लागो, नाम लखा दीजो रे ॥

जनम जनम का सोया मनुआ, शब्दन मारि जगा दीजो रे ॥
घट अधियार् नैन नहि सूझै, ज्ञान का दीपक जगा दीजो रे ॥
विष की लहर उठत घट अन्तर, अमृत बूद चुवा दीजो रे ॥
गहिरी नदिया अगम बहै धरवा, खेय के पार लगा दीजो रे ॥
धरमदाम की अरज गुसाईं, अब के खेप निभा दीजो रे ॥

(३)

हम सत्त नाम के बैपारी ।

कोई कोई लादे कासा पीतल, कोई कोई लौग सुपारी ॥
हम तो लाद्यो नाम धनी को, पूरन खेप हमारी ॥
पूजी न टूटै नफा चौगुना, बनिज किया हम भारी ॥
हाट जगाती रोक न सकि है, निर्भय गैल हमारी ॥
मोती बूद घट ही मे उपजै, सुकिरत भरत कोठारी ॥
नाम पदारथ लाद चला है, धरम दास बैपारी ॥

(४)

झरि लागै महलिया, गगन घहराय ।

खन गरजै खन बिजुली चमकै, लहर उठै शोभावरनि न जाय ॥
सुन्न महल से अमृत बरसै, प्रेम आनन्द ह्वै साधु नहाय ॥

० खुली किवरिया मिटी अंधियरिया , धनसतगुरु जिन दिया लखाय ॥
धरमदास विनवै कर जोरी , सतगुरु चरन मे रहत समाय ॥

(५)

मितऊ मडैया सूनी करि गैलो ।
अपन वलम परदेस निकरि गैलो हमरा के कछुवो न गुन दै गैलो ॥
जोगिन ह्वै के मै वन वन ढूढो हमरा के विरह वैराग दै गैलो ॥
संग की सखी सव पार उतरि गैली हम धन ठाडी अकेली रहि गैलो ॥
धरमदास यह अरज करतु है सार सवद सुमिरन दै गैलो ॥

(६)

मोरा पिया वसै कौने देस हो ।
अपने पिया के ढूढन हम निकसी कोई न कहत सनेस हो ॥
पिय कारन हम भई है वावरी धर्यो जोगिनिया कै भेस हो ।
ब्रह्मा विष्णु महेस न जाने का जानै सारद सेस हो ॥
धनि जो अगम अगोचर पडलन हम सव सहत कलेस हो ।
उहा के हाल कवीर गुरु जानै आवत जात हमेस हो ॥

गुरु नानक

गुरु नानक का जन्म स० १५२६ वि०, कार्तिक की पूर्णिमा के दिन, चार घडी रात रहे, कल्यानचन्द खत्री की धर्मपत्नी तृप्ता के गर्भ से हुआ। कल्यानचन्द, जिला लाहौर, तहसील शकरपुर के तलवडी नगर के सूबाराय वुलार पठान के कारकुन थे।

गुरु नानक ने वालकपन ही मे अपनी विलक्षण वुद्धि के अपूर्व चमत्कार दिखाये। ये वहुत सीधे-सादे और सत स्वभाव के थे। सं० १५४५ वि० मे इनका विवाह गुरुदासपुर के मूलचन्द खत्री की कन्या सुलक्षणी से हुआ। सवत् १५५१ और १५५३ वि० मे सुलक्षणी देवी के गर्भ से क्रमश. श्रीचन्द्र और लक्ष्मीचन्द्र, दो पुत्रो का जन्म हुआ। आगे चलकर श्रीचन्द्र उदासी साधु-सम्प्रदाय के मूल पुरुप हुए। और लक्ष्मी-

चन्द्र के वश के लोग अब तक वर्तमान है।

गुरू नानक जी के समय मे मुसलमानों के अत्याचार से हिन्दू-जाति त्राहि-त्राहि कर रही थी। गुरु नानक जी के सदुपदेश से हिन्दुओ मे एक ऐसा सिख-समुदाय पैदा हो गया जिसने हिन्दुओं की मान-मर्यादा ही नही बचाई, बल्कि मुसलमानी सल्तनत की जड़ तक हिला दी। विचार करके देखा जाय तो गुरू नानकजी ने हिन्दुओ का बडा भारी उपकार किया।

गुरू नानकजी ने स० १५२६ से १५७९ तक आगरा, बिहार, बङ्गाल, आसाम, ब्रह्मा, उडीसा, मारवाड, हैदराबाद, मद्रास, लका, बद्रीनारायण, नैपाल, सिकम, भूटान, सिंध, मक्का, जद्दा, मदीना, रूम, बगदाद, ईरान, बिलोचिस्तान, कधार, काबुल, और काश्मीर की यात्रा की। यात्रा मे ये जहा-जहा गये, वहा-वहा के लोग इनके उपदेश से बहुत लाभ उठाते रहे। काशी मे गुरू नानक और कबीर साहब से भी धर्म-चर्चा हुई थी। अन्त के १६ वर्ष इन्होने कर्तारपुर मे बिताकर ६९वर्ष १० महीना और १० दिन की अवस्था (स० १५९५) मे शरीर छोडा।

गुरू नानक जी की शिक्षा ने पजाब मे सिखो की एक जाति ही बना दी। इनके बाद जितने गुरू हुए, सब एक से एक बढकर पराक्रमी, प्रतापी और बुद्धिमान हुए। यह गुरू नानक जी ही की शिक्षा का फल था कि गुरू गोविन्दसिह सरीखे शूरवीर हिन्दुओ मे पैदा हुए।

हम गुरू नानकजी की कविता के कुछ नमूने यहा उद्धृत करते है—

कलिया थी धडले भये, धडलियो भयि सुपैदु।
नानक मता मतो दिया, उज्जरि गइया खेडु॥ १॥
जागोरे जिन जागना, अब जागनि की वारि।
फेरि कि जागो "नानका", जब सोवउ पाव पसारि॥ २॥
मित्रा दोस्त माल धन, छड्डि चले अति भाइ।
सगि न कोई "नानका", उह हस अकेला जाइ॥ ३॥
जेही पिरीति लगदिया, तोड निबाहू होइ।
"नानक" दरगह जादिया, ठक्क न सक्के कोइ॥ ४॥

सूरा एकन आखियन, जो लडनि दला मे जाय।
सूरे सोई "नानका" जो, मनणु हुकुम रजाय ॥ ५ ॥
हिरदे जिनके हरि वसे, से जान कहियहि सूर।
कही न जाई "नानका", पूरि रह्या भरपूर ॥ ६ ॥
मन की दुविधा ना मिटै, मुक्ति कहा ते होइ।
कउड़ी बदले "नानका", जन्म चल्या नर खोइ ॥ ७ ॥
जिन बोले अमृत वसे, जीया होवे दाति।
तिन वेले तू उठि वहु, चिहु पहरे पिछली राति ॥ ८ ॥

(९)

इस दम दा मैनू कीवे भरोसा, आया आया न आया न आया ॥
या ससार रैन दा सुपना, कहि दीखा कहि नाहि दिखाया।
सोच विचार करे मत मन मे, जिसने ढूढा उसने पाया ॥
"नानक" भक्तन के पद परसे, निस दिन रामचरन चित लाया ॥

(१०)

सब कछु जीवत को व्योहार।
माता पिता भाई सुत बाधव, अरु पुन गृह की नार ॥
तन ते प्रान होत जब न्यारे टेरत प्रेत पुकार ॥
आध घरी कोऊ नहि राखै घर ते देत निकार ॥
कहु नानक भज राम नाम नित जाते हो उद्धार ॥

(११)

मन की मनही माहि रही ॥
ना हरि भजे न तीरथ सेये चोटी काल गही ॥
दारा मीत पूत रथ सपति धन जन पूर्न मही ॥
और सकल मिथ्या यह जानो भजना राम सही ॥
फिरत फिरत बहुते जुग हार्यो मानस देह लही ॥
"नानक" कहत मिलन की बिरिया सुमिरत कहा नही ॥

(१२)

जो नर दुख मे दुख नहिं मानै ॥

सुख सनेह अरु भय नहि जाके कचन माटी जानै ॥
नहि निन्दा नहि अस्तुति जाके लोभ मोह अभिमाना ॥
हर्ष शोक ते रहे नियारो नाहि मान अपमाना ॥
आसा मनसा सकल त्यागि कै जगते रहै निरासा ॥
काम क्रोध जेहि परसै नाहिन तेहि घट ब्रह्म निवासा ॥
गुरु किरपा जेहि नर पै कीन्ही तिन यह जुगति पिछानी ॥
"नानक" लीन भयो गोविन्द सो ज्यो पानी सग पानी ॥

(१३)

रे मन कौन गत होइ है तेरी ।

याहि जग मे राम नाम, सो तो नहिं सुन्यो कान,
विषयन सो अति लुभान, मति नाहिन फेरी ॥
मानस को जनम लीन्ह, सिमरन नहिं निमिष कीन्ह,
दारा सुत भयो दीन, पगहु परी बेरी ॥
"नानक" जन कह पुकार, सुपने ज्यो जग पसार,
सिमरत नहि क्यो मुरार, माया जाकी चेरी ॥

(१४)

सुमरन करले मेरे मना ।

तेरि बिति जाति उमर हरिनाम बिना ॥
कूप नीर बिनु धेनु छीर बिन मंदिर दीप बिना ।
जैसे तरुवर फल बिन हीना तैसे प्राणी हरनाम विना ॥
देह नैन बिन रैन चद बिन धरती मेह विना ।
जैसे पडित वेद विहीना तैसे प्राणी हरनाम बिना ॥
काम क्रोध मद लोभ निहारो छाड दे अब सतजना ।
कहे "नानकशा" सुन भगवता या जग मे नहि कोइ अपना ॥

(१५)

बिसर गई सब तात पराई । जब मे साधू सङ्गत पाई ॥

नहिं कोई बैरी नहिं बेगाना सकल सङ्ग हमरी बनि आई।
जो प्रभु कीन्हों सो भला करि मानो यह सुमति साधू से पाई॥
सब मे रम रहा प्रभु एकाकी पेख पेख "नानक" बिगसाई॥

(१६)

साधो मन का मान त्यागो।
काम क्रोध सगति दुर्जन की ताते अहनिस भागो॥
सुख दुख दोनो सम करि जानै और मान अपमाना।
हर्ष शोक ते रहै अतीता तिन जग तत्व पिछाना॥
अस्तुति निन्दा दोऊ त्यागै खोजै पद निरबाना।
जन "नानक" यह खेल कठिन है किनहू गुरमुख जाना॥

(१७)

काहे रे बन खोजन जाई।
सर्व निवासी सदा अलेपा तोही सङ्ग समाई॥
पुष्प मध्य ज्यो बास बसत है मुकर माहि जस छाई।
तैसे ही हरि बसै निरन्तर घट ही खोजो भाई॥
बाहर भीतर एकै जानो यह गुरु ज्ञान बताई।
जन "नानक" बिन आपा चीन्हे मिटै न भ्रम की काई॥

सूरदास

सूरदास का जन्म अनुमान से १५४० वि० मे और मरण १६२० वि० मे कहा जाता है। उन्होने ६७ वर्ष की अवस्था मे सूरसारावली लिखी। सूरदास का सबसे बड़ा ग्रन्थ सूरसागर है, सूरसारावली उसी की सूची है, जो सूरसागर के बननेके बाद बनी है। सूरसारावली मे लिखा है—

"गुरु प्रसाद होत यह दरसन, सरसठि बरस प्रवीन।
शिव विधान तप करेउ बहुत दिन, तऊ पार नहिं लीन॥

इससे पता चलता है कि सूरसारावली लिखते समय सूरदास की अवस्था ६७ वर्ष की थी। उन्होंने साहित्य-लहरी नाम का एक और ग्रन्थ

बनाया है। उसमे सूरसागर के दृष्ट-कूट पदो का सग्रह है। साहित्य-लहरी मे सूरदास ने एक स्थान पर लिखा है—

मुनि पुनि रसन के रस लेख।
दसन गौरी नन्द को लिखि सुबल सवत पेख॥
नन्द नन्दन मास छै ते हीन तृतिया वार।
नन्द नन्दन जनम ते है बाण सुख आगार॥
तृतिय ऋक्ष सुकर्म जोग विचारि सूर नवीन,
नन्द नन्दन दास हित साहित्य लहरी कीन॥

अर्थ—मुनि = ७, रसन = रसहीन अर्थात् शून्य, रस = ६, दसन गौरीनन्दन = १ = १६०७, नन्द नन्दन मास = बैशाख, छै हीन तृतिया = अक्षय तृतिया, तृतिय ऋक्ष = कृतिका नक्षत्र, सुकर्म योग। (देखो सरदार कवि कृत साहित्य लहरी की टीका)।

इससे प्रकट होता है कि साहित्य लहरी १६०७ वि० मे बनी। उस समय सूरदास की अवस्था ६७ वर्ष की थी। क्योकि साहित्य लहरी और सूरसारावली के बनने का समय प्राय. एक ही अनुमान किया जाता है। इस अनुमान के आधार पर सूरदास का जन्म (१६०७—६७) १५४० वि० में होना सिद्ध होता है।

सूरदास का जन्म दिल्ली के पास "सीही" गाव मे हुआ था। ये सारस्वत ब्राह्मण थे। कुछ लोग रुनकता गाव (रेणुकाक्षेत्र) को, जो आगरा मथुरा की सडक पर है, इनका जन्म-स्थान बतलाते है। इनके माता-पिता दरिद्र थे। पिता का नाम रामदास था। सूरदास सात भाई थे। छ. भाई मुसलमानो के साथ लडाई मे मारे गये। सरदार कवि ने सूरदास को चन्दबरदाई का वशज बतलाया है।

सूरदास जन्म के अन्धे न थे। ऐसी कहावत है कि एकवार ये एक युवती को देखकर उस पर मुग्ध हो गये। उसकी ओर एकटक ताकते हुए ये बहुत देर तक खडे रहे। अन्त मे वह युवती इनके पास स्वय आई और कहने लगी—महाराज! क्या आज्ञा है? सूरदास को उस समय

अपनी स्थिति पर बड़ी लज्जा आई। इन्होंने यह दोष आंखों का समझ कर युवती से कहा कि यदि तुम मेरी आज्ञा मानती हो तो सुई से मेरी दोनो आखे फोड़ दो। युवती ने आज्ञानुसार ऐसा ही किया। तब से सूरदास अन्धे हो गये। भक्तमाल में लिखा है कि सूरदास जन्म के अन्धे थे; परन्तु इस पर सहसा विश्वास नही होता; क्योकि इन्होने अपनी कविता मे रगो का, ज्योति का और अनेक प्रकार के हाव-भाव का ऐसा यथार्थ वर्णन किया है जो बिना आख से देखे, केवल सुनकर, नही किया जा सकता।

सूरदास की कविता के लालित्य और माधुर्य के विषय मे तो कहना ही क्या है? हिन्दुओ के घर-घर मे इनके भजन बड़े प्रेम से गाये और सुने जाते है। हिन्दुस्तान के गवैये सूरदास के भजन बड़े चाव से गाते है। राम-चरित्र लिखने मे जैसी तुलसीदास जी ने अपनी प्रतिभा दिखलाई है, उसी तरह श्री कृष्ण की लीला लिखकर सूरदास ने भी अपनी अनुपम कवित्व-शक्ति का परिचय दिया है। प्रेमी और भक्तजनो के हृदयों मे सूरदास के भजनो से आनन्द का समुद्र उमड़ पड़ता है। कविता द्वारा बाल-चरित्र का ठीक-ठीक चित्र आखो के सामने कर देने की इनमे अलौकिक पटुता थी। हिन्दी-साहित्य मे सूरदास का गौरव कितना है, यह इस दोहे से भली-भाति समझा जा सकता है—

"सूर सूर, तुलसी ससी, उड्डुगन केशवदास।
अब के कवि खद्योत सम, जह तह करै प्रकास॥"

गावो की साधारण जनता ने भी सूर, तुलसी और कबीर की कविता के सम्बन्ध मे अपनी राय अपनी ही बोली में स्थिर की है। उनकी समालोचना का एक नमूना यह है—

जो कुछ रहा सो अधरा कहिगा, कठवउ कहेसि अनूठी।
बचा खुचा सो जोलहा कहिगा, और कहै सो जूठी॥

गोपियो के विरह-वर्णन मे सूरदास ने हृद्गत भावो के झलकाने मे कमाल कर दिया है। सूरदास काव्य-शास्त्र के पंडित थे। पुराणों का

इन्होने अच्छा अध्ययन किया था। महाप्रभु बल्लभाचार्य ने व्रजभाषा के सुप्रसिद्ध आठ कवियों को मिलाकर अष्टछाप स्थापित किया था। उनके नाम ये है—कृष्णदास, परमानन्द दास, कुभनदास, चतुर्भुजदास, छीत स्वामी, नन्ददास, गोविन्द स्वामी, सूरदास। इन आठो मे सूरदास सब से उत्तम थे। महाप्रभु बल्लभाचार्य जी के उपदेश से इन्होने श्री मद्भागवत का उल्था किया, जो सूरसागर नाम से प्रसिद्ध है। इसमे सवा लक्ष पद थे, किन्तु अब पाच हजार ही उपलब्ध है। सूरसागर के सिवा व्याहलो, नल दमयती और हरिवश की टीका भी इन्होने लिखी थी। किन्तु ये तीनो अब अप्राप्य है।

सूरदास ने ८० वर्ष की अवस्था मे गोकुल मे शरीर छोड़ा। इनका अन्तिम भजन यह है, जो शरीर छोडते समय इन्होंने कहा—

खञ्जन नैन रूप रस माते।
अति से चारु चपल अनियारे पल पिंजरा न समाते ॥
चल चल जात निकट श्रवनन के उलट-पलट ताटंक फदाते।
सूरदास अञ्जन गुन अटके नतरु अर्बाहं उडि जाते ॥

प्राचीन मनुष्यो की कहावत है कि ये उद्धव के अवतार थे। इसमें सन्देह नही कि उनके हृदय मे वास्तविक प्रेम था। ये प्रेम की दशा से पूर्ण अभिज्ञ थे और भगवान श्रीकृष्ण को सखा-भाव से भजनेवाले भक्त थे।

यद्यपि इनके पद-पद मे लालित्य भरा है, परन्तु स्थानाभाव से इनके थोड़े से पद सूरसागर से चुनकर यहा लिखे जाते है।

(१)

मेरो मन अनत कहा सुख पावै ॥
जैसे उड़ि जहाज को पच्छी फिरि जहाज पर आवै ॥
कमल नयन को छाडि महातम और देव को ध्यावै।
परम गगा को छाडि पियासो दुर्मत्ति कूप खनावै ॥
जिन मधुकर अवुज रस चाख्यो क्यो करील फल खावै।
"सूरदास" प्रभु कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावै ॥

(२)

सोभित कर नवनीत लिये ।

घुटुरुवन चलत रेनु तन मडित मुख मे लेप किये ॥
चारुकपोल लोल लोचन छवि गौरोचनको तिलक दिये ।
लर लटकन मानो मत्त मधुप गन माधुरी मधुर पिये ॥
कठुला क वज्र केहरि नख राजत है सखि रुचिर हिये ।
धन्य "सूर" एकौ पल यह सुख कहा भयो सत कल्प जिये ॥

(३)

यशोदा हरि पालने भुलावे ।

हलरावै दुलराइ मल्हावे जोइ सोई कछु गावै ॥
मेरे लाल को आउ निदरिया काहे न आनि सुवावै ।
तू काहे न वेगी सी आवे तोको कान्ह बुलावै ॥
कबहू पलक हरि मूदि लेत है कबहू अधर फरकावै ।
सोवत जानि मौन ह्वै ह्वै रही कर-कर सैन बतावै ॥
इहि अन्तर अकुलाइ उठे हरि यशुमति मधुरे गावै ।
जो सुख "सूर" अमर मुनि दुर्लभ सो नदभामिनि पावै ॥

(४)

लालन हौ वारी तेरे या मुख ऊपर ।

माई मेरिहि डीठि न लागे ताते मसि विन्दा दयो भ्रू पर ॥
सर्वसु मै पहिले ही दीनी नान्ही नान्ही दतुली दू पर ।
अब कहा करो निछावरि "सूर" यशोमति अपने लालन ऊपर ॥

(५)

घुटरुवन चलत श्याम मणि आगन मात पिता दोउ देखत री ।
कबहुंक किलकिलात मुख हेरत, कबहु जननि मुख पेखत री ॥
लटकन लटकत ललित भाल पर काजर बिन्दु भ्रुव ऊपर री ।
वह सोभा नैननि भरि देखै नहि उपमा कहु भू पर री ॥
कबहुक दौर घुटरुवन लटकत गिरत परत फिरि धावत री ।

इतते नन्द बुलाइ लेत है उतते जननि बुलावति री ॥
दपति होड करत आपुस मे श्याम खिलौना कीनो री।
"सूरदास" प्रभु ब्रह्म सनातन सुत हितकरि दोउ लीनो री॥

(६)

गहे अगुरिया तात की नद चलन सिखावत।
अरबराई गिरि परत है कर टेकि उठावत॥
बार बार बकि श्याम सो कछु बोल बकावत।
दुहँधा दोउ दतुली भई अति मुख छवि पावत॥
कबहु कान्ह कर छाडि नद पग द्वै करि धावत।
कबहु धरणि पर बैठि के मन मह कछु गावत॥
कबहु उलटि चलै धाम को घुटरुन करि धावत।
"सूर" श्याम मुख देखि महर मन हर्ष बढावत॥

(७)

मैया कबहि बढेगी चोटी।
कितीबार मोहि दूध पियत भइ यह अजहू है छोटी॥
तू जो कहति बल की बेनी ज्यो ह्वै है लाबी मोटी।
काढत गुहत नहावत ओछत नागिन सी भ्वैं लोटी॥
काचो दूध पियावत पचि पचि देत न माखन रोटी।
"सूर"श्याम चिरजीवो दोऊ भैया हरि हलधर की जोटी॥

(८)

खेलन अब मेरी जात वलैया।
जबहि मोहि देखत लरिकन सग तबहि खिझत बल भैया॥
मोसो कहत तात बसुदेव को देवकी तेरी मैया।
मोल लियो कछु दे बसुदेव को करि करि जतन बटैया॥
अब बाबा कहि कहत नद को यसुमति को कहै मैया।
ऐसेहि कहि सब मोहि खिझावत तब उठि चलो खिसैया॥
पाछे नद सुनत है ठाढे हंसत हसत उर लैया।
"सूर" नद बलिरामहि घिरयो सुनि मन हरख कन्हैया॥

(९)

कमलनयन कछु करो वियारी।
लुचुई लपसी सद्य जलेबी सोइ जेवहु जो लगे पियारी॥
घेवर मालपुआ मुतिलाडू मुघर सजूरी सरस नवारी।
दूध वरा उत्तम दधि वाटी दाल मसूरी की रुचि न्यारी॥
आछो दूध औटि धौरी को मैं ल्याई रोहिणि महतारी।
"सूरदास" बलराम श्याम दोउ जेवैं हैं जननि जाइ बलिहारी॥

(१०)

जेवत श्याम नद की कनियां।
कछुक खात कछु धरनि गिरावत छवि निरखत नदरनिया॥
बरी बरा बेसन वहु भातिन व्यजन विविध अनगनिया।
डारत खात लेत अपने कर रुचि मानत दधि दनिया॥
मिश्री दधि माखन मिश्रित करि मुख नावत छविधनियां।
आपुन खात नन्द मुख नावत सो मुख कहत न बनिया॥
जो रस नन्द यशोदा विलसत सो नहिं तिहं भुवनिया।
भोजन करि नन्द अचवन कियो मागत "सूर" जुठनिया॥

(११)

चंद्र खिलौना लैहौं मैया मेरी, चद्र खिलौना लैहौं॥
धौरी को पय पान न करिहौं वेनी सिर न गुथैहौं।
मोतिन माल न धरिहौ उर पर झगुली कठ न लैहौ॥
जैहो लोट अभी धरनी पर तेरी गोद न ऐहौं।
लाल कहैहौं नद बबा को तेरो सुत न कहैहौ॥
कान लाय कछु कहत यसोदा दाउहिं नाहिं सुनैहौ।
चदा हू ते अति सुन्दर तोहिं नवल दुलहिया ब्यैहौ॥
तेरी सौंह मेरी सुन मैया अबही ब्याहन जैहौ।
"सूरदास" सब सखा बराती नूतन मगल गैहौ॥

(१२)

मैया मेरी, मैं नहिं माखन खायो ।
भोर भयो गैयन के पाछे मधुबन मोहिं पठायो ।
चार पहर बसीबट भटक्यो साझ परे घर आयो ।।
मै बालक बहियन को छोटो छीको किस बिध पायो ।
ग्वाल बाल सब बैर परे है, बरबस मुख लपटायो ।।
तू जननी मन की अति भोरी इनके कहे पतियायो ।
जिय तेरे कछु भेद उपज है जान परायो जायो ।।
यह ले अपनी लकुट कमरिया बहुतहि नाच नचायो ।
"सूरदास" तब बिहसि जसोदा ले उर कठ लगायो ।।

(१३)

मैया मै न चरैहौ गाइ ।
सिगरे ग्वाल घिरावत मोसो मेरे पाइ पिराइ ।
जो न पत्याहि पूछ बलदाउहिं अपनी सौह दिवाइ ।।
मै पठवति अपने लरिका कू आवै मन बहराइ ।
"सूर" श्याम मेरो अति बालक मारत ताहि रिगाइ ।।

(१४)

नैना ढीठ अतिहो भए ।
लाज लकुट दिखायि त्रासी नैकहू न नए ।।
तोरि पलक कपाट घूघट ओट मेटि गए ।
मिले हरि को जाइ आतुर जे है गुणनि मए ।।
मुकुट कुण्डल पीतपट कटि ललित भेस ठए ।
जाइ लुब्धे निरखि वह छवि "सूर" नन्द-जए ।।

(१५)

बिछुरे श्री ब्रजराज आजु तौ नैनन ते परतीत गई ।
उठि न गई हरि सग तबहि ते ह्वै न गई सखि श्याममई ।।
रूप रसिक लालची कहावत सो करनी कछुवै न भई ।

साचे क्रूर कुटिल ए लोचन व्यथा मीनछवि मानो छीनलई ।।
अब काहे जल मोचत सोचत समौ गए ते शूल नए ।
"सूरदास" याही ते जड़ भए इन पलकन ही दगा दए ।।

(१६)

यशोदा वार वार यो भाषै ।
है कोई ब्रज हितू हमारी चलत गोपालहि राखै ।।
कहा काज मेरे छगन मगन को नृप मधुपुरी बुलायौ ।
सुफलक सुत मेरे प्राण हतन को काल रूप ह्वै आयौ ।।
बरु ये गोधन हरो कस सव मोहि वदी लै मेलौ ।
इतने ही सुख कमल नयन मेरी अखियन आगे खेलौ ।।
बासर बदन बिलोकत जीवों निसि निज अङ्क मे लाओं ।
तेहि बिछुरत जो जीवों कर्मवश तौ हसि काहि बुलाओ ।।
कमल नयन गुण टेरत टेरत अधर बदन कुम्हिलानी ।
"सूर" कहा लगि प्रकट जनाऊं दुखित नन्दजू की रानी ।।

(१७)

अरी मोहिं भवन भयानक लागे, माई ! श्याम बिना ।
देखहि जाइ काहि लोचन भरि नन्द महरि के अंगना ।।
लै जु गये अक्रूर ताहि को ब्रज के प्राणधना ।
कौन सहाय करे घर अपने मेटे बिघन घना ।।
काहि उठाइ गोद करि लीजै करि करि मन मगना ।
"सूरदास" मोहन दरसन बिन सुख सपति सपना ।।

(१८)

नैन सलोने श्याम, हरि कब आवहिंगे ।
वे जो देखत राते राते फूलन फूले डार ।
हरि बिन फूल झरी सी लागत झरिझरि परत अंगार ।।
फूल बिनन ना जाऊ सखीरी हरि बिन कैसे फूल ।
सुनरी सखी मोहिं राम दुहाई लागत फूल त्रिशूल ।।

जब तें पनिघट जाऊ सखीरी वा जमुना के तीर।
भरि भरि यमुना उमड़ि चलत है इन नैनन के नीर ॥
इन नैनन के नीर सखीरी सेज भई घरनाव।
चाहत हौ ताही पै चढिके हरि जी के ढिग जाव ॥
लाल पियारे प्राण हमारे रहे अधर पर आय।
"सूरदास" प्रभु कुंज बिहारी मिलत नही क्यों धाय ॥

(१९)

प्रीति करि काहू सुख न लह्यो।
प्रीति पतंग करी दीपक सो आपै प्राण दह्यो ॥
अलिसुत प्रीति करी जलसुत सों सम्पति हाथ गह्यो।
सारग प्रीति करी जो नाद सों सन्मुख बाण सह्यो ॥
हम जो प्रीति करी माधव सों चलत न कछू कह्यो।
"सूरदास" प्रभु बिन दुख दूनो नैनन नीर बह्यो ॥

(२०)

प्रीति तौ मरनऊ न बिचारै।
प्रीति पतग जोति पावक ज्यो जरत न आपु सभारै ॥
प्रीति कुरंग नाद स्वर मोहित बधिक निकट ह्वै मारै।
प्रीति परेवा उड़त गगन ते उडत न आपु सभारै ॥
सावन मास पपीहा बोलत पिउ पिउ करि जो पुकारै।
"सूरदास" प्रभु दरसन कारन ऐसी भाति बिचारै ॥

(२१)

जिन कोउ काहु के वश होंहि।
ज्यो चकोर दिनकर वश डोलत मोह फिरावत मोंहि ॥
हम तो रीझ लटू भइ लालन महा प्रेम जिय जानि।
बन्ध अबन्ध अमति निशिवासर को सुरझावति आनि ॥
उरझे सग अग अग प्रति विरह वेलि की नाई।
मुकुलित कुसुम नैन निद्रा तजि रूप सुधा सियराई ॥

अति आधीन हीन अति व्याकुल कहा लो कहो बनाइ ।
ऐसी प्रीति करी रचना पर "सूरदास" वलि जाइ ॥

(२२)

कह्यो कान्ह सुन यशुमति मैया ।
आवहिंगे दिन चार पाच मे हम हलधर दोउ भैया ।
मुरली वेत विषाण देखिये शृंगी बेर सवेरो ।
लै जिनि जाइ चुराइ राधिका कछुक खिलौना मेरो ॥
जा दिन तें तुमसे बिछुरे हम कोऊ न कहत कन्हैया ।
भोरहिं नाहिं कलेऊ कीनो साझ न पय पीयो ना घैया ॥
कहत न बन्यो सदेशो मोपै जननि जितो दुख पायो ।
अब हम सों बसुदेव देवकी कहत आपनो जायो ॥
कहिये कहा नन्द बाबा सो वहुत निठुर मन कीनो ।
"सूर" हमहिं पहुचाइ मधुपुरी बहुरो सोध न लीनो ॥

(२३)

मधुकर हम न होहिं वे बेली ।
जिन भजि तजि तुम फिरत और रग करत कुसुम रस केली ॥
वारे ते वर बाजि बढी है अरु पोषी पिय पानि ।
बिनु पिय परस प्रात उठि फूलत होत सदा हित हानि ॥
है बेली विरहा वृन्दावन उरझी श्याम तमाल ।
पुहुप वास रस रसिक हमारे विलसत मधुप गोपाल ॥
योग समीर धीर नहि डोलत रूप डार ढिग लागि ।
"सूर" परागनि तजति हिये ते श्री गुपाल अनुरागि ॥

(२४)

समुझि न परत तुम्हारी ऊधो ।
ज्यो त्रिदोष उपजे जक लागत बोलत बचन न सूधो ॥
आपुन को उपचार करो कछु तब औरन सिख देहू ।
वडो रोग उपज्यो है तुमको मौन सवारे लेहू ॥

वहाँ भेषज नाना विधि को अरु मधुरिपु से हैं वैद ।
हम कान्तर डरपत अपने सिर यह कलक है कैद ॥
साची बात छाड़ कत झूठी कहो कौन विधि सुनही ।
"सूरदास" मुकताहल भोगी हस ज्वारि को चुनही ॥

(२५)

अखिया हरि दरसन की प्यासी ।
देख्यो चाहत कमलनैन को निसिदिन रहत उदासी ॥
आये ऊधो फिरि गये आगन डारि गये गर फासी ।
केसरि को तिलक मोतिन की माला बृन्दावन को वासी ॥
काहू के मन की कोऊ न जानत लोगन के मन हासी ।
सूरदास प्रभु तुमरे दरस को जाइ करवट ल्यो कासी ॥

(२६)

ऊधो अखिया अति अनुरागी ।
इकटक मग जोवति अरु रोवति भूलेहु पलक न लागी ॥
बिन पावस पावस ऋतु आई देखत है विदमान ।
अब धौ कहा कियो चाहत है छाडहु निर्गुन ज्ञान ॥
सुनि प्रिय सखा श्यामसुन्दर के जानत सकल सुभाइ ।
जैसे मिलै सूर के स्वामी तैसी करहु उपाइ ॥

(२७)

हमको हरि की कथा सुनाउ ।
ये आपनी ज्ञान गाथा अलि मथुरा ही लै जाउ ॥
वे नर नारिन ही समुझहिंगी तेरो बचन बनाउ ।
पालागौ ऐसी इन बातनि उनही जाइ रिझाउ ॥
जो शुचिसखा श्यामसुन्दर को अरु जिय अति सतिभाउ ।
तो बारक आतुर इन नैनन वह मुख आनि दिखाउ ॥
जो कोउ कोटि करै कैसे हू विधि विद्या व्यसाउ ।
तो सुन "सूर" मीन को जल बिन नाहिं न और उपाउ ॥

(२८)

ऊधो जी हमहि न योग सिखैये ।
जेहि उपदेश मिले हरि हमको सो व्रत नेम बतैये ॥
मुक्ति रहो घर बैठि आपने निरगुन सुनत दुख पैये ।
जेहि सिर केस कुसुम भरि गूथे तेहि कैसे भसम चढ़ैये ॥
जानि जानि सब मगन भये है आपुन आपु लखैये ।
"सूरदास" प्रभु सुनत न वा विधि बहुरि किया व्रज ऐये ॥

(२९)

ऊधो कहा मति दीन्हो हमहिं गोपाल ।
आवहु री सखी सब मिलि बैठो जो पावें नदलाल ॥
घर बाहर तें बोलि लेहु सब जावदेक व्रजवाल ।
कमलासन बैठहु री माई मूदहु नैन विशाल ॥
षटपद कही सोऊ करि देखी हाथ कछू नहिं आई ।
सुन्दर श्याम कमल दल लोचन नेकु न देत दिखाई ॥
फिरि भई मगन विरह सागर मे काहुहि सुधि न रही ।
पूरण प्रेम देखि गोपिन को मधुकर मौन गही ॥
कछु ध्वनि सुनि स्रवनन चातक की प्रान पलटि तनु आये ।
"सूर" सो अब के टेरि पपीहे विरही मृतक जिवाये ॥

(३०)

मुख देखे की कौन मिताई ।
जैसे कृपनहिं दीन मागनो लालच लीने करत बड़ाई ॥
प्रीतम सो जो रहे एक रस निसिवासर दढ़ि प्रेम सवाई ।
चित महिं और कपट अन्तर्गत ज्यों फलखीर नीर चिकनाई ॥
तब वह करी नन्द नन्दन अलि वन बेली रसरास खिलाई ।
अब यह कितहीं दूर मधुपुरी ज्यो उडि भवर बेल तजि जाई ॥
योग सिखाये क्यो मनमानै क्योऽव ओसकन प्यास बुझाई ।
"सूरदास" उदास भई हम पूरव प्रीति उघरि निज आई ॥

(३१)

ऊधो योग योग हम नाही।
अबला सार ज्ञान कहा जानै कैसे ध्यान धराही॥
ते ये मूंदन नैन कहत है हरि मूरति जा माही।
ऐसी कथा कपट की मधुकर हमते सुनी न जाही॥
स्रवन चीर अरु जटा बधावहु ये दुख कौन समाही।
चदन तजि अग भस्म बतावत विरह अनल अति दाही॥
योगी भरमत जेहि लगि भूले सो तो है अपु माही।
"सूरदास" ते न्यारे न पल छिन ज्यो घट तें परछाही॥

(३२)

कहा लो कीजै बहुत बडाई।
अति अगाध मन अगम अगोचर मनसो तहां न जाई॥
जाके रूप न रेख बरन वपु नाहिन सङ्गत सखा सहाई।
ता निर्गुण सों नेह निरन्तर क्यों निबहै री माई॥
जल बिन तरंग भीति बिन लेखन बिन चेतहि चतुराई।
या ब्रज में कछु नही चाह है ऊधो आनि सुनाई॥
मन चुभि रह्यो माधुरी मूरति अग अग उरझाई।
सुन्दर श्याम कमल दल लोचन "सूरदास" सुखदाई॥

(३३)

कहत कत परदेसी की बात।
मन्दिर अरध अवधि बदि हम सो हरि अहार चलि जात॥
शशि रिपु बरष सूर रिपु युगवर हर रिपु किये फ़िरे घात।
मघपञ्चक लै गये श्यामघन आइ बनी यह बात॥
नखत वेद ग्रह जोरि अर्द्ध करि को बरजै हम खात।
"सूरदास" प्रभु तुमहि मिलन को कर मीजत पछितात॥

(३४)

ऊधा जो तुम हमहि बतायो।

सो हम निपट कठिनई करि करि या मन को समुझायो ॥
योग याचना जर्वाह अगह गहि तवही है सो ल्यायो ।
भटक पर्‌यो बोहित के खग ज्यो फिरि हरि ही पै आयो ॥
अब कै तो सोई उपदेगो जेहि जिय जाय जिआयो ।
वारक मिलै "सूर" के प्रभु तौ करै आपनो भायो ॥

(३५)

मधुकर इतनी कहियहु जाइ ।
अति कृसगात भई ये तुम विन परम दुखारी गाय ॥
जल समूह वरसत दोउ आखै हूकति लीने नाउं ।
जहाँ जहाँ गोदोहन कीनो सूघति सोई ठाउ ॥
परति पछार खाइ छिनही छिन अति आतुर ह्वै दीन ।
मानहु "सूर" काढ़ि डारी है वारि मध्य ते मीन ॥

(३६)

जाके रूप वरन बपु नाही । नैन मूदि चितवो चित माही ॥
हृदय कमल मे ज्योति विराजै । अनहद नाद निरन्तर बाजै ॥
इड़ा पिगला सुखमन नारी । सहज सु तामे वसै मुरारी ॥
माता पिता न दारा भाई । जल थल घट-घट रह्यो समाई ॥
इहि प्रकार भव दुख सरि तरहू । योग पंथ क्रम क्रम अनुसरहू ॥

(३७)

प्रेम प्रेम तें होय, प्रेम ते पर है जीये ।
प्रेम वधो ससार, प्रेम परमारथ लहिये ॥
एकै निश्चय प्रेम को, जीवन मुक्ति रसाल ।
सांचो निश्चय प्रेम को, जिहि रे मिलै गोपाल ॥
ऊधो कहि सतभाय, न्याय तुम्हरे मुख सांचे ।
योग प्रेमरस कथा, कहो कचन की कांचे ॥
जाके पर है हूजिये, गहिये सोई नेम ।
मधुप हमारी सों कहो, योग भलो या प्रेम ॥

सुनि गोपी के बैन, नेम ऊधो के भूले।
गावत गुन गोपाल, फिरत कुंजन मे फूले॥
खिन गोपी के पा परैं, धन्य सोइ है नेम।
धाइ धाइ द्रुम भेटही, ऊधो छाके प्रेम॥
धनि गोपी धनि ग्वाल, धन्य सुरभी बनचारी।
धनि यह पावन भूमि, जहाँ गोविंद अभिसारी॥
उपदेसन आये हुते, मोहिं भयो उपदेस।
ऊधो यदुपति पैं चले, धरे गोप को भेस॥
भूले यदुपति नाव, कहो गोपाल गोसाई।
एक बार ब्रज जाहु, देहु गोपिन दिखराई॥
वृन्दाबन सुख छाडि कैं, कहा बसे हो आइ।
गोबर्द्धन प्रभु जानि कै, ऊधो पकरे पाइ॥
ऊधो ब्रज को नेम, प्रेम बरनो सब आई।
उमग्यो नैनन नीर, बात कछु कह्यो न जाई॥
"सूर" श्याम भूलत भये, रहे नैन जल छाइ।
पोंछि पीतपट सो कह्यो, भल आये योग सिखाइ॥

(३८)

कहा लौं कहिये ब्रज की बात।
सुनहु श्याम तुम बिन उन लोगन जैसे दिवस बिहात॥
गोपी गाइ ग्वाल गोसुत वै मलिन बदन कृस गात।
परम दीन जनु सिसिर हिमी हत अबुज गत बिन पात॥
जाकहुं आवत देखि दूरते सब पूछति कुसलात।
चलन न देत प्रेम आतुर उर कर चरनन लपटात॥
पिक चातक बन बसन न पावहिं बायस बलिहि न खात।
"सूर" श्याम सदेसन के डर पथिक न उहि मग जात॥

(३९)

सुन ऊधो मोहिं नेक न बिसरत वे ब्रजवासी लोग।

तुम उनको कछु भली न कीनी निसिदिन दियो वियोग ॥
यद्यपि वसुदेव देवकी मथुरा सकल राजसुख भोग ।
तद्यपि मनहि वसत वंशीवट व्रज यमुना संयोग ॥
वे उत रहत प्रेम अवलम्बन इतते पठयो योग ।
"सूर" उसास छांड़ि भरि लोचन बढ़यो विरह ज्वर सोग ॥

(४०)

ऊधो मोंहि व्रज विसरत नाहीं ।
वृन्दावन गोकुल तन आवत सघन तृणन की छांहीं ॥
प्रात समय माता यसुमति अरु नन्द देख सुख पावत ।
माखन रोटी दह्यो सजायो अति हित साथ खवावत ॥
गोपी ग्वाल वाल सग खेलत सब दिन हंसत सिरात ।
"सूरदास" धनि धनि व्रजवासी जिन सों हंसत व्रजनाथ ॥

(४१)

हरि विन कौन दरिद्र हरै ।
कहत सुदामा सुन सुन्दरि जिय मिलन न हरि विसरै ॥
और मित्र ऐसे समया महं कत पहिचान करै ।
विपति परे कुसलात न बूझै बात नहीं उचरै ॥
उठिके मिले तन्दुल हम दीने मोहन बचन फुरै ।
"सूरदास" स्वामी की महिमा टारी विधि न टरै ॥

(४३)

नैना भये अनाथ हमारे।

मदन गोपाल वहा ते सजनी सुनियत दूरि सिधारे ॥

वे जल सर हम मीन बापुरी कैसे जिवहि निनारे।

हम चातक चकोर श्यामघन बदन सुधानिधि प्यारे ॥

मधुबन बसत आस दरसन की जोई नैन मग हारे।

"सूरज" श्याम करी पिय ऐसी मृतकहु ते पुनि मारे ॥

(४४)

रुक्मिनि मोहि ब्रज बिसरत नाही।

वा क्रीड़ा खेलत यमुना तट विमल कदम की छाही ॥

सकल सखा अरु नन्द यसोदा वे चितते न टराही।

सुत हित जानि नन्द प्रतिपालै बिछुरत विपति सहाही ॥

यद्यपि सुखनिधान द्वारावति तउ मन कहु न रहाही।

"सूरदास" प्रभु कुजबिहारी सुमिरि सुमिरि पछताही ॥

(४५)

सखीरी श्याम सबै इक सार।

मीठे बचन सुहाये बोलत अन्तर जारनहार ॥

भवर कुरंग काम अरु कोकिल कपटिन की चटसार।

सुनहु सखीरी दोष न काहू जो बिधि लिखो लिलार ॥

उमडी घटा नाखि आवे पावस प्रेम की प्रीति अपार।

"सूरदास" सरिता सर पोखत चातक करत पुकार ॥

(४६)

सखीरी श्याम कहा हित जानै।

कोऊ प्रीति करे कैसेहू वे अपनो गुन ठानै ॥

देखो या जलधर की करनी बरसत पोषै आनै।

"सूरदास" सरबस जो दीजै कारो कृतहि न मानै ॥

(४७)

मेरे कुंअर कान्ह बिनु सब कुछ वैसहि धरयो रहै।
को उठि प्रात होत ले माखन को कर नेत गहै॥
सूने भवन यसोदा सुत के गुन गुनि सूल सहै।
दिन उठि घेरत ही घर ग्वारिनि उरहन कोउ न कहै॥
जो ब्रज मे आनन्द हो तो मुनि मनसाहू न गहै।
"सूरदास" स्वामी बिनु गोकुल कौड़ीहू न लहै॥

(४८)

जन्म सिरानो ऐसे ऐसे।
कै घर घर भरमत यदुपति बिन कै सोवत कै वैसे॥
कै कहु खान पान रसनादिक कै कहु बाद अनैसे।
कै कहुं रक कहू ईश्वरता नट बाजीगर जैसे॥
चेत्यो नही गयो टरि अवसर मीन बिना जल जैसे।
यह गति भई "सूर" की ऐसी श्याम मिलै धौं कैसे॥

(४९)

काया हरि के काम न आई।
भाव भक्ति जह हरियश सुनयो तहां जात अलसाई॥
लोभातुर ह्वै काम मनोरथ तहां सुनत उठि धाई।
चरन कमल सुन्दर जहं हरि को क्योंहू न जात नवाई॥
जब लगि श्याम अग नहिं परसत आखे जोग रमाई।
"सूरदास" भगवत भजन बिनु विषय परम विष खाई॥

(५०)

सबै दिन गये विषय के हेत।
तीनौपन ऐसे ही बीते केस भये सिर सेत॥
आंखिन अन्ध श्रवण नहिं सुनियत थाके चरन समेत।
गंगाजल तजि पियत कूपजल हरि तजि पूजत प्रेत॥
राम नाम बिन क्यो छूटोगे चन्द्र गहे ज्यों केत।
"सूरदास" कछु खर्च न लागत राम नाम मुख लेत॥

(५१)

जो तू राम नाम चित धरतौ।
अबको जन्म आगलो तेरो दोऊ जन्म सुधरतौ॥
यम को त्रास सबै मिटि जातो भक्त नाम तेरो परतौ।
तदुल घृत सवारि श्याम को सत परोसो करतौ॥
होतो नफा साधु की सगति मूल गांठते टरतौ।
"सूरदास" वैकुण्ठ पैठ मे कोऊ न फेट पकरतौ॥

(५२)

दो मे एको तो न भई।
ना हरि भजे न गृह सुख पाये वृथा बिहाय गई॥
ठानी हुती और कछु मन मे औरै आनि भई।
अविगत गति कछु समुझि परत नहि जो कछु करत दई॥
सुत सनेह तिय सकल कुटुम मिलि निसिदिन होत खई।
पद नख चद चकोर विमुख मन खात अंगार भई॥
विपय विकार दवानल उपजी मोह बयार बई।
भ्रमत भ्रमत बहुते दुख पायो अजहु न टेव गई॥
कहा होत अब के पछताने होती सिर बितई।
"सूरदास" सेये न कृपानिधि जो सुख सकल मई॥

(५३)

अद्भुत एक अनूपम बाग।
जुगुल कमल पर गजवर क्रीडत तापर सिह करत अनुराग॥
हरि पर सरवर,सर पर गिरिवर, गिरि पर फूले कज पराग।
रुचिर कपोत बसत ता ऊपर ताहू पर अमृत फल लाग॥
फल पर पुहुप,पुहुप पर पालव, ता पर सुक,पिक, मृगमद, काग।
खजन धनुप चन्द्रमा ऊपर ता ऊपर यक मनिधर नाग॥
अग अग प्रति और और छवि उपमा ताको करत न त्याग।
"सूरदास" प्रभु पियहु सुधारस मानहु अधरन को बड़ भाग॥

(५४)

आपको आपनही बिसरो।

जैसे स्वान काच के मन्दिर भ्रमि भ्रमि भूकि मरो
ज्यों केहरि प्रतिमा के देखत बरबस कूप परो।
मरकट मूठि छोडि नही दीनी घर घर द्वार फिरो।
"सूरदास" नलिनी के सुवना कह कौने पकरो।

(५५)

प्रभु मोरे अवगुन चित न धरो।

समदरसी है नाम तिहारो चाहे तो पार करो॥
इक नदिया इक नार कहावत मैलोहि नीर भरो।
जब दोनों मिल एक बरन भये सुरसरि नाम परो॥
इक लोहा पूजा मे राखत इक घर बधिक परो।
पारस गुन अवगुन नहि चितवै कंचन करत खरो॥
यह माया भ्रम जाल कहावै "सूरदास" सगरो।
अवकी बार मोंहि पार उतारो नहिं प्रन जात टरो॥

(५६)

जा दिन मन पछी उड़ि जैहें।

ता दिन तेरे तन तरुवर के सबै पात झरि जैहं॥
घर के कहै बेग ही काढो भूत भये कोउ खैहै।
जा प्रीतम से प्रीति घनेरी सोऊ देखि डरैहै॥
कहं वह ताल कहा वह सोभा देखत घूर उडैहै।
भाई बधु कुटुम्ब कबीला सुमिरि सुमिरि पछतैहै॥
बिन गोपाल कोऊ नहि अपना जस कीरति रहि जैहै।
सो तो "सूर" दुर्लभ देवन को सतसगति मे पैहै॥

(५७)

छाड मन हरि बिमुखन को सग।

जाके सग कुबुद्धी उपजै परत भजन मे भग॥

कागहि कहा कपूर खवाये स्वान न्हवाये गंग ।
खर को कहा अरगजा लेपन मरकट भूषण अंग ॥
पाहन पतित बान नहिं बेधत रीतो करत निषंग ।
"सूरदास" खल कारी कामरि चढत न दूजो रंग ॥

(दोहे)

भौंरा भोगी बन भ्रमै, मोद न मानै ताप ।
सब कुसुमनि मिल रस करै, कमल बँधावै आप ॥ १ ॥
सुनि परमित पिय प्रेम की, चातक चितवत पारि ।
घन आशा सब दुख सहै, अंत न यांचै बारि ॥ २ ॥
देखो करनी कमल की, कीनों जल सो हेत ।
प्राण तज्यो प्रेम न तज्यो, सूख्यो सरहि समेत ॥ ३ ॥
दीपक पीर न जानई, पावक परत पतङ्ग ।
तनु तो तिहि ज्वाला जरयो, चित न भयो रस भङ्ग ॥ ४ ॥
मीन वियोग न सहि सकै, नीर न पूछै बात ।
देखि जु तू ताकी गतिहि, रति न घटै तन जात ॥ ५ ॥
प्रीति परेवा की गनो, चाहत चढ़न अकास ।
तहं चढ़ि तीय जु देखिये, परत छाड उर स्वास ॥ ६ ॥
सुमर सनेह कुरङ्ग को, स्रवन न राच्यो राग ।
धरि न सकत पग पछमनो, सर सनमुख उर लाग ॥ ७ ॥
सब रस को रस प्रेम है, विषयी खेलै सार ।
तन, मन, धन, यौवन खिसै, तऊ न माने हार ॥ ८ ॥
तैं जु रत्न पायो भलो, जान्यो साधु समाज ।
प्रेमकथा अनुदिन सुनी, तऊ न उपजी लाज ॥ ९ ॥
सदा सघाती आपनो, जिय को जीवन प्रान ।
सो तू बिसरयो सहज ही, हरि ईश्वर भगवान ॥ १० ॥
वेद पुरान स्मृति सबै, सुर नर सेवत जाहि ।
महामूढ अज्ञान मति, क्यो न सभारत ताहि ॥ ११ ॥

खग मृग मीन पतग लौ, मैं सोवे सब ठौर।
जल थल जीव जिते तिते, कहो कहां लगि और ॥ १२ ॥
प्रभु पूरन पावन सखा, प्राननहू को नाथ।
परम दयालु कृपालु प्रभु, जीवन जाके हाथ ॥ १३ ॥
गर्भवास अति त्रास में, जहा न एको अंग।
सुनि सठ तेरो प्रानपति, तहा न छाड़्यो सग ॥ १४ ॥
दिना राति पोखत रह्यो, ज्यों तंवोली पान।
वा दुख ते तोहि काढि कै, लै दीनो पय मान ॥ १५ ॥
जिन जड ते चेतन कियो, रचि गुन तत्व-विधान।
चरन चिकुर कर नख दिये, नयन नासिका कान ॥ १६ ॥
असन बसन वहुविधि दिये, औसर-औसर आनि।
मात पिता भैया मिले, नई रुचहि पहिचानि ॥ १७ ॥
सजन कुटुम परिजन वढे, सुत दारा धन धाम।
महामूढ विषयी भयो, चित आकर्ष्यो काम ॥ १८ ॥
खान पान परिधान रस, यौवन गयो व्यतीत।
ज्यों विट परि परतीय वस, भोर भये भयभीत ॥ १९ ॥
जैसे सुख ही मन वढ्यो, तैसे वढ्यो अनंग।
धूम वढ्यो लोचन खस्यो, सखा न सूझ्यो संग ॥ २० ॥
जम जान्यो सब जग सुन्यो, बाढ्यो अजस अपार।
बीच न काहू तब कियो, (जब) दूतनि काढ़्यो वार ॥ २१ ॥
कह जानो कहँवा मुवो, ऐसे कुमति कुमीच।
हरिसों हेत बिसारि के, सुख चाहत है नीच ॥ २२ ॥
जो पै जिय लज्जा नही, कहा कही सौ बार।
एकहु अंक न हरि भजे, रे सठ "सूर" गँवार ॥ २३ ॥

मलिक मुहम्मद जायसी

मलिक मुहम्मद जायसी का असली नाम मुहम्मद था। मलिक इनकी उपाधि थी, और जायस मे रहने के कारण लोग इनको जायसी कहते थे। वास्तव में यह जायस के रहनेवाले न थे। पद्मावतके तेईसवे दोहे की पहली चौपाई—"जायस नगर धरम असथानू, तहां आइ कवि कीन्ह बखानू" से स्पष्ट है कि ये कही बाहर से जायस में आये और वहां इन्होंने पद्मावत लिखी। जायसी रायबरेली जिले में एक बडा कस्बा और रेल का स्टेशन है।

बहुत से लोग कहते है कि इनका जन्म-स्थान गाजीपुर है। ये एक दरिद्रकुल मे उत्पन्न हुए थे। सात वर्ष की अवस्था में शीतला निकलने से इनकी दाहिनी आख जाती रही और चेहरा भी ऊबड़खाबड़ होगया। इसी अवसर मे इनकी माता भी मर गईं। पिता शीतला निकलने के पहले ही मर चुके थे। ये अनाथ होकर साधु-फकीरों के साथ फिरने लगे और उनकी संगति से ही इन्होने बहुत-सी बाते सीखी। वेदान्त और योग-क्रिया की भी बहुत-सी बाते इनको मालूम थी। पद्मावत मे स्थान-स्थान पर इन्होंने अपने इस ज्ञान का परिचय दिया है। अखरावट में तो वेदान्त ही की चर्चा मुख्य है।

योगी समझकर बहुत से लोग इनके शिष्य होगये। शिष्य लोग इनके बनाये हुये बारहमासो को गाया करते थे। इनका एक चेला अमेठी आया। वह इनका बनाया हुआ नागमती का बारहमासा गा-गाकर घर-घर भीख मागा करता था। एक दिन अमेठी के राजा ने भी उसे सुना। उन्हें वह बहुत पसद आया। खासकर इस दोहे ने तो उनके हृदय पर बहुत ही प्रभाव डाला—

"कवल जो बिगसत मानसर, बिनु जल गयउ सुखाइ।
सूख बेलि फिर पलुहइ, जउ पिउ सीचइ आइ॥"

राजा ने उस चेले से बारहमासे के रचयिता का परिचय पाकर मलिक

मुहम्मद को लाने के लिए अपना एक सरदार भेजा। तब से मलिक मुहम्मद अमेठी मे रहने लगे। राजा को कोई सतान न थी। मलिक मुहम्मद की कृपा से उनका वश चला। तब से इनका बहुत आदर होने लगा। वही पर इनका देहान्त भी हुआ। राजा ने अपने महल से उत्तर की ओर थोड़ी दूर पर इनकी कब्र बनवादी, जो अब तक है।

एक दिन अवध के एक रईस ने इनके चेहरे को देखकर ठट्ठा मारकर हस दिया। इस पर इन्होने बड़े धैर्य्य से कहा—

"मोहि का हँससि कि कोहरहि"

अर्थात् मेरी हँसी उड़ाते हो या उस कुम्हार की, जिसने मुझे ऐसा कुरूप गढा है? इस पर रईस साहब बहुत शर्मिन्दा हुए और इनका परिचय पाकर उन्होने अपने अपराध की क्षमा मांगी।

जायसी के जन्म-मरण की ठीक तिथि का पता नही चलता। पद्मावत मे उसका रचनाकाल हिजरी सन् ९२७ (सं० १५८४) दिया हुआ है। इससे इनके समय का अनुमान किया जा सकता है।

जायसी ने दो पुस्तकें पद्य मे लिखी, एक पद्मावत और दूसरी अखरावट। पद्मावत में रानी पद्मावती की कहानी बड़ी कुशलता से लिखी गई है। यद्यपि उसकी भाषा जायस के आसपास की देहाती है, परन्तु उसमें रूपक, उत्प्रेक्षा और उपमा आदि का बहुत सुन्दर समावेश हुआ है। सारी कथा दोहे-चौपाई मे है। मुसलमान होने पर भी प्रसंग के अनुसार हिन्दू देवताओं के प्रति भक्ति का वर्णन करने में जायसी ने बड़ी उदार-हृदयता का परिचय दिया है। एक मुसलमान के द्वारा हिन्दी-भाषा की ऐसी सेवा होनी बड़े हर्ष की बात है।

अखरावट पद्मावत के बाद बना। अखरावट में क से लेकर प्रायः सभी अक्षरों पर कविता की गई है। इसमें ईश्वर की स्तुति और संसार की असारता बतलाई गई है।

जायसी की कविता का कुछ नमूना हम आगे प्रस्तुत करते हैं—

राजा का स्वर्गवास (पद्मावत से)

तौलहि श्वास पेट महँ ग्रही । जौलहि दशा जी उ की रही ॥
काल आइ देखलाई साटी । उठि जिय चला छांड़ के माटी ॥
काकर लोग कुटुम घर बारू । काकर अर्थ द्रव्य ससारू ॥
वही घड़ी सब भयो परावा । आपन सोइ जो परसा खावा ॥
रहि जे हितू साथ के नेगी । सबै लागि काढन तेहि बेगी ॥
हाथ झार जस चलै जुवारी । तजा राज ह्वै चला भिखारी ॥
जब लग जीव रतन सब काहा । भा बिन जीव न कौडी लाहा ॥

गढ सौंपा तेहिं बादल , गये टेकत बसुदेव ।
छोडी राम अयोध्या , जो भावै सो लेव ॥

पद्मावति पुनि पहरि पटोरा । चली साथ पिय के ह्वै जोरा ॥
सूरज छिपा रयनि ह्वै गई । पूनो शशि सो अमावस भई ॥
छोरे केश मोति लट छूटी । जानो रयनि नखत सब छूटी ॥
सेंदुर परा जो शीस उघारी । आग लाग चहि जग अंधियारी ॥
यही दिवस हो चाहत नाही । चलो साथ पिय दै गलबाही ॥
सारस पखि नहिं जिये निरारे । हौ तुम बिन का जियो पियारे ॥
न्योछावर कै तन छहराऊ । छार होऊँ सग बहुर न आऊ ॥
दीपक प्रीति पतग ज्यों , जन्म निबाह करेउं ।
न्योछावर चहुपास ह्वै , कठ लाग जिय देउ ॥

पद्मावत का सती होना

नागमती पद्मावत रानी । दोउ महासत सती बखानी ॥
दोउ सौत चढ खाट जो बैठी । औ शिवलोक परा तहँ दीठी ॥
बैठो कोइ राज औ पाटा । अन्त सबै बैठे पुनि खाटा ॥
चन्दन अगर काढ सर साजा । और गति देय चले लै राजा ॥
बाजन बाजहिं होय अगोता । दोउ कन्त लै चाहैं सोता ॥

एक जो बाजा भयो विवाहू । अब दुसरे है और निबाहू ॥
जियत जलै जो कन्त की आसा । मुये रहस बैठे इक पासा ॥
आज सूर दिन अथयो, आज रयनि शशि बूड़ ।
आज नाथ जिय दीजिये, आज अगिन हम जूड़ ॥
सर रच दान पुन्य बहु कीन्हा । सात बार फिर भावर लीन्हा ॥
एक जो भावर भयो वियाही । अब दूसर ह्वै गोहन जाही ॥
जियत कन्त तुम हम गल लाई । मुये कण्ठ नहिं छाडहु साईं ॥
लै सर ऊपर खाट बिछाई । पौढी दोउ कन्त गल लाई ॥
और जो गांठ कन्त तुम जोरी । आदि अन्त लहि जाय न छोरी ॥
यह जग काह जो अथहि न याथी । हम तुम नाह दोहू जग साथी ॥
लागी कण्ठ अंग दै होरी । छार भई जर अग न मोरी ॥
राती पिय के नेह की, स्वर्ग भयो रतनार ।
जो रे उवा सो अथवा, रहा न कोई ससार ॥
वै सहगवन भई जिय आई । बादशाह गढ़ छेका धाई ॥
तब लग सो अवसर ह्वै बीता । भये अलोप राम औ सीता ॥
आय शाह जो सुना अखारा । ह्वै गइ रात दिवस उंजियारा ॥
छार उठाय लीन इक मूठी । दीन्ह उड़ाइ पिरथवी झूठी ॥
सगरे कटक उठाई माटी । पुल बाधा जह जहं गढ़ घाटी ॥
जौ लहि उपर छार नहिं परै । तौ लहि यह तृष्णा नहिं मरै ॥
भा दहवा भा जूझ असूझा । बादल आय पँवर पर जूझा ॥
जून्हर भइँ सब इस्त्री, पुरुष भये सग्राम ।
बादशाह गढ चूरा, चितौर भा इसलाम ॥
मैं यह अर्थ पण्डितन बूझा । कह कि हम कुछ और न सूझा ॥
चौदह भुवन जोहत उपराही । सो सब मानुष के घट माही ॥
तन चितौर मन राजा कीन्हा । हिय सिहल बुधि पद्मिनि चीन्हा ॥
गुरू सुवा जेहि पथ दिखावा । बिन गुरु जगत सो निरगुन पावा ॥
नागमती यह दुनिया धंधा । बाचा सोई न यह चित बन्धा ॥

राघव दूत सोइ शैतानू । माया अलाउदी सुलतानू ॥
प्रेम कथा यह भाति विचारू । बूझ लेहु जो बूझहि पारू ॥

तुरकी अरबी हिन्दवी, भाषा जेती आहि ।
जामें मारग प्रेम का, सबै सराहै ताहि ॥

मुहमद कवि यह जोर सुनावा । सुना सो प्रेम पीर का पावा ॥
जोरे लाय रक्त ले गये । प्रेम प्रीति नयनहिं जल भये ॥
औ मैं जान गीत अस कीन्हा । की यह रीति जगत मह चीन्हा ॥
कहाँ सो रतनसेन अब राजा । कहाँ सुवा अस बुध उपराजा ॥
कहाँ अलाउदीन सुलतानू । कहँ राघव जेहि कीन्ह बखानू ॥
कहँ सुरूप पद्मावति रानी । कुछ न रही जग रही कहानी ॥
धन माईं यह कीरति तासू । फूल मरै पर मरै न बासू ॥

कैन जगत यश बेचा, कैन लीन यश मोल ।
जो यह पढ़ै कहानी, हम सबरै दोउ बोल ॥

मुहमद वृद्ध बैम जो भई । यौवन हन सो अवस्था गई ॥
बल जो गयो कै खीन शरीरू । दृष्टि गई नयनहिं दै नीरू ॥
दसन गये कै बचा कपोला । बैन गये अनरुच दै बोला ॥
बुधि जो गई दै हिय बौराई । गर्व गयो तरिहत शिर नाई ॥
श्रवण गये ऊच जो सूना । स्याही गये सीस भा धूना ॥
भंवर गये केसहिं दे भुवा । यौवन गयो जीत ले जुवा ॥
जो लहि जीवन जोबन साथा । पुनि सो मीच पराये हाथा ॥

अखरावट

ठा ठाकुर बड़ आप गोसाईं । जेइ सिरजा जग अपनइ नाईं ॥
आपुहि आप जो देखइ चहा । आपन प्रभुता आपसे कहा ।
सबइ जगत दरपन कै लेखा । आपुहि दरपन आपुहि देखा ॥
आपुहि बन औ आपु पखेरू । आपुहि सउजा आपु अहेरू ॥
आपुहि पुहुप फूल बन फूले । आपहि भंवर बासरस भूले ॥
आपुहि फल आपुहि रखवारा । आपुहि सो रस चाखनहारा ॥

आपुहि घटघट महं सुख चाहइ । आपुहि आपन रूप सराहइ ॥
पानी मह जस बुल्ला, तस यह जग उतराइ ।
एकहि आवत देखिये, एकहि जात बिलाइ ॥
सा साँसा जड़ लहि दिन चारी । ठाकुर से करि लेहु चिन्हारी ॥
अब न रहहु होहु डिठिआरा । चीन्हि लेहु जो तोहि सवारा ॥
पहले से जो ठाकुर कीजिअ । अइसे जिअन मरन नहि छीजिअ ॥
छाड़हु घिउ अरु मछरी मासू । सूखे भोजन करहु गरासू ॥
दूध मास घिव करु न अहारू । रोटी सान करहु फरहारू ॥
यहि विधि काम घटावहु काया । काम क्रोध तिसना मद माया ॥
तब बइठउ बजरासन मारी । गहि सुखमना पिङ्गला नारी ॥
प्रेम तन्तु तस लागि रहु, करहु ध्यान चित बाधि ।
पारधि जइस अहेर कहं, लागि रहइ सर साधि ॥

नरोत्तमदास

नरोत्तमदास कस्बा बाड़ी जिला सीतापुर के रहने-वाले ब्राह्मण थे। इनका जन्म सं० १५५० के लगभग माना जाता है। शिवसिंह सरोज में सं० १६०२ मे इनका जीवित रहना लिखा है। यह अच्छे कवि थे। १५८२ में इन्होंने सुदामा-चरित्र लिखा। इन्होंने ध्रुवचरित्र भी लिखा था। सुदामा-चरित्र हमने देखा है। इनकी कविता बड़ी सुन्दर है। इनके सुदामा-चरित्र से कुछ नमूने यहां दिये जाते है—

लोचन कमल दुखमोचन तिलक भाल श्रवननि कुण्डल मुकुट धरे माथ है। ओढे पीत बसन गरे मैं वैजयती माल शख चक्र गदा और पद्म लिये हाथ हैं। कहत नरोत्तम संदीपनि गुरू के पास तुमही कहत हम पढे एक साथ है। द्वारिका के गये हरि दारिद हरेंगे पिय द्वारिका के नाथ वे अनाथन के नाथ है ॥१॥

सिच्छक हौं सिगरे जग को तिय ताको कहा अब देति है सिच्छा ।
जे तप कै परलोक सुधारत सपति की तिनकै नहि इच्छा ।

मेरे हिये हरि के पद पंकज बार हजार लै देखु परिच्छा ।
औरन को धन चाहिये बावरी बाँभन को धन केवल भिच्छा ॥२॥

दानी बड़े तिहु लोकन मे जग जीवत नाम सदा जिनको लै ।
दीनन की सुधि लेत भली विधि सिद्धि करौ पिय मेरो मतो लै ।
दीनदयालु के द्वार न जात सो और के द्वार पै दीन ह्वै बोलै ।
श्री जदुनाथ से जाके हितू सो तिहूपन क्यो कन मागत डोलै ॥३॥

क्षत्रिन के प्रन युद्ध जुवा सजि बाजि चढे गज राजन ही ।
वैस को बानिज औंर कृषी, प्रन शूद्र के सेवन-साजन ही ।
बिप्रन को प्रन है जु यही सुख सम्पति सों कुछ काज नही ।
कै पढ़िबो कै तपोधन है कन मागत बाभनै लाज नही ॥४॥

कोदो सवा जुरतौ भरिपेट न चाहति हौं दधि दूध मिठौती ।
सीत व्यतीत भयौ सिसियातहि हौ हठती पै तुम्हें न हठौती ।
जो जनती न हितू हरि सो तौ मैं काहे को द्वारिका पेलि पठौती ।
या घर ते न गयो कबहू पिय टूटो तवा अरु फूटी कठौती ॥५॥

छाड़ि सबै तक तोहि लगी बक आठहु जाम यहै जक ठानी ।
जातहि दैहैं लदाय लढा भरि लैहौ लदाय यहै जिय जानी ।
पावें कहा ते अटारी अटा जिनके बिधि दीन्ही है टूटी-सी छानी ।
जो पै दरिद्र लिखो है ललाट तो काहू पै मेटि न जात अजानी ॥६॥

फाटे पट टूटी छानि खायौ भीख मागि आनि बिना जग्य बिमुख रहत देव-पित्रई । वै है दीनबन्धु दुखी देख कै दयाल ह्वै है दैहै कछु भलो सो हौं जानत अगत्रई । द्वारिका लौ जात पिय ! केतौ अलसात तुम काहे-कौ लजात भई कौन-सी बिचित्रई । जो पै सब जन्म या दरिद्र ही सतायो तोपै कौन काज आइहै कृपानिधि की मित्रई ॥७॥

तै तो कही नीकी सुनि बात हित ही की यही रीति मितई की नित प्रीति सरसाइये । मित्र के मिलेते चित्त चाहिये परसपर मित्र के जो जेंइये तो आपहू जेवाइये । वै हैं महाराज जोरि बैठत समाज भूप तहां

यही रूप जाय कहा सकुचाइये। दुख सुख करि दिन काटे ही बनैंगे भूलि विपति परे पै द्वार मित्र के न जाइये ॥८॥

विप्र के भगत हरि जगत-विदित-बन्धु लेत सब ही की सुधि ऐसे महादानि हैं। पढे एक चटसार कही तुम कैयो बार लोचन-अपार वै तुम्हें न पहिचानिहैं। एक दीनबन्धु कृपासिन्धु फेर गुरुबन्धु तुम सम कौन दीन जाको जिय जानिहै। नाम लेत चौगुनी गये तें द्वार सौगुनी सो देखत सहस्रगुनी प्रीति प्रभु मानिहैं ॥९॥

द्वारिका जाहु जू द्वारिका जाहु जू आठहु जाम यहै जक तेरे।
जो न कहो करिये तो बड़ो दुख जैए कहां अपनी गति हेरे॥
द्वार खरे प्रभु के छरिया तह भूपति जान न पावत नेरे।
पाच सुपारी तै देखु विचारिकै भेट कौं चारि न चाउर मेरे ॥१०॥

यह सुनि के तब ब्राह्मनी, गई परोसिनि पास।
पाव सेर चाउर लिये, आई सहित हुलास ॥११॥
सिद्धि करी गनपति सुमिरि, बाधि दुपटिया खूट।
मागत खात चले तहा, मारग वाली बूट ॥१२॥

मगल सगीत धाम धाम मे पुनीत जहां नाचै वारवधू देवनारि अनुहारिका। घटन के नाद कहूं बाजन के छाइ रहे कहू पिक केकि पढ़ै सुक और सारिका। रतनन-ठाट हाट-बाटन में देखियत घूमैं गज अस्व रथपती नर-नारिका। दसो-दिसा भीर द्विज धरत न धीर मन उठति है पीर लखि बलबीर द्वारिका ॥१३॥

दीठि चकचौधि गई देखत सुवर्नमयी, एक ते सरस एक द्वारिका के भौन है। पूछे बिन कोऊ कहू काहू सों न करै बात देवता-से बैठे सब साधि-साधि मौन है। देखत सुदामै धाय पौरजन गहे पाय, "कृपा करि कहो कहा कीने विप्र गौन है ?" "धीरज अधीर के हरन पर-पीर के, बताओ बलबीर के महल यहां कौन है ॥१४॥"

द्वारपाल चलि तह गयो, जहां कृस्न जदुराय।
हाथ जोरि ठाढो भयो, बोल्यौ सीस नवाय ॥१५॥

सीस पगा न झँगा तन मै प्रभु जानै को आहि बसै केहि ग्रामा ।
धोती फटी-सी लटी-दुपटी अरु पाय उपानह की नहिं सामा ।।
द्वार खरो द्विज दुर्बल एक रह्यो चकि सो बसुधा अभिरामा ।
पूछत दीनदयाल के धाम बतावत आपनो नाम सुदामा ।।१६।।

लोचन पूरि रहे जल सों प्रभु दूरि ते देखत ही दुख मेटचो ।
सोच भयौ सुरनायक के कलपद्रुम के हिय माझ खखेटचो ।।
कंप कुबेर हिये सर सो परसे पग जात सुमेर ससेटचो ।
रंक ते राउ भयौ तबही जबही भरि अंक रमापति भेटचो ।।१७।।

ऐसे बेहाल बेवाइन सों पग कंटक जाल लगे पुनि जोये ।
हाय महा दुख पायो सखा तुम आये इतै न कितै दिन खोये ।।
देखि सुदामा की दीन दसा करुना करिकै करुनानिधि रोये ।
पानी परात को हाथ छुयौ नहिं नैनन के जल सो पग धोये ।।१८।।

तन्दुल तिय दीने हते, आगे धरियो जाय ।
देखि राजसम्पति विभव, दै नहिं सकत लजाय ।।१९।।
अन्तरजामी आप हरि, जानि भगत की रीति ।
सुहृद सुदामा विप्र सो, प्रगट जनाई प्रीति ।।२०।।
कछु भाभी हमको दियो, सो तुम काहे न देत ।
चापि पोटरी काख मैं, रहे कहो केहि हेत ।।२१।।

आगे चना गुरमात दये ते लये तुम चाबि हमैं नहिं दीनें ।
स्याम कही मुसकाय सुदामा सो चोरि की बानि में हौ जु प्रबीनें ।।
पोटरी कांख में चापि रहे तुम खोलत नाहिं सुधारस भीने ।
पाछिली बानि अजौं न तजी तुम तैसेई भाभी के तन्दुल कीने ।।२२।।

खोलत सकुचत गांठरी, चितवत हरि की ओर ।
जीरन पट फटि छुटि परे, बिखर गये तेहि ठौर ।।२३।।

तन्दुल मांगत मोहन विप्र सकोच ते देत नहीं अभिलाखे ।
है नहिं पास कछू कहि के तेहि गोपि घनी विधि काख मे राखे ।।

सो लखि दीनदयालु उतै यह चोरी करी तुम यों हँसि भाखे ।
खोलि के पोट अछोटमुठी गिरिधारन चाउर चाव सो चाखे ॥२४॥
कांपि उठी कमला मन सोचति मो सों कहा हरि को मन औंको ।
ऋद्धि कपी सब सिद्धिकपी नवनिद्धि कपी ब्रह्मनायक धौंको ॥
सोच भयो सुरनायक के जब दूसरी बार लयो भरि झौंको ।
मेरु डरयो बकसै जनि मोहिं कुबेर चबावत चाउर चौंको ॥२५॥

हूल हियरा मे कान कानन परी है टेर भेटत सुदामै स्याम बनै न अघातही । कहै नरोत्तम ऋद्धि सिद्धिन में सोर भयो ठाढी थरहरैं थीर सोचै कमला तही ॥ नाकलोक नागलोक ओक-ओक थोक-थोक ठाड़े थरहरें मुख से कहैं न बातही । हालो परयो लाकन मे लालो परयो चक्रिन मे चालो परयो लोगन में चाउर चबातही ॥२६॥

भौन भरो पकवान मिठाइन लोग कहैं निधि है सुखमा के ।
साझ सबेरे पिता अभिलाषत दाख न चाखत सिंधु छमा के ॥
बाभन एक कोऊ दुखिया सेर-पावक चाउर लायो समा के ।
प्रीति की रीति कहा कहिये तिहि बैठि चबात है कंत रमा के ॥२७॥

मूठी तीसरी भरत ही , रुकुमिनि पकरी बांह ।
ऐसी तुम्हें कहा भई , सपति की अनचाह ॥२८॥
कही रुकुमिनी कान मे , यह धौ कौन मिलाप ।
करत सुदामहिं आपसों , होत सुदामा आप ॥२९॥

हाथ गह्यो प्रभु को कमला कहै नाथ कहा तुमने चित धारी ।
तन्दुल खाय मुठी दुइ दीन कियो तुमने दुइ लोक बिहारी ॥
खाय मुठी तिसरी अब नाथ कहा निज बास की आस बिचारी ।
रंकहि आप समान कियो तुम चाहत आपहि होन भिखारी ॥३०॥

रूपे के रुचिर थार पायस सहित सिता, जीती जिन सोभा है सरदहू के चद की । दूसरे पहिति भात सोंधो है सुरभि घृत, फूलेफूले फुलका प्रफुल्ल दुति मंद की ॥ पापर मुंगौरी बरा ब्यंजन अनेक प्रीति, देवता

बिलोकि रहे देवकी के नंद की । या बिधि सुदामाजू को आछेकै जेंवाय प्रभु पाछे तै पछचावरि परोसी आनि कद की ॥३१॥

कह्यो विश्वकर्मा को हरि तुम जाय करि नगर सुदामाजी को रचौ वेग अबही । रतन जटित धाम सुवरणमयी सव, कोट औ वजार बाग फूलन के तबही ॥ कलनवृक्ष द्वार गज रथ असवार प्यादे कीजिये अपार दास दासी देव छबही ॥ इन्द्र औ कुबेर आदि देव बधू अपसरा गधरब गुनी जहां ठाढ़े रहे सबही ॥३२॥

नित नित सब द्वारावती , दिखराई प्रभु आप ।
भले बाग अनुराग सह , जहा न ब्यापै ताप ॥३३॥
परम कृपा दिन-दिन करी , कृपानाथ जदुराय ।
मित्र-भावना बिस्तरी , दूनो आदर भाय ॥३४॥

दाहिने बेद पढ़ै चतुरानन सामुहे ध्यान महेस धरयो है ।
बाएं दुऔ कर जोरे लिए सब देवन साथ सुरेस खरयो है ॥
एनेइ बीच अनेक लिये धन पायन आय कुबेर परयौ है ।
देखि बिभौ अपनो सपनो बपुरो वह बांभन चौकि परयौ है ॥३५॥

देनो हुतौ सो दै चुके , विप्र न जानी गाथ ।
चलती बेर गोपालजू , कछू न दीन्ही हाथ ॥३६॥
गोपुर लौ पहुचाय कै , फिरे सकल दरबार ।
मित्र वियोगी कृस्न के , नेत्र चली जल - धार ॥३७॥
हौ कब इत आवत हुतौ , वाही पठयौ ठेलि ।
कहिहौं धन सौं जाइके , अब धन धरौ सकेलि ॥३८॥
बालापन के मित्र हैं , कहा देउ मैं साप ।
जैसौ हरि हमको दियौ , तैसो पइ हैं आप ॥३९॥
और कहा कहिये जहा , कञ्चन हो के धाम ।
निपट कठिन हरिको हियो , मोको दियो न दाम ॥४०॥
मि सोचत-सोचत भखत , आयो निज पुर तीर ।
दीठि परी इकबारही , हय गयंद की भीर ॥४१॥

वेई सुरतरु प्रफुलित फुलवारिन मे, वेई सरवर हंस वोलन-मिलन कों। वेई हेम-हिरन दिसान दहलीजन मे, वेई गजराज हय गरज-पिलन कों॥ द्वार द्वार छरी लिये द्वार-पौरिया जो खरे, वोलत मरोर-वरजोर त्यों भिलन कों। द्वारका तें चल्यौ भूलि द्वारिका ही आयों नाथ, मागिया न मो पै चारि चाउर गिलन को ॥४२॥

जगर-मगर जोति छाय रही चहु ओर अगर-वगर हाथी-घोरन को रोर है। चौपर को वनो है वजार पुनि सोनान के, महल दुकान की कतार चहुं ओर है॥ भीरभार धकापेल चहुं दिशि देखियत, द्वरिका तें दूनो यहाँ प्यादन को जोर है। रहिवे को ठाम है न, काहू सों पिछान मेरी, विन जाने वसे कोऊ हाड़ मेरे तोर है॥ ४३॥

फूटी एक थारी बिन टोटनी की भारी हुती, वास की पिटारी औ कंथारी हुती टाट की। वेटे विन छुरी औ कमंडलु सौ टूक वहो, फटे हुते पावौ पाटी टूटी एक खाट की। पथरीटा, काठ को कठौता कहूं दीसै नाहि, पीतर को लोटो हो कटोरो हो न वाटकी। कामरी फटी-सी हुती डोंड़न की माला ताक, गोमती की माटी की न सुद्ध कहूं माट की ॥४४॥

मीराबाई

मीराबाई जोधपुर मेड़ता के राठौर रतनसिंहजी की एकलौती बेटी थी। इनका जन्म कुडकी नामक ग्राम में, संवत् १५५५ वि० और सं० १५६० वि० के बीच हुआ था। इनका विवाह उदयपुर के सीसोदिया राजकुल में महाराना सांगाजी के कुंवर भोजराज के साथ सं० १५७३ में हुआ था। इनका देहान्त कब हुआ—इसका ठीक ठीक पता नहीं चलता। स्वर्गवासी भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का अनुमान है कि मीराबाई ने संवत् १६२० और १६३० वि० के बीच शरीर छोड़ा।

मीराबाई का समय कौन-सा है? इस विषय में बड़ा मतभेद है। संतवानी के सम्पादक ने इनका जीवन-समय सं० १५७३ से १६३० तक माना है और इनको जोधपुर के राठौर राव रन्जीतसिंह की एकलौती

बेटी और उदयपुर के युवराज भोजराज की स्त्री लिखा है। मिश्रबन्धु लिखते हैं कि "यह बाईजी मेड़तिया के राठौर रत्नसिंह की पुत्री, राव ईदाजी की पौत्री और जोधपुर के बसानेवाले प्रसिद्ध राव जोधाजी की प्रपौत्री थी। इन्होंने १५७३ में चौकडी नामक ग्राम मे जन्म लिया और इनका विवाह महाराना कुमार भोजराज के साथ हुआ। मीराबाई का देहान्त द्वारिकाजी में स० १६०३ मे हुआ। पहले बहुतो का मत था कि मीराबाई राजा कुम्भकरण की स्त्री थी और बाईजी का जन्म-काल स० १४७५ का लोग मानते थे। परन्तु जोधपुर के प्रसिद्ध इतिहासज्ञ मुंशी देवीप्रसादजी ने मीराबाई के बाबत उपर्युक्त बाते का पता लगाया है, जो अब सर्वसम्मत भी है।"

टाड साहब लिखते हैं कि "मैरता निबासी राठौर सरदार दूदाजी की मीराबाई नामक कन्या से महाराणा कुंभ का विवाह हुआ था।" महाराना कुभ सं० १४७५ में चित्तौर के सिहासन पर बैठे और दूदाजी के पिता जोधाजी का स० १५४५ में ६१ वर्ष की अवस्था में देहान्त हो चुकी थी। दूदाजी अपने १४ भाइयो मे चौथे थे। अतएव पिता के मरने के समय उनकी अवस्था कम से कम ३० वर्ष की रही होगी अर्थात् १५१५ में वे उत्पन्न हुए होंगे। महाराजा कुभ का देहान्त १५२५ में हुआ अतएव मीराबाई का राजा कुभ की रानी होना ही नही बल्कि यह भी असम्भव जान पडता है कि वे उनके समय में पैदा हुई थी।

रायबहादुर कमलाशंकर प्राणशकर त्रिवेदी, बी० ए० ने "गुजराती भाषानुं बृहद् व्याकरण" के "गुजराती भाषानो इतिहास" प्रकरण में २९वें पृष्ठ पर लिखा है कि "नरसिंह महेता अने मीराबाई ई० स० ना १५ मा सैका मा थई गयाँ छे।" पर गुजरात के साहित्यिकों में भी मीराबाई के सम्बन्ध में बहुत मतभेद चल रहा है। मीराबाई के समय-सबन्ध में उनके पदों से जो कुछ पता चलता है वह यह है कि वे रैदास की शिष्या थी। उनके कितने ही पदों में यह स्पष्ट लिखा हुआ मिलता है कि वे रैदासजी को गुरु मानती थी। प्रमाण के लिए यहा कुछ पद मीराबाई की शब्दा-

वली से उद्धृत किये जाते हैं:—

१—रैदास सत मिले मोहि सतगुरु दीन्हा सुरत सहदानी। पृष्ठ २०

२—गुरुमिलिया रैदासजी दीन्हों ज्ञान की गुटकी। पृष्ठ २५

३—गुरु रैदास मिले मोहि पूरे धुर से कलम भिड़ी। पृष्ठ ३६

४—मीरा ने गोविंद मिल्या जी गुरु मिलिया रैदास। पृष्ठ ३७

रैदासजी कबीर साहब के गुरुभाई थे। कबीर साहब का जन्म सं० १४५५ में और मरण १५७५ में माना जाता है। इसीके आसपास रैदासजी का भी जीवनकाल रहा होगा। इसी समय के भीतर मीराबाई का भी जीवन-समय होना चाहिए, तभी रैदासजी का मीराबाई का गुरु होना प्रमाणित हो सकेगा। पता नहीं, उम्र में रैदास बड़े थे या कबीर। रैदास कब मरे, यह भी अनिश्चित है। यदि दोनों का जन्म-मरण-काल एक ही मान लिया जाय तो मीराबाई के जन्म के समय रैदास १०० वर्ष के रहे होंगे। विवाह के पहले ही मीराबाई को रैदास ने ज्ञानोपदेश किया होगा। क्योंकि १५७३ में मीराबाई का विवाह हो गया। विवाह के बाद १५७३ से १५७५ के भीतर रैदास को मीराबाई से मिलने का मौका मिलना, मेरी राय में असम्भव ही है। सौ सवासौ वर्ष की उम्र में रैदास का राजपूताने जाना यदि सम्भव हो तो मीराबाई का जन्म स० १५५५ ही ठीक है। इस हिसाब से मिश्रबधुओं ने और सतबानी के सम्पादक ने जो मीराबाई का समय निर्धारित किया है यह गलत ठहरता है। उस समय रैदास का मीराबाई से सत्संग होना असम्भव है।

कहा जाता है कि विवाह होने पर मीराबाई चित्तौड़ गईं, वहां विवाह होने से दस बरस के भीतर ही यह विधवा होगईं, परन्तु इनको इस बात का कुछ भी शोक न हुआ। क्योंकि इनके हृदय में गिरिधर गोपाल के लिए बड़ी भक्ति थी और ये रात दिन गिरिधर नागर के प्रेम में ही मतवाली रहती थी। अपने कुलकी लज्जा छोड़कर जब यह बेधड़क साधु-सेवा करने लगी, तब यह बात इनके देवर विक्रमाजीत को, जो महाराना रतनसिंह के बाद चित्तौड़ की गद्दी पर बैठे थे, बहुत खटकी। उन्होंने

मीरा को बहुत समझाया और चम्पा और चमेली नाम की दो दासिया इस अभिप्राय से मीरा के पास रखी कि वे साधु-सगति की ओर से मीरा का चित्त हटाती रहे, परन्तु मीरा की सगति से उन दोनों दासियो पर भी भक्ति का रग चढ गया । तव राणा ने अपनी सगी बहन ऊदा का मीराबाई के पास समझाने के लिए भेजा । परन्तु मीरा अपने प्रण से नही टली, उलटे ऊदा का ही चित्त मीरा के प्रेम पर आसक्त होगया । वह मीरा की चेली हो गई । तब राणा ने मीरा को विष का प्याला भेजा । मीरा ने उसे भगवान् का चरणामृत समझकर पी लिया । कहते है कि उस विष का मीराबाई पर कुछ भी असर न हुआ । इतने पर भी जब राणा ने नही माना और वे बराबर उपाधि करते रहे, तब मीरा ने घबड़ाकर गोस्वामी तुलसीदासजी को यह पद लिखकर भेजा—

श्री तुलसी सुखनिधान दुख हरन गुसाई ।
बारहि बार प्रनाम करू अब हरो सोक समुदाई ॥
घर के स्वजन हमारे जेते सबन उपाधि बढाई ।
साधु सग अरु भजन करत मोहि देत कलेस महाई ॥
बालपने ते मीरा कीन्ही गिरधर लाल मिताई ।
सो तो अब छूटतहि नाहि क्यों हूं लगी लगन बरियाई ॥
मेरे मात पिता के सम हो हरि भक्तन सुखदाई ।
हमको कहा उचित करिबो है सो लिखियो समुझाई ॥

इसके उत्तर मे तुलसीदास ने यह लिख भेजा—

जाके प्रिय न राम वैदेही ।
तजिये ताहि कोटि बैरी सम, यद्यपि परम सनेही ॥
तज्यो पिता प्रहलाद, विभीषण वन्धु भरत महतारी ।
बलि गुरु तज्यो, कत ब्रज बनिता, भये सब मङ्गलकारी ॥
नातो नेह राम सो मनियत सुहृद सुसेव्य जहा लौ ।
अजन कहा आख जो फूटे बहुतक कहो कहा लौं ॥

"तुलसी" सो सब भांति परमहित, पूज्य प्रानते प्यारो ।
जासो होय सनेह रामपद एही मतो हमारो ॥

इस उत्तर के पाने पर मीरावाई चित्तौड़ छोड़कर रात के समय मेडता चली आई । यह कथा बिलकुल मनगढत है । मीरावाई का जन्म-काल सं० १५५५ या १५७३ मानने पर तो यह किसी तरह सभव नही कि १५८९ मे पैदा होनेवाले गोस्वामी तुलसीदास से इनका यह पत्रव्यवहार हुआ हो और उनकी राय से उन्होंने गृहत्याग किया हो । मीरा और तुलसी के पदो को मिलाकर किसी ने यह नई घटना रच दी है ।

वहा भी उनका मन न लगा तब वृन्दावन चली गई । वृन्दावन मे मीरावाई जीव गोस्वामी का दर्शन करने गई । उन्होने कहा, हम स्त्रियो से नही मिलते । मीरावाई ने कहला भेजा —मै नही जानती थी कि गिरिधर लाल के सिवा यहा और भी पुरुष है । यह सुनते ही जीव गोस्वामी नगे पैर बाहर आकर मीरावाई को आदरपूर्वक लेगये । वहा कुछ समय रहकर फिर द्वारका चली गई । राणाजी ने मीरावाई को वापस लाने के लिए कई ब्राह्मणो को द्वारका भेजा । मीरावाई ने आना अस्वीकार किया । तब ब्राह्मणो ने वहीं धरना दे दिया और अन्न-जल छोड़ दिया । तब कहा जाता है कि मीरावाई रणछोड़जी से मिलने के लिए मदिर में गई और वहीं मूर्ति में समा गई ।

मीरावाई को कृष्ण में अगाध प्रेम था । उनके पदो से उनकी हार्दिक भक्ति प्रकट होती है । मीरावाई संस्कृत भी जानती थी । उन्होने गीतगोविन्द की टीका लिखी है । इसके सिवा नरसीजी का मायरा और रागसोरठ के पद भी उनके रचे हुए कहे जाते है । हमने इन में से कोई पुस्तक नहीं देखी ।

(१)

घडी एक नहि आवडे, तुम दरसण बिन मोय।
तुमहो मेरे प्राण जी, कासू जीवण होय ॥
धान न भावै नीद न आवै, विरह सतावै मोय।
घायल सी घूमत फिरू रे, मेरा दरद न जाणे कोय ॥
दिवस तो खाय गमायो रे, रैंण गमाई सोय।
प्राण गमायो झूरता रे, नैण गमाई रोय ॥
जो मै ऐसा जाणती रे, प्रीति किये दुख होय।
नगर ढढोरा फेरती रे, प्रीति करो मत कोय ॥
पथ निहारू डगर बुहारू, ऊबी मारग जोय।
"मीरा" के प्रभु कबरे मिलोगे, तुम मिलिया सुख होय ॥

(२)

हेरी मै तो प्रेम दिवाणी, मेरा दरद न जाणे कोय।
सूली ऊपर सेज हमारी, किस विध सोणा होय ॥
गगन मडल पै सेज पिया की, किस विध मिलणा होय।
घायल की गति घायल जानै, की जिन लाई होय ॥
जौहरीकी गति जौहरी जानै, की जिन जौहर होय।
दरद की मारी बन बन डोलू, वैद मिल्या नहिं कोय ॥
"मीरा" की प्रभु पीर मिटैगी, जब वैद सवलिया होय।

(३)

बंसीवारो आयो म्हारे देस, थारी सावरी सुरत वाली वैस ॥
आऊ आऊ कर गया सावरा, कर गया कौल अनेक।
गिणते गिणते घिस गई उगली, घिस गई उगली की रेख ॥
मै बैरागिणि आदि की, थारे म्हारे कद को सदेस।
बिन पाणी बिन साबुन सावरा, हुइ गई धुई सपेद ॥
जोगिण हुई जगल सब हेरू, तेरा नाम न पाया भेस।
तेरी सुरत के कारणे, धर लिया भगवा भेस ॥

मोर मुकुट पीताम्वर सोहै, घूघरवाला केस।
"मीरा" को प्रभु गिरिधर मिल गये, दूना वढा सनेस॥

(३)

राम मिलण रो घणो उमावो, नित उठ जोऊ वाटड़ियां।
दरसण बिन मोहि पल न सुहावै, कल न पड़त है आंखड़िया॥
तलफ तलफ के वहु दिन बीते, पड़ी विरह की फासड़ियां।
अब तो बेगि दया कर साहिव, मै हू तेरी दासड़िया॥
नैण दुखी दरसण को तिरसे, नाभि न वैठे सासड़ियां।
रात दिवस यह आरत मेरे, कव हरि राखे पासड़ियां॥
लगी लगन छूटण की नाही, अव क्यो कीजै आटड़िया।
"मीरा" के प्रभु गिरिधर नागर, पूरो मन की आसड़िया॥

(५)

पायो जी, मैंने राम रतन धन पायो।
वस्तु अमोलक दी मेरे सतगुरु, किरपा कर अपनायो॥
जनम जनम की पूजी पाई, जग मे सभी खोवायो।
खरचै नहि कोई चोर न लेवे, दिन दिन बढ़त सवायो॥
सत की नाव खेवटिया सतगुरु, भवसागर तर आयो।
"मीरा" के प्रभु गिरधरनागर, हरख हरख जस गायो॥

(६)

वसो मेरे नैनन मे नन्दलाल।
मोहनो मूरति सांवरि सूरति नैना बने बिसाल॥
अधर सुधारस मुरली राजित उर बैजन्ती माल।
छुद्रघटिका कटि तट सोभित नूपुर शब्द रसाल॥
"मीरा" प्रभु संतन सुखदाई भक्त बछल गोपाल॥

(७)

करमगति टारे नाहि टरे।
सतवादी हरिचंद से राजा, नीच घर नीर भरे।

पाच पांडु अरु कुन्ती द्रोपती, हाड़ हिमालय गरे ॥
जज्ञ किया बलि लेण इंद्रासन, सो पाताल धरे।
"मीरा" के प्रभु गिरधरनागर, विष से अमृत करे ॥

(८)

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरा न कोई।
दूसरा न कोई साधो सकल लोक जोई ॥
भाई छोड्या बन्धु छोड्या छोड्या सगा सोई।
साध सङ्ग बैठ बैठ लोक लाज खोई ॥
भगत देख राजी हुई जगत देख रोई।
असुवन जल सीच सीच प्रेम बेल बोई ॥
दधि मथ घृत काढ लियो डार दई छोई।
राणा विष को प्यालो भेज्यो पीय मगन होई ॥
अब तो बात फैल पडी जाणे सब कोई।
"मीरा" राम लगण लागी होणी होय सो होई ॥

(९)

मीरा मगन भई हरि के गुण गाय ॥
साप पिटारा राणा भेज्या मीरा हाथ दियो जाय।
न्हाय धोय जब देखण लागी सालिगराम गई पाय ॥
जहर का प्याला राणा भेज्या अमृत दीन्ह बनाय।
न्हाय धोय जब पीवण लागी हो अमर अचाय ॥
सूल सेज राणा ने भेजी दीज्यो मीरा सुलाय।
साझ भई मीरा सोवण लागी मानो फूल बिछाय ॥
"मीरा" के प्रभु सदा सहाई राखे बिघन हटाय।
भजन भाव मे मस्त डोलती गिरधर पै बलि जाय ॥

(१०)

नहिं ऐसो जन्म वारम्बार।
क्या जानू कछु पुन्य प्रकटे, मानुसा अवतार ॥

बढत पलपल घटत छिनछिन , चलत न लागे वार ।
बिरछ के ज्यों पात टूटे , लागे नहिं पुनि डार ॥
भौसागर अति जोर कहिये , विषय ओखी धार ।
सुरत का नर बांधे बेडा , वेगि उतरे पार ॥
साधु संता ते महता , चलत करत पुकार ।
"दासमीरा" लाल गिरिधर , जीवना दिन चार ॥

(११)

मन रे परसि हरि के चरन ।
सुभग सीतल कमल कोमल , त्रिविध ज्वाला हरन ।
जे चरन प्रहलाद परसे , इन्द्र पदवी धरन ॥
जिन चरन ध्रुव अटल कीन्हो , राखि अपने सरन ।
जिन चरन ब्रह्माड भेटचो , नख सिखौ श्री भरन ॥
जिन चरन प्रभु परसि लीने , तरी गौतम धरन ।
जिन चरन कालीहि नाथ्यो , गोप लीला करन ॥
जिन चरन धारचो गोबर्द्धन , गरव मघवा हरन ।
"दास मीरा" लाल गिरिधर , अगम तारन तरन ॥

(१२)

नातो नाम को मो सू तनक न तोड़्यो जाय ॥
पाना ज्यो पीली पड़ी रे , लोग कहे पिंड रोग ।
छाने लाघन मै किया रे , राम मिलन के योग ॥
बावल वैद बुलाइया रे , पकड दिखाई म्हारी बाह ।
मुरख वैद मरम नहिं जाने , करक कलेजे माह ॥
जाओ वैद घर आपने रे , म्हारो नाव न लेय ।
मै तो दाधी विरह की रे , काहे कू औपद देय ॥
मास गलि गलि छीजिया रे , करक रह्या गल माहि ।
आंगुलिया की मूदड़ी म्हारे , आवन लागी वाहि ॥

रहु रहु पापी पपीहा रे , पिव को नाम न लेय ।
जे कोई बिरहिन साम्हले तो , पिव कारन जिव देय ।।
खिन मन्दिर खिन आगने रे , खिन खिन ठाढी होय ।
घायल ज्यू घूमू खडी , म्हारी बिथा न बूझे कोय ।।
काटि कलेजो मै धरू रे , कौआ तू ले जाय ।
ज्या देसा म्हारो पिव बसै रे , वे देखत तू खाय ।।
म्हारे नातो नाम को रे , और न नातो कोय ।
"मीरा" व्याकुल बिरहिनी रे , पिय दरसन दीजो मोय ।।

हितहरिवंश

गोस्वामी हितहरिवंश का जन्म वैशाख बदी ११ स० १५५९मे देवबद (सहारनपुर) मे और मरण स० १६५९ के लगभग हुआ । इनके पिता का नाम व्यासजी, माता का तारावती और स्त्री का रुक्मिणी था ।

हितहरिवश जी राधाबल्लभ सम्प्रदाय के सस्थापक थे। ये सस्कृत और हिन्दी के अच्छे कवि थे । ये श्रीकृष्ण की वशी के अवतार माने जाते ह । सस्कृत मे इन्होने 'राधा सुधानिधि" नामक १७० श्लोको का एक काव्य रचा । कुछ लोगो का कहना है कि यह ग्रन्थ श्री चैतन्य महाप्रभु के शिष्य स्वामी प्रबोधानन्द का रचा हुआ है । इनकी कविता का मुख्य लक्ष्य भक्ति था । हिन्दी मे इन्होने ८४ पद कहे है । उनमे से कुछ चुने हुए पद हम नीचे उद्धृत करते है—

(१)

ब्रज नव तरुणि कदम्ब मुकुट मणि श्यामा आजु बनी ।
नख सिखलौ अँग अग माधुरी मोहे श्याम घ नी ।।
यो राजत कवरी गूथित कच कनक कञ्ज वदनी ।
चिकुर चन्द्रिकनि बीच अरध बिधु मानहु ग्रसत फनी ।।
सौभग रस सिर स्रवत पनारी पिय सीमत ठनी ।
भृकुटी काम कोदड नैन सर कज्जल रेख अनी ।।

भाल तिलक ताटक गंड पर नासा जलज मनी ।
दसन कुन्द सरसाधर पल्लव पीतम मन समनी ॥
चिबुक मध्य अति चारु सहज सखि सावल विन्दु कनी ।
प्रीतम प्रान रतन संपुट कुच कंचुकि कसित तनी ॥
भुज मृनाल बल हरत वलय जुत परस सरस स्रवनी ।
श्याम सीस तरु मनु मिडवारा रची रुचिर रवनी ॥
नाभि गँभीर मीन मोहन मन खेलन कौ हृदिनी ।
कृश कटि पृथु नितंब किंकिन बृत कदलि खंभ जघनी ॥
पद अम्बुज जावक युत भूषन प्रीतम उर अवनी ।
नव नव भाव विलोम भाम इभ विहरति बर करनी ॥
"हितहरिबस" प्रसंसित श्यामा कीरति बिसद घनी ।
गावत स्रवननि सुनत सुखाकर बिस्व दुरित दवनी ॥

(२)

चलहि किन मानिनि कुञ्ज कुटीर ।
तो बिन कुंवर कोटि बनिता जुत मथत मदन की पीर ॥
गदगद सुर बिरहाकुल पुलकित श्रवण विलोचन नीर ।
क्वासि क्वासि वृषभाननंदिनी बिलपत विपिन अधीर ॥
वंसी बिसिख व्याल मालावलि पञ्चानन पिक कीर ।
मलयज गरल हुतासन मारुत साखामृग रिपु चीर ॥
"हितहरिबंस" परम कोमल चित सपदि चली पिय तीर ।
सुनि भयभीत बज्र को पिंजर सुरत सूर रनबीर ॥

(३)

आजु बन नीको रास बनायो ।
पुलिन पवित्र सुभग यमुनातट मोहन बेनु बजायो ॥
कल कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि खग मृग सचुपायो
जुवतिनु मंडल मध्य श्यामघन सारंग राग जमाया ॥

ताल मृदग उपग मुरज डफ मिलि रस सिंधु बढायो ।
विविध विसद वृपभान नदिनी अग सुगन्ध दिखायो ।।
अभिनय.निपुन लटकि लट लोचन भृकुटी अनंग नचायो ।
ताताथेइ ताथेई धरि नवगति पति ब्रजराज रिझायो ।।
सकल उदार नृपति चूडामणि सुख वारिद बरखायो ।
परिरभन चुम्बन आलिङ्गन उचित जुवति जन पायो ।।
वरखत कुसुम मुदित नभ नायक इन्द्र निसान बजायो ।
"हितहरिवस" रसिक राधापति जस बितान जग छायो ।।

(४)

छप्पय

ना जानौ छिनु अत कवन बुधि घटहि प्रकासित ।
छुटि चेतन जु अचेत तेउ मुनिभय विष वासित ।।
पारासर सुर इद्र कलप कामिनि मम फदा ।
परयो देह दुख द्वंद कौन क्रम काल निकन्दा ।।
इहि डर डरपहि "हरिबसहित" , जिन विभ्रम गुन सलिल पर ।
जिहि नामनि मगल लोक तिहु , हरि पदु भजु, न बिलंब कर ।।

(५)

छप्पय

तैं भाजन कृत जटिल विमल चदन कृत इधन ।
अमृत पूरि तिहि मध्य करत सरषप बल रिंधन ।।
अद्भुत धर पर करत कष्ट कचन हल वाहत ।
वारि करत पावारि मद बोवन विष चाहत ।।
"हितहरिबंस" विचारि कैं , यह मनुज देह गुरु चरन गहि ।
सकहि तो सब परपच तजि , श्रीकृष्ण कृष्णगोविन्द कहि ।।

(६)

आरति कीजै श्याम सुन्दर की । नँद-नदन श्री राधिका-वर की।

भक्ति को दीप प्रेम करि बाती । साधु संगति कर अनुदिन राती ॥
आरति ब्रज जुवतिन मन भावै । स्याम लीला ' हितहरिवंस" गावै ॥

दोहा

(७)

तनहिं राखु सतसंग मे , मनहिं प्रेमरस भेव ।
सुख चाहत "हरिवंसहित" , कृष्ण कल्पतरु सेव ॥

(८)

निकसि कुञ्ज ठाढे भये , भुजा परस्पर अंस ।
राधा-वल्लभ मुख कमल , निरखत "हितहरिवंस" ॥

(९)

सब सो हित निहकाम मन , वृन्दावन विश्राम ।
राधा-वल्लभ लाल को , हृदय ध्यान मुख नाम ॥

(१०)

रसना कटौ जु अनरटौ , निरखि अनफुटौ नैन ।
श्रवन फुटौ जु अनसुनौ , बिनु राधा जसु बैन ॥

नरहरि

नरहरि का जन्म सं० १५६२ में फतेहपुर जिले के असनी गाव म हुआ । ये १०५ वर्ष तक जीवित रहे । अकबर के दरबार में इनका अच्छा मान था। एकबार एक कसाई एक गाय लिये जाता था। किसी तरह कसाई के हाथ से छूटकर गाय कापती हुई नरहरि के घर मे जा छिपी । नरहरि को गाय की दशा पर बड़ी दया आई । उन्होने कसाई को गाय देने से इनकार कर दिया, और एक छप्पय लिखकर गाय के गले मे लटकाकर उसे अकबर के सामने उपस्थित किया । कहते है, इसके प्रभाव से अकबर ने उस गाय को ही नही छुड़वा दिया, बल्कि अपने राज में गोवध बन्द कर दिया था । वह छप्पय यह है —

अरिहु दन्त तृन धरै , ताहि मारत न सबल कोइ ।
हम संतत तृन चरहिं , बचन उच्चरहिं दीन होइ ॥
अमृत पय नित स्रवहिं , बच्छ महि थंभन जावहिं ।
हिन्दुहिं मधुर न देहिं , कटुक तुरकहिं न पियावहिं ॥

कह कवि "नरहरि" अकवर सुनो, विनवत गउ जोरे करन।
अपराध कौन मोहि मारियत, मुयहु चाम सेवइ चरन॥

इनके वनाये हुए नीति-विषयक दो ग्रन्थ सुने जाते हैं। इनकी कविता के कुछ नमूने देखिये—

(१)

नरहरि धरहरि को करै, जननि सुतहि विष देइ।
वेडा हठि खेती चरै, साधु परद्धन लेइ॥
साधु परद्धन लेइ, नाव करिया गहि बोरै।
सोइ पहरु सोइ चोर, प्रीति प्रियतम हठ तोरै॥
नृपति प्रजहि दुख देइ, कौन समरथ करै धरहरि।
छितिपति अकबर साह, सुनो धरहरि करै 'नरहरि'॥

(२)

ज्ञानवान हट करै, निधन परिवार बढावै।
वधुआ करै गुमान, धनी सेवक ह्वै धावै॥
पण्डित किरिया हीन, राड दुरबुद्धि प्रमानै।
धनी न समझै धर्म, नारि मरजाद न मानै॥
कुलवत पुरुष कुलविधि तजै, बन्धु न मानै बन्धु हित।
सन्यास धारि धन सग्रहै, ये जग मे मूरख विदित॥

(३)

को सिखवत कुलबधू, लाज गृह-काज रग रति।
हसन को सिक्खवत, करन पय पान भिन्न गति॥
सज्जन को सिक्खवत, दान अरु शील सुलच्छन।
सिहन को सिक्खवत, हनभ गज कुभ ततच्छन॥
विधि रच्यो जानि "नरहरि" निरखि, कुल सुभाव को मिट्टवै।
गुण धर्म अकब्बर साह सुन, को नर काको सिक्खवै॥

(४)

सठन सनेह जु करै, मान बेचै सुलुब्ध कह।

पिय वियोग सुख चहै, साकरै तजै स्वामि कहं ॥
मन वन्धहि पर रमन, खेल दुर्जन सग खेलहि।
नृपति मित्र करि गिनहि, सर्प मुख अंगुलि मेलहि ॥
चुक्क हित समै "नरहरि" निरखि, जड आगे विस्तरहि गुन।
पछताहि सु ते नर भगति विन, दौलत दलपति खान सुन ॥

(५)

वैर धनी निरधनी, वैर कायर अरु सूरहि।
घृत मधु माखी वैर, वैर निम्मूहि कपूरहि ॥
मूसे सर्पहि वैर, वैर पावक अरु पानी।
जरा जोवना वैर, वैर मूरख अरु ज्ञानी ॥
वड़ वैर मोर जिमि चन्द मन, विरहिन वैर वसन्त सो।
नरहरि सुकव्वि कव्वित्त किय, मगन वैर अदत्त सो ॥

(६)

न कछु क्रिया विन विप्र, न कछु कायर जिय छत्री।
न कछु नीति विन नृपति, न कछु अच्छर विन मंत्री ॥
न कछु ग्राम विन धाम, न कछु गथ विन गरुआई।
न कछु कपट को हेत, न कछु मुख आप वड़ाई ॥
न कछु दान सनमान विन, न कछु सुभोजन जासु दिन।
जन सुनो सकल "नरहरि" कहत, न कछु जनम हरि-भक्ति विन ॥

(७)

सरवर नीर न पीवही, स्वाति बूद की आस।
केहरि कवहुं न तृन चरै, जो व्रत करै पचास ॥
जो व्रत करै पचास, विपुल गज्जूह विदारै।
धन ह्वै गर्व न करै, निवन नहि दीन उचारै ॥
"नरहरि" कुल क सुभाव, मिटै नहिं जव लग जीवै।
वरु चातक मरि जाय, नीर सरवर नहि पीवै ॥

(८)

मर सर हंस न होत, वाजि गजराज न दर दर।
तर तर सुफर न होत, नारि पतिव्रता न घर घर॥
मन मन सुमति न होत, मलैगिर होत न बन बन।
फन फन मनि नहि होत, मुक्त जल होत न घन घन॥
रन रन सूर न होत है, जन जन होत न भक्ति हरि।
नर सुनो सकल "नरहरि" कहत, सब नर होत न एक सरि॥

(९)

भूमि परत अवतरत, करत बानक विनोद रस।
पुनि जोवन मदमत्त, तत्व इन्द्री अनग बस॥
विजय हेत जड फिरत, बहुरि पहुच्यो बिरधप्पन।
गयो जन्म गुन गनत, अन्त कछु भयो न अप्पन॥
थिर रहत न कोउ नरपति न बल, रहत एक चहु जुग्ग जस।
सुइ अजर अमर "नरहरि" निरखि, पिये भक्ति भगवन्त रस॥

(१०)

कबहु द्वार प्रतिहार, कबहु दर दर फिरत नर।
कबहु देत धन कोटि, कबहु कर तर करत कर॥
कबहु नृपति मुख चहत, कहत करि रहत बचन बस।
कबहु दास लघु दास, करत उपहास जिभ्य रस॥
कछु जानि न सम्पति गर्बिये, विपात न यह उर आनिये।
हिय हारि न मानत सतपुरुष, "नरहरि" हरिहि सभारिये॥

हरिदास

स्वामी हरिदास ललिता सखी के अवतार समझे जाते है। मुलतान के समीप सारस्वत ब्राह्मण-कुल मे इनका जन्म हुआ था। कोई-कोई इन्हे सनाढ्य ब्राह्मण मानते है। ये बड़े त्यागी और विरक्त पुरुष थे। इनके प्रायः

सभी शिष्य महात्मा और सुकवि थे। इन्होंने निम्बार्क-सम्प्रदाय के अन्तर्गत टट्टी वाली वैष्णव सम्प्रदाय चलाई। गान-विद्या मे ये बड़े प्रवीण थे। तानसेन और बैजू बावरे को गान-विद्या इन्हीने सिखलाई थी। ये वृन्दावन मे रहा करते थे। अकबर बादशाह भी एक बार तानसेन के साथ भेस बदलकर इनका दर्शन करने के लिए आये थे।

इन्होने सिद्धान्त के १९ पद और केलिमाल (११० पद) नामक दो ग्रन्थो की रचना की है। इनके जन्म-मरण का ठीक समय विदित नही है।

इनकी कविता के कुछ नमूने हम नीचे लिखते है—

(१)

राग बिहाग

गहो मन सब रस को रस सार।
लोक वेद कुल करमै तजिये भजिये नित्य विहार ॥
गृह कामिनि कचन धन त्यागौ सुमिरो श्याम उदार ॥
गति "हरिदास" रीति सतन की गादी को अधिकार ॥

(२)

राग विभास

ज्यो ही ज्यो ही तुम राखत हौं त्यों ही त्यो ही रहियतु हो हो हरि।
और अचिरचै पाइ धरौ सु तौ कहौ कौन के पैंड भरि ॥
जदपि हौं अपनो भायो कियो चाहौं कैसे करि सकौ जो तुम राखौ पकरि।
कहि "हरिदास" पिजरा के जनारलौं तरफराइ रह्यौ उडिबे कोंकितेउ करि ॥

(३)

काहू को बस नाहिं तुम्हारी कृपा ते सब होय बिहारी बिहारिनि।
और मिथ्या प्रपच काहे को भाखियै सो तो ह्वै हारनि ॥
जाहि तुम सो हित तासो तुम हित करौ सब सुख कारनि।
"श्री हरिदास" के स्वामी श्यामा कुञ्जबिहारी प्राननि के आधारनि ॥

(४)

राग आसावरी

हित तौ कीजै कमल नैन सो जा हित के आगे और हित लागै फीको ।
कै हित कीजै साधु संगति सौ जावै कलमष जीको ॥
हरि को हित ऐसो जैसो रंग मजीठ संसार हित कसूंभि दिन दुतीको ।
कहि "हरिदास" हित कीजे बिहारी सौ और न निबाहु जानि जीको ॥

(५)

तिनका बयारि के बस ।
ज्यो भावै त्यो उड़ाइ लै जाइ आपने रस ॥
ब्रह्मलोक सिवलोक और लोक अस ।
कहि "हरिदास" बिचारि देख्यो बिना बिहारी नाही जस ॥

(६)

हरि के नाम को आलस क्यो करत है रे काल फिरत सर साधे ।
हीरा बहुत जवाहिर सचे कहा भयो हस्ती दर बाधे ॥
बेर कुबेर ,कछू नहिं जानत चढे फिरत है काधे ।
कहि "हरिदास" कछू न चलत जब आवत अन्त की आधे ॥

(७)

राग कल्यान

हरि को ऐसोई सब खेल ।
मृगतृस्ना जग व्याप रही है कहू बिजोरो न बेल ॥
धनमद, जोबनमद औ राजमद ज्यो पछिन मे डेल ।
कहि "हरिदास' यहै जिय जानौ तीरथ को सो मेल ॥

(८)

प्रेम-समुद्र रूप-रस गहिरे कैसे लागै घाट ।
बेकारचो दै जानि कहावत जाति पनो की कहा परी बाट ॥
काहू को सर परै न सूधो मारत गाल गली गली हाट ।
कहि "हरिदास" बिहारिहिं जानौ तकौ न औघट घाट ॥

नन्ददास

नन्ददास को कुछ लोग तुलसीदासजी का सगा भाई वताते है। ये स्वामी विट्ठलनाथजी के शिष्य थे। अष्टछाप मे इनका भी नाम है। २५२ वैष्णवो की वार्ता मे लिखा है कि शिष्य होने के पहले ये एक वार द्वारिका जा रहे थे, पर राह भूलकर सीनन्द गाव मे पहुचे। वहा एक खत्री की परम सुन्दरी स्त्री पर आसक्त हो गये। उस स्त्री के सम्वन्धी इनसे पिंड छुडाने के लिए उसे लेकर गोकुल चले गये, ये भी पीछे-पीछे लगे रहे। अन्त मे विट्ठलनाथजी के उपदेश से इनका मोह भग हुआ; और ये कृष्ण भगवान के प्रेम मे फंस गए।

इन्होने कई ग्रन्थ बनाये है। उनके नाम ये है—रासपचाध्यायी, अनेकार्थ नाम माला, रुक्मिणी मगल, हितोपदेश, दशमस्कंध भागवत, दानलीला, मानलीला, ज्ञानमजरी, अनेकार्थमजरी, रूपमञ्जरी, माममञ्जरी, नाम चिन्तामणि माला, रसमञ्जरी, विरहमञ्जरी, नाममाला, नामकेतु पुराण गद्य, और श्याम सगाई। भ्रमरगीत भी इन्ही का रचित कहा जाता है। इनकी कविता भी बडी मनोहारिणी है। २५२ वैष्णवों की वार्ता मे लिखा है कि इन्होने समस्त श्रीमद्‌भागवत का पद्यानुवाद किया था, परन्तु मथुरा के कथावाचकों के आग्रह से इन्होन उसे यमुना जी मे प्रवाहित कर दिया। रासपञ्चाध्यायी की रचना इन्होने अपने एक मित्र की सम्मति से की थी।

भ्रमरगीत, इनकी हिन्दी भागवत का अश जान पड़ता है, क्योकि उसके प्रारम्भ में पुस्तक प्रारम्भ का कोई लक्षण नही। उसमें कुल ७५ पद्य है।

रास पञ्चाध्यायी और भ्रमरगीत के कुछ सुन्दर पद हम यहां उद्धृत करते है—

रासपञ्चाध्यायी

वन्दन करौ कृपानिधान श्रीसुक सुभकारी।
सुद्ध ज्योतिमय रूप सदा सुन्दर अविकारी॥

हरि लीला रस मत्त मुदित नित विचरत जग मे।
अद्भुत गति कतहू न अटक ह्वै निकसत मग मे॥
नीलोत्पलदल श्याम अग नव जोबन भ्राजै।
कुटिल अलक मुखकमल मनो अलि अवलि विराजै॥
ललित बिसाल सुभाल दिपति जनु निकर निसाकर।
कृष्ण भगति प्रतिबन्ध तिमिर कहुँ कोटि दिवाकर॥
कृपा रङ्ग रस ऐन नैन राजत रतनारे।
कृष्ण रसासव पान अलस कछु घूम घुमारे॥
श्रवण कृष्ण रसभवन गण्ड मण्डल भल दरसै।
प्रेमानन्द मिलिन्द मन्द मुसुकनि मधु बरसै॥
उन्नत नासा अधर बिम्ब शुक की छबि छीनी।
तिन मह अद्भुत भाति जु कछुक लसित मसि भीनी॥
कम्बुकण्ठ की रेख देखि हरि धरमु प्रकासै।
काम क्रोध मद लोभ मोह जिह निरखत नासै॥
उरवर पर अति छवि की भीर कछु बरनि न जाई।
जिहि भीतर जगमगत निरन्तर कुअर कन्हाई॥
सुन्दर उदर उदार रोमावलि राजति भारी।
हियो सरोवर रस भरि चली मनो उमगि पनारी॥
जिहि रस की कुण्डिका नाभि अस शोभित गहरी।
त्रिवली तामह ललित भाति मनु उपजत लहरी॥
अति सुदेस कटि देस सिह सोभित सघनन अस।
जोबन मद आकरसत बरसत प्रेम सुधारस॥
गूढ जानु आजानु-बाहु मद-गज-गति लोलै।
गगादिकन पवित्र करत अवनी पर डोलै॥
जब दिनमनि श्रीकृष्ण दृगन ते दूरि भये दुरि।
पसरि परचो अधियार सकल ससार घुमडि घिरि॥

तिमिर ग्रसित सब लोक-ओक लखि दुखित दयाकर।
प्रकट कियो अद्भुत प्रभाव भागवत विभाकर॥
श्रीवृन्दाबन चिदघन कछु छवि वरनि न जाई।
कृष्ण ललित लीला के काज गहि रह्यो जड़ताई॥
जह नग खग मृग लता कुज वीरुध तृन जेते।
नहिं न काल गुन प्रभा सदा सोभित रहैं तेते॥
सकल जन्तु अविरुद्ध जहां हरि मृग सग चरही।
काम क्रोध मद लोभ रहित लीला अनुसरही॥
सब दिन रहित बसन्त कृष्ण अवलोकनि लोभा।
त्रिभुवन कानन जा विभूति करि सोभित सोभा॥
ज्यों लक्ष्मी निज रूप अनूपम पद सेवित नित।
भूबिलसत जु बिभूति जगत जग मग रही जित कित॥
श्री अनन्त महिमा अनन्त को बरनि सकै कवि।
सकरषक सो कछुक कही श्रीमुख जाकी छबि॥
देवन मे श्री रमारमन नारायन प्रभु जस।
बन में बृन्दाबन सुदेस सब दिन सोभित अस॥
या बन की बर बानिक या बन ही बन आवै।
सेस महेश सुरेस गनेस न पारहि पावै॥
जहं जेतिक द्रुमजात कल्पतरु सम सब लायक।
चिन्तामणि सम सकल भूमि चिन्तित फल दायक॥
तिन महं इक जु कल्पतरु लगि रही जगमग ज्योती।
पात मूल फल फूल सकल हीरा मनि मोती॥
तहं मुतियन के गन्ध लुवध अस गान करत अलि।
बर किन्नर गन्धर्व अपच्छर तिन पर गइ बलि॥
अमृत फुही सुख गुही अति सुही परत रहत नित।
रास रसिक सुन्दर प्रिय को स्रम दूर करन हित॥

ता सुरतरु महं और एक अद्भुत छबि छाजै।
साखा दल फल फूलनि हरि प्रतिबिम्ब बिराजै॥
ता तरु कोमल कनक भूमि मनिमय मोहत मन।
दिखियतु सब प्रतिबिम्ब मनौ धर महं दूसर बन॥
जमुनाजू अति प्रेम भरी नित बहत सुगहरी।
मनि मण्डित महि माह दौरि जनु परसत लहरी॥
तह इक मनिमय अक चित्र को सङ्ख सुभग अति।
तापर षोडश दल सरोज अद्भुत चक्राकृति॥
मधि कमनीय करिनिका सब सुख सुन्दर कन्दर।
तह राजत ब्रजराज कुअर वर रसिक पुरन्दर॥
निकर विभाकर दुति मेटत सुभ मनि कौस्तुभ अस।
सुन्दर नन्द कुअर उर पर सोइ लागति उडु जस॥
मोहन अद्भुत रूप कहि न आवत छबि ताकी।
अखिल खण्ड व्यापी जु ब्रह्म आभा है जाकी॥
परमातम परब्रह्म सबन के अन्तरजामी।
नारायन भगवान धरम करि सब के स्वामी॥
बाल कुमर पौगण्ड धरम आक्रान्त ललित तन।
धरमी नित्य किसोर कान्ह मोहत सब को मन॥
अस अद्भुत गोपाल लाल सब काल बसत जह।
याही ते बैकुण्ठ बिभव कुण्ठित लागत तह॥

पद

नदभवन को भूषण माई।
यसुदा को लाल बीर हलधर को, राधारमण परम सुखदाई॥
शिव को धन सतन को सरबस, महिमा वेद पुरानन गाई।
इन्द्र को इन्द्र देव देवन को, ब्रह्म को ब्रह्म अधिक अधिकाई॥
काल को काल ईश ईशन को, अतिहि अतुल तोल्यो नहि जाई।
"नन्ददास" को जीवन गिरिधर, गोकुल गाव को कुवर कन्हाई॥

भ्रमरगीत

ऊधव को उपदेश, सुनो व्रजनागरी।
रूप सील लावन्य, सबै गुन आगरी॥
प्रेम धुजा रस रूपिनी, उपजावत सुख पुञ्ज।
सुन्दर श्याम विलासिनी, नव वृन्दावन कुञ्ज॥
सुनो व्रजनागरी॥ १॥

कहन श्याम सन्देश, एक मैं तुम पैं आयो।
कहन समै सकेत, कहूं अवसर नहिं पायो॥
सोचत ही मन मे रह्यो, कव पाऊं इक ठाउ।
कहि सदेस नन्दलाल को, वहुरि मधुपुरी जाउं॥
सुनो व्रजनागरी॥ २॥

सुनत श्याम को नाम, ग्राम गृह को सुधि भूली।
भरि आनन्द रस हृदय, प्रेम वेली द्रुम फूली॥
पुलकि रोम सव अङ्ग भये, भरि आये जल नैन।
कण्ठ घुटे गदगद गिरा, वोले जात न वैन॥
व्यवस्था प्रेम की॥ ३॥

सुनत सखा के वैन, नैन भरि आये दोऊ।
विवस प्रेम आवेस, रही नाही सुधि कोऊ॥
रोम रोम प्रति गोपिका, ह्वै रही सांवरे गात।
कल्मतरोरुह सांवरो, व्रजवनिता भई पात॥
उलहि अंग अंग तें॥ ४॥

टोडरमल

टोडरमल खत्री थे। इनका जन्म सं० १५८० में और मरण सं० १६४६ में हुआ। ये वादशाह अकवर के भूमि-कर विभाग के प्रधान अमात्य थे। एक वार ये वंगाल के गवर्नर वनाये गये थे और इन्होंने कई वार पठानों को भी परास्त किया था। वही-खाते का सव के पहले इन्हों

ही ने प्रचार किया था । ये हिन्दी कविता भी करते थे । उसके कुछ नमूने नीचे देखिये—

सोहै जिन सासन मे आतमानुसासन सु जीके दुखहारी सुखकारी साची सासना । जाको गुन भद्रकार गुण भद्र जाको जानि भद्र गुन धारी भव्य करत उपासना । ऐसे सार सास्त्र को प्रकास अर्थ जीवन को बनै उपकार नासै मिथ्या भ्रम वासना । ताते देस भाषा अर्थ को प्रकास करु जाते मन्द बुद्धि हू के हिये होवै अर्थ भासना ॥ १ ॥

गुन बिनु धन जैसे, गुरु बिन ज्ञान जैसे, मान विन दान जैसे, जल बिन सर है । कण्ठ बिन गीत जैसे, हित विन प्रीत जैसे, वेश्या रस रीति जैसे, फल बिन तर है ॥ तार विन जन्त्र जैसे, स्याने विन मन्त्र जैसे, पुरुष बिन नार जैसे, पुत्र बिन घर है । "टोडर" सुकवि तैसे मन मे विचारि देखो धर्म बिन धन जैसे पच्छी विना पर है ॥ २ ॥

जार को विचार कहा, गनिका को लाज कहा, गदहा को पान कहा, आधरे को आरसी । निगुनी को गुन कहा, दान कहा दारिदी को, सेवा कहा सूम की अरण्डन की डार सी ॥ मदपी को सुचि कहा, साच कहा लम्पट को, नीच को बचन कहा, स्यार की पुकार सी । "टोडर" सुकवि ऐसे हठी ते न टारे टरै, भावे कहो सूधो बात भावे कहो फारसी ॥ ३ ॥

बीरबल

महाराज बीरबल का जन्म स० १५८५ वि० मे, तिकवापुर जिला कानपुर में एक साधारण ब्राह्मण के घर मे हुआ । इनके पिता का नाम गगादास था । प्रयाग के किले मे जो अशोक स्तम्भ है, उस पर यह खुदा हुआ है—

"संवत् १६३२ शाके १४९३ मार्ग वदी ५ सोमवार गगादास सुत महाराज बीरबल श्री तीरथराज प्रयाग की यात्रा सुफल लिखित ।"

शिवराज भूषण कवि ने इनका जन्मस्थान त्रिविक्रमपुर लिखा है, जो यमुना के तट पर बसा है और वही भूषण का भी जन्मस्थान है ।

अतएव जो लोग वीरवल का जन्मस्थान नारनौल बताते है उन्हें भूषण का यह दोहा देखना चाहिये—

द्विज कनौज कुल कस्यपी , रतनाकर सुत धीर ।
वसत त्रिविक्रमपुर सदा , तरनि तनूजा तीर ॥
वीर वीरवल से जहा , उपजे कवि अरु भूप ।
देव विहारीश्वर जहा , विश्वेश्वर तद्रूप ॥

पर श्रीयुत विसेन्ट स्मिथ ने अकवर के इतिहास मे लिखा है कि, "Birbal, originally a poor Brahman, named Mahesh Das, was born at Kalpi about 1528, and consequently was fourteen years older than Akbar. He was at first in the service of Raja Bhagwandas, who sent him to Akbar early in the reign." "अर्थात् वीरवल एक गरीव ब्राह्मण था, जिसका नाम महेशदास था। वह सन् १५२८ मे कालपी मे पैदा हुआ । वह अकवर से लगभग १५ वर्ष वडा था । वह पहले राजा भगवानदास की सेना मे था। राजा ने उसे अकवर को दे दिया था।" डाक्टर ग्रियर्सन भी अपने The Modern Vernacular Literature of Hindustan में वीरवल का नाम महेशदास ही लिखते है । वदाऊनी ब्रह्मदास नाम वतलाता है । वीरवल के जन्मस्थान के सम्वन्ध मे वडा मतभेद चला आता है।

महाराज वीरवल अकवर के मन्त्री थे। अकवर इनको वहुत मानते थे। इन्होंने कई वार सेनापति का भी काम किया था और कई लडाइया जीती थीं। यहा तक कि स० १६४० में, उत्तर पश्चिम सीमात प्रदेश के युद्ध ही मे इनका प्राणान्त भी हुआ । जव इनके मरने का समाचार वादशाह अकवर को मिला, तव अकवर ने अत्यन्त दु:खी होकर यह सोरठा पढ़ा—

दीन देखि सव दीन , एक न दीन्हों दुसह दुख ।
सो अव हम कहॅ दीन , कछुक न राख्यो वीरवर ॥

अकबर के दरबार मे कट्टर मुसलमान वजीरों के बीच मे रहकर भी इन्होंने हिन्दुओ का बड़ा हित-साधन किया था । इनके ही प्रभाव से हिन्दुओ की बहुत-सी कठिनाइया दूर हुई थी और हिन्दुओ को ऊंचे-ऊंचे पद मिले थे । अकबर बीरबल पर बडा विश्वास रखते थे । ये अपनी युक्तिपूर्ण बातो से बादशाह का मनोरजन भी खूब करते थे । एक साधारण दशा से अपने बुद्धिबल के द्वारा उन्नति करके ये अकबर के नवरत्नो में होगये और शाहीदरबार से इन्होने एक बडी जागीर और महाराजा की पदवी पाई । कविता मे इनका उपनाम ब्रह्म था ।

ये स्वय ब्रजभाषा के अच्छे कवि थे और कवियो का बडा आदर करते थे । केशवदास को एक बार इन्होने एक छन्द पर छः लाख रुपये दिये थे और ओरछा नरेश पर एक करोड का अर्थदण्ड क्षमा करा दिया था ।

इनका लिखा कोई ग्रन्थ देखने मे नही आता । केवल पुस्तको मे कही-कही इनके कुछ छन्द मिलते हैं । इनकी कविता बड़ी ही चमत्कार-पूर्ण और ललित होती थी । इसका नमूना देखिये—

उछरि उछरि भेकी झपटैं उरग पर उरग पै केकिन के लपटैं लहकि है । केकिन के सुरति हिये की ना कछू है भये एकी करी केहरि न बोलत बहकि है ।। कहै कवि "ब्रह्म" बारि हेरत हरिन फिरैं बैहर बहत बड़े जोर सों जहकि है । तरनि के तावन तवा-सी भई भूमि रही दसहू दिसान मे दवारि सी दहकि है ।। १ ।।

एक समै हरि धेनु चरावत बेनु बजावत मञ्जु रसालहि ।
डीठि गई चलि मोहन की वृषभानुसुता उर मोतिन मालहि ।।
सो छबि "ब्रह्म" लपेटि हिए करसा कर लै कर कज सनालहि ।
ईस के सीस कुसुम्भ की माल मनो पहिरावति व्यालिनि व्यालहि ।।२।।
सखि भोर उठी बिन कचुकी कामिनि कान्हर ते करि केलि घनी ।
कवि "ब्रह्म" भनै छबि देखते ही कहि जात नही मुखते बरनी ।।

कुच अग्र नखच्छत कत दयो सिर नाय निहारि लियो सजनी।
ससिसेखर के सिर से सु मनो निहुरे ससि लेत कला अपनी ॥३॥

पूत कपूत कुलच्छनि नारि लराक परोस लजाय न सारो।
बन्धु कुबुद्धि पुरोहित लम्पट चाकर चोर अतीथ धुतारो ॥
साहब सूम अराक तुरंग किसान कठोर दिवान नकारो।
"ब्रह्म" भनै सुनु शाह अकब्बर बारहो बाँधि समुद्र मे डारो ॥४॥

पेट मे पौढ़ के पौढ़े मही पर पालना पौढ़ के बाल कहाये।
घरी जबै तरुनाई त्रिया संग सेज पै पौढ के रंग मचाये ॥
और समुद्र के पौढनहार को "ब्रह्म" कवौं चित ते नहिं ध्याये।
पौढ़ा पौढ़त पौढ़त ही सो चिता पर पौढ़न के दिन आये ॥५॥

बीरबल के नाम से कुछ पहेलियां भी प्रसिद्ध है। उन मे से दो-एक ये हैं—

कर थोरे कर ही सुनै, स्रवन सुनै नहिं ताहि।
कहै पहेली बीरबल, सुनिये अकबर साहि ॥
"नाडी"।

मारो तो वह जी उठै, बिन मारे मर जाय।
कहै पहेली बीरबल, मुर्दा आटा खाय ॥
"तबला"।

तुलसीदास

पद-कञ्ज, कृपासिंधु नररूप-हरि" इस सोरठ के "नररूप-हरि" पद से, लोग गुरु का नाम नरहरि निकालते हैं। इनका विवाह दीनबन्धु पाठक की कन्या से हुआ था। स्त्री पर इनका प्रेम अधिक था। एक दिन वह नैहर चली गई। इनसे पत्नी-वियोग न सहा गया। ये ससुराल जाकर स्त्री से मिले। स्त्री को लज्जा आई। उसने ये दोहे कहे—

लाज न लागत आपु को, दौरे आयहु साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेम को, कहा कहौं मैं नाथ॥
अस्थि चरममय देह मम, तामें जैसी प्रीति।
तैसी जो श्रीराम मह, होति न तौ भव-भीति॥

यह बात गोसाईं जी को ऐसी लगी कि वे वहाँ से उसी समय काशी चले आये और विरक्त हो गये। स्त्री बेचारी को क्या मालूम था कि उसकी साधारण बात का ऐसा परिणाम होगा। उसने बहुत विनती की, और भोजन करने को कहा, परन्तु उन्होंने एक न सुनी। यह घटना तुलसीदास के प्रेम की प्रौढ़ता प्रगट करती है। इनके हृदय में प्रेम का समुद्र लहरें मार रहा था। प्रेम की अटूट धारा जो क्षण-भर पहले स्त्री की ओर बह रही थी उसी को दूसरे ही क्षण में इन्होंने श्रीराम की ओर फेर दी, जो इनके जीवन के अन्तिम दम तक बड़े वेग से बहती रही। उस प्रेम की धारा ने तुलसीदास को अजर अमर कर दिया। कौन जानता था कि एक छोटी-सी घटना से इनके जीवन का प्रवाह इस प्रकार बदल जायगा।

घर छोड़ने के पीछे एक बार स्त्री ने यह दोहा इनके पास लिख भेजा—

कटि की खीनी कनक सी, रहत सखिन सग सोय।
मोहि फटे को डर नहीं, अनत कटे डर होय॥

इसके उत्तर में गोसाईं जी ने लिखा—

कटे एक रघुनाथ सग, बांधि जटा सिर केस।
हम तो चाखा प्रेम रस, पतिनी के उपदेस॥

वृद्धावस्था में एक दिन तुलसीदास चित्रकूट से लौटते हुए विना जाने अपने ससुर के घर टिके। इनकी स्त्री भी वृद्धा हो चुकी थी। उसने पहले तो इन्हे पहचाना नही, अतिथि-सत्कार के लिए चौका आदि लगा दिया। पीछे बातचीत होने पर उसने पहचाना कि ये मेरे पति है। उसकी इच्छा हुई कि मै भी पति के साथ रहू। रातभर आगा-पीछा सोचकर उसने सवेरे अपने को सवेरे तुलसीदास के सामने प्रकट किया, और अपनी इच्छा कह सुनाई। परन्तु गोसाईं जी ने अस्वीकार किया। इस अचानक भेंट का प्रभाव दोनो ओर कैसा पडा होगा, यह अनुमान करने पर बड़ा करुण जान पड़ता है। गोसाईं जी और उनकी स्त्री को अपनी युवावस्था के उस एक दिन की घटना याद आई होगी, जब उन दोनों का वियोग हुआ था।

गोसाईंजी काशी और अयोध्या मे बहुत रहा करते थे। परन्तु मथुरा, वृन्दावन, कुरुक्षेत्र, प्रयाग, चित्रकूट, जगन्नाथजी और सोरो (शूकरक्षेत्र) मे भी भ्रमण किया करते थे। काशीजी में इनके कई स्थान प्रसिद्ध हे। कहा जाता है कि हनुमानजी की कृपा से इनको श्रीरामचन्द्रजी का दर्शन हुआ था।

काशी मे टोडरमल नाम के एक जमीदार से गोसाईजी का बड़ा प्रेम था। उनके मरने पर इन्होंने यह दोहे कहे थे—

महतो चारो गाव को, मन को बड़ो महीप।
तुलसी या कलिकाल मे, अथये टोडर दीप॥
तुलसी राम सनेह को, सिर धरि भारी भार।
टोडर कावा ना दियो, सब कहि रहे उतार॥
तुलसी उर थाला विमल, टोडर गुन गन बाग।
ये दोउ नयननि सींचिहौं, समुझि समुझि अनुराग॥
रामधाम टोडर गये, तुलसी भये असोच।
जियवो मीत पुनीत विनु, यही जानि सकोच॥

अकबर के प्रसिद्ध वजीर नवाब खानखाना (रहीम) से भी गोसाईंजी

का बड़ा स्नेह था। आमेर के राजा मानसिंह भी इनका बडा आदर किया करते थे। कहते है कि ब्रजभाषा के प्रसिद्ध कवि नन्ददासजी तुलसीदासजी के सगे भाई थे। तुलसीदासजी से, सूरदासजी, नाभाजी और केशवदासजी की भी भेट हुई थी। तुलसीदास की कीर्ति भारत मे ही नही, इग्लैड, जर्मनी, आस्ट्रिया आदि देशो मे भी फैल चुकी है। इनके "रामचरित मानस" का अग्रजी मे अनुवाद हो चुका है। इनकी कविता पर अग्रेजी मे कितने ही निबन्ध लिखे जा चुके है। तुलसीदासजी के विषय मे अग्रेजो की क्या सम्मति है, इस सम्बन्ध मे हम प्रसिद्ध इतिहासकार श्रीयुत विसेट स्मिथ की सम्मति यहा उद्धृत करते है —

"वह कवि हिन्दी-कविता-कानन मे सबसे बड़ा वृक्ष है। उनका नाम न तो आईन ए अकबरी मे मिलेगा और न मुसलमान इतिहासकारो की पुस्तको मे, और न उनका पता किसी फारसी इतिहासकार के बयान से तैयार की हुई किसी योरोपीय लेखक की पुस्तक ही मे लगेगा। तो भी वे अपने समय मे भारत मे सर्वश्रेष्ठ पुरुष थे। यहा तक कि उन्हे अकबर से बडा कहा जा सकता है। क्योकि लाखो स्त्री और पुरुषो के हृदय पर उन्होने जो विजय प्राप्त की है, वह उस बादशाह की जीती हुई कितनी ही लडाइयो से चिरस्थायी है। यद्यपि इस कवि के मित्रो और प्रशसको मे आमेर के राजा मानसिंह और अब्दुर्रहीम खानखाना ऐसे पुरुष थे, पर तो भी ऐसा मालूम होता है कि बादशाह को या अबुलफजल को उनका परिचय नही दिया गया। अकबर और अबुलफजल दोनो ही हिन्दुओ के गुण की कदर करते थे। यदि उनको काशी मे शान्त जीवन व्यतीत करने वाले इस कवि का पता होता तो वे उसकी कदर करने मे कभी न चूकते।"*

*सुप्रसिद्ध लाला सीताराम के पास तुलसीदास का एक चित्र हमने देखा है, जिसे वे अकबर बादशाह का बनवाया हुआ बतलाते है। इस से मालूम होता है कि अकबर को तुलसीदास का परिचय था। सम्भव

"यह कवि तुलसीदास थे। उनको धन या शिक्षा का कोई खास मौका नही मिला। वह एक गरीब ब्राह्मण माता-पिता की संतान थे, जिन्होंने उन्हे अमंगल नक्षत्र मे पैदा होने के कारण अनाथ छोड़ दिया था। ईश्वरेच्छा से उन्हें एक भिक्षु ने पालापोसा और राम के सम्बन्ध मे पौराणिक शिक्षाओं से अभिज्ञ किया।

"जिस ग्रंथ पर उनकी कीर्ति अवलम्बित है, उसका नाम 'रामायण" है। कवि ने उसे "रामचरितमानस" कहा है। यह ग्रंथ इतना बड़ा है कि ग्राउज का अंग्रेजी भाषान्तर ५६२ पृष्ट का है। इस ग्रंथ का ईश्वर-वाद ईसाई धर्म से इतना मिलता जुलता है कि उसमे से वहुत से प्रसंग राम के स्थान पर ईसु रखने से ईसाइयों के लिए उपयोगी हो सकते है। ग्रियर्सन कहते है और ठीक कहते है कि किसी प्रार्थना-संग्रह मे उन्हे स्थान मिल सकता है। काव्य का ईश्वरवाद जितना उच्च है, उतनी ही उच्च उसकी नीति है। और आदि से अंत तक उसमे एक भी शब्द या विचार ऐसा नही पाया जा सकता, जो निर्मल न हो। राम की स्त्री सीता स्त्रीत्व का आदर्श वताई गई है। उत्तर हिन्दुस्तान के हिन्दुओं को यह ग्रंथ उतना ही प्यारा है जितना ईसाइयो को वाइविल। हिन्दी-साहित्य में यह ग्रंथ अद्वितीय है। इसके प्रभाव के विषय मे कुछ कहना असंभव है। १९१६ की जनवरी मे लिखे हुए एक पत्र में सर जार्ज ग्रियर्सन कहते है कि "तुलसीदास सारे हिन्दुस्तान के साहित्य मे सबसे श्रेष्ठ है।" इत्यादि;

देखिये, Vincent Smith's History of Akbar, pp. 417-420

तुलसीदासजी ने इतने ग्रंथ वनाए—

१—रामचरितमानस, २—कवित्त रामायण, ३—दोहावली, ४—गीतावली, ५—रामाज्ञा, ६—विनय-पत्रिका, ७—वरवै रामायण, ८—

है, अबुलफजल की मृत्यु के वाद यह परिचय हुआ हो, इसी से आईन-ए-अकबरी में इनका कुछ जिक्र न आ सका। —सम्पादक।

रामलला नहछू, ९—वैराग्य सदीपनी, १०—कृष्ण-गीतावली, ११—पार्वती-मगल, १२—राम सतसई, १३— हनुमदबाहुक, १४—जानकी मगल ।

प्रायः ये सभी ग्रथ मिलते है। तुलसीदासजी के ग्रथो में रामचरित-मानस सब से बडा और बहुत ही लोकप्रिय ग्रन्थ है। भारत मे अब तक इसकी करोडों प्रतिया छप चुकी है। यह एक ऐसा सर्वप्रिय ग्रथ है कि गरीब को झोपडी से लेकर राजा के महल तक, नौ करोड मनुष्यो तक इसकी पूरी पहुच है। इस एक ग्रन्थ ही ने तुलसीदासजी को तब तक के लिए अमर कर दिया, जब तक पृथ्वी पर हिन्दू जाति और हिन्दी-भाषा का अस्तित्व है। कौन कह सकता था कि एक गरीब के घर में उत्पन्न होकर, एक साधारण स्त्री द्वारा प्रतारित युवक इस असार ससार मे अनन्त काल के लिए अपनी कीर्ति-ध्वजा स्थापित कर जायगा। हमने तुलसीदासजी के ग्रन्थो मे से कुछ दोहे, चौपाई, बरवै, कवित्त, भजन आदि सग्रह कर दिये है, परन्तु इनकी कविता का पूरा आनन्द तो तभी मिलेगा, जब पूरा रामचरितमानस पढा जाय। रामचरितमानस के समान भारत मे और किसी ग्रन्थ का प्रचार नही है।

रामचरितमानस की छन्द-सख्या इस प्रकार है—

काड	चौपाई	दोहा	सोरठा	अन्य छन्द	कुल छन्द-सख्या
बाल कांड	१४९४	३५९	३५	६८	१९५६
अयोध्याकाड	१३०६	३१४	१३	१६	१६४९
अरण्य काड	२६३	५०	८	४५	३६६
किष्किन्धाकाड	१५४	३१	३	५	१९३
सुन्दर कांड	२७१	६२	१	९	३४३
लंका काड	५७४	१५०	९	७४	८०७
उत्तर काड	५९६	२०७	१६	५४	८७३
	४६५८	११७३	८५	२७१	६१८७

संवत् १६८० वि० श्रावण शुक्ला सप्तमी को तुलसीदासजी ने असी और गगा के संगम पर शरीर छोड़ा। उस समय का यह दोहा प्रसिद्ध है—

संवत्-सोलह सौ असी, असी गंग के तीर।
श्रावण शुक्ला सप्तमी, तुलसी तज्यो शरीर ॥

मृत्यु के समय गोसाई जी ने यह दोहा पढ़ा था:—

रामनाम जस बरनि कै, भयो चहत अब मौन।
तुलसी के मुख दीजिये, अबही तुलसी सोन ॥

सीता की शोभा

जनम सिंधु पुनि बंधु बिष, दिन मलीन सकलङ्क।
सिय मुख समता पाव किमि, चन्द्र बापुरो रङ्क ॥
घटइ बढइ बिरहिनि दुखदाई। ग्रसइ राहु निज संधिहिं पाई ॥
कोक सोकप्रद पंकज द्रोही। अवगुन बहुत चन्द्रमा तोही ॥
वैदेही मुख पटतर दीन्हे। होइ दोष बड़ अनुचित कीन्हे ॥
सिय सोभा नहिं जाय बखानी। जगदंबिका रूप-गुन-खानी ॥
उपमा सकल मोहि लघु लागी। प्राकृत नारि अंग-अनुरागी ॥
सीय बरनि तेहि उपमा देई। कुकवि कहाइ अजस को लेई ॥
जौं पटतरिय तीय महं सीया। जग अस जुवति कहा कमनीया ॥
गिरा मुखर तनु अरध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी ॥
बिष वारुनी बन्धु प्रिय जेही। कहिय रमासम किमि वैदेही ॥
जौं छवि सुधा-पयोनिधि होई। परम-रूप-मय कच्छप सोई ॥
सोभा रजु मंदर-सिंगारू। मथइ पानिपंकज निज मारू ॥
एहि बिधि उपजइ लच्छि जब, सुन्दरता सुखमूल।
तदपि सकोच समेत कवि, कहहिं सीय समतूल ॥

रामचरितमानस से कुछ ऐसे दोहे और चौपाइयां हम यहां उद्धृत करते हैं, जिनका उपयोग बोलचाल में कहावतों की तरह प्रमाण रूप से किया जाता है—

बन्दौ सन्त असज्जन चरना । दुखप्रद उभय बीच कछु वरना ॥
बिछुरत एक प्रान हरि लेही । मिलत एक दारुन दुख देही ॥
परहित सरिस धर्म नहिं भाई । पर-पीडा सम नहिं अधमाई ॥
काहु न कोउ दुख सुख कर दाता । निज कृत कर्म भोग सब भ्राता ॥
सुमति कुमति सब के उर रहही । नाथ पुरान निगम अस कहही ॥
जहा सुमति तह सम्पति नाना । जहा कुमति तह विपति निदाना ॥
गुरु पितु मातु स्वामि हित बानी । सुनि मन मुदित करि भल जानी ॥
उचित कि अनुचित किये बिचारू । धर्म जाइ सिर पातक भारू ॥

अनुचित उचित बिचार तजि, जे पालहिं पितु बैन ।
ते भाजन सुख सुजस के, बसहिं अमरपति ऐन ॥

बिनु संतोष न काम नसाही । काम अछत सुख सपनेहु नाही ॥
राम भजनबिन मिटहिं कि कामा । थल बिहीन तरु कबहु कि जामा ॥
बिनु बिज्ञान कि समता आवइ । कोउ अवकासकि नभ बिन पावइ ॥
श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई । बिनु महि गध कि पावइ कोई ॥
बिनु तप तेज कि कर बिसतारा । जल बिनु रस कि होइ ससारा ॥
सील कि मिल बिन बुध सेवकाई । जिमि बिनु तेज न रूप गोसाई ॥
निज सुख बिन मन होइकि थीरा । परस कि होइ बिहीन समीरा ॥
कवनिउ सिद्धि कि बिन बिस्वासा । बिनु हरिभजन कि भवभय नासा ॥

बिन बिस्वास भक्ति नहिं, तेहि बिन द्रवहि न राम ।
रामकृपा बिनु सपनेहुं, जीव न लह बिश्राम ॥

परद्रोही कि होइ निहसका । कामी पुनि कि रहइ निकलका ॥
भव कि परहिं परमातमबिदक । सुखी कि होहिं कबहु परनिंदक ॥
राज कि रहइ नीति बिनु जाने । अघ कि रहइ हरि चरित बखाने ॥
पावन जस कि पुन्य बिन होई । बिनु अघ अजस कि पावइ कोई ॥
धन्य सो भूप नीति जो करई । धन्य सो द्विज निज धर्म न टरई ॥
धन्य घरी सोइ जब सतसंगा । धन्य जन्म हरिभक्ति अभंगा ॥

कवि कोविद गावहिं अस नीती । खल सन कलह नहीं भल प्रीती ॥
उदासीन नित रहिय गुसाईं । खल परिहरिय स्वान की नाईं ॥
फूलइ फलइ न बेत, यदपि सुधा बरसहिं जलद ।
मूरख हृदय न चेत, जो गुरु मिलहिं बिरंचि सत ॥
बायस पालिय अति अनुरागा । होइ निरामिष कबहुं कि कागा ॥
संत सहहिं दुख परहित लागी । पर दुख हेतु असत अभागी ॥
साधु चरित सुभ सरिस कपासू । निरस बिसद गुनमय फल जासू ॥
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा । बंदनीय जेहि जग जस पावा ॥
खल सन इव परबंधन करई । खाल कढाइ बिपति सहि मरई ॥
को न कुसंगति पाइ नसाई । रहइ न नीच मते चतुराई ॥
मुनि गन निकट बिहंग मृग जाहीं । बाधक बधिक बिलोकि पराहीं ॥
हित अनहित पसु पच्छी जाना । मानुष तन गुन ज्ञान निधाना ॥
काटे पै कदली फरै, काटि जतन करि सींच ।
बिनय न मान खगेस सुनु, डांटे पै नव नीच ॥
नहिं कोउ अस जनमा जग माहीं । प्रभुता पाइ जाहि मद नाहीं ॥
जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू । सो तेहि मिलत न कछु संदेहू ॥
तृषित बारि बिन जो तनु त्यागा । मुये करै का सुधा तडागा ॥
का बर्षा जब कृषी सुखाने । समय चूकि पुनि का पछताने ॥
दुइ कि होइ इक संग भुवाला । हंसब ठठाइ फुलाउब गाला ॥
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी । सो नृप अवसि नरक अधिकारी ॥
कर्म प्रधान बिश्व करि राखा । जो जस करइ सो तस फल चाखा ॥
आरत कहहिं बिचारि न काऊ । सूझ जुआरिहिं आपन दाऊ ॥
जल पय सरिस बिकाइ, देखहु प्रीति कि रीति भल ।
बिलग होइ रस जाइ, कपट खटाई परत ही ॥
कसे कनक मनि पारखि पाये । पुरुष परखिये समय सुभाये ॥
प्रभु अपने नीचहुं आदरहीं । अग्नि धूम गिरि तृन सिर धरहीं ॥
सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी । जो पितु मातु बचन अनुरागी ॥

तनय मातु पितु पोषनिहारा। दुर्लभ जननि सकल ससारा॥
धन्य जन्म जगतीतल तासू। पितहिं प्रमोद चरित सुनि जासू॥
चारि पदारथ करतल ताके। प्रिय पितु मातु प्रान सम जाके॥
गुरु श्रुति सम्मत धर्मफल, पाइय बिनहिं कलेस।
हठ बस सब संकट सहे, गालब नहुष नरेस॥
सहज सुहृद गुरुस्वामिसिख, जो न करइ सिर मानि।
सो पछताइ अघाइ उर, अवसि होय हित हानि॥
सेवक सुख चह मान भिखारी। व्यसनी धन सुभगति व्यभिचारी॥
लोभी जस चह चारु गुमानी। नभ दुहि दूध चहत ये प्रानी॥
राज नीति बिनु धन बिनु धर्मा। हरिहिं समर्पे बिनु सतकर्मा॥
विद्या बिनु विवेक उपजाये। श्रम फल पढे किये अरु पाये॥
संग ते यती कुमन्त्र ते राजा। मान ते ज्ञान पान ते लाजा॥
प्रीति प्रणय बिन मद ते गुनी। नासहिं बेगि नीति अस सुनी॥
नवनि नीच कै अति दुखदाई। जिमि अकुस धनु उरग बिलाई॥
परहित बस जिनके मन माही। तिन्ह कह जग दुर्लभ कछु नाही॥
सचिव वैद गुरु तीन जो, प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीन कर, होइ वेगही नास॥
बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट सग जनि देहिं विधाता॥
कादर मन कर एक अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा॥
सठ सन विनय कुटिल मन प्रीती। सहज कृपिन सन सुन्दर नीती॥
ममता रत सन ज्ञान कहानी। अति लोभी सन विरति बखानी॥
क्रोधिहि सम कामिहि हरि-कथा। ऊसर बीज बये फल यथा॥
कौल काम बस कृपिन विमूढा। अति दरिद्र अजसी अति बूढा॥
सदा रोग बस सतत क्रोधी। विष्णु विमुख श्रुति सन्त विरोधी॥
तन पोषक निन्दक अघखानी। जीवत शव सम चौदह प्रानी॥
राकापति षोडश उगहिं, तारागन समुदाय।
सकल गिरिन्ह दव लाइये, रवि बिन राति न जाय॥

पर उपदेश कुशल बहुतेरे । जे आचरहिं ते नर न घनेरे ॥
प्रिय बानी जे सुनहिं जे कहहीं । ऐसे नर निकाय जग अहहीं ॥
बचन परम हित सुनत कठोरे । सुनहिं जे कहहिं ते नर जग थोरे ॥
अति सघर्षन करै जो कोई । अनल प्रकट चदन ते होई ॥
सत विटप सरिता गिरि धरनी । परहित हेतु सबन्हि कै करनी ॥
संत हृदय नवनीत समाना । कहा कविन पै कहइ न जाना ॥
निज परिताप द्रवइ नवनीता । पर दुख द्रवहिं सो संत पुनीता ॥
नहिं दरिद्र सम दुख जग माही । संत मिलन सम सुख कछु नाही ॥

मुखिया मुख सों चाहिये, खान-पान को एक ।
पालै-पोषै सकल अंग, तुलसी सहित विवेक ॥

बरवै रामायण

कुकुम तिलक भाल श्रुति कुण्डल लोल ।
काकपच्छ मिलि सखि कस लसत कपोल ॥ १ ॥
केस मुकुत सखि मरकत मनि मय होत ।
हाथ लेत पुनि मुकुता करत उदोत ॥ २ ॥
सम सुबरन सुखमाकर सुखद न थोर ।
सीय अंग सखि कोमल कनक कठोर ॥ ३ ॥
सिअ मुख सरद कमल जिमि किमि कहि जाय ।
निसि मलीन वह निसि दिन, यह बिगसाय ॥ ४ ॥
चपक हरवा अंग मिलि अधिक सुहाइ ।
जानि परै सिय हियरे जब कुम्हिलाइ ॥ ५ ॥
सिअ तुअ अंग रंग मिलि अधिक उदोत ।
हार वेलि पहिरावौ चपक होत ॥ ६ ॥
का घूघट मुख मूदहु नवला नारि ।
चाद सरग पर सोहत यहि अनुहारि ॥ ७ ॥
गरब काहु रघुनन्दन जनि मन मांह ।
देखहु आपनि मूरति सिय कै छाह ॥ ८ ॥

स्याम गौर दोउ मूरति लछिमन राम।
इनते भइ सित कीरति अति अभिराम॥ ९ ॥
बिरह आगि उर ऊपर जब अधिकाय।
ए अखिया दोउ बैरिनि देहिं बुताय॥ १० ॥
डहकनि है उजियरिया निसि नहिं घाम।
जगत जरत अस लागै मोहिं बिनु राम॥ ११ ॥
अब जीवन कै है कपि आस न कोइ।
कनगुरिया कै मुदरी कंकन होइ॥ १२ ॥
जान आदि कवि तुलसी नाम प्रभाउ।
उलटा जपत काल ते भये ऋषिराउ॥ १३ ॥
केहि गनती महं गनती जस बन घास।
राम जपत भये तुलसी तुलसीदास॥ १४ ॥
नाम भरोस नाम बल नाम सनेहु।
जनम जनम रघुनन्दन तुलसिहिं देहु॥ १५ ॥

राम सतसई

आसन दृढ आहार दृढ, सुमति ज्ञान दृढ होइ।
तुलसी बिना उपासना, बिन दूलह की जोइ॥ १ ॥
रामचरण अवलम्ब बिनु, परमारथ की आस।
चाहत बारिद बुंद गहि, तुलसी उडन अकास॥ २ ॥
स्वारथ परमारथ सकल, सुलभ एक ही ओर।
द्वार दूसरे दीनता, उचित न तुलसी तोर॥ ३ ॥
जहा राम तहं काम नहिं, जहा काम नहिं राम।
तुलसी कबहू होत नहिं, रवि रजनी इक ठाम॥ ४ ॥
सम्पति सकल जगत्त की, स्वासा सम नहिं होइ।
सो स्वासा तजि राम पद, तुलसी अलग न खोइ॥ ५ ॥
तुलसी सो अति चतुरता, राम चरन लवलीन।
पर मन पर धन हरन को, गनिका परम प्रवीन॥ ६ ॥

स्वामी होनो सहज है, दुर्लभ होनो दास।
गाडर लाये ऊन को, लागी चरन कपास॥ ७॥
तुलसी सब छल छाड़ि कै, कीजै राम सनेह।
अन्तर पति सों है कहा, जिन देखी सब देह॥ ८॥
कोटि विघ्न संकट बिकट, कोटि सत्रु जो साथ।
तुलसी बल नहिं करि सकै, जो सुदिष्ट रघुनाथ॥ ९॥
लगन महूरत योग बल, तुलसी गनत न काहि।
राम भये जेहि दाहिने, सबै दाहिने ताहि॥ १०॥
ऊंची जाति पपीहरा, पियत न नीचो नीर।
कै याचै घनश्याम सो, कै दुख सहै शरीर॥ ११॥
होइ अधीन याचै नहीं, सीस नाइ नहिं लेइ।
ऐसे मानी माँगनहिं, को वारिद बिनु देइ॥ १२॥
मान राखिबो मागिबो, पिय सों सहज सनेहु।
तुलसी तीनो तब फबै, जब चातक मत लेहु॥ १३॥
गगा यमुना सरसुती, सात सिन्धु भर पूर।
तुलसी चातक के मते, बिन स्वाती सब धूर॥ १४॥
एक भरोसो एक बल, एक आस विश्वास।
स्वाति सलिल रघुनाथ यश, चातक तुलसीदास॥ १५॥
राम राम रटिबो भलो, तुलसी खता न खाय।
लरिकाईं तें पौरिबो, धोखेहु बूड़ि न जाय॥ १६॥
तुलसी बिलम्ब न कीजिये, भजि लीजै रघुबीर।
तन तरकस तें जात है, स्वांस सारसो तीर॥ १७॥
असन बसन सुतनारि सुख, पापिहुं के घर होइ।
सन्त समागम राम बन, तुलसी दुर्लभ दोइ॥ १८॥
तुलसी मीठे वचन ते, सुख उपजत चहुं ओर।
वसीकरन यह मन्त्र है, परिहरु वचन कठोर॥ १९॥

तुलसी अपने राम कहं , भजन करहु निरसङ्क ।
आदि अन्त निर्वाहिबो , जैसे नव को अङ्क ॥ २० ॥
तुलसी राम सनेह करु , त्याग सकल उपचारु ।
जैसे घटत न अङ्क नव , नव के लिखत पहारु ॥ २१ ॥
तुलसी सत सुअबु तरु , फूल फलहिं पर हेत ।
इतते ये पाहन हनत , उतते वे फल देत ॥ २२ ॥
गोधन गजधन बाजिधन , और रतन धन खान ।
जब आवत सन्तोष मन , सब धन धूरि समान ॥ २३ ॥
काम क्रोध मद लोभ की , जौलो मन में खान ।
तौ लो पण्डित मूरखौ , तुलसी एक समान ॥ २४ ॥
प्रेम बैर अरु पुण्य अघ , यश अपयश जय हान ।
बात बीज इन सबन को , तुलसी कहहिं सुजान ॥ २५ ॥
तौ लग योगी जगत गुरु , जौ लगि रहत निरास ।
जब आसा मन में जगी , जग गुरु योगी दास ॥ २६ ॥
उरग तुरग नारी नृपति , नर नीचो हथियार ।
तुलसी परखत रहब नित , इनहिं न पलटत बार ॥ २७ ॥
दुर्जन दर्पन सम सदा , करि देखो हिय गौर ।
सन्मुख की गति और है , बिमुख भये पर और ॥ २८ ॥
सिष्य सखा सेवक सचिव , सुतिय सिखावनु साच ।
सुनि करिये पुनि परिहरिय , पर मनरञ्जन पाच ॥ २९ ॥
दीरघ रोगी दारिदी , कटु बच लोलुप लोग ।
तुलसी प्रान समान जौ , तऊ त्यागिवे योग ॥ ३० ॥
बहुमुत बहुरुचि बहु बचन , बहु अचार व्यवहार ।
इनको भलो मनाइबो , यह अज्ञान अपार ॥ ३१ ॥
सहि कुवास सासति असम , पाप अनट अपमान ।
तुलसी धर्म न परिहरहिं , ते वर सन्त सुजान ॥ ३२ ॥

तुलसी साथी विपत के, विद्या विनय विवेक।
साहस सुकृत सत्यव्रत, राम भरोसो एक॥ ३३॥
तुलसी असमय के सखा, साहस धर्म विचार।
सुकृत सील सुभाव ऋजु, राम चरन आधार॥ ३४॥
राग रोष गुन दोष को, साखी हृदय सरोज।
तुलसी बिकसत मित्र लखि, सकुचत देखि मनोज॥ ३५॥
खग मृग मीत पुनीत किय, बनहु राम नयपाल।
कुनय बालि रावण धरहिं, सुखद बन्धु किय काल॥ ३६॥
तुलसी जो कीरति चहहिं, पर कीरति को खोइ।
तिनके मुह मसि लागि है, मुये न मिटि है धोइ॥ ३७॥
नीच चग सम जानिये, सुनि लखि तुलसीदास।
ढीलि देत महि गिरि परत, खैंचत चढत अकास॥ ३८॥
राम नाम मनि दीप धरु, जीह देहरी द्वार।
तुलसी भीतर बाहिरो, जो चाहसि उजियार॥ ३९॥
साहिब ते सेवक बडो, जो निज धर्म सुजान।
राम बाधि उतरे उदधि, नांघि गये हनुमान॥ ४०॥
सूर समर करनि करहिं, कहि न जनावहिं आप।
विद्यमान रिपु पाइ रन, कायर करहिं प्रलाप॥ ४१॥
जूझे ते भल बूझिबो, भली जीति ते हारि।
डहके ते डहकाइबो, भलो जु करिय बिचार॥ ४२॥
मंत्री गुरु अरु वैद्य जो, प्रिय बोलहिं भय आस।
राज धर्म तन तीन कर, होइ बेगिही नास॥ ४३॥
हृदय कपट वर वेषि धरि, बचन कहैं गढि छोलि।
अबके लोग मयूर ज्यों, क्यों मिलिये मन खोलि॥ ४४॥
अमिय गारि गारेउ गरल, नारि करि करतार।
प्रेम बैर की जननि युग, जानहिं बुध न गंवार॥ ४५॥

तुलसी अपनो आचरन , भलो न लागत कासु ।
तेहि न बसात जो खात नित , लहसुनहू की बासु ॥ ४६ ॥
मुखिया मुख सो चाहिये , खान पान को एक ।
पालै पोसै सकल अग , तुलसी सहित विवेक ॥ ४७ ॥
हित पुनीत सब स्वारथहि , अरि असुद्ध बिनु जाड़ ।
निज मुख मानिक सम दसन , भूमि परे ते हाड ॥ ४८ ॥
तुलसी पावस के समै , धरी कोकिला मौन ।
अब तो दादुर बोलि है , हमै पूछि है कौन ॥ ४९ ॥
तुलसी हमसो राम सो , भलो मिलो है सूत ।
छाड़े बनै न सग रहै , ज्यो घर माहि कपूत ॥ ५० ॥
व्याधा बधो पपीहरा , परो गग जल जाय ।
चोच मूदि पीवै नही , जल पिये मो पन जाय ॥ ५१ ॥
बार बार बर मागहू , हरषि देहु श्रीरङ्ग ।
पद सरोज अनपायिनी , भक्ति सदा सत्सङ्ग ॥ ५२ ॥
सात स्वर्ग अपवर्ग सुख , धरिय तुला इक अङ्ग ।
तुलै न ताहि सकल मिलि , जो सुख लव सत्सङ्ग ॥ ५३ ॥
तुलसी रा के कहत ही , निकसत पाप पहार ।
फिरि भीतर आवत नही , देत मकार किवार ॥ ५४ ॥
तुलसी काया खेत है , मनसा भये किसान ।
पाप पुण्य दोऊ बीज है , बुवै सो लुनै निदान ॥ ५५ ॥
आवत ही हर्षे नही , नैनन नही सनेह ।
तुलसी तहा न जाइये , कचन बरसे मेह ॥ ५६ ॥
तुलसी कबहु न त्यागिये , अपने कुल की रीति ।
लायक ही सो कीजिये , व्याह बैर अरु प्रीति ॥ ५७ ॥
तुलसी जस भवितव्यता , तैसी मिलै सहाय ।
आप न आवे ताहि पै , ताहि तहा लै जाय ॥ ५८ ॥

जगते रहु छत्तीस ह्वै, रामचरन छः तीन।
तुलसी देखु विचारि हिय, है यह मतौ प्रबीन॥ ५९॥
रैन को भूषन इन्दु है, दिवस को भूषन भान।
दास को भूषन ध्यान है, ध्यान को भूषन ज्ञान॥ ६०॥
ज्ञान को भूषन भक्ति है, ध्यान को भूषन त्याग।
त्याग को भूषन शांति पद, तुलसी अमल अदाग॥ ६१॥
तुलसी मिटै न मोहतम, किये कोटि गुन ग्राम।
हृदय कमल फूलै नहीं, बिनु रवि कुल रवि राम॥ ६२॥
सुनत लखत श्रुति नयन बिनु, रसना बिनु रस लेत।
बास नासिका विनु लहै, परसै विना निकेत॥ ६३॥
सोई ज्ञानी सोइ गुनी, जन सोइ दाता ध्यानि।
तुलसी जाके चित भई, राग द्वेष की हानि॥ ६४॥

विनय-पत्रिका

(१)

गाइये गनपति जगबदन, संकर सुवन भवानी नंदन।
सिद्धिसदन गजबदन विनायक, कृपासिंधु सुंदर सब लायक॥
मोदकप्रिय मुद मंगल-दाता, विद्या-वारिधि बुद्धिविधाता।
मांगत "तुलसिदास" कर जोरे, बसहिं रामसिय मानस मोरे॥

(२)

बावरो रावरो नाह भवानी।
दानि बड़ो दिन देत दये विनु बेद बड़ाई भानी॥
निज घर की बर वात विलोकहु हो तुम परम सयानी।
सिव की दई संपदा देखत श्री सारदा सिहानी॥
जिनके भाल लिखी लिपि मेरी सुख की नहीं निसानी।
तिन रंकन को नाक संवारत हौं आयो नकबानी॥
दुख दीनता दुखी इनके दुख जाचकता अकुलानी।
यह अधिकार सौंपिये औरहिं भीख भली मैं जानी॥

प्रेम प्रशसा विनय व्यग जुत सुनि विधि की वर बानी ।
"तुलसी" मुदित महेस मनहिं मन जगत मातु मुसुकानी ।।

(३)

ऐसी तोहि न बूझिये हनुमान हठीले ।
साहेब कहू न राम से तोसे न वसीले ।।
तेरे देखत सिंह को सिसु मेढक लीले ।
जानत हौं कलि तेरेऊ मनु गुनगन कीले ।।
हाक सुनत दसकन्ध के भये बन्धन ढीले ।
सो बल गयो किधौं भये अब गर्बगहीले ।।
सेवक को परदा फटै तुम समरथ सीले ।
अधिक आपु ते आपनो सुनि मान सहीले ।।
सासति "तुलसीदास" की सुनि सुजस तुहीले ।
तिहूं काल तिनको भलो जे राम रगीले ।।

(४)

श्री रामचन्द्र कृपालु भजु मन हरन भव भय दारुन ।
नव कज लोचन कज मुख कर कज पद कजारुन ।।
कन्दर्प अगनित अमित छवि नव नील नीरज सुन्दर ।
पटपीत मानहु तड़ित रुचि सुचि नौमि जनक सुतावर ।।
भजु दीनबन्धु दिनेस दानव दैत्यवस निकदन ।
रघुनन्द आनदकन्द कौसलचन्द दसरथ-नन्दन ।।
शिर मुकुट कुण्डल तिलक चारु उदार अङ्ग विभूषन ।
आजानु भुज शर चाप धर सग्राम जित खर दूषन ।।
इमि बदत "तुलसीदास" शकर शेष मुनि मनरजन ।
मम हृदय कज निवास करु कामादि खल-दल गजन ।।

(५)

मेरो मन हरि हठ न तजै ।
निस दिन नाथ देउं सिख बहु विधि करत सुभाव निजै ।
ज्यो जुवती अनुभवति प्रसव अति दारुन दुख उपजै ।।

ह्वै अनुकूल बिसारि सूल सठ पुनि खल पतिहि भजै ।
लोलुप भ्रमत गृह पशु ज्यों जहं तहं सिर पदत्रान वजै ॥
तदपि अधम विचरत तेहि मारग कबहु न मूढ़ लजै ॥
हौं हार्यो करि जतन विविध विध अतिसय प्रवल अजै ।
"तुलसिदास" बस होइ तबहि जब प्रेरक प्रभु बरजै ॥

(६)

अब लौं नसानी अब न नसैहौं ।
राम कृपा भवनिसा सिरानी जागे फिरि न डसैहौं॥
पायो नाम चारु चिन्तामनि उर करते न खसैहौं ।
श्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी चित कचनहि कसैहौं ॥
परबस जानि हस्यो इन इन्द्रिन निज बस ह्वै न हंसैहौं ।
मन मधुकर पन करि "तुलसी" रघुपति-पद-कमल बसैहौं ॥

(७)

ऐसे राम दीन-हितकारी ।
अति कोमल करुनानिधान बिनु कारन पर उपकारी ॥
साधन हीन दीन निज अघ बस सिला भई मुनि नारी ।
गृहते गवनि परसि पद पावन घोर सापते तारी ॥
हिंसारत निषाद तामस वपु पसु समान बनचारी ।
भेंट्यो हृदय लगाइ प्रेम बस नहि कुल जाति विचारी ॥
यद्यपि द्रोह कियो सुरपति सुत कहि न जाइ अति भारी ।
सकल लोक अवलोकि सोकहत सरन गये भय टारी ॥
बिहंग योनि आमिष अहार-पर गीध कौन व्रतधारी ।
जनक समान क्रिया ताकी निज कर सब भांति सवारी ॥
अधम जाति सबरी जोषित जड लोक वेद ते न्यारी ।
जानि प्रीति दै दरस कृपानिधि सोऊ रघुनाथ उधारी ॥
कपि सुग्रीव बन्धु भय व्याकुल आयो सरन पुकारी ।
सहि न सके दारुन दुख जन के हत्यो बालि सहि गारी ॥

रिपु को अनुज विभीषन निसिचर कौन भजन अधिकारी ।
सरन गये आगे ह्वै लीन्हो भेटचो भुजा पसारी ।।
असुभ होइ जिनके सुमिरेते बानर रीछ बिकारी ।
वेद विदित पावन किये ते सर्व महिमा नाथ तुम्हारी ।।
कह लगि कहो दीन अगनित जिनकी तुम बिपतिनिवारी ।
कलि मल ग्रसित "दास तुलसी" पर काहे कृपा बिसारी ।।

(८)

मन पछतैहै अवसर बीते ।
दुर्लभ देह पाइ हरि पद भजु करम बचन अरु हीते ।।
सहसबाहु दसबदन आदि नृप बचे न काल बलीते ।
हम हम करि धन धाम सवारे अन्त चले उठि रीते ।।
सुत बनितादि जानि स्वारथ रत न करु नेह सबहीते ।
अन्तहु तोहिं तजैगे पामर तू न तजै अबहीते ।।
अब नाथहिं अनुरागु जागु जड़ त्यागु दुरासा जीते ।
बुझै न काम अगिनि "तुलसी" कहु विषय भोग बहु घीते ।।

(९)

तू दयाल, दीन हू, तू दानि, हू भिखारी ।
हू प्रसिद्ध पातकी, तू पाप पुञ्ज हारी ।।
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसो ।
मो समान आरत नहिं आरतहर तोसो ।।
ब्रह्म तू, हू जीव, तू ठाकुर, हू चेरो ।
तात मात गुरु सखा तू सब विध हित मेरो ।।
तोहि मोहि नातो अनेक मानिये जो भावै ।
ज्यो त्यो "तुलसी" कृपाल चरण शरण आवै ।।

(१०)

ममता तू न गई मेरे मन ते ।
पाके केस जन्म के साथी लाज गई लोकन त ।

तन थाके कर कम्पन लागे जोति गई नैनन ते ॥
सरवन बचन न सुनत काहु के बल गये सब इन्द्रिन तें ।
टूटे दसन बचन नहिं आवत सोभा गई मुखन तें ॥
कफ पित बात कंठ पर बैठे सुतहि बुलावत कर ते ।
भाई बन्धु सब परम पियारे नारि निकारत घर ते ॥
जैसे ससिमण्डल बिच स्याही छूटै न कोटि जतन तें ।
'तुलसिदास' बलि जाउं चरन ते लोभ पराये धन ते ॥

(११)

कबहुँक हौं यहि रहनि रहौंगो ।
श्री रघुनाथ कृपालु कृपा तें सन्त सुभाव गहौंगो ॥
जथा लाभ सन्तोष सदा काहू सों कछु न चहौंगो ।
परहित निरत निरन्तर मन क्रम बचन नेम निबहौंगो ॥
परुष बचन अति दुसह स्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो ।
बिगत मान सम सीतल मन परगुन औगुन न कहौंगो ॥
परिहरि देह जनित चिन्ता दुख सुख समबुद्धि सहौंगो ।
तुलसिदास प्रभु यहि पथ रहि अबिचल हरिभक्ति लहौंगो ॥

गीतावली

राजिव लोचन विसाल प्रीति वापिका मराल
ललित कमल बदन उपर मदन कोटि वारे ॥
अरुन उदित विगत सर्वरी ससाक किरिनहीन
दीन दीप ज्योति मलिन दुति समूह तारे ।
मनहु ज्ञान घन प्रकाश बीते सब भौबिलास
आस त्रास तिमिरतोम तरनि तेज जारे ॥
बोलत खग निकर मुखर मधुर करि प्रतीत सुनहु
श्रवन प्रान जीवन धन मेरे तुम वारे ।
मनहु वेद बन्दी मुनिवृन्द सूत मागधादि
बिरुद बदत जय जय जय जयति कैटभारे ॥
सुनत वचन प्रिय रसाल जागे अतिसय दयाल
भागे जञ्जाल विपुल दुख कदम्ब टारे ।
"तुलसिदास" अति अनन्द देख के मुखारबिन्द
छूटे भ्रम फन्द परम मन्द द्वन्द भारे ॥

(१४)

जननी निरखत बाल धनुहिंआ ॥
बार बार उर नयननि लावति प्रभुजु की ललित पनहिंआं ॥
कबहु प्रथम ज्यो जाइ जगावति कहि प्रिय बचन सकारे ।
उठहु तात बलि मातु बदन पर अनुज सखा सब द्वारे ॥
कबहुं कहत बड वार भई ज्यों जाहु भूप पै भैया ।
बन्धु बोलि जेइयै जो भावै गई नेछावरि मैया ॥
कबहु समुझि वन गमन राम को रहि चकि चित्र लिखी सी ।
"तुलसिदास" या समय कहेते लागति प्रीति सिखी सी ॥

(१५)

बैठी सगुन मनावति माता ।
कब अइहैं मेरे बाल कुशल घर कहहु काग फुरि बाता ॥

दूध भात की दोनी देही सोने चोच मढ़ैहौं।
जव सिय सहित बिलोकि नयन भरि राम लखन उर लैहौं॥
अवधि समीप जानि जननी जिय अति आतुर अकुलानी।
गनक बुलाइ पाय परि पूछति प्रेम मगन मृदुवानी॥
तेहि अवसर कोउ भरत निकट ते समाचार लै आयो।
प्रभु आगमन सुनत "तुलसी" मानो मीन मरत जल पायो॥

कृष्ण-गीतावलि

(१६)

मोकह झूठहिं दोस लगावहिं।
मय्या इनहिं बानि परि गृह की नाना युक्ति बनावहिं॥
इन्ह के लिए खेलिवो छांड़्यो तऊ न उवरन पावहिं।
भाजन फोरि वोरि कर गोरस देन उलहनों आवहिं॥
कबहुक बाल रोवाइ पानि गहि मिस यहि करि उठि धावहिं।
करहिं आपु शिर धरहिं आन के वचन विरंचि हरावहिं॥
मेरी टेव वूझ हलधर सो संतत संग खेलावहिं।
जे अन्याउ करहि काहू को ते शिशु मोहि न भावहिं॥
सुनि सुनि वचन चातुरी ग्वालिनि हँसि हँसि बदन दुरावहिं।
वाल गोपाल केलि कलि कीरति "तुलसिदास" मुनि गावहिं॥

(१७)

अवहिं उरहनो दै गई वहुरो फिरि आई।
सुनु मैय्या तेरी सौं करो याकी टेक लरन की सकुच वेचेसि खाई॥
या व्रज मे लरिका घने हौं ही अन्याई।
मुह लाए मूड़हि चढी अतहु अहिरिनि तोहिं सूधी करि पाई॥

(१८)

छाड़ो मेरे ललित ललन लरिकाई।
ऐहै देखु कालि तेरे वै व्याह की वात चलाई॥

डरिहैं सासु ससुर चोरी सुनि हँसि है नई दुलहिआ सुहाई।
उबटि नहाहु गुहो चोटिया बलि देखि भलो बर करहिं बडाई॥
मातु कह्यो करि कहत बोलि दे भइ बडिबार कालि तो न आई।
जब सोइबो तात यो हा कहि नयन मीचि रहे पौढि कन्हाई॥
उठि कह्यो भोर भयो झगुली दै मुदित महर लखि आतुरताई।
बिहसी ग्वालि जान "तुलसी" प्रभु सकुचि लगे जननी उर धाई॥

(१९)

हरि को ललित बदन निहारु।
निपटही डाटति निठुर ज्यो लकुट करते डारु॥
मंजु अंजन सहित जलकन चुवत लोचन चारु।
श्याम सारस मगन मनो शशि श्रवत सुधा सिंगारु॥
सुभग उर दधि बुन्द सुन्दर लखि अपनपो वारु।
मनहु मरकत मृदु सिखर पर लसत विषद तुषारु॥
कान्ह हू पर सतर भौ है महरि मनहिं विचारु।
"दासतुलसी" रहति क्यो रिस निरखि नन्दकुमारु॥

(२०)

देखु सखी हरि बदन इन्दु पर।
चिक्कन कुटिल अलक अवली छबि कहि न जाय शोभा अनूपबर॥
बाल भुअगिनि निकर मनहुं मिलि रही घेरि रस जानि सुधाकर।
तजि न सकहिं नहिं करहिं पान कहो कारन कौन विचार डरहि उर॥
अरुन बनज लोचन कपोल सुभ श्रुति मंडित कुंडल अति सुन्दर।
मनहु सिन्धु निज सुतहिं मनावन पठये युगल बसीठि बारिचर॥
नदनन्दन मुख की सुन्दरता कहि न सकहिं श्रुति शेष उमा वर।
"तुलसीदास" त्रैलोक्य विमोहन रूप कपटनर त्रिविध शूल हर॥

(२१)

गोपाल गोकुल वल्लभी प्रिय गोप गोसुत वल्लभं।
चरणारबिन्दमहं भजे भजनीय सुर नर दुर्लभं॥

घनश्याम काम अनेक छवि लोकाभिराम मनोहरं।
किंजल्क बसन किशोर मूरति भूरि गुन करुनाकर॥
सिर केकिपच्छ बिलोल कुंडल अरुन बनरुह लोचनं।
गुञ्जावतंस विचित्र सब अंग धातु भव भय मोचनं॥
कच कुटिल सुन्दर तिलक भ्रू राका मयङ्क समाननं।
अपहरत "तुलसीदास" त्रास बिहार वृन्दा काननं॥

जानकी मङ्गल

(सोहर छन्द)

(२२)

देखि सपुर परिवार जनक हिय हारेउ।
नृप-समाज जनु तुहिन बनजबन मारेउ॥
कौसिक जनकहिं कहेउ देहु अनुसासन।
लखहिं भानुकुल भानु इसान-सरासन॥
मुनिवर तुम्हरे बचन मेरु महि डोलहिं।
तदपि उचित आचरन पाच भल बोलहिं॥
बान बान जिमि गयउ गँवहिं दसकन्धर।
को अवनीतल इन सम बीर धुरन्धर॥
पारबती मन सरिस अचल धनुघालक।
हैं पुरारि तेउ एक नारि व्रत पालक॥
सो धनु कहिय विलोकन भूप किसोरहिं।
बेध कि सिरिस सुमन कन कुलिस कठोरहिं॥
रोम रोम छवि निदरत सोम मनोजनि।
देखिय मूरति मलिन करिय मुनि सो जनि॥
मुनि हँसि कहेउ जनक यह मूरति सोहइ।
सुमिरत सकृत मोह मल सकल बिछोहइ॥

पार्वती मङ्गल

(२३)

तजे भोग जिमि रोग लोग अहिगन अगु।
मुनि मनसहु ते अगम तपहिं लायो मन ।।
सकुचहि बसन विभूषन परसत जो बपु।
तेहि सरीर हर हेत अरभेउ बड़ तप ।।
पूजहिं शिवहिं समय तिहु करहिं निमज्जन।
देखि प्रेम व्रत नेम सराहहिं सज्जन ।।
नीद न भूख पियास सरिस निसि बासर।
नयन नीर मुख नाम पुलक तनु हिय हर ।।
कन्द मूल फल असन कबहु जल पवनहिं।
सूख बेल के पात खात दिन गवनहिं ।।
नाम अपरना भयउ परन जब परिहरे।
नवल धवल कल कीरति सकल भुवन भरे ।।
देखि सुराहहिं गिरिजहिं मुनिवर मुनि बहु।
अस तप सुना न दीख कबहुं काहू कहु ।।
देखि दसा करुनाकर हर दुख पायउ।
मोर कठोर सुभाय हृदय अस आयउ ।।

कवितावली

(१)

अवधेश के द्वारे सकारे गई सुत गोद कै भूपति लै निकसे।
अवलोकिहौं सोच विमोचन को ठगि सी रही जे न ठगे धिक से ।।
तुलसी मनरंजन रंजित अंजन नैन सुखंजन जातक से।
सजनी ससि मे समसील उभै नवनील सरोरुह से बिकसे।।

(२)

तन की दुति स्याम सरोरुह लोचन कंज की मंजुलताई हरैं।
अति सुन्दर सोहत धूरि भरे छवि भूरि अनंग को दूरि धरैं ।।

(८)

कतहु विटप भूधर उपारि अरि सैन बरष्षत ।
कतहुं बाजि सो बाजि मर्दि, गजराज करष्षत ।।
चरन चोट चटकन चकोट अरि उर सिर बज्जत ।
विकट कटक विद्दरत वीर वारिद जिमि गज्जत ।।
लगूर लपेटत पटकि महि जयति राम जय उच्चरत ।
तुलसीस पवननन्दन अटल जुद्ध क्रुद्ध कौतुक करत ।।

(९)

खेती न किसान को भिखारी को न भीख बलि बनिक को बनिज न चाकर को चाकरी । जीविका बिहीन लोग सिद्यमान सोचबस कहै एक एकन सो कहां जाय का करी । वेदहु पुरान कही लोकहु बिलोकियत साकरे समै के राम रावरे कृपा करो । दारिद दसानन दबाई दुनी दीन-बन्धु दुरित दहत देखि तुलसी हहा करी ।

बलभद्र मिश्र

बलभद्र मिश्र सनाढय ब्राह्मण ओडछा निवासी पंडित काशीनाथ के पुत्र और प्रसिद्ध कवि केशवदास के बडे भाई थे । केशवदास ने अपनी कवि-प्रिया मे इनका नाम लिखा है । इनका जन्मकाल सं० १६०० वि० के लगभग माना जाता है । इनके रचे हुए नखशिख, भागवत भाष्य, बलभद्री व्याकरण, हनुमन्नाटक टीका, गोबर्द्धन सतसई टीका और दूषण विचार आदि ग्रथ कहे जाते है । इनमें से नखशिख और दूषण विचार आदि दो-तीन ग्रंथो के सिवा अन्य ग्रन्थ अभी तक नही मिले है । अब तक इनकी जितनी कविताए मिली, उनके देखने से ये बडे अच्छे कवि जान पड़ते है । नमूने के तौर पर इनके कुछ छंद नीचे लिखे जाते है —

पाटल नयन कोकनद के से दल दोऊ
बलभद्र बासर उनीदी लखी बाल मै ।
शोभा के सरोवर मे बाड़व की आभा कैधौ
देवधुनि भारती मिली है पुन्य काल मै ।।

काम कैबरत कैधौं नासिका उडुप बैठ्यो
खेलत सिकार तरुनी के मुख ताल मैं।
लोचन सितासित मैं लोहित लकीर मानो
बाधे जुग मीन शाल रेसम के जाल मैं ॥ १ ॥
मरकत सूत कैधौं पन्नग के पूत अति
राजत अभूत तमराज कैसे तार हैं।
मखतूल गुन ग्राम सोभित सरस श्याम
काम मृग कानन कै कोहू के कुमार हैं ॥
कोप की किरनि कै जलज नल नील तत
उपमा अनत चारु चंवर श्रृंङ्गार हैं।
कारे सटकारे भीजे सोधे सों सुगंध बास
ऐसे बलभद्र नवबाला तेरे बार हैं ॥ २ ॥

दादूदयाल

दादूदयाल का जन्म फाल्गुन शुक्ला अष्टमी, बृहस्पतिवार संवत १६०१ वि० मे हुआ था। जन्मस्थान कहा था, इस विषय मे बड़ा मतभेद पाया जाता हैं। दादूपंथी लोग कहते हे कि इनका जन्म अहमदाबाद (गुजरात) मे हुआ था। महामहोपाध्याय पडित सुधाकर द्विवेदी ने इनका जन्म स्थान जौनपुर बतलाया है। परन्तु दादूदयाल की कविता की भाषा देखने से गुजरात देश ही उनको जन्म-स्थान प्रतीत होता है।

ये किस जाति के थे, इसमे भी बडा झगड़ा है। कोई इन्हें गुजराती ब्राह्मण बतलाता है, कोई मोची और कोई धुनिया कहता है। सर्वसाधारण में ये धुनिया ही प्रसिद्ध हैं; परन्तु "जाति पांति पूछै ना कोई, हरि को भजै सो हरि का होई" इस कहावत के अनुसार हमे इनका गुण ही देखना चाहिये। गुण की कोई जाति नही है। जाति चाहे ऊंच हो या नीच गुण का आदर सर्वत्र होगा। कबीर ने कहा है--

जाति न पूछो, साधु की, पूछ लीजिये ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान ॥

दादूदयाल का गुरु कौन था, इसका भी ठीक ठीक पता नही। लोग कहते है कि कमाल इनके गुरु थे। कमाल कबीर के पुत्र थे। दादूदयाल की पदावली मे कबीर का नाम तो कई स्थानो पर आया है, परन्तु कमाल का एक स्थान पर भी नही। दादूदयाल ने गुरु की महिमा भी वहुत गाई है। ऐसी दशा मे यदि कमाल इनके गुरु होते, तो उनका नाम भी कही न कही आता ही।

दादू पथियों के कथनानुसार, कबीर साहब की तरह दादूदयाल भी बालक रूप मे, लोदीराम नागर ब्राह्मण को साबरमती नदी (अहमदाबाद) में बहते हुए मिले थे। इनके विषय मे भी बहुत-सी चमत्कार की कहानिया प्रसिद्ध है। ये बड़े क्षमाशील थे। इसी से लोगो ने इन्हे "दयाल" की पदवी दी थी और ये सबको दादा कहा करते थे, इसीसे लोग इन्हे "दादू' कहने लगे।

दादूदयाल आमेर मे जो जयपुर की पुरानी राजधानी है, १४ वर्ष तक रहे। वहा से जयपुर, मारवाड़, बीकानेर आदि स्थानो मे घूमते हुए स० १६५९ मे नराना मे, जो जयपुर से २० कोस पर है, आकर ठहर गये। वहा से तीन चार कोस पर भराने की पहाड़ी है, वहा भी ये कुछ समय तक रहे, और स० १६६० मे वही इन्होने शरीर छोडा। इसी कारण से वह स्थान बहुत पवित्र समझा जाता है। समस्त दादू पथियो के मुखिया वही रहते है। वहा दादूदयाल का एक मन्दिर है। उसमे उनके कपड़े और पोथिया अब तक है। वहा प्रति वर्ष फागुन सुदी ४ से द्वादशी तक, नौ दिन बड़ा भारी मेला लगता है। इस पथ मे दो प्रकार के साधू पाये जाते है, एक भेसधारी विरक्त, दूसरे नागा। भेसधारी विरक्त गेरुआ वस्त्र पहनते है और कथा-कीर्तन मे अपना समय बिताते है। नागा सफेद सादे कपड़े पहनते है और खेती, फौज की नौकरी तथा वैद्यक आदि करके जीविका चलाते है। जयपुर राज्य की नागो की सेना प्रसिद्ध ही है। दोनो प्रकार के साधू विवाह नही करते। गृहस्थो के लडको को चेला मूड़कर अपना पथ चलाते है। ये लोग न तो तिलक लगाते है और न गले में

कंठी पहनते हैं। प्राय.हाथ मे एक सुमिरनी रखते हैं। सिर पर टोपी या पगड़ी पहनते हैं और आते जाते समय एक दूसरे से "सत्त राम" कहते हैं। दादूदयाल के शिष्यो मे सुन्दर दास, रज्जबजी, जनगोपाल और मोहनदास आदि अच्छे कवि हो गये हैं।

दादूदयाल निरञ्जन निराकार परब्रह्म के उपासक थे और उसी को सबमे रमनेवाला राम कहकर सुमिरन करते कराते थे।

ये हिंदी, फारसी, गुजराती, मारवाड़ी और मराठी आदि कई भाषाओं के ज्ञाता थे। गुजराती और हिंदी भाषा मे इनकी कविताएं बड़ी ही हृदयवेधक हुई हैं। जब मै इनकी कविता का अध्ययन कर रहा था, तब कई स्थानो पर मुझे ऐसा प्रतीत हुआ कि ससार-प्रसिद्ध महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की गीताजंलि के भावो से उनमे विशेष महीन और प्रेमाभिसिक्त भाव हैं। दोनो के भाव और कहने के ढग मे कही-कही बड़ी समता पाई जाती है।

दादूदयाल की साखी मे वह रस नही है जो कबीर साहब की साखी मे पाया जाता है। परन्तु दादूदयाल के पदो मे प्रेम का जो मनोहर रूप प्रकट हुआ है वह कबीर साहब के थोड़े ही भजनो मे पाया जाता है। कबीर साहब की तरह दादूदयाल भी हिन्दू मुसलमानो मे भेद नही मानते थे, यह उनके पदो से साफ-साफ प्रकट होता है।

यहा हम दादूदयाल के कुछ चुने हुये दोहे और पद प्रकाशित करते हैं—

घीव दूध मे रमि रह्या, व्यापक सब ही ठौर।
दादू बकता बहुत है, मथि काढ़े ते और ॥ १ ॥
दादू दीया है भला, दिया करो सब कोय।
घर मे धरा न पाइये, जो कर दिया न होय ॥ २ ॥
यह मसीत यह देहरा, सतगुरु दिया दिखाइ।
भीतरि सेवा बदगी, बाहिर काहे जाइ ॥ ३ ॥

कहि कहि मेरी जीभ रहि , सुणि सुणि तेरे कान ।
सतगुरु बपुरा क्या करै , जो चेला मूढ अजान ।। ४ ।।
सुख का साथी जगत सब , दुख का नाही कोइ ।
दुख का साथी साइया , दादू सतगुरु होइ ।। ५ ।।
दादू देख दयाल कौ , सकल रहा भरपूर ।
रोम रोम में रमि रह्यो , तू जिनि जानै दूर ।। ६ ।।
मिसरी माहै मेल करि , माल बिकाना बस ।
यो दादू महिगा भया , पारब्रह्म मिलि हस ।। ७ ।।
केते पारिख पचि मुये , कीमति कही न जाइ ।
दादू सब हैरान है , गूगे का गुड खाइ ।। ८ ।।
जब मन लागै राम सो , तब अनत काहे को जाइ ।
दादू पाणी लूण ज्यो , ऐसै रहै समाइ ।। ९ ।।
क्या मुह ले हसि बोलिये , दादू दीजे रोइ ।
जनम अमोलक आपणा , चले अकारथ खोइ ।। १० ।।
एक देस हम देखिया , जह सत नहि पलटै कोइ ।
हम दादू उस देस के , जह सदा एकरस होइ ।। ११ ।।
सुरग नरक ससय नही , जिवण मरण भय नाहि ।
राम बिमुख जे दिन गये , सो सालै मन माहि ।। १२ ।।
मै ही मेरे पोट सर , मरिये ताके भार ।
दादू गुरु परसाद सो , सिर थै धरी उतार ।। १३ ।।
दादू मारग कठिन है , जीवत चलै न कोइ ।
सोई चलि है बापुरा , जे जीवत मिरतक होइ ।। १४ ।।
काया कठिन कमान है , खीचै विरला कोइ ।
मारे पाचौ मिरगला , दादू सूरा सोइ ।। १५ ।।
जे सिर सौप्या राम कौं , सो सिर भया सनाथ ।
दादू दे ऊरण भया , जिसका तिसके हाथ ।। १६ ।।

कहतां सुनतां देखता, लेतां देताँ प्राण।
दादू सो कतहू गया, माटी धरी मसाण ॥ १७॥
जिहि घर निंदा साधु की, सो घर गये समूल।
तिनकी नीव न पाइये, नाव न ठांव न धूल ॥ १८ ॥

पद

हुसियार रहो मन मारैगा, साईं सतगुरु तारैगा ॥
माया का सुख भावै, मूरिख मन बौरावै रे ॥
झूठ साच करि जाना, इन्द्री स्वाद भुलाना रे ॥
दुख कौं सुख करि मानै, काल झाल नहिं जानै रे ॥
दादू कहि समझावै, यह अवसर बहुरि न पावै रे ॥१॥

भाई रे ऐसा पंथ हमारा।
द्वै पख रहित पंथ गहि पूरा अवरण एक अधारा ॥
वाद विवाद काहू सौं नाही माहिं जगत थै न्यारा।
समदृष्टि सू भाई सहज मे आपहि आप विचारा ॥
मै, तै, मेरी यहु मत नाही निरबैरी निरविकारा।
पूरण सबै देखि आपा पर निरालम्भ निरधारा ॥
काहू के सगी मोह न ममिता संगी सिरजनहारा।
मन ही मनसू समझि सयाना आनंद एक अपारा ॥
काम कल्पना कदे न कीजे पूरण ब्रह्म पियारा।
इहि पथ पहुचि पार गहि "दादू" सो तत सहजि संभारा ॥ २ ॥

आव रे सजणाँ आव, सिर पर धरि पांव।
जानी मैडा जिंद असाड़े।
तू रावै दा राव वे सजणां आव ॥
इत्थां उत्था जित्था कित्था, हौं जीवां तो नाल वे।
मीयां मैडा आव असाड़े।
तू लालो सिर लाल वे सजणां आव ॥

तन भी डेवां मन भी डेवा, डेवां प्यण्ड पराण वे ।
सच्चा साईं मिलि इत्थाईं ।
जिन्दा करां कुरवाण वे सजणा आव ।।
तू पाकौं सिर पाक वे सजणा तू खूबौ सिर खूब ।
दादू भावै सजणा आवै ।
तू मीठा महबूब वे सजणा आव ।। ३ ।।
(पञ्जाबी भाषा)

म्हारा रे व्हाला ने काजे रिदै जोवा ने हू ध्यान धरू ।
आकुल थाये प्राण म्हारा कोने कही पर करूं ।।
संभारचो आवे रे व्हाला व्हेला एहों जोइ ठरू ।
साथी जी साथै थइनि पेली तीरे पार तरू ।।
पीव पाखे दिन दुहेला जाये घड़ी बरसा सौ केम भरू ।
दादू रे जन हरि गुण गाता पूरण स्वामी ते वरू ।। ४ ।।
(गुजराती भाषा)

बटाऊ रे चलना आजि कि काल ।
समझि न देखै कहा सुख सोवै रे मन राम सभालि ।।
जैसे तरवर बिरस बसेरा पङ्खी बैठे आइ ।
ऐसे यहु सब हाट पसारा आप आप को जाइ ।।
कोइ नहिं तेरा सजन सगाती जिन खोवे मन भूल ।
यहु ससार देखि जिन भूलै सब ही सेंवल फूल ।।
तन नहिं तेरा धन नहिं तेरा कहा रह्यो इहि लागि ।
दादू हरि बिन क्यो सुख सोवै काहे न देखे जागि ।। ५ ।।

जागि रे सब रैणि बिहाणी । जाइ जनम अगुली को पाणी ।।
घड़ी घडी घड़ियाल बजावै । जे दिन जाइ से बहुरि न आवै ।।
सूरज चन्द कहै समझाइ । दिन दिन आयू घटती जाइ ।।
सरवर पाणी तरुवर छाया । निसदिन काल गरासै काया ।।
हंस बटाऊ प्राण पयाना । दादू आतमराम न जाना ।।६।।

बातें बादि जाहिंगी भइये।
तुम जिन जानौ बातनि पइये॥
जब लग अपना आप न जाणै, तब लग कथनी काची।
आपा जाणि साईं कूं जाणै, तब कथनी सब साची॥
करणी बिना कन्त नहिं पावै, कहे सुने का होइ।
जैसी कहै करै जे तैसी, पावेगा जन सोइ॥
बातनि ही जे निरमल होवै, तौ काहे कूं कसि लीजै।
सोना अगिनि दहै दस बारा, तब यहु प्राण पतीजै॥
यौ हम जाणा मन पतियाना, करनी कठिन अपारा।
"दादू" तन का आपा जारै, तौ तिरत न लागै बारा॥ ७॥

गंग

गङ्ग बड़े प्रतिभाशाली और अकबर के दरबारी कवि थे। अब्दुर्रहीम खानखाना इनको बहुत चाहते थे। गङ्ग के जन्म और मरण की तिथि का ठीक पता नहीं चलता; परन्तु अनुमान से यह माना जा सकता है कि इनकी और रहीम की अवस्था में बहुत कम अन्तर रहा होगा। रहीम का जन्म १६१० में और मृत्यु १६८२ वि० में हुई। अतएव गङ्ग का जन्मकाल भी १६१० के आसपास होगा।

गङ्ग और औरङ्गजेब के सम्बन्ध की एक कथा भी लोक में बहुत प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि औरङ्गजेब ने एक बार कविता से बहुत प्रसन्न होकर गङ्ग को एक हथिनी पुरस्कार में दी। हथिनी बुड्ढी थी। गङ्ग ने हथिनी का मजाक़ उड़ाते हुए यह छन्द रचा---

तिमिरलङ्ग लई मोल चली बब्बर के हलके।
रही हुमायूं साथ गई अकबर के दल के॥
जहांगीर जस लियो पीठि को भार छुड़ायो।
शाहजहां करि न्याय ताहि को माड़ चटायो॥

बलरहित भई पौरुष थक्यो, भगी फिरत बन स्यार डर ।।
औरङ्गजेब करिनी सोई, लै दीन्ही कवि "गङ्ग" घर ।।

इस कथा मे सत्य का कुछ अश हो या न हो, गङ्ग औरङ्गजेब के समय तक जीवित रहे हो या नही, पर एक बुढिया हथिनी के साथ मुगल खानदान का खासा मजाक उडाया गया है।

गङ्ग बडे ही धुरन्धर कवि थे। यद्यपि इनका कोई ग्रन्थ नही मिलता परन्तु जो कुछ फुटकर छन्द मिलते है, उनसे इनकी उत्कृष्ट प्रतिभा का परिचय मिलता है।

इनका एक छप्पै सुनकर अब्दुर्रहीम खानखाना ने इनको ३६ लाख रुपये दिये थे। वह छप्पय यह है —

चकित भवर रहि गयौ गमन नहिं करत कमल बन ।
अहि फनि मनि नहिं लेत तेज नहिं बहत पवन घन ।।
हस मानसर तज्यो चक्क चक्की न मिलै अति ।
बहु सुन्दरि पद्मिनी पुरुष न चहै न करै रति ।।
खलभलित सेस कवि "गङ्ग" भनि अमित तेज रवि रथ खस्यो ।
खानानखान बैरम सुवन जि दिन क्रोध करि तुग कस्यो ।।

हम इनके कुछ छन्द नीचे लिखते है —

बैठी थी सखिन सग पिय को गवन सुन्यो सुख के समूह मे वियोग आग भरकी। 'गग' कहै त्रिबिध सुगन्ध लै पवन बह्यो लागत ही ताके तन भई बिथा जर की ।। प्यारी को परसि पौन गयो मानसर पह लागत ही औरै गति भई मानसर की। जलचर जरे औ सेवार जरि छार भयो जल जरि गयो पङ्क सूख्यो भूमि दरकी ।। १ ।।

नवल नवाब खानखाना जू तिहारी त्रास भागे देसपती धुनि सुनत निसान की। 'गङ्ग' कहै तिनहू की रानी राजधानी छाड़ि फिरै बिललानी सुधि भूली खानपान की ।। तेऊ मिली करिन हरिन मृग बानरन तिनहु की भली भई रच्छा तहा प्रान की। सची मिली करिन भवानी जानी केहरिन मृगन कलानिधि कपिन जानी जानकी ।। २ ।।

प्रबल प्रचण्ड बली बैरम के खानखाना तेरी धाक दीपन दिसान दह दहकी। कहै कवि 'गङ्ग' तहा भारी सूर वीरन के उमड़ि अखण्ड दल प्रलै पौन लहकी ॥ मच्यो घमसान तहां तोप तीर वान चलै मंडि बलवान किरपान कोपि गहकी। तुण्ड काटि मुण्ड काटि जोसन जिरह काटि नीमा जामा जीन काटि जिमी आनि ठहकी ॥ ३ ॥

झुकत कृपान मयदान ज्यो उदोत भान एकन ते एक मनो सुखमा जरद की। कहै कवि 'गङ्ग' तेरे बल की बयारि लागे फूटी गज घटा घन घटा ज्यो सरद की ॥ एते मान सोनित की नदियां उमडि चली रही न निसान कहूं महि मे गरद की। गौरी गह्यो गिरिपति गनपति गह्यो गौरी गौरीपति गह्यो पूछ लपकि बरद की ॥ ४ ॥

फूट गये हीरा की बिकानी कनी हाट हाट काहू घाट मोल काहू बाढ़ मोल को लयो। टूट गई लङ्का फूट मिल्यो जो बिभीषन है रावन समेत बस आसमान को गयो ॥ कहै कवि 'गङ्ग' दुरजोधन से छत्रधारी तनक मे फूटें ते गुमान वाको नै गयो। फूटे ते नरद उठि जात बाजी चौसर को आपुस के फूटे कहु कौन को भलो भयो ॥ ५ ॥

आवत हौं चले शिव शैलते गिरीश जांचे मिल्यो हुतो मोहि जहां सागर सगर को। कविन की रसना की पालकी पै चढ़ो जात सग सोहै रावरो प्रताप तेज वर को ॥ कवि 'गङ्ग' पूछी तुम को हौ कित जैहौ, उन कह्यो मोसो हसि कै सनेसो ऐसो थर को। जस मेरो नाम मेरो दसो दिसि काम मेरो कहियो प्रनाम हौं गुलाम बीरबर को ॥ ६ ॥

देखत के वृच्छन मे दीरघ सुभायमान कीर चल्यो चाखिबे को प्रेम जिय जग्यो है। लाल फल देखि कै जटान मड़रान लागे देखत बटोही वहुतेरे डगमग्यो है ॥ 'गङ्ग' कवि फल फूटे भुआ उधिरान लखि सबन निराश ह्वै कै निज गृह भग्यो है। ऐसो फलहीन वृच्छ बसुधा मे भयो यारो सेमर बिसासी वहुतेरन को ठग्यो है ॥ ७ ॥

मृगहू ते सरस बिराजत बिसाल दृग देखिये न अति दुति कौलहु के दल मैं। "गङ्ग" घन दुज से लसत तन आभूषन ठाढ़े द्रुम छाह देख कै

गई बिकल मै । चख चित चाय भरे शोभा के समुद्र मांझ रही ना सभार दसा औरे भई पल मै । मन मेरो गरुओ गयोरी बूडि मै न पायो नैन मेरे हरुये तिरन रूप जल मै ॥ ८ ॥

चकई बिछुरि मिली तू न मिली प्रीतम सो गग कवि कहै ये तो कियो मान ठानरी । अथये नछत्र ससि अथई न तेरी रिरा तू न परसन परसन भयो भान री । तू न खोली मुख खोलो कज औ गुलाब मुख चली सीरी वायु तू न चली भो बिहान री । राति सब घटी नाही करनी ना घटी तेरी दीपक मलीन तेरो मान री ॥ ६ ॥

अधर मधुप ऐसे वदन अधिकानी छवि विधि मानो बिधु कीन्हो रूप को उदधि कै । कान्ह देखि आवत अचानक मुरछि पर्‌यो बदन छपाइ सखियान लीन्ही मधि कै । मारि गई 'गङ्ग' दृग शर वेधि गिरिधर आधी चितवनि मै अधीन कीन्हो अधिकै । बान बधि बधिक बधे को खोज लेत फेरि बधिक बधू ना खोज लीन्ही फेरि बधि कै ॥ १० ॥

मालती शकुन्तला सी को है कामकंदला सी हाजिर हजार चारु नटी नौल नागरै । ऐल फैल फिरत खवास खास आसपास चोवन का चहल गुलाबन की गागरै । ऐसी मजलिस तेरी देखी बीरबर आज 'गग' कहै गूगी ह्वै कै रही है गिरा गरै । महि रह्यो मागधनि गीत रह्यो ग्वालियर गोरा रह्यो गोर ना अगर रह्यो आगरै ॥ ११ ॥

राजे भाजे राज छोडि रन छोडि रजपूत रौती छोडि राउत रनाई छोड़ि रानाजू । कहै कवि 'गङ्ग' हूल समुद के चहूं कूल कियो न करै कबूल तिय खसमाना जू । पश्चिम पुरतगाल कासमीर अवताल खक्खर को देस बाढ्यो भक्खर भागना जू । रूम साम लोम सोम बलक बदाखशान खैल फैल खुरासान खीझे खानखाना जू ॥ १२ ॥

कोप कसमीर तें चल्यो है दल साजि बीर धीर ना धरत गल गाजिबे को भीम है । सुन्न होत साझे ते बजत दत आधीरात तीसरे पहर दहल दै असीम है । कहै कवि 'गङ्ग' चौथे पहर सतावै आनि

निपट निगोरो मोहिं जानि कै यतीम है। बाढ़ी शीत शंखा कापै कर ह्वै अतङ्का लघुशङ्का के लगे ते होत लंका की मुहीम है॥१३॥

कहेते न समझे न समझाये समझे सुकवि लोग कहे ताहि मानत असार सी। काक को कपूर जैसे मरकट को भूषण ज्यों ब्राह्मण को मक्का जैसे मीर को बनारसी। बहिरे के आगे तान गाये तो सवाद जैसे हिजड़े के आगे नारि लागत अगार सी। कहैं कवि 'गग' मनमांहि तो विचार देखो मूढ आगे विद्या जैसे अंधे आगे आरसी॥ १४ ॥

तारा की जोत में चद्र छिपे नहिं सूर छिपे नहिं बादर छाये।
रन्न चढे रजपूत छिपे नहिं दाता छिपे नहिं मांगन आये॥
चचल नारि को नैन छिपे नहिं प्रीति छिपे नहिं पीठ दिखाये।
'गग' कहै सुन शाह अकब्बर कर्म छिपे न भभूत लगाये॥ १५॥

वुरो प्रीति को पंथ, वुगे जगल को वासो।
वुरो नारि को नेह, बुरो मूरख सों हासो॥
वुरी सूम की सेव, बुरो भगिनी पर भाई।
वुरी कुलच्छन नारि, सास घर बुरो जमाई॥
बुरो पेट पपाल है, बुरो युद्ध से भागनो।
'गंग' कहे अकवर सुनो, सब से 'वुरो है मांगनो॥ १६॥

दलहि चलत हलहलत भूमि थल थल जिमि चल दल।
पल पल खल खलभलत बिकल वाला कर कुल कल।
जव पटह्ध्वनि युद्ध धुधु धुद्धुव धुद्धुव हुव।
अरर अरर फटि दरकि गिरत धसमसति धुकन ध्रुव।
भनि 'गंग' प्रवल महि चलत दल जहंगीरशाह तुव भार तल।
फुफु फनिन्द फन फुकरत सहस गाल उगिलत गरल॥१७॥

मृगनैनी की पीठ पै वेनी लसै सुख साज सनेह समोइ रही।
सुचि चीकनी चारु चुभी चित मै भरि भौन भरी खुशवोइ रही।
कवि 'गग' जू या उपमा जो कियो लखि सूरति ता श्रुति गोइ रही।
मनो कचन के कदलीदल पै अति सावरी सांपिनी सोइ रही॥१८॥

मन घायल पायल मायल ह्वै गढ लकते दूरि निसक गयो।
तहं रूप नदी त्रिवली तरि कै करि साहस सागर पार भयो।
कवि 'गग' भनै बटपार मनोज रुमावलि सो ठग सग लयो।
परि दोऊ सुमेरु के बीच मनोभव मेरो मुसाफिर लूट लयो ॥११॥

हरिनाथ

हरिनाथ नरहरि के पुत्र थे। शाहजहां बादशाह की इन पर बड़ी कृपा रहती थी। शाहजहा के सिवा अन्य राजा महाराजाओ के यहां भी इनका अच्छा मान था, और इनको विदाई मे घोडे, हाथी, रथ, पालकी और गाव आदि मिलते थे।

एक बार आमेर के राजा सवाई मानसिंह की प्रशसा मे इन्होने नीचे लिखे दोहे पढकर एक लाख रुपया दान पाया—

बलि बोई कीरति लता, कर्ण करी द्वैपात।
सीची मान महीप ने, जब देखी कुम्हिलात ॥ १ ॥
जाति जाति ते गुन अधिक, सुन्यो न कबहू कान।
सेतु बांधि रघुबर तरे, हेला दे नृप मान ॥ २ ॥

जब रुपया लेकर हरिनाथ दरबार से घर की ओर चले तो मार्ग मे एक ब्राह्मण मिला। उसने यह दोहा कहा—

दान पाय दोई बढे, की हरि की हरिनाथ।
उन बढि ऊंचे पग किये, इन बढि ऊंचे हाथ ॥

इस दोहे से प्रसन्न हो हरिनाथ ने सब धनधान्य जो कुछ पाया था, उस ब्राह्मण को दे दिया और आप खाली हाथ घर चले गये। एक बार हरिनाथ बाधवगढ के बघेला रामचन्द्र के दरबार में गये। वहां राजा से दान सम्मान पाकर उन्होंने अपनी विपत्ति को सबोधन करके यह सवैया पढा—

आज लौं तोसों औ मोसों विपत्ति बढी रही प्रीति की रीति सहेली।
तो हित झार पहार मझाय कै आय के देखी है भूमि बघेली ॥

श्री हरिनाथ सो मान करै मति मेरी कही यह मानि लै हेली।
भेटत ही राजा रामनरेसहिं भेंटि लै री फिर भेट दुहेली॥

इस सवैया से प्रसन्न होकर राजा ने हरिनाथ को एक लाख रुपया पुरस्कार दिया।

अब जरा हरिनाथ के चिड़ीखाने का वर्णन सुनिये—

बाजपेयी बाज सम पांडे पच्छिराज सम,
हंस से त्रिवेदी और सोहैं बड़े गाथ के।
कुही सम सुकुल मयूर से तिवारी भारी,
जुर्रा सम मिसिर नवैया नहीं माथ के॥
नीलकण्ठ दीक्षित अवस्थी हैं चकोर चारु,
चक्रवाक दुबे गुरु सुख शुभ साथ के।
येते द्विज जाने रङ्ग रङ्ग के मैं आने,
देस देस में बखाने चिरीखाने हरिनाथ के॥

रहीम

रहीम का पूरा नाम नवाब अब्दुल्रहीम खानखाना था। इनके बाप का नाम बैरम खा था। इनका जन्म सं० १६१० में हुआ। ये अकबर के प्रधान सेनापति, मन्त्री और दरबार के नवरत्नों में से एक रत्न थे। अकबर इनका बहुत आदर करते थे।

रहीम अरबी, फारसी, संस्कृत और हिन्दी के अच्छे विद्वान थे। इन की सभा सदा पंडितों से भरी रहती थी। ये बड़े दानी, परोपकारी, सज्जन और श्रीकृष्णचन्द्र के अनन्य उपासक थे। श्रीकृष्ण के लिए इनकी कविता में इनके विशुद्ध प्रेम की बड़ी ही मनोहर झलक दिखाई पड़ती है। इनका स्वभाव बहुत ही सरस और दयापूर्ण था। कहा जाता है कि जीवन भर में इन्होंने कभी किसी पर क्रोध नहीं किया। वर्ष में एक बार किसी नियत दिन पर ये अपने घर की सारी सम्पत्ति दान कर दिया करते थे। इनको संसार का बड़ा गहरा अनुभव था। सं० १६८२ में ये परलोक सिधारे।

जो मुगल साम्राज्य का उच्च पदाधिकारी, सहृद, विद्वान, सुकवि रसिक, दयालु दानवीर और भक्त था, उसके जीवन की घटनाये भी बडी मनोहर और अद्भुत होगी, इसमे सन्देह ही क्या है ? रहीम के विषय में बहुत सी किम्वदन्तिया लोगो मे प्रचलित है। उनमे से कितनी सच और कितनी झूठी है, इसका निर्णय करना इतिहास के अभाव मे बहुत कठिन है। अतएव सत्य असत्य का निर्णय समालोचकोपर छोडकर पाठको के मनोरजन के लिए कुछ किम्वदन्तियो का उल्लेख यहा किया जाता है।

(१)

अकबर के दरबार मे गंग बडे प्रतिभाशाली कवि थे। रहीम उनको बहुत चाहते थे। एक दिन गग ने रहीम की प्रशसा मे यह छप्पय सुनाया—

चकित भवर रहि गयो गमन नहिं करत कमल बन।
अहि फन मनि नहिं लेत तेज नहिं बहत पवन घन॥
हस मानसर तज्यो चक्क चक्की न मिलै अति।
बहु सुन्दर पद्मिनी पुरुष न चहै न करै रति॥
खलभलित सेस कवि गग भनि अमित तेज रवि रथ खस्यो।
खानानखान बैरस-सुवन जि दिन क्रोध करि तग कस्यो॥

कहते है कि इस छप्पय से रहीम इतने प्रसन्न हुए कि उसी समय इन्होने ३६ लाख की एक हुण्डी, जो खजाने मे जमा होने के लिए आई थी, उठाकर गग को दे दी। यदि घटना सच हो तो, सचमुच रहीम बडे ही निस्पृह और दानवीर थे।

(२)

गोसाईं तुलसीदासजी से भी रहीम का परिचय था। एक दिन एक याचक ब्राह्मण को तुलसीदासजी ने इनके पास भेजा। उसको अपनी कन्या के विवाह के लिए कुछ धन की आवश्यकता थी। तुलसीदासजी ने यह आधा दोहा भी लिखकर उस ब्राह्मण के हाथ भेजा था—

"सुरतिय, नरतिय, नागतिय, यह चाहत सब कोय।"

रहीम ने इस दोहे को इस तरह पूरा करके उस ब्राह्मण को बहुत सा धन देकर तुलसीदासजी के पास भेज दिया—

"गोद लिए हुलसी[1] फिरै, तुलसी से सुत होय॥"

(३)

रहीम रहा राणा प्रतापसिंह की देशभक्ति और उनके स्वाभिमान की बड़ी प्रशंसा किया करते थे। एक बार इनके घर की बेगमे राजपूतों के हाथ पड़ गईं। राणाजी ने बडे ही आदर के साथ उनको रहीम के पास भेज दिया। तब से राणाजी पर रहीम की बड़ी श्रद्धा रहने लगी। इसका बदला चुकाने के लिए इन्होने एक बार अकबर को मेवाड़ पर एक बड़ी चढ़ाई करने से रोका भी था। राणाजी के विषय में इन्होंने राजपूतानी बोली मे बहुत से दोहे बनाये थे, उनमे से एक यह है—

भ्रम रहसी, रहसी धरा, खिस जासे खुरसाण।
अमर बिसम्भर ऊपरै, रखिओ नहचौ राण॥

(४)

एक बार रहीम का एक नौकर छुट्टी लेकर घर गया। घर मे उसकी नववधु का पहले पहल आगमन हुआ था। दम्पत्ति के नवीन प्रेम में छुट्टी के सारे दिन बात की बात मे चले गये। स्त्री ने पति को घर में कुछ दिन और रहने के लिए बहुत आग्रह किया। किन्तु नौकरी छूट जाने के भय से पुरुष ने छुट्टी पूरी होने के बाद घर पर ठहरने का साहस नही किया। तब स्त्री ने एक बरवै लिखकर और लिफाफे मे बन्द करके पुरुष को दिया और कहा कि इसे अपने मालिक को दे देना। पुरुष ने ऐसा ही किया। रहीम ने लिफाफा खोला तो उसमे केवल यह लिखा था—

प्रेम प्रीति कौ बिरवा, चल्यौ लगाय।
सींचन की सुधि लीज्यो, मुरझि न जाय॥

[1] हुलसी तुलसीदासजी की माता का नाम था, और हुलसी का दूसरा अर्थ 'हर्ष से फूली हुई' भी होता है।

रीहम ने सारा रहस्य समझ लिया। इन्होंने नौकर को बुलाकर घर रहने के लिए एक लम्बी छुट्टी दी और उसकी स्त्री के लिए बहुत से गहने और कपडे भेजे।

यह छन्द इतना पसन्द आया कि इन्होंने इसी छंद मे बरवै नायिका भेद लिख डाला। यह नायिका भेद शृंगार रस की एक बहुमूल्य सम्पत्ति है। घटना और उसका परिणाम दोनों ही बहुत सरस है।

(५)

अकबर के मरने पर जहागीर ने रहीम को राजद्रोह के अभियोग मे कैद कर दिया। कैद मे इन्हे बडे बडे कष्ट झेलने पडे। जेल से किसी तरह छुटकारा मिला, तब इन्हें आर्थिक कष्ट ने आ घेरा। क्योंकि जहांगीर ने इनका सम्पत्ति पहले ही जब्त कर ली थी। ये दुखी होकर चित्रकूट चले आये। इस हालत मे भी याचक लोग इन्हे घेरे रहते थे। दानशक्ति की क्षीणता से इनको बडा मानसिक कष्ट होता था। इन्होने याचको को साफ साफ कह दिया कि—

ये रहीम दर दर फिरै, मागि मधुकरी खाहि।
यारो यारी छोड दो, वे रहीम अब नाहिं॥

किन्तु याचक कब मानने लगे। एक दिन एक याचक ने इन्हे बहुत विवश किया और इन्ही का यह दोहा उसने पढ सुनाया—

रहिमन दानि दरिद्र तर, तऊ जाचिबे जोग।
ज्यो सरितन सूखा परे, कुआं खनावत लाग॥

इससे विवश होकर इन्होंने रीवा-नरेश के पास यह दोहा लिख भेजा—

चित्रकूट मे रमि रहे, रहिमन अवध नरेश।
जापर बिपदा परति है, सो आवत यहि देस॥

इस दोहे पर मुग्ध होकर रीवा-नरेश ने एक लाख रुपया रहीम के पास भेज दिया। रहीम ने सब रुपया उस याचक को दे दिया।

(६)

दरिद्रावस्था से दुःखी होकर रहीम ने एक भुजवे के यहां भार झोंकने

की नौकरी कर ली। एक दिन ये भार झोंक रहे थे। उसी समय रीवां-नरेश उधर से निकले। उन्होने रहीम को पहचानकर कहा--

जाके सिर अस भार, सो कस झोकत भार अस।

यह सुनकर रहीम ने सिर उठाकर देखा तो रीवा-नरेश खड़े दिखाई पड़े। इन्होने तत्काल यह उत्तर दिया--

रहिमन उतरे पार, भार झोंकि सब भार म।[१]

रहीम की कविता नीति और ज्ञान के तत्व से पूर्ण है। छोटे छोटे दोहो मे इन्होने जो बडे बडे भाव भर दिये है, वे मन को मुग्ध कर लेते है। इनकी कविता का प्रधान गुण सरलता है। इन्होने कही कही ग्रामीण शब्दो का प्रयोग करके भी अपने भाव व्यक्त किये है। हिन्दी ही मे नही, सस्कृत और फारसी आदि भाषाओ मे भी रहीम ने बड़ी सरस कविता की है। इनके रचे हुए निम्नलिखित ग्रन्थो के नाम प्रसिद्ध है--

रहीम सतसई, बरवै नायिका भेद, रास पचाध्यायी, शृगार सोरठ, मदनाष्टक, दीवान फारसी और वाकयात बाबरी का फारसी अनुवाद तथा खेट कौतुक जातकम्।

इनमें "बरवै नायिका भेद" ही समूचा छपा हुआ मिलता है। शेष हिन्दी-ग्रथों का पता ही नही। शृगार सोरठ और मदनाष्टक के नमूने के छन्द मिलते है जो इस पुस्तक मे दे दिये गये है। रहीम सतसई के अभी तक थोडे ही दोहे मिलते है। हा, खेट कौतुक जातकम् पूरा मिलता है। रहीम ने "बरवै नायिका भेद" के प्रारम्भ मे कहा है कि--

कवित कह्यो, दोहा कह्यो, तुल्यो न छप्पै छन्द।
बिरच्यो इहै विचारि कै, यह बरवै रस छन्द।

इससे जान पड़ता है कि रहीम ने कवित्त और छप्पे भी लिखे है। हिन्दी-मन्दिर प्रयाग ने "रहीम" नामक पुस्तक प्रकाशित की है। उसमे

[१] यह घटना मुझे कोइरोपुर (जौनपुर) मे बिन्दा नाम के एक अपढ़ भिक्षुक की जबानी मालूम हुई।

रहीम की सब कविताए, जो अब तक मिलती हैं, सगृहीत है।

रहीम की जितनी कवितायें अब तक मिली है, वे उनको एक प्रतिभाशाली कवि प्रमाणित करने के लिए पर्याप्त है। यहा रहीम की कविता के कुछ नमूने उद्धृत किये जाते हैं—

रहीम सतसई

कहि रहीम इक दीपते, प्रकट सब द्युति होय।
तनु सनेह कैसे दुरौ, दृग दीपक जरु दोय ॥ १ ॥

तरुवर फल नहि खात है, सरवर पियहि न पान।
कहि रहीम परकाज हित, सम्पति सुचहि सुजान ॥ २ ॥

जिहि रहीम चित आपनो, कीन्हो चतुर चकोर।
निशिवासर लागो रहै, कृष्णचन्द्र की ओर ॥ ३ ॥

रीति प्रीति सबसो भली, बैर न हित मित गोत।
रहिमन याही जनम की, बहुरि न सङ्गति होत ॥ ४ ॥

कहि रहीम धन बढि घटे, जात धनिन की बात।
घटे बढे उनको कहा, घास बेचि जे खात ॥ ५ ॥

दुरदिन परे रहीम कहि, भूलत सब पहिचानि।
सोच नही वित हानि को, जो न होय हित हानि ॥ ६ ॥

को रहीम पर द्वार पर, जात न जिय पछितात।
सपति के सब जात है, विपति सबहि लै जात ॥ ७ ॥

जो रहीम होती कहू, प्रभु गति अपने हाथ।
तौ को धौ केहि मानतो, आप बडाई साथ ॥ ८ ॥

जो रहीम मन हाथ है, मनसा कहु किन जाहि।
जल मे ज्यो छाया परी, काया भीजति नाहि ॥ ९ ॥

तेहि प्रमान चलिबो भलो, जो सब दिन ठहराय।
उमड़ि चलै जल पारते, जो रहीम बढि जाय ॥ १० ॥

यो रहीम सुख दुख सहत, बड़े लोग सह शाति।
उवत चन्द्र जिहि भाति सो, अथवत वाही भाति ॥ ११ ॥

माह मास लहि टेसुआ, मीन परे थल और।
त्यो रहीम जग जानिए, छुटे आपनो ठौर ॥ १२ ॥
कहि रहीम संपति सगे, बनत बहुत बहु रीत।
विपति कसौटी जे कसे, तेई सांचे मीत ॥ १३ ॥
तबही लग जीबो भलो, दीयो परै न धीम।
बिन दीबो जीबो जगत, हमहिं न रुचै रहीम ॥ १४ ॥
रहिमन दानि दरिद्र तर, तऊ जाचिबे जोग।
ज्यो सरितन सूखा परे, कुवा खनावत लोग ॥ १५ ॥
रहिमन देखि बड़ेन को, लघु न दीजिये डारि।
जहा काम आवै सुई, कहा करे तरवारि ॥ १६ ॥
बड माया को दोष यह, जो कबहू घटि जाय।
तो रहीम मरिबो भलो, दुख सहि जिये बलाय ॥ १७ ॥
धनि रहीम गति मीन की, जल बिछुरत जिय जाय।
जियत कज तजि अत बसि कहा भौर को भाय ॥ १८ ॥
दादुर मोर किसान मन, लग्यो रहै घन माहिं।
पै रहीम चातक रटनि, सरबर को कोउ नाहिं ॥ १९ ॥
अमरबेलि बिन मूल की, प्रतिपालत है ताहि।
रहिमन ऐसे प्रभुहि तजि, खोजत फिरये काहि ॥ २० ॥
रहमन अति न कीजिये, गहि रहिये निज कानि।
सहिअन अति फूले तऊ, डार पात की हानि ॥ २१ ॥
सरवर के खग एक से, बाढत प्रीत न धीम।
पै मराल को मानसर, एकै ठौर रहीम ॥ २२ ॥
कहु रहीम केतिक रही, केती गई बिहाय।
माया ममता मोह परि, अन्त चले पछिताय ॥ २३ ॥
जो रहीम करिबो हुतो, ब्रज को यही हवाल।
तौ कत मातहि दुख दियो, गिरिवरधर गोपाल ॥ २४ ॥

दीरघ दोहा अर्थ के , आखर थोरे आहिं ।
ज्यो रहीम नट कुण्डली , सिमिट कूदि कढि जाहिं ॥ २५ ॥
जे रहीम विधि बड़ किए , को कहि दूषण काढ़ि ।
चन्द्र दूबरो कूबरो , तऊ नखत तें बाढि ॥ २६ ॥
रहिमन याचकता गहे , बडे छोट ह्वै जात ।
नारायण हू को भयो , बावन आगुर गात ॥ २७ ॥
ए रहीम घर घर फिरैं , मागि मधुकरी खाहिं ।
यारो यारी छोडि दो , अब रहीम वे नाहिं ॥ २८ ॥
हरि रहीम ऐसी करी , ज्यो कमान सर पूर ।
खैंचि आपनी ओर को , डार दियो पुनि दूर ॥ २९ ॥
सतन सपति जानिके , सबको सब कुछ देइ ।
दीनबन्धु बिन दीन की , को रहीम सुधि लेइ ॥ ३० ॥
समय दशा कुल देखि के , लोग करत सनमान ।
रहिमन दीन अनाथ को , तुम बिन को भगवान ॥ ३१ ॥
सर सूखे पछी उडै , और सरन समाहिं ।
दीन मोन बिन पच्छ के , कहु रहीम कहं जाहि ॥ ३२ ॥
धूर धरत नित शीश पर , कहु रहीम किहि काज ।
जिहि रज मुनि पत्नी तरी , सो ढूढत गजराज ॥ ३३ ॥
दीन सबन को लखत है , दीनहिं लखै न कोय ।
जो रहीम दीनहिं लखै , दीनबन्धु सम होय ॥ ३४ ॥
राम न जाते हिरन संग , सीय न रावन साथ ।
जो रहीम भावी कतहु , होति आपने हाथ ॥ ३५ ॥
कहु रहीम कैसे निभै , बेर केरु को सग ।
वे डोलत रस आपनो , उनके फात अग ॥ ३६ ॥
जो रहीम ओछो बढै , तौ तितही इतराय ।
प्यादे से फरजी भयो , टेढ़ो टेढो जाय ॥ ३७ ॥

खीरा को मुह काटिके, मलियत लोन लगाय।
रहिमन करुवे मुखन की, चहिये यही सजाय॥ ३८॥
नैन सलोने अधर मधु, कहु रहीम घटि कौन।
मीठो भावै लौन पर, अरु मीठे पर लौन॥ ३९॥
जो विषया सतन तजी, मूढ ताहि लपटात।
ज्यो नर डारत वमन कर, श्वान स्वाद सो खात॥ ४०॥
जो रहीमन दीपक दशा, तिथि राखत पट ओट।
समै परे ते होति है, वाही पटकी चोट॥ ४१॥
रहिमन राज सराहिये, शशि सम सुखद जो होय।
कहा बापुरो भानु है, तप्यो तरैयन खोय॥ ४२॥
कमला थिर न रहीम कहि, यह जानत सब कोय।
पुरुष पुरातन की बधू, क्यों न चचला होय॥ ४३॥
रहिमन कहत सुपेट सो, क्यो न भयो तू पीठ।
रीते अनरीते करत, भरे बिगारत दीठ॥ ४४॥
जे गरीब सो हित करै, धनि रहीम वे लोग।
कहा सुदामा बापुरो, कृष्ण मिताई योग॥ ४५॥
जो रहीम उत्तम प्रकृति, का करि सकत कुसग।
चन्दन विष व्यापत नही, लपटे रहत भुजग॥ ४६॥
यह न रहीम सराहिये, देन लेन की प्रीत।
प्रानन बाजी राखिये, हारि होय कै जीत॥ ४७॥
आप न काहू काम के, डार पात फल मूर।
औरन को रोकत फिरै, रहिमन कूर बबूर॥ ४८॥
रहिमन सूधी चाल सो, प्यादा होत वजीर।
फरजी मीर न हो सकै, टेढे की तासीर॥ ४९॥
बडे पेट के भरन मे, है रहीम दुख बाढि।
याते हाथी हहरि के, दये दात द्वै काढि॥ ५०॥

यो रहीम सुख होत है, बढत देखि निज गोत।
ज्यो बडरी अखिया निरखि, आखिन को सुख होत ॥ ५१ ॥
ओछो काम बडे करै, तौ न बडाई होय।
ज्यों रहीम हनुमन्त को, गिरिधर कहै न कोय ॥ ५२ ॥
जो बड़ेन को लघु कहौ, नहिं रहीम घटि जाहिं।
गिरिधर मुरलीधर कहै, कछु दुख मानत नाहिं ॥ ५३ ॥
शशि सकोच साहस सलिल, मान सनेह रहीम।
बढत बढत बढि जाति है, घटत घटत घटि सीम ॥ ५४ ॥
यह रहीम निज सग ले, जनमत जगत न कोय।
बैर प्रीति अभ्यास यश, होत होत ही होय ॥ ५५ ॥
बडे दीन को दुख सुने, लेन दया उर आनि।
हरि हाथी सो कब हुती, कहु रहीम पहिचानि ॥ ५६ ॥
रहिमन राम न उर धरै, रहत विषय लपिटाय।
पशु खर खात सवाद सो, गुर गुलियाये खाय ॥ ५७ ॥
दुरदिन परे रहीम कहि, दुरथल जैयत भागि।
ठाढे हूजत घूर पर, जब घर लागत आगि ॥ ५८ ॥
प्रीतम छवि नैनन बसी, पर छबि कहा समाय।
भरा सराय रहीम लखि, आप पथिक फिरि जाय ॥ ५९ ॥
गुरुता फबे रहीम कहि, फबि आई है जाहि।
डर पर कुच नीके लगै, अन्त बतौरी आहि ॥ ६० ॥
कुटिलन सग रहीम कहि, साधू बचते नाहिं।
ज्यो नैना सैननि करै, उरज उमेठे जाहिं ॥ ६१ ॥
कौन बडाई जलधि मिलि, गग नाम भौ धीम।
केहि की प्रभुता नहिं घटी, पर घर गये रहीम ॥ ६२ ॥
मानसरावर ही मिलै, हसनि मुक्ता भोग।
सफरिन भरे रहीम सर, बक बालकनहिं योग ॥ ६३ ॥

रहिमन बिगरी आदि की, बनै न खरचे दाम।
हरि बाढे आकाश लौं, तऊ बावनै नाम॥ ६४॥
रहिमन रिससहि तजत नहि, बड़े प्रीति को पौरि।
मूंकन मारत आवई, नीद बिचारी दौरि॥ ६५॥
मनसिज माली की उपज, कही रहीम न जाय।
फूल श्याम के उर लगे, फल श्यामा उर आय॥ ६६॥
जेहि रहीम तन मन दियो, कियो हिए बिच भौन।
तासो दुख सुख कहन की, रही बात अब कौन॥ ६७॥
जो पुरुषारथ ते कहू, सम्पति मिलति रहीम।
पेट लागि वैराट घर, तपत रसोई भीम॥ ६८॥
सब कोऊ सब सो करै, राम जुहार सलाम।
हित रहीम तब जानिये, जा दिन अटकै काम॥ ६९॥
ज्यो रहीम गति दीप की, कुल कपूत गति सोय।
बारे उजियारो लगै, बढ़े अंधेरो होय॥ ७०॥
छोटेन सो सोहै बड़े, कहि रहीम यहि लेख।
सहसन को हय बांधियत, लै दमरी की मेख॥ ७१॥
सम्पति भरम गंवाइ के, हाथ रहत कछु नाहिं।
ज्यों रहीम शशि रहत है, दिवस अकासहि मांहि॥ ७२॥
अनुचित उचित रहीम लघु, करहिं बड़ेन को जोर।
ज्यो शशि के संयोग ते, पचवत आगि चकोर॥ ७३॥
काम कछू आवै नही, मोल न कोऊ लेइ।
बाजू टूटे बाज को, साहब चारा देइ॥ ७४॥
धनि रहीम जल पंक को, लघु जिय पियत अघाय।
उदधि बड़ाई कौन है, जगत पियासो जाय॥ ७५॥
मागे घटत रहीम पद, कितो करो बढि काम।
तीन पैग वसुधा करी, तऊ बावनै नाम॥ ७६॥

नाद रीझि तन देत मृग , नर धन हेत समेत ।
ते रहीम पशु ते अधिक , रीझेऊ कछू न देत ।। ७७ ।।
रहिमन कबहुं बड़ेन के , नाहिं गर्व को लेश ।
भार धरें ससार को , तऊ कहावत शेष ।। ७८ ।।
रहिमन नीचन सग बसि , लगत कलक न काहि ।
दूध कलारिन हाथ लखि , मद समुझहिं सब ताहि ।। ७९ ।।
रहिमन अब वे बिरछ कह , जिनकी छाह गभीर ।
बागन बिच बिच देखियत , सेहुड कज करीर ।। ८० ।।
मुकता करै कपूर करि , चातक जीवन जोय ।
येतो बड़ो रहीम जल , ब्याल वदन विष होय ।। ८१ ।।
शशि की शीतल चादनी , सुन्दर सर्बाहि सुहाय ।
लगे चोर चित मे लटी , घटि रहीम मन आय ।। ८२ ।।
अमृत ऐसे वचन मे , रहिमन रिस की गास ।
जैसे मिसिरिहु मे मिली , निरस बाँस की फास ।। ८३ ।।
रहिमन मर्नाहि लगाय के , देखि लेहु किन कोय ।
नर को बस करिबो कहा , नारायन बस होय ।। ८४ ।।
रहिमन असुवा नयन डरि , जिय दुख प्रगट करेइ ।
जाहि निकारो गेह ते , कस न भेद कहि देइ ।। ८५ ।।
गुन ते लेत रहीम जन , सलिल कूप ते काढि ।
कूपहु तें कहुं होत है , मन काहू को बाढि ।। ८६ ।।
रहिमन मन महाराज के , दृग सो नही दिवान ।
जाहि देखि रीझे नयन , मन तेहि हाथ बिकान ।। ८७ ।।
बिरह रूप घन तम भयो , अवधि आस उदोत ।
ज्यो रहीम भादो निशा , चमकि जात खद्योत ।। ८८ ।।
रहिमन लाख भली करौ , अगुनी अगुन न जाय ।
रार्ग सुनत पय पियत हू , साप सहज धरि खाय ।। ८९ ।।

जैसी परै सो सहि रहै, कहि रहीम यह देह।
धरती ही पर परत सब, शीत घाम औ मेह ॥ ९० ॥

शीत हरत तम हरन नित, भुवन भरत नहि चूक।
रहिमन तेहि रविको कहा, जो घटि लखै उलूक ॥ ९१ ॥

नहि रहीम कुछ रूप गुण, नहि मृगया अनुराग।
देशी श्वान जो राखिये, भ्रमत भूखही लाग ॥ ९२ ॥

कागज को सो पूतरा, सहजहि मे घुल जाय।
रहिमन यह अचरज लखो, सोऊ खैंचत वाय ॥ ९३ ॥

विगरी बात बनै नही, लाख करौ किन कोय।
रहिमन बिगरे दूव को, मथै न माखन होय ॥ ९४ ॥

मथत मथत माखन रहै, दही मही विलगाय।
रहिमन सोई मीत है, भीर परे ठहराय ॥ ९५ ॥

होय न जाकी छाह ढिग, फल रहीम अति दूर।
वाढेहु सो बिन काज ही, जैसे तार खजूर ॥ ९६ ॥

यों रहीम गति बडेन की, ज्यो तुरग व्यवहार।
दाग दिवावत आपु तन, सही होत असवार ॥ ९७ ॥

रहिमन निज मनकी व्यथा, मनही राखौ गोय।
सुनि अठिलैहै लोग सब, वाटि न लैहै कोय ॥ ९८ ॥

रहिमन चुप ह्वै वैठिये, देखि दिनन को फेर।
जब नीके दिन आइ है, वतन न लगि है देर ॥ ९९ ॥

गहि सरनागति राम की, भवसागर की नाव।
रहिमन जगत उधार कर, और न कछु उपाव ॥१००॥

रहिमन वे नर मर चुके, जे कहु मागन जाहि।
उनसे पहिले वे मुए, जिन मुख निकसत नाहि ॥१०१॥

जाल परे जल जात बहि, तजि मीनन को मोह।
रहिमन मछरी नीर को, तऊ न छाडत छोह ॥१०२॥

धन दारा अरु सुतन मे , रहत लगाये चित्त ।
क्यो रहीम खोजत नही , गाढे दिन को मित्त ॥१०३॥

अमी हलाहल मद भरे , श्वेत श्याम रतनार ।
जियत मरत झुकि झुकि परत जिहि चितवत इक बार ॥१०४॥

कमला थिर न रहीम कहि , लखत अधम जे कोइ ।
प्रभु की सो अपनी कहै , क्यो न फजीहत होइ ॥१०५॥

रहिमन पानी राखिये , बिन पानी सब सून ।
पानी गये न ऊबरै , मोती मानुस चून ॥१०६॥

जाय समानी उदधि में , गङ्ग नाम भयो धीम ।
काकी महिमा ना घटी , पर घर गये रहीम ॥१०७॥

मानसरोवर ही मिले , हसन मुक्ता, भोग ।
सफरी भरे रहीम ए , विपुल बिलोकन योग ॥१०८॥

बढत रहीम धनाढ्य धन , धनै धनी को जाइ ।
घटे बढै तिन को कहा , भीख मागि जो खाइ ॥१०९॥

रहिमन रहिला की भली , जो परसै चित लाय ।
परसत मन मैला करे , सो मैदा जरि जाय ॥११०॥

खैर खून खासी खुशी , बैर प्रीति मधु पान ।
रहिमन दाबे ना दबे , जानत सकल जहान ॥१११॥

गगन चढै फिर क्यों तिरै , रहिमन बहरी बाज ।
फेरि आय बन्धन परै , पेट अधम के काज ॥११२॥

काल परे कछु और है , काज सरे कछु और ।
रहिमन भांवर के भये , नदी सेरावत मौर ॥११३॥

रहिमन चाक कुम्हार को , मागे दिया न देइ ।
छेद में डडा डारि के , चहै नांद लइ लेइ ॥११४॥

अब रहीम मुसकिल परी , गाढे दोऊ काम ।
साचे से तो जग नही , झूठे मिलै न राम ॥११५॥

रहिमन कोऊ का करै, ज्वारी चोर लवार।
जो पति राखनहार है, माखन चाखनहार ॥११६॥
रहिमन बिपदा तू भली, जो थोरे दिन होय।
हित अनहित या जगत मे, जानि परत सब कोय ॥११७॥
साधु सराहै साधुता, यती जोखिता जान।
रहिमन साचे सूर को, वैरी करै बखान ॥११८॥
करत निपुनई गुन बिना, रहिमन निपुन हजूर।
मानो टेरत बिटप चढि, मोहि समान को कूर ॥११९॥
यों रहीम सुख होत है, उपकारी के अंग।
बाटनवारे के लगै, ज्यो मेहदी को रंग ॥१२०॥
भूप गनत लघु गुनिन को, गुनी गनत लघु भूप।
रहिमन गिरि ते भूमि लौं, लखो तो एकै रूप ॥१२१॥
तै रहीम मन आपनो, कीन्हो चारु चकोर।
निसि बासर लाग्यो रहै, कृष्णचन्द्र की ओर ॥१२२॥
मागे मुकुरि न को गयो, केहि न त्यागियो साथ।
मागत आगे सुख लह्यो, ते रहीम रघुनाथ ॥१२३॥
छिमा बडेन को चाहिये, छोटेन को उतपात।
का रहीम हरि को घट्यो, जो भृगु मारी लात ॥१२४॥

सोरठा

रहिमन मोहि न सुहाय, अमी पियावत मान बिन।
जो विष देय बुलाय, प्रेम सहित मरिबो भलो ॥१२५॥

बरवै नायिका भेद

लहरत लहर लहरिया, लहर बहार।
मोतिन जरी किनरिया, बिथुरे बार ॥ १ ॥
लागेउ आनि नवेलियहि, मनसिज बान।
उकसन लाग उरोजवा, दृग तिरछान ॥ २ ॥

कवन रोग दुहु छतिया, उपजेउ आय।
दुखि दुखि उठै करेजवा, लगि जनु जाय ॥ ३ ॥
औचक आय जोबनवा, मोहि दुख दीन।
छुटि गो सङ्ग गोइयवा, नहि भल कान ॥ ४ ॥
भोरहिं बोलि कोइलिया, बढवत ताप।
घरि घरि एक घरिअवा, रहु चुपचाप ॥ ५ ॥
बाहर लैके दियवा, बानर जाय।
सासु ननद ढिग पहुचत, देति बुझाय ॥ ६ ॥
होइ कत आय बदरिया, बरखहि पाथ।
जैही घन अमरैया, सुगना साथ ॥ ७ ॥
जैही चुनन कुसुमिआ, खेत बडि दूर।
नौवा केरि छोहरिया, मुहि सग कूर ॥ ८ ॥
जस मद मातल हथिया, हुकमत जाति।
चितवत जाति तरुनिया, मन मुसुकाति ॥ ९ ॥
खीन मलिन विषभैया, औगुन तीन।
मोहि कहत बिघुबदनी, पिय मतिहीन ॥१०॥
ते अब जासि बेइलिया, बरु जरि मूल।
बिन पिय सूल करेजवा, लखि तुव फूल ॥११॥
का तुम जुगल तिरियवा, झगरत आय।
पिय बिन मनहु अटरिया, मुहि न सुहाय ॥१२॥
कासो कही सदेसवा, पिय परदेसु।
लगेहु चहत नहि फूले, तेहि बन टेसु ॥१३॥
पिय आवत अगनैया, उठि कै लीन।
साथे चतुर तिरियया, बैठक दीन ॥१४॥
कठिन नीद भिनुसरवा, आलस पाय।
धन दै मूरख मितवा, रहल लोभाय ॥१५॥

सुभग बिछाह पलगिया , अंग सिगार ।
चितवति चौंकि तरुनिया , दै दृग द्वार ॥१६॥
बन घन फूलहि टेसुआ , बगियन बेलि ।
चले बिदेश पियरवा , फगुआ खेलि ॥१७॥
पीतम इक सुमिरिनिया , मुहि देइ जाहु ।
जेहि जपि तार बिरहवा , करब निबाहु ॥१८॥
लखि अपराध पियरवा , नहि रिस कीन ।
बिहसत चदन चउकिया , बैठक दीन ॥१९॥
करत न हिय अपरधवा , सपनेहु पीय ।
मान करन की बिरियां , रहिगो हीय ॥२०॥
लै कर सुघर खुरुपिया , पिय के साथ ।
छइबे एक छतरिया , बरसत पाथ ॥२१॥
सघन कुज अमरैया , सीतल छाह ।
झगरत आइ कोइलिया , पुनि उडि जांह ॥२२॥
खेलत जानिसि टोलवा , नन्दकिसोर ।
छुइ वृषभानु कुअरिया , होइ गइ चोर ॥२३॥
पातम मिले सपनवां , भो सुखखानि ।
आनि जगायेसि चेरिया , भइ दुखदानि ॥२४॥
पिय मूरति चितसरिया चितवत बाल ।
चितवत अवध सबेरवा , जपि जपि माल ॥२५॥
बिरहिन और बिदेसिया , भो इक ठौर ।
पिय मुख तकत तिरियवा , चन्द चकोर ॥२६॥
सखियन कीन सिगरवा , रचि बहु भांति ।
हेरति नैन अरसिया , मुरि मुसुकाति ॥२७॥
छाकहु बइठ दुअरिया , मीजहु पाय ।
पिय तन पेखि गरमिया , बिजन डुलाय ॥२८॥

टूटि खाट घर टपकत , टटिग्रौ टूटि ।
पिय कै बाह सिर्हनवां , सुख कै लूटि ॥२९॥
ढील ग्रोखि जल ग्रचवनि , तरुनि सुगानि ।
धरि खसकाइ घइलना , मुरि मुसुकानि ॥३०॥
बालम ग्रस मन मिलयउ , जस पय पानि ।
हसिनि भई सवतिया , लइ बिलगानि ॥३१॥
पथिक ग्राइ पनिघटवा , कहत "पियाव" ।
पैया परउ , ननदिया , फेरि कहाव ॥३२॥

श्रृंगार सोरठ

पलटि चली मुसुकाय , दुति रहीम उजियाय ग्रति ।
बाती सी उसकाय , मानो दीनी दीप की ॥१॥
दीपक हिये छिपाय , नवल बधू घर लै चली ।
कर बिहीन पछिताय , कुच लखि निज सीसै धुनै ॥२॥
गई ग्रागि उर लाय , ग्रागि लेन ग्राई जो तिय ।
लागी नही बुझाय , भभकि भभकि बरि बरि उठै ॥३॥

मदनाष्टक

कलित ललित माला , वा जवाहिर जडा था ।
चपल चखन वाला , चांदनी मे खडा था ॥
कटि तट बिच मेला , पीत सेला नवेला ।
ग्रलि बन ग्रलबेला , यार मेरा ग्रकेला ॥

केशवदास

केशवदास सनाढच ब्राह्मण थे । इनके पिता का नाम काशीनाथ इनका जन्म स० १६१२ के लगभग हुग्रा । ग्रोडछा नरेश महाराजा सिंह के भाई इन्द्रजीतसिंह इनका विशेष ग्रादर करते थे । महाराजा बल ने इनको केवल एक छद पर छ लाख रुपये दिये थे । वह छद है—

केशवदास के भाल लिख्यो विधि रंक को अंक वनाय सवारयो।
धोये धुवै नहिं छूटो छुटै वहु तीरथ जाय कै नीर पखारयो॥
ह्वै गयो रंक ते राव तवै जब वीरवली नृपनाथ निहारयो।
भूलि गयो जग की रचना चतुरानन वाय रह्यो मुख चारयो॥

केशवदास ने महाराजा वीरवल के द्वारा इन्द्रजीतसिंह पर एक करोड़ का जुरमाना अकवर से माफ करा दिया था। इनका शरीरांत सं० १६७४ के लगभग हुआ।

ये संस्कृत के वड़े पंडित थे। इनकी कविता वहुत गूढ होती थी। इसी से प्रसिद्ध देव कवि ने इन्हे "कठिन काव्य का प्रेत" कहा है। और इनकी कविता के विषय में यह भी प्रसिद्ध है कि "कवि का दीन न चहै विदाई। पूछै केशव की कविताई।"

इनके रचे हुये आठ ग्रंथ कहे जाते है—रसिक प्रिया, कवि प्रिया, राम चंद्रिका, विज्ञान गीता, वीर सिंहदेव चरित्र, जहांगीर चंद्रिका, नखशिख और रत्न वावनी। उनमें से चार वहुत प्रसिद्ध है—रामचंद्रिका, कविप्रिया, रसिकप्रिया और विज्ञान गीता। लोग कहते है कि रामचन्द्रिका इन्होंने तुलसीदासजी के कहने से लिखी। रामचन्द्रिका महाकाव्य है। कविप्रिया अलंकार-प्रधान ग्रन्थ है। यह प्रवीणराय वेश्या के लिए लिखा गया था। प्रवीणराय काव्यकला में इनकी शिष्या थी। रसिकप्रिया शृंगार-प्रधान ग्रन्थ है। इसमे रसो का वर्णन है। विज्ञान-गीता एक साधारण ग्रंथ है।

केशवदास महाकवि थे, इसमे संदेह नही। इनकी कोई-कोई कविता अन्य कवियो की कविता की तरह सुनते ही समझ में नही आ जाती। उसके लिए कुछ विचार की आवश्यकता पड़ती है। परन्तु जितना ही उसे अधिक विचारिये, उतनी ही मिठास भी वढती जाती है।

केशवदास रसिक भी एक ही थे। वृद्धावस्था में इन्होंने केशों की सफेदी देखकर कहा—

केशव केसनि अस करी, जस अरिहूं न कराहिं।
चन्द्रबदनि मृगलोचनी, बाबा कहि कहि जाहिं॥

इससे प्रकट होता है कि वृद्ध होने पर भी इनका मन वृद्ध नही हुआ था।

इनकी कविता के कुछ नमूने हम यहा उद्धृत करते है—

(१)

विप्र न नेगी कीजिये, मूढ न कीजे मित्त।
प्रभु न कृतघ्नी सेइये, दूषण सहित कवित्त॥

(२)

धीरज मोचन लोचन लोल विलोकि कै लोककी लीकति छूटी।
फूट गये श्रुति ज्ञान के केशव आख अनेक विवेक की फूटी॥
छोडि दई सरिता सब काम मनोरथ के रथ की गति छूटी।
त्यो न करे करतार उबारक जो चितवै वह बारवधूटी॥

(३)

तोरि तनी टकटोरि कपोलनि जोरि रहे कर त्यों न रहौगी।
पान खवाइ सुधाधर पान कै पाइ गहे तस हौं न गहौगी॥
केसव चूक सबै सहिहौ मुख चूमि चले यह तो न सहौंगी।
कै मुख चूमन दे फिरि मोहि कै आपनी धाय सों जाय कहौंगी॥

(४)

भूषण सकल घनसारही के घनश्याम, कुसुम कलित केशरही छबि छाई सी। मोतिन की लरी सिर कंठ कठ माल हार, और रूप ज्योति जात हेरत हेराई सी॥ चंदन चढाये चारु सुन्दर शरीर सब, राखी जनु सुभ्र शोभा बसन बनाई सी। शारदा सी देखियतु देखो जाइ केशोराइ ठाढ़ी वह कुवरि जुन्हाई में अन्हाई सी॥

(५)

मन ऐसो मन मृदु मृदुल मृणालिका के, सूत कैसो सुर ध्वनि मननि हरित है। दारयो कैसो बीज दांत पात से अरुण ओंठ, केशोदास देखि

दृग आनद भरित है ।। येरी मेरी तेरी मोहिं भावत भलाई तातें, बूझति हौं तोहिं और बूझत डरति है । माखन सी जीभ मुख कज सी कोमलता में काठ सी कठेटी बात कैसे निकरति है ।।

(६)

पडित पुत्र, सुधी पतिनी जु पतिव्रत प्रेम परायन भारी ।
जानैं सब गुण, मानैं सबै जग, दान विधान दया उर धारी ।।
केशव रोगनही सो वियोग, सयोग सुभोगन सो सुखकारी ।
साच कहे, जग माह लहे यश, मुक्ति यहै चहु वेद विचारी ।।

(७)

बाहन कुचाली, चोर चाकर, चपल चित, मित्र मति हीन, सूम स्वामी उर आनिये । पर वश भोजन, निवास वास कुकुरन, वरषा प्रवास, केशोदास दुखदानि ये ।। पापिन के अङ्ग संग, अगना अनग वश, अपयश युत सुत, चित हित हानि ये । मूढता वुढाई, व्याधि, दारिद, झुठाई आधि, यहई नरक नरलोकनि वखानिये ।।

(८)

कैटभसो नरकासुरसों पल मे मधुसों मुरसों जिन मारयो ।
लोक चतुर्दश केशव रक्षक पूरण वेद पुरान विचारयो ।।
श्री कमला कुच कुकुम मडित पंडित देव अदेव निहारयो ।
सो कर मागन को बलि पै करतारहु ने करतार पसारयो ।।

(९)

जौ हौं कहौं रहिये तो प्रभुता प्रकट होत चलन कहौं तो हित हानि नाही सहनो । भावै सो करहु, तो उदास भाव प्राणनाथ साथ लै चलहु कैसे लोकलाज बहनो ।। केशोदास की सों तुम सुनहु छबीलेलाल चलेही बनत जो पै नाही राज रहनो । जैसियै सिखाओ सीख तुमही सुजान प्रिय तुमही चलत मोहिं जैसो कछु कहनो ।।

(१०)

धिक मगन बिन गुर्नाहि गुण सु धिक सुनत न रीझिय ।

रीझ सु धिक बिन मौज मौज धिक देत सु खीझिय ।।
दीबो धिक बिन साच साच धिक धर्म न भावै ।
धर्म सु धिक बिन दया दया धिक अरि कह आवै ।।
अरि धिक चित्त न सालई, चित धिक जह न उदार मति ।
मति धिक केशव ज्ञान बिनु, ज्ञान सु धिक बिनु हरिभगति ।।

(११)

पातक हानि पिता सग हारिबो गर्व के शूलनि ते डरिये जू ।
तालनि को बधिबो बधरोर को नाथ के साथ चिता जरिये जू ।।
पत्र फटै ते कटै रिन केसव कैसहु तीरथ मे मरिये जू ।
नीकी लगै ससुरारि की गारि औ डाड़ भलो जो गया भरिये जू ।।

(१२)

पाप की सिद्धि सदा ऋण बृद्धि सुकीरति आपनी आप कही की ।
दु.ख को दान जु सूतक न्हान जु दासी की सतति सतत फीकी ।।
बेटी को भोजन भूषन राड़ को केशव प्रीति दसा पर ती की ।
युद्ध मे लाज दया अरि को अरु ब्राह्मण जाति सो जीति न नीकी ।।

(१३)

सोने की एक लता तुलसी बन क्यो बरनो सुनि बुद्धि सकै छ्वै ।
केशवदास मनोज मनोहर ताहि फले फल श्रीफल से द्वै ।।
फूलि सरोज रह्यो तिन ऊपर रूप निरूपन चित्त चले च्वै ।
तापर एक सुवा शुभ तापर खेलत बालक खजन के द्वै ।।

(१४)

दुरिहै क्यो भूषण बसन दुति यौवन की देह हू की ज्योति होति द्यौस ऐसी राति है । नाहक सुवास लागे ह्वै है कैसी केशव सुभावती की वास भौर भीर फारे खाति है ।। देखि तेरी सूरत की मूरत बिसूरति हू, लालनि के दृग देखिबे को ललचाति है । चालि है क्यो चदमुखी कुचन के भार भये कचन के भार ही लचकि लङ्क जाति है ।।

(१५)

भूत की मिठाई कैसी साधु की भुठाई जैसी स्यार की ढिठाई ऐसी छीण छहू ऋतु है। धीरा कैसो हास केसोदास दासी कैसो सुख सूर की सी सङ्क अङ्क रङ्क कैसो वितु है॥ सूम कैसो दान महामूढ कैसो ज्ञान गौरी गौरा कैसो मान मेरे जान समुदितु है। कौने है सवारी वृषभानु की कुमारी यह तेरी कटि निपट कपट कैसो हितु है।

(१६)

किधौं मुख कमल ये कमला की ज्योति होति किधौं चारु मुखचन्द्र चन्द्रिका चुराई है। किधौ मृग लोचनि मरीचिका मरीचि कैधौ रूप की रुचिर रुचि सुचि सो दुराई है॥ सौरभ की सोभा की दसन घन दामिनी की केसव चतुर चित ही की चतुराई है। एरी गोरी भोरी तेरी थोरी थोरी हासी मेरी मोहन की मोहिनी की गिरा की गुराई है॥

(१७)

बन मे वृषभानु कुमारि मुरारि रमे रुचि सो रस रूप पिये।
कल कूजत पूजत कामकला विपरीति रची रति केलि हिये॥
मणि सोहत श्याम जराई जरी अति चौकी चलै चल चार हिये।
मखतूल के भूल भुलावत केशव भानु मनो शनि अङ्क लिये॥

(१८)

चचल न हूजै नाथ अचल न खैचो हाथ, सोवै नेक सारिकऊ शुक तौ सुवायो जू। मन्द करो दीप द्युति चन्द मुख देखियत, दौर के दुराय आऊ द्वार तौ दिखायो जू॥ मृगज मराल बाल बाहिरै विड़ार देऊ, भायो तुम्है केशव सु मोहू मन भायो जू। छल के निवास ऐसे वचन विलास सुनि, सौगुनी सुरत हू तै श्याम सुख पायो जू॥

(१९)

पाइ परै मनुहार करै पलका पर पाइ धरै भय भीने।
सोइ गई कहि केशव कैसहू कोर करोरहू सौहन कीने॥
साहस कै मुख सो मुख दै छिन मे हरि मान महा सुख लीने।
एक उसासही के उससे सिगरेई सुगन्ध विदा करि दीने॥

(२०)

प्रथम सकल शुचि मञ्चन अमल बास, जावक सुदेश केश पाश को सम्हारिबो। अङ्गराग भूषण विविध मुख वास राग, कज्जल कलित लोल लोचन निहारिबो ॥ बोलनि हसनि मृदु चलनि चितौनि चारु, पल पल प्रति पतिव्रत परिपारिबो। केशौदास सो बिलास करहु कुवँरि राधे, इहि बिधि सोरह शृङ्गारनि शृङ्गारिबो ॥

(२१)

भाव जहा व्यभिचारी वे पै रमै पर नारी, द्विजैगन दडधारी चोरी पर पीर की। मानिनीनही के मन मानियत मान-भग, सिन्धुहि उलाघि जाति कीरति शरीर की ॥ भूलै तो अधोगति न पावत हैं केशौदास, माचही सो हैं वियोग इच्छा गग नीर की ॥ बन्ध्या बासनानि जानु बिधिना सो बाटिनिकी, ऐसी रीति राजनीति राजै रघुबीर की ॥

(२२)

कवि कुल ही के श्रीफलन , उर अभिलाष समाज।
तिथिही को छय होत है , रामचन्द्र के राज ॥

(२३)

लूटिबे के नाते पाप पट्टनै तौ लूटियत, तोरिबे को मोह तरु तोरि डारियतु है। घालिबे के नाते गर्व घालियत देवन के, जारिबे के नाते अघ ओघ जारियतु है। बाधिबे के नाते ताल बाधियत केशौदास, मारिबे के नाते तौ दरिद्र मारियतु है। राजा रामचन्द्रजू के नाम जग जोतियतु, हारिबे के नाते आन जन्म हारियतु है ॥

(२४)

कुटिल कटाक्ष कठोर कुच , एकै दुखं अदेय।
द्विस्वभाव अश्लेष मे , ब्राह्मण जाति अजेय ॥

पृथ्वीराज और चम्पादे

पृथ्वीराज बीकानेर के राजा राजसिंह के भाई थे, और अकबर के दरबार मे रहा करते थे। कहा जाता है कि इन्ही की रानी किरणमयी अत्यन्त सुन्दरी थी, जिसे नवरोज के अवसर पर अकबर ने एक दूती के द्वारा बहकाकर एक कोठरी मे बन्द कर दिया और स्वय कोठरी मे घुस-कर वह बलात्कार किया चाहता था। पर किरणमयी ने उस भारत के शाहशाह को उठाकर पृथ्वी पर दे मारा और कटार निकालकर उसके गले पर रख दी। अकबर ने जब माता कहकर क्षमा मागी तब कही उसके प्राण बचे।

प्रसिद्ध देशभक्त महाराणा प्रतापसिंह जब अकबर से विद्रोह कर के राज्य छोडकर वनो मे घूमते थे; तब एक दिन उनकी कन्या के हाथ से एक जङ्गली बिलाव घास की रोटी, जो वह खा रही थी, छीन कर ले गया। कन्या रोने लगी। इस घटना का राणाजी के हृदय पर ऐसा प्रभाव पडा कि उन्होने अकबर के पास सधि का प्रस्ताव लिख भेजा।

टाड साहब लिखते है—"प्रताप का पत्र पाकर अकबर बहुत ही प्रसन्न हुआ। उसने आज्ञा दी कि राज्यभर मे नाच गान हो और आनन्द मनाया जावे। मारे हर्ष के उसने वह पत्र पृथ्वीराज को दिखलाया। पृथ्वीराज बीकानेर-नरेश राजसिंह के छोटे भाई थे, जो दुर्भाग्य से मुगलों के यहा कैद थे। वे बडे वीर, साहसी और स्वदेश प्रेमी थे। वीर ही नही, बल्कि वे एक अच्छे कवि भी थे। वे अपनी कवित्व-शक्ति से मनुष्य का मन मोह सकते थे और आवश्यकता पड़ने पर तलवार लेकर युद्ध में भी विजय प्राप्त कर सकते थे। लड़क-पन ही से वे प्रतापसिंह की वीरता, उदारता और स्वदेश-भक्ति पर मोहित होकर उन पर बड़ी श्रद्धा रखते थे। उनको विश्वास नही था कि प्रतापसिंह ने अकबर को ऐसा पत्र लिखा होगा। अतएव स्वाभाविक निडरता से उन्होंने अकबर से कहा—"मै प्रताप को भलीभाति जानता

हूँ। यह पत्र उनका नही है। और तो क्या, यदि आप अपना ताज भी दे दे तो भी तेजस्वी प्रताप आपके वश मे नही होगे।" इसके पश्चात् उन्होने अकबर की अनुमति से प्रतापसिह को एक पत्र लिखा। पत्र कविता मे था। उस कविता को अब भी कभी-कभी राजपूत लोग बड़े आनन्द से गाते है।

पत्र की मूल प्रति कही नही मिलती। उसके कुछ दोहे प्रसिद्ध है, उन्हे हम यहा उद्धृत करते है—

धर बाकी दिन पाधरा, मरद न मूकै माण।
घणा नरिन्दा घेरियो, रहै गिरिन्दा राण॥ १॥

जिसकी भूमि अत्यन्त विकट है, और दिन अनुकूल है, जो वीर अभिमान को नही छोडता, वह महाराणा बहुत राजाओ से घिरा हुआ पहाड़ी मे निवास करता है।

पातल राण प्रवाड मल, बाकी घडा बिभाड़।
खूदाडै कुण है खुरा, तो ऊभा मेवाड॥ २॥

हे विकट सेनाओ के विध्वस करनेवाले और युद्ध मे मल्ल महाराणा प्रतापसिह! तेरे खड़े रहते मेवाड को घोडो के खुरो से खुदानेवाला कौन है?

माई एहा पूत जण, जेहा राण प्रताप।
अकबर सूतो ओधकै, जाण सिरा पै साप॥ ३॥

हे माता! तू ऐसा पुत्र उत्पन्न कर, जैसा राणा प्रताप है। जिसको अकबर सिरहाने का साप जानकर सोता हुआ चौक उठता है।

अइरे अकबरियाह, तेज तुहालो तुरकडा।
नमं नम नीसरियाह, राण बिना सह राजवी॥ ४॥

हे अकबर, तेरा तेज देखकर बड़ा आश्चर्य होता है, जिसके सामने महाराणा के सिवा सब राजा लोग झुक गये।

सह गावडियो साथ, एकण बाडै बाडियो।
राण न मानी नाथ, ताडै साड़ प्रतापसी॥ ५॥

हे अकबर ! तूने गाय रूपी सब राजाओं को एक बाड़े मे इकट्ठा कर लिया; परन्तु सांड़ रूपी प्रतापसिंह तेरी नाथ को नही मानकर गरज रहा है ।

पातल पाघ प्रमाण , साझी सागा हर तणी ।
रही सदा लग राण , अकबर सूऊभी अणी ॥ ६ ॥

महाराणा सग्रामसिंह के पोते प्रतापसिंह की पगड़ी ही गिनती में सच्ची है, जो अकबर के सामने अनम्र होकर उच्च रही ।

चोथो चीतोड़ाह , बांटो बाजंती तणो ।
माथै मेवाड़ाह , थारै राण प्रतापसी ॥ ७ ॥

हे चित्तौड़ के स्वामी महाराणा प्रतापसिंह ! हे मेवाड़पति ! पगड़ी तेरे ही सिर पर है ।

अकबर समद अथाह , तिह डूबा हिन्दू तुरक ।
मेवाड़ो तिड़ माह , पोयण फूल प्रतापसी ॥ ८ ॥

अकबर रूपी अथाह समुद्र में हिन्दू तुरुक सब डूब गये; परन्तु मेवाड के स्वामी महाराणा प्रताप उसमें कमल के फूल के समान रहे ।

अकबरिये इक वार , दागल की सारी दुनी ।
अणदागल असवार , चेटक राण प्रतापसा ॥ ९ ॥

अकबर ने एक ही वार मे सारी दुनिया को कलकित कर दिया । परन्तु चेटक घोड़े के असवार राणा प्रताप निष्कलंक रहे ।

अकबर घोर अधार , ऊघाणा हिन्दू अवर ।
जागै जगदातार , पोहरे राण प्रतापसी ॥ १० ॥

अकबर रूपी घोर अधकार में सब हिन्दू सा गये । परन्तु जगत् का दाता राणा प्रताप (धर्म-धन की रक्षा के लिए) पहरे पर खड़ा है ।

हिन्दूपति परताप , पत राखो हिन्दुआणरी ।
सहो विपत सताप , सत्यसपथ करि आपनी ॥ ११ ॥

हे हिन्दूपति प्रताप ! हिन्दुओ की लज्जा रक्खो । अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए सब कष्टो को सहो ।

चम्पा चीतोड़ाह , पोरस तणो प्रतापसी ।
सौरभ अकबर साह , अलियल आभडिया नही ॥ १२ ॥

चित्तौड़ चम्पा है, प्रताप उसकी सुगन्ध है । अकबर रूपी भौरा उसके पास नही फटकता । (चम्पा के फूल पर भौंरा नही बैठता) ।

पातल जो पतसाह , बोलै मुख हूता बयण ।
मिहर पछम दिस माह , ऊगै कासप राववत ॥ १३ ॥

महाराणा प्रतापसिंह यदि बादशाह को अपने मुख से बादशाह कहे, तो कश्यप जी के सतान भगवान सूर्य पश्चिम दिशा मे उगे ।

पटकू मूछा पाण , कै पटकू निज तन करद ।
दीजै लिख दीवाण , इण दो महली बात इक ॥ १४ ॥

हे दीवान ! मै अपनी मूछ पर हाथ फेरू, या अपने शरीर को तलवार से काट डालू, इन दोनो मे से एक बात लिख दीजिए ।

राठौर-वीर पृथ्वीराज की कविता पढकर प्रताप को इतना साहस हुआ कि मानों उन्हें दश हजार राजपूतो की सहायता मिल गई । वे अपनी प्रतिज्ञा[1] पर दृढ हुए । पत्र के उत्तर मे महाराणा प्रताप ने नीचे लिखे दोहे भेजे थे—

तुरुक कहासी मुख पतो , इण तनसू इकलिंग ।
ऊगै जाही ऊगसी , प्राची बीच पतग ॥ १ ॥

भगवान एकलिंग की शपथ है, इस शरीर से अर्थात् प्रताप के मुख से बादशाह तुरुक ही कहलावेगा और सूर्य का उदय जहा से होता है, वही पूर्व ही मे होगा ।

---

[1] प्रतापसिंह की प्रतिज्ञा यह थी कि वे कभी किसी यवन को सिर न झुकावेगे । एक बार एक भाट अकबर के सामने मुजरा करने गया । सामने पहुचकर उसने पगडी उतार ली । उसको नगे सिर देखकर अकबर ने कारण पूछा, तब उसने कहा—यह पगडी महाराणा प्रतापसिंह जी ने अपने हाथ से दी है । मै इसे आपके सामने झुकाना नही चाहता । यह सुनकर अकबर ने प्रतापसिंह की बड़ी प्रशंसा की ।

खुशी हूंत पीथल कमध , पटको मूछा पाण ।
पछटण है जेत पतो , कमला सिर केवाण ।। २ ।।

हे वीर पृथ्वीराज, आप प्रसन्न होकर मूछों पर हाथ फेरिये । जब तक प्रतापसिंह है, तलवार को यवनों के सिर पर ही जानिये ।

साग मूड सहसी सको , सम जस जहर सवाद ।
भड़ पीथल जीतो भला , बैण तुरक सू बाद ।। ३ ।।

राणा प्रताप सिर पर भाला सहेगा, क्योंकि बराबरवाले का यश विष के समान होता है। हे भट पृथ्वीराज, आप तुरुक से बातों के युद्ध में विजय पावें ।

अकबर के साथ विवाद होने का पता जब पृथ्वीराज की रानी को लगा, तब उसने यह दोहा लिखकर पृथ्वीराज के पास भेजा--

पति जिद की पतसाहसू , यहै सुणी मै आज ।
कहा पातल अकबर कहा , करियो बड़ो अकाज ।।

हे प्राणपति ! मैंने आज यह सुना कि आपने महाराणा के सम्बन्ध मे अकवर से विवाद किया है । कहा अकबर और कहा प्रताप ! आपने वड़ा अनर्थ किया ।

इसके उत्तर मे पृथ्वीराज ने यह कवित्त लिख भेजा—

जब ते सुने हैं वैन तब ते न मोको चैन पाती पढ़ि नैक सो बिलब न लगावेगा । लेकै जमदूत से समस्त राजपूत आज आगरे में आठो याम ऊधम मचावेगो ।। कहै पृथिराज प्रिया नैक उर धीर धरो चिरजीवी राना श्री मलेच्छन भगावेगो । मन को मरद मानी प्रबल प्रतापसिंह वब्बर ज्यो तड़प अकव्वर पै आवेगो ।।

अर्थ स्पष्ट है ।

पृथ्वीराज ने महाराणा प्रताप के विषय में और भी बहुत-से पद्य रचे थे, उनमें से एक गीत नीचे दिया जाता है—

गीत

नर तेथ निमाणा निलजी नारी अकवर गाहक बट अवट ।

चौहटै तिण जायर चीतोडो बेचै किम रजपूत बट ॥
रोजायता तणै नवरोजै जेथ मुसाणा जणा जण ।
हिन्दू नाथ दिलीचे हाटे पतो न खरचै क्षत्री पण ॥
परपच लाज दीठ नह ब्यापण खोटो लाभ अलाभ खरो ।
रज बेचबा न आवे राणो हाटे मीर हमीर हरो ॥
पेखे आपतणा पुरुषोत्तम रह अणियाल तणै बल राण ।
खत्र बेचिया अनेक खत्रिया खत्रवट थिर राखी खूमाण ॥
जासी हाट बात रहसी जग अकबर ठग जासी एकार ।
रह राखियो खत्री ध्रम राणै साराले बरतो ससार ॥

जहा पर मानहीन पुरुष और लज्जाहीन स्त्रिया है, और अकबर जैसा ग्राहक है, उस चौपड़ के बाजार मे जाकर चित्तौड का स्वामी राजपूती का भाग कैसे बेचेगा ?

मुसलमानो के नवरोज के समय प्रत्येक व्यक्ति लुट गया । परन्तु हिन्दुओ का पति प्रतापसिह उस दिल्ली के बाजार में अपना क्षत्रियपन क्यों खरचे ?

वशलज्जा से भरी दृष्टि पर अन्य का प्रपच नही व्यापता । इसी से पराधीनता के सुख के लाभ को बुरा और अलाभ को अच्छा समझकर बादशाही दुकान पर रज बेचने के लिए हमीर का पोता राणा प्रतापसिह कदापि नही आता ।

अपने पुरुषाओ का उत्तम कर्तव्य देखते हुये महाराणा ने भाले के बल से क्षत्रिय-धर्म को अचल रक्खा और अन्य क्षत्रियो ने अपने क्षत्रियत्व को विक्रय कर डाला ।

ठग रूपी अकबर भी एक दिन इस ससार से चला जायगा और हाट भी उठ जायगी । परन्तु ससार मे यह बात अमर रह जायगी कि क्षत्रिय-धर्म मे रह कर उस धर्म को केवल राणा प्रताप ही ने रक्खा; अब सब उसे काम मे लाओ ।

पृथ्वीराज बड़े रसज्ञ कवि थे । उनकी पहली रानी लालादे भी

कविता करती थी। ऐसी रसमयी रमणी के साथ कवि पृथ्वीराज का दिन बड़े चैन से कटता था। परन्तु दुर्भाग्य से लालादे का भरी जवानी मे स्वर्गवास होगया। जब उसकी देह चिता पर जल रही थी तब पृथ्वीराज ने कहा—

तो राध्यो नहिं खावस्या, रे! वासदे निसड्ड।
मो देखत तू बालिया, लाल रहंदा हड्ड॥

अर्थात्, ऐ आग! मै तेरा रांधा हुआ कोई पदार्थ नही खाऊंगा। तूने मेरे देखते ही लालादे को जला दिया और उसका हाड़ ही शेष रहा!

उस दिन से वे आग की पकी हुई कोई चीज नही खाते थे। जब वे बहुत दुर्बल होगये, तब लोगों ने समझा बुझाकर उनका विवाह जैसलमेर के राव लहर राज की बेटी चम्पादे से कराया। चम्पादे बड़ी ही सुन्दरी और प्रसन्नमुखी थी। लालादे से भी वह गुण और रूप में बढकर थी। पृथ्वीराज उसको बहुत प्यार करते थे। पति की संगति से चम्पादे ने भी कविता करनी सीख ली थी।

एक दिन पृथ्वीराज बालो मे कघी कर रहे थे। चम्पादे उनके पीछे खडी थी। पृथ्वीराज ने दाढी में से एक सफेद बाल निकालकर फेंक दिया। तब चम्पादे मुह फेरकर हंसने लगी। पृथ्वीराज ने दर्पण मे उसकी परछाईं देख कर पीछे देखा और फिर लज्जित होकर कहा—

पीथल[1] धोला[2] आविया[3], बहुली लागी खोड।
पूरे जोबन पदमणी, ऊभी[4] मूह मरोड॥
पीथल पली[5] टमुक्कियां[6], बहुली लग गई खोड।
स्वामीनी[7] ह्रांसा करे, ताली दे मुख मोड॥
पीथल पली टमुक्कियां, बहुली लागी खोड।
मरवण[8] मत्त गयंद ज्यों, ऊभी मुक्ख मरोड॥

---

१ पृथ्वीराज। २ सफेद। ३ आगये। ४ खड़ी। ५ सफेद बाल। ६ चमक आये। ७ स्वामी की। ८ कामिनी स्त्री।

यह सुनकर चम्पादे ने पृथ्वीराज के मन की ग्लानि मिटाने के लिए कहा—

प्यारी कहे पीथल सुनो , धोलां दिस मत जोय ।
नरां, नाहरां,[1] डिगमिरा[2] , पाकां ही रस होय ।।
खेड़ज[3] पक्कां धोरिया[4] , पंथज गउघां[5] पाव ।
नरां तुरंगां बन फला , पक्का पक्कां साव ।।

इसी प्रकार दोनों, राजा रानी का जीवन बडे आनन्द से बीता । पृथ्वाराज ने डिङ्गल भाषा मे रुक्मणि-मङ्गल काव्य बनाया है ।

उसमान

उसमान गाजीपुर के रहने वाले थे । इनके पिता का नाम शेखहसन था । ये जहांगीर बादशाह के समय में हुए । संवत् १६७० में इन्होने चित्रावली नाम की एक प्रेम-कहानी लिखी, जो दोहा चौपाइयों मे है । सुनते हैं इन्होंने और भी कुछ ग्रन्थ लिखे हैं । इनके जन्म-मरण का ठीक-ठीक पता नही चलता । चित्रावली की कथा बड़ी मनोहर है । उसमें चित्रावली की बाटिका का वर्णन, उसका नखसिख, विरह, षट्ऋतु और बारहमासा आदि देखने योग्य हैं । कुवर ढूढन खड में कवि ने कितने ही देशों और प्रदेशों का वर्णन किया है । सबसे अचम्भे की बात तो यह है कि कवि ने उसमें अंगरेजों का भी वर्णन किया है । ईस्ट इडिया कम्पनी ने सन् १६१२ में सूरत में अपना गुदाम बनाया था, और सन् १६१३ का रचा हुआ यह ग्रन्थ है । गाजीपुर ऐसे छोटे नगर में रहकर अगरेजों के विषय में इतनी जानकारी रखना कवि के लिए साधारण बात नही है । हम यहां का०ना०प्र०सभा द्वारा प्रकाशित चित्रावली से कुवर ढूढनखंड का कुछ अंश उद्धृत करते हैं और उसी पुस्तक से कुछ उत्तम दोहे भी प्रस्तुत करते हैं—

---

१ बैलों । २ दिगम्बर, योगी, यती । ३ खेती । ४ बैलो । ५ ऊंट ।

चौपाई

जिन पच्छू दिस कीन्ह पयाना , पहिलहिं गा सो देस मुलताना ।
देखेसि सिंधी लोग सवाई , महिरावन सब सेवहिं साई ॥
हेरेसि ठठ्ठा नगर सुहावा , विहग हरिन सेवै गंजावा ।
कावुल हेरि मोगल कर देसा , जहा पुहिम पति होइ नरेसा ॥
देखेसि रूम सिकदर केरा , स्याम रहा होइ सकल अंधेरा ।
देखेसि मक्का विधि अस्थाना , हीय अंध ते पाहन जाना ॥
हाजी सग मिलि गयउ मदीना , का भा गये जो साफ न सीना ।
गा वगदाद पीर के तीरा , जेहि निहचै तेहि संग हमीरा ॥
इस्ताम्बोल मिसर पुनि हेरा , गा लदाख लहु कीन्हेसि फेरा ।
दखिन देस को जे पग धारा , चला ताकि सो लक पहारा ॥
पहिलेहि गै हेरिस गुजराता , सुन्दर धनी लोग सुख राता ।
गयो जाम जहं कच्छी होई , लोग सुरूप सुखी सब कोई ॥
वलदीप देखा अगरेजा , जहा जाइ नहिं कठिन करेजा ।
ऊंच नीच धन सपति हेरा , मद बराह भोजन जिन केरा ॥
जहां जाइ उहं वन्दर साजा , लगा सग चढ़ि गयउ जहाजा ।

दोहे

"मान" करहु जो करि सकहु , कथनी अकथ अपार ।
कथे न कर कछु आवइ , करनी करतब सार ॥ १ ॥
कौन भरोसा देह का , छाडहु जतन उपाय ।
कागद की जस पूतरी , पानि परे घुलि जाय ॥ २ ॥
तव लहु सहिये विरह दुख , जब लगि आव सो वार ।
दुःख गये तव सुक्ख है , जानै सव संसार ॥ ३ ॥
सव कहं अमिरित पांच है , वंगाली कहं सात ।
केला, कांजी, पान, रस , साग, माछरी, भात ॥ ४ ॥
छत्री सुनि जो ना करे , तिय अरु गाय जोहारि ।
पुहुमी कुल गारी चढ़ै , सरग होइ मुख कारि ॥ ५ ॥

लोयन जाहि कटाच्छ सर, मारि प्रान हरि लीन्ह।
अधर वचन ततखिन दोऊ, अमिय सींचि जिव दीन्ह ॥ ६ ॥
कहा सो विक्रम सकबधी, कहा सो राजा भोज।
हम हम करत हेराइगे, मिला न खोजे खोज ॥ ७ ॥

मलूकदास

बाबा मलूकदासजी का जन्म लाला सुन्दरदास कक्कड खत्री के घर म, वैसाख बदी ५, स० १६६१ मे, गाव कड़ा, जिला इलाहाबाद में हुआ। इनकी भुजा इतनी लम्बी थी कि घुटने तक आ जाती थी। लड़कपन मे ये गाव-गाव कम्बल बेचा करते थे। साधुओ को और गरीबो को बिना दाम लिये ही कम्बल दे दिया करते थे। कुछ दिनो के बाद ये अपना सारा समय भगवद्भजन मे ही बिताने लगे। इनकी कीर्ति दूर दूर तक फैली और हजारो लोग दर्शन को आने लगे। इनके गुरु का नाम विठ्ठलदास था। वे द्रविड देश के महात्मा थे। बाबा मलूकदास सदा गृहस्थाश्रम मे रहे। इनकी एक कन्या थी। थोडी ही अवस्था मे स्त्री और पुत्री दोनो का देहान्त हो गया।

सवत् १७३९ मे, १०८ वर्ष की अवस्था मे मलूकदासजी ने चोला छोडा। शरीर छोडने से पहले ही इन्होने अपनी मृत्यु का ठीक-ठीक समय अपने चेलो को बतला दिया था।

मलूकदासजी के पन्थ की मुख्य गद्दिया कडा (प्रयाग), जैपुर, गुजरात, मुलतान, पटना, कलापुर, नैपाल और काबुल मे है। जगन्नाथपुरी में भी मलूकदासजी का स्थान है। जहा इनके नाम का टुकडा अब तक मिलता है।

मलूकदासजी की कविता ज्ञान से भरी है। इनके कुछ चुने हुए पद और साखिया यहा उद्धृत की जाती है—

(१)

दर्द दिवाने बावरे, अलमस्त फकीरा।
एक अकीदा लै रहे, ऐसे पन धीरा ॥

प्रेम पियाला पीवते, विसरे सब साथी।
आठ पहर यो झूमते, ज्यो माता हाथी॥
उनकी नजर न आवते, कोइ राजा रंका।
बन्धन तोड़े मोह के, फिरते निहसंका॥
साहब मिल साहब भये, कछु रही न तमाई।
कह मलूक तिस घर गये, जह पवन न जाई॥

(२)

दीनदयाल सुनी जब तें तब ते हिय मे कछु ऐसी बसी है।
तेरो कहाय के जाउ कहा मै तेरे हित की पट खैंच कसी है॥
तेरोइ एक भरोस मलूक को तेरे समान न दूजो जसी है।
एहो मुरारि पुकारि कहौ अब मेरी हसी नहिं तेरी हसी है॥

(३)

भील कब करी थी भलाई जिय आप जान फील कब हुआ था मुरीद कहु किसका? गीध कब ज्ञान की किताब का किनारा छुआ व्याध और बधिक निसाफ कहु तिसका? नाग कब माला लैके बंदगी करी थी बैठ मुझको भी लगा था अजामिल का हिसका। एते बदराहो की बदी करी थी माफ जन मलूक अजाती पर एती करी रिस का?

साखी

जहाँ जहां बच्छा फिरै, तहां तहा फिरै गाय।
कहे मलूक जहँ संतजन, तहां रमैया जाय॥ १॥
अजगर करै न चाकरी, पछी करै न काम।
दास मलूका यो कहै, सब के दाता राम॥ २॥
गर्व भुलाने देह के, रचि रचि बाधे पाग।
सो देही नित देखि के, चोंच संवारे काग॥ ३॥
मलुका सोई बीर है, जो जानै पर पीर।
जो पर पीर न जानई, सो काफिर बेपीर॥ ४॥

माला जपो न कर जपों, जिभ्या कहो न राम।
सुमिरन मेरा हरि करै, मैं पायो विसराम ॥ ५ ॥
जग लगि थो अंधियार घर, मूस थके सब चोर।
जब मन्दिर दीपक बरचो, वही चोर धन मोर ॥ ६ ॥
दया धर्म हिरदै बसै, बोलै अमृत बैन।
तेई ऊचे जानिये, जिनके नीचे नैन ॥ ७ ॥
आदर मान महत्व सत, बालापन को नेह।
ये चारो तब ही गये, जबहिं कहा कछु देह ॥ ८ ॥
प्रभुताही को सब मरै, प्रभु को मरै न कोय।
को कोई प्रभु को मरै, तो प्रभुता दासी होय ॥ ९ ॥

(४)

ना वह रीझै जपतप कीन्हे ना आतम के जारे।
ना वह रीझै धोती नेती ना काया के पखारे ॥

दया करै धरम मन राखै घर में रहै उदासी।
अपना सा दुख सब का जानै ताहि मिलै अविनासी ॥
सहै कुसबद बादहू त्यागै छाडै गर्व गुमाना।
यही रीझ मेरे निरकार की कहत मलूक दिवाना ॥

(५)

गर्व न कीजै बावरे, हरि गर्ब प्रहारी।
गर्ब्बहिं ते रावन गया, पाया दुख भारी ॥
जरन खुदी रघुनाथ के, मन नाहिं सुहाती।
जाके जिय अभिमान है, ताकी तोरत छाती ॥
एक दया और दीनता, ले रहिये भाई।
चरन गहो जाय साधु के, रीझै रघुराई ॥
यही बडा उपदेश है, परद्रोह न करिये।
कहि मलूक हर सुमिरि के, भौसागर तरिये ॥

प्रवीणराय

प्रवीणराय वेश्या थी। यह ओडछा के महाराज इन्द्रजीतसिह के यहां रहती थी। केशवदास जी ने इसी के लिए "कवि-प्रिया" बनाई थी। यह उनकी शिष्या थी। कवि-प्रिया मे इसकी प्रशसा में उन्होने लिखा है—

रतनाकर लालित सदा, परमानंदहि लीन।
अमल कमल कमनीय कर, रमा कि राय प्रवीन॥
राय प्रवीन कि सारदा, सुचि रुचि राजत अग।
बीना पुस्तक धारिनो, राजहस सुत सग॥

यह बडी सुन्दरी थी। वेश्या होने पर भी अपने को पतिव्रता समझती थी। पढी-लिखी थी। कविता भी अच्छी करती थी। इन्द्रजीतसिह ने सगीत का एक अखाडा बनवाया था, जिसमे परम रूपवती, हाव भाव कटाक्ष मे कुशल छ पातरे थी—प्रवीणराय, रंगराय, नवरगराय, तीनतरंग, विचित्र नयना और ललित लोचना। और सब तो गाने-बजाने और नाचने मे प्रवीण थी, किन्तु प्रवीणराय इन गुणो के सिवा काव्य-रचना मे भी बड़ी निपुण थी। इसीसे इन्द्रजीतसिह के हृदय में इसे सर्वोच्चस्थान प्राप्त था। इसके गुणों की प्रशसा सुन कर अकबर बादशाह ने इसे बुला भेजा। तब इसने इन्द्रजीतसिह के पास जाकर यह सवैया कहा—

आई हौ बूझन मन्त्र तुम्हे निज स्वासनसों सिगरी मति गोई।
देह तजौ की तजौं कुलकानि हिये न लजौ लजिहै सब कोई॥
स्वारथ औ परमारथ को पथ चित्त विचारि कहौ तुम सोई।
जामे रहै प्रभु की प्रभुता अरु मोर पतिव्रत भंग न होई॥

इन्द्रजीतसिह ने प्रवीणराय को अकबर के पास नही जाने दिया। इससे रुष्ट होकर अकबर ने इन्द्रजीतसिह पर एक करोड़ का जुरमाना कर दिया और प्रवीणराय को जबरदस्ती बुला भेजा। तब प्रवीणराय अकबर के दरबार मे गई। वहा उसने अकबर से इस प्रकार प्रार्थना की—

बिनती राय प्रबीन की , सुनिये शाह सुजान ।
जूठी पतरी भखत है , बारी बायस स्वान ।।
अग अनग तही कुच सभु सु केहरि लक गयदहिं घेरे ।
भौंह कमान तही मृग लोचन खजन क्यो न चुगै तिल नेरे ।।
है कच राहु तही उदै इन्दु सु कीर के बिम्बन चोचन मेरे ।
कोऊ न काहू सों रोस करै सु डरै डर साह अकब्बर तेरे ।।

प्रवीणराय की प्रवीणता देखकर अकबर बहुत प्रसन्न हुये और उसने उसे इन्द्रजीत ही के पास रहने दिया । केशवदास के उद्योग और महाराजा बीरबल की प्रेरणा से अकबर ने इन्द्रजीतसिह का एक करोड जुरमाना भी माफ कर दिया ।

प्रवीणराय का लिखा कोई ग्रन्थ नही मिलता । कुछ फुटकर छद मिलते हैं । उनमें से कुछ यहा लिखे जाते हैं—

(१)

सीतल समीर ढार, मजन कै घनसार अमल अगौछे आछे मन से सुधारिहौ । दैहौं ना पलक एक लागन पलक पर मिलि अभिराम आछी तपनि उतारिहौं ।। कहत "प्रवीनराय" आपनी न ठौर पाय सुन बाम नैन या बचन प्रतिपारिहौ । जबही मिलेगे मोहिं इन्द्रजीत प्रान प्यारे दाहिनो नयन मूदि तोही सौं निहारिहौं ।।

(२)

ऊचे ह्वै सुर बस किये , सम ह्वै नर बस कीन ।
अब पताल बस करन को , ढरकि पयानो कीन ।।

(३)

कमल कोक श्रीफल मजीर कलधौत कलश हर ।
उच्च मिलन अति कठिन दमक बहु स्वल्प नील धर ।।
सरवर शरवन हेम मेरु कैलाश प्रकाशन ।
निशिवासर तरुवरहिं कास कुन्दन दृढ आसन ।।

इमि कहि प्रवीन जल थल अपक अविध भजित तिय गौरि सग।
कलि खलित उरज उलटे सलिल इदु शीश इमि उरज ढग ॥

कूर कुरकुट कोटि कोठरी निवारि राखौ चुनि दै चिरैयन को मूदि राखों जलियो। सारग मे सारग सुनाइ के "प्रवीन" वीना सारग दै सारग की जोति करो थलियो ॥ वैठि परयक पै निसक ह्वै कै अक भरौं करोगी अधर पान मैन मत्त मिलियो। मोंहि मिले इन्द्रजीत धीरज नरिन्द राय एहो चद आज नेकु मद गति चलियो ॥

मुबारक

सैयद मुवारक अली बिलग्रामी का जन्म स० १६४० में हुआ। ये अरबी, फारसी और सस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। इनकी कविता बडी सरस है। इनका रचा हुआ "अलक शतक" और "तिल शतक" प्रकाशित हो चुका है। और भी इनके बहुत-से स्फुट छन्द मिलते है।

इनकी कविता के कुछ नमूने देखिये .—

कान्ह की वाकी चितौनि चुभी झुकि काल्हि ही झांकी है ग्वालि गवाछनि।
देखी है नोखी सी चोखी सी कोरनि ओछे फिरै उभरै चित जा छनि ॥
मार्‌यो सभार हिये मे "मुबारक" य सहजै कजरारे मृगाछनि।
सीक लै काजर दे री गवारिन आगुरी तेरी कटैगी कटाछनि ॥ १ ॥

पानिप के पुन्ज सुघराई के सदनसुख सोभा के समूह और सावधान मोज के। लाजन के बोहित प्रमोहित प्रमोदन के नेह के नकीब चक्रवर्ती चित चोज के ॥ दया के दिवान पतिव्रता के प्रधान पूरे नैन थे मुबारक विधान नवरोज के। सफरी के सिरताज मृगन के महाराज साहब सरोज के मुसाहब मनोज के ॥ २ ॥

कनक वरन बाल नगन लसत भाल मोतिन के माल उर सोहे भली भांति है। चन्दन चढाई चारु चदमुखी मोहिनी सी प्रात हीं अन्हाइ पगु धारे मुसकाति है ॥ चूनरी विचित्र स्याम सजि कै मुबारक जू ढांकि नख सिख ते निपट सकुचाति है। चन्द्रमै लपेटि कै समेटि के नखत माना दिन को प्रणाम किये रात चली जाति है ॥३॥

अलक वर्णन

अलक मुबारक तिय बदन , लटकि परी यो साफ ।
खुसनवीस मुनसी मदन , लिख्यो काच पर काफ ॥ १ ॥
अलक डोर मुख छबि नदी , बेसरि बसी लाइ ।
दै चारा मुकतानि को , मो चित चली फदाइ ॥ २ ॥
जगी मुबारक तिय बदन , अलक ओप अति होइ ।
मनो चन्द के गोद मे , रही निसा सी सोइ ॥ ३ ॥
लगि दृग अजन ढिग अलक , देत मुबारक मोद ।
जनु सापिन सुत आपनो , भेटति भरि भरि गोद ॥ ४ ॥
चिबुक कूप मे मन परचो , छबि जल तृषा विचारो ।
कढ मुबारक ताहि तिय , अलक डोर सी डारि ॥ ५ ॥

तिल वर्णन

सब जग पेरत तिलन को , थक्यो चित्त यह हेरि ।
तव कपोल को एक तिल , सब जग डारचो पेरि ॥ १ ॥
चिबुक कूप रसरी अलक , तिल सु चरस दृग बैल ।
बारी बैस श्रृगार की , सीचत मनमथ छैल ॥ २ ॥
मन योगी आसन कियो , चिबुक गुफा मे जाय ।
रह्यो समाधि लगाय कै , तिल सिल द्वारे लाय ॥ ३ ॥
चिबुक सरूप समुद्र मे , मन जान्यो तिल नाव ।
तरन गयो बूडचो तहा , रूप कहर दरयाव ॥ ४ ॥
गोरी के मुख एक तिल , सो मोहि खरो सुहाय ।
मानहु पङ्कज की कली , भौर बिलब्यो आय ॥ ५ ॥

रसखान

रसखान दिल्ली के पठान थे । इन्होने अपने को बादशाही खान्दान का लिखा है । कुछ लोग सैयद इब्राहीम पिहानी वाले को ही रसखान समझते हैं । इनका जन्म सं० १६४० और मरण १६८५ के लगभग कहा जाता है ।

युवावस्था मे ये एक बनिये के लडके पर आसक्त थे। रात-दिन उसके साथ फिरा करते थे, यहा तक कि उसका जूठा भी खाते थे। लोग इनकी हंसी उड़ाते थे, परन्तु ये किसी की परवाह न करते थे। एक बार चार वैष्णव आपस मे बात-चीत करते समय कहते थे कि ईश्वर मे ऐसा ध्यान लगाना चाहिए, जैसा रसखान ने बनिये के लड़के मे लगाया है। रसखान ने इसे सुन लिया। ये वैष्णवो से मिले। वैष्णवों ने इनके सामने ही श्रीकृष्ण का गुण-कीर्तन किया। उसी समय से ये श्रीकृष्ण के उपासक हो गये। मुसलमान होने पर भी गोस्वामी विट्ठलनाथजी ने इनको अपना शिष्य कर लिया और इनकी गिनती गोसाईंजी के २५२ मुख्य शिष्यों मे होने लगी। २५२ वैष्णवो की वार्ता में इनका भी चरित्र लिखा है।

ये बडे प्रेमी जीव थे। इश्क का लुत्फ तो इन्होने नौजवानी ही से उठाया था, इससे प्रेम की महिमा ये भलीभाति समझते थे। इन्होंने स० १६७१ मे प्रेमवाटिका नामक दोहो का एक ग्रन्थ बनाया। उसके कुछ दोहे सुनिये—

दम्पति सुख अरु विषय रस, पूजा निष्ठा ध्यान।
इनतें परे बखानिये, शुद्ध प्रेम रसखान॥ १॥
मित्र कलत्र सुबन्धु सुत, इनमे सहज सनेह।
शुद्ध प्रेम इनमे नही, अकथ कथा सविसेह॥ २॥
इक अंगी बिनु कारनहिं, इकरस सदा समान।
गनै प्रियहिं सरबस्व जो, सोई प्रेम प्रमान॥ ३॥
डरै सदा चाहै न कछु, सहै सबै जो होय।
रहै एक रस चाहि कै, प्रेम बखानौ सोय॥ ४॥
अति सूछम कोमल अतिहिं, अति पतरो अति दूर।
प्रेम कठिन सब ते सदा, नित इकरस भरपूर॥ ५॥

अपने विषय मे इन्होने यह लिखा है—

देखि गदर हित साहिबी, दिल्ली नगर मसान।
छिनहिं बादसा बस की, ठसक छोडि रसखान ॥ १ ॥
प्रेमनिकेतन श्री बनहिं, आय गोबर्धन धाम।
लह्यो सरन चित चाहि कै, जुगल सरूप ललाम ॥ २ ॥

इनकी कविता मे प्रेम की प्रधानता है। भक्त और प्रेमी होकर शृंगार रस पर भी इन्होने बडी ललित कविता की है। इनकी दो पुस्तके मिलती है---सुजान रसखान और प्रेमवाटिका। सुजान रसखान मे १२९ छन्द है। प्रेमवाटिका मे ५२ दोहे है। इनके रचे हुये सुजान रसखान में से कुछ चुनकर हम नीचे प्रकाशित करते है—

(१)

मांनस हौं तो वही रसखानि बसौ ब्रज गोकुल गाव के ग्वारन।
जौ पसु हौ तौ कहा बस मेरो चरौ नित नन्द की धेनु मझारन ॥
पाहन हौं तो वही गिरि को जो धरयो कर छत्र पुरन्दर धारन।
जौ खग हौं तो बसेरा करौ मिलि कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन ॥

(२)

या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूपुर को तजि डारौ।
आठहु सिद्धि नवौनिधि को सुख नन्द की गाय चराय बिसारौ ॥
रसखानि कबौ इन आखिन सो ब्रज के बन बाग तडाग निहारौ।
कोटिन हू कलधौत के धाम करीर के कुञ्जन ऊपर वारौ ॥

(३)

आयो हुतो नियरे रसखानि कहा कहू तू न गई वहि ठैया।
या ब्रज में सिगरी बनिता सब वारति प्रानन लेत बलैया ॥
कोऊ न काहू की कानि करै कुछ चेटक सो जुकरयो जदुरैया।
गाइगो तान जमाइगो नेह रिझाइगो प्रान चराइगो गैया ॥

(४)

सोहत है चदवा सिर मौर के जैसियै सुन्दर पाग कसी है।
तैसियै गोरज भाल विराजति जैसी हिये बनमाल लसी है ॥

रसखानि बिलोकत बौरी भई दृग मूदि कै ग्वालि पुकारि हसी है
खोलिरी घूघट खोलौ कहा वह मूरति नैनन माँझ बसी है ॥

(५)

सेस गनेस महेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरन्तर गावै ।
जाहि अनादि अनन्त अखण्ड अछेद अभेद सुवेद बतावै ॥
जाहि हिये लखि आनन्द ह्वै जड़ मूढ़ हिये रसखानि कहावै ।
ताहि अहीर की छोहरिया छछिया भरि छाछ पै नाच नचावै ॥

(६)

तेरी गलीन मे जा दिन ते निकसे मनमोहन गोधन गावत ।
ये व्रज लोग सो कौन सी बात चलाइ कै जो नहि नैन चलावत ॥
वे रसखानि जो रीझि है नेकु तौ रीझि कै क्यों बनवारि रिझावत ।
बावरी जोपै कलक लग्यो तौ निसक ह्वै क्यो नहीं अक लगावत ॥

(७)

दानी भये नये मागत दान हो जानि है कस तौ बन्धन जैहो ।
टूटे छरा बछरादिक गोधन जो धन है सो सबै धन दैहो ॥
रोकत हो बन मे रसखानि चलावत हाथ घनो दुख पैहो ।
जैहो जो भूषण काहू तिया को तो मोल छला के लला न बिकैहो ॥

सेनापति

सेनापति कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे । ये अनूपशहर जिला बुलन्दशहर के रहने वाले थे । इनके पिता का नाम गगाधर पितामह का परशुराम और गुरु का नाम हीरामणि था । इनका जन्मकाल स० १६४६ के आसपास माना जाता है । इनके मृत्युकाल का ठीक ठीक पता नही चलता । सेनापति ने स्वय अपना परिचय इस प्रकार दिया है.—

दीक्षित परशुराम दादो है विदित नाम
जिन कीने यज्ञ जाकी जग मे बड़ाई है ।
गगाधर पिता गगाधर के समान जाके
गगा तीर बसति अनूप जिन पाई है ॥

महाजान मनि विद्या दानहू ते चिन्तामनि
हीरामनि दीक्षित ते पाई पडिताई है।
सेनापति सोई सीतापति के प्रसाद जाकी
सब कवि कान दै सुनत कविताई है ॥

सेनापति ने "काव्य कल्पद्रुम" और "कवित्त-रत्नाकर" नामक दो ग्रन्थ रचे थे। कवित्त-रत्नाकर स० १७०६ मे सम्पूर्ण हुआ। इन्होने अपनी कविता की स्वय अपने मुह से प्रशसा की है। वास्तव मे इनकी कविता बड़ी चमत्कारपूर्ण होती थी। इनका षट्ऋतु-वर्णन तो बड़ा ही अद्भुत हुआ है। हम इनकी कविता के कुछ नमूने नीचे उद्धृत करते है:—

केतो करो कोय पैये करम लिखोय ताते दूसरी न होय उर सोय ठहराइये। आधी ते सरस बीति गई है बरस अब दुज्जन दरस बीच रस न बढ़ाइये। चिन्ता अनुचित धरु धीरज उचित सेनापति ह्वै सुचित रघुपति गुन गाइये। चारि बरदानि तजि पाय कमलेच्छ के पायक मलेच्छन के काहे को कहाइये ॥ १ ॥

महा मोह कन्दिन मैं जगत जकन्दनि मै दिन दुख ददनि मै जात है विहाय कै। सुख को न लेस है कलेस सब भातिन को सेनापति याही ते कहत अकुलाय कै। आवै मन ऐसी घरबार परिवार तजौं डारौ लोक लाज के समाज बिसराय कै। हरिजन पुञ्जनि मै वृन्दावन कुञ्जनि मै रहौ बैठि कहु तरवर तर जाय कै ॥ २ ॥

पान चरनामृत कौ गान गुन गानन को हरि कथा सुने सदा हिये को हुलसिबो। प्रभु के उतीरन की गूदरी औ चीरन की भाल भुज कठ उर छापन को लसिबो ॥ सेनापति चाहत है सकल जनम भरि वृन्दावन सीमा ते न बाहर निकसिबो। राधा मन रजन की सोभा नैन कजन की माल गरे गुञ्जन की कुञ्जन को बसिबो ॥ ३ ॥

धातु सिलदारु निरधारु प्रतिमा को सार सो न करतार है बिचार बीच गहे रे। राखि दीठि अन्तर जहा न कुछ अन्तर है जीभ को निरन्तर जपावत हरे हरे। अञ्जन विमल सेनापति मन रञ्जन दै जपि के निरञ्जन

परम पद लेह रे। करि न सन्देह रे वही है मन देहरे कहा है बीच देहरे कहा है बीच देहरे ॥ ४ ॥

नाही नाही करैं थोरे मागे सब देन कहैं मंगन को देखि पट देत बार बार है। जिनके लखत भली प्रापति की घरी होत सदा सब जन मन भाय निरधार है ॥ भोगी ह्वै रहत बिलसत अवनी के मध्य कन कन जोरे दान पाट परिवार है। सेनापति बचन की रचना विचारि देखो दाता और सूम दोऊ कीन्हे एक सार है ॥ ५ ॥

नूतन जोबन वारी मिली हो जोवन वारी, सेनापति बनवारी मन म बिचारिये। तेरी चितवन ताके चुभी चित वनिता के उचित वनिता के मया के पग धारिये ॥ सुधि न निकेतन की चढी उनके तन की पीर मीन केतन की जाइ कै निवारिये। तो तजि अनवरत वाके और न वरत कीजै लाल नव रत बाल न बिसारिये ॥ ६ ॥

फूलन सो बाल को बनाइ गुही बेनी लाल भाल दीनी बेंदी मृगमद की असित है। अङ्ग अग भूषन बनाइ ब्रजभूषन जू बोरी निज कर तै खवाई अतिहित है ॥ ह्वै कै रस बस जब दीबे को महावर के सेनापति स्याम गह्यो चरन ललित है। चूमि हाथ नाथ के लगाइ रही आंखिन सों कही प्रानपति ! यह अनुचित है ॥ ७ ॥

जो पै प्रानप्यारे परदेस को पधारे ताते विरह ते भई ऐसी ता तिय की गति है। करि कर ऊपर कपोलहि कमल नैनी सेनापति अनमनि बैठियै रहति है ॥ कागहि उडावै कबौं कबौं करै सगुनौती कबौ बैठि अवधि के बासर गिनति है। पढी पढी पाती कबौं फेरि कै पढ़ति कबौं बैठि प्रीतम के चित्र में स्वरूप निरखति है ॥ ८ ॥

जनक नरिन्द नन्दिनी को बदनारविन्द सुन्दर बखानो सेनापति बेद चारि कै ॥ बरनी न जाइ जाकी नेकहू निकाई लोनुराई करि पंकज निसक डारे मारि कै ॥ बार बार जाकी बराबरि को विधाता अब रचि पचि विधु को बनावत सुधारि कै। पूनो का बनाय जब जानत न वैसो भयो कुहू के कपट तब डारन बिगारि कै ॥ ९ ॥

चल्यो हनुमान रामबान के समान जान सीता सोध काज दसकधर नगर को। राम को जुहारि बाहुबल को संभारि करि सब ही के ससै निरवारी डारि डर को ॥ लागी है न वार फांदि परचो पारावार कौन सेनापति कविता बखाने वेगचर को। खोलत पलक जैसे एक ही पलक बीच दृगनि को तारो दौरि मिलै दिनकर को ॥ १० ॥

रावन को वीर सेनापति रघुबीर जू की आयो है सरन छाड़ि ताही मद अध को। मिलत ही ताको राम कोप कै करी है ओप नाम जोय दुर्जन दलन दीनबधु को ॥ देखो दानवीरता निदान एक दान ही में कीन्हे दोऊ दान को बखाने सत्य संध को। लका दसकदर की दीनी है विभीषन को संका विभीषन की सो दीनी दसकध को ॥ ११ ॥

बसंत

लाल लाल टेसू फूलि रहे है विलास सग श्याम रग भई मानो मसि में मिलाये है। तहा मधु काज आइ बैठे मधुकर पुज मलय पवन उपवन वन धाये है ॥ सेनापति माधव महीना में पलास तरु देखि देखि भाव कविता के मन आये है। आधे अग सुलगि सुलगि रहे आधे मानो विरही दहन काम क्वैला परचाये है ॥ १२ ॥

केतक असोक नव चपक बकुल कुल कौन धौ वियोगिन को ऐसो बिकरालु है। सेनापति सावरे की सुरत की सुरति की सुरति कराय करि डारतु बिहालु है ॥ दच्छिन पवन एती ताहू की दवन जऊ सूनो है भवन परदेज प्यारो लालु है। लाल है प्रवाल फूले देखत बिसाल जऊ फूले और सम्ल पै रसाल उर सालु है ॥ १३ ॥

ग्रीष्म

वृष को तरनि तेज सहसौ किरनि कर ज्वालन के जाल विकरालु बरसतु है। तचति धरनि जग जरत धरनि सीरी छाह को पकरि पथी पछी विरमतु है ॥ सेनापति नेक दुपहरी के ढरत होतु धमका विषम यो न पातु खरकतु हैं। मेरे जान पौनो सीरी ठौर को पकरि कोनो घरी एकु बैठि कहू वा मे बितवतु है ॥ १४ ॥

सेनापति तपन लपत उलपति तैसो छायो रतिपति तातें विरह बरतु है। लुवन की लपटै ते चहु ओर लपटै पै ओढे सलिल पटै न चैन उपजतु है॥ गगन गरद धूधि दसौ दिसा रही रूधि मानो नभ भारकी भसम बरसतु है। बरनि बताई छिति व्योम की तताई जेठ आयो आतताई पुटपाक सो करतु है॥ १५॥

पावस

दूरि जदुराई सेनापति सुखदाई देखो आई ऋतु पावस न पाई प्रेम पतिया। धीर जलधर की सुनत धुनि धरकी औ दरकी सुहागिन की छोह भरी छतिया॥ आई सुधि बर की हिये मे आनि खरकी सुमिरि प्रान प्यारी यह प्रीतम की बतिया। बीती औधि आवन की लाल मन भावन की डग भई बावन की सावन की रतिया॥ १६॥

सेनापति उनये नये जलद सावन के चारि हू दिसान घुमरत भरे ताइ के। सोभा सरसाने न बखाने जात कहु भाति आने हैं पहार मानो काजर के ढोइ के॥ घन सो गगन छयो तिमिर सघन भयो देखि न परत गयो मानो रवि खोइ के। चारि मास भरि घोर निसा को भरम करि मेरे जान याही ते रहत हरि सोइ के॥ १७॥

शरद

विविध बरन सुर चाप ते न देखियत मानो मनि भूषन उतारि घरे भेष है। उन्नत पयोधर बरसि रसु गिरि रहे नीके न लगत फीके सोभा के न लेस है॥ सेनापति आये ते सरदरितु फूलि रहे आसपास कास खेत खेत चहु देस है। जीवन हरन कुभजोनि के उदै ते भए वरषा विरिध ताके सेत मानो केस है॥ १८॥

कातिक की राति थोरी थोरी सियराति सेनापति को सुहाति सुखी जीवन के गन है। फूले है कुमुद फूली मालती सघन वन फूलि रहे तारे मानो मोती अनगन हैं॥ उदित विमल चंद चादनी छिटकि रही राम कसो जस अध ऊरध गगन है। तिमिर हरन भयो सेत है बरन सब मानहु जगत छीरसागर मगन है॥ १९॥

हेमंत

सूरे तजि भाजी बात कातिक में जब सुनी हिम की हिमाचल ते चमू उतरति है। आये अगहन कीनो गहन दहन हू को तितहुते चली कहू धीर न धरित है ॥ हिय मे परी है हूल दौरि गहि तजी तूल अब निज मूल सेनापति सुमिरति है। पूस मे तिया के ऊचे कुच कनकाचल मे गढ वै गरम भई सीत सो लरति है ॥ २० ॥

आयो सखी पूसौ भूलि कत सो न रूसौ केलिही सौ मन मूसौ जीव ज्यो सुख लहतु है। दिन की घटाई रजनी की अघटाई सीतताई हू को सेनापति बरनि कहतु है ॥ याही ते निदान प्राप्त वेगि उदै होत नाहिं द्रोपदी के चीर कैसो राति को महतु है। मेरे जान सूरज पताल तपतालै मांझ सीत को सतायो कहलाइ कै रहतु है ॥ २१ ॥

शिशिर

सिसिर में ससि को सरूप पावे सबिताऊ घामहु मे चादनी की दुति दमकति है। सेनापति होति सीतलता है सहस गुनी रजनी की झाई बासर में झमकति है ॥ चाहत चकोर सूर ओर दृग छोर करि चकवा की छाती तजि धीर धसकति है। चद के भरम होत मोद है कुमोदिनी को ससि संक पकजनी फूलि न सकति है ॥ २२ ॥

सिसिर तुषार के बुखार से उखारतु है पूस बीते होत सून हाथ पाइ ठिरिकै। द्योस की छुटाई की बडाई बरनी न जाइ सेनापति गाई कछू सोचि कै सुमिरि कै ॥ सीत ते सहसकर सहस चरन ह्वै के ऐसे जातु भाजि तम आवत है घिरि कै। जौलो कोक कोकी को मिलत तौलो होत राति कोक अधबीच ही ते आवतु है फिरिकै ॥ २३ ॥

सुन्दरदास

सुन्दरदास जातिके "ढूसर" गोती खडेलवाल बनिये थे। इनके पिता का नाम परमानन्द और माता का सती था। इनका जन्म चैत्रसुदी ९ स० १६५३ वि० को द्यौसा (जयपुर राज्य) मे हुआ। जब सुन्दरदास छः

बरस के हुये, तब दादूदयाल द्यौसा मे पधारे थे। उसी समय से दादूदयाल के शिष्य होगये और उनके साथ रहने लगे। सवत् १६६० में दादूदयाल का शरीरान्त होने तक ये नाराणा मे रहे। फिर जगजीवन साधु के साथ अपने माता-पिता के घर द्यौसा मे आ गये। वहा सं० १६६३ तक रहकर फिर जगजीवन के साथ काशी चले आये। काशी मे ये उन्नीस बरस अर्थात् तीस बरस की अवस्था तक संस्कृत, वेदान्त, दर्शन और पुराण आदि पढते रहे। सस्कृत के अतिरिक्त सुन्दरदासजी हिन्दी, फारसी, गुजराती और मारवाड़ी आदि भाषाये भी अच्छी तरह जानते थे।

स० १६८२ मे सुन्दरदासजी काशी लौटे। उस समय इनके साथ और भी साधू थे। उनमे एक फतहपुर (शेखावाटी) का भी था। ये उसी के साथ फतहपुर चले गये। फतहपुर मे इनके गुरुभाई प्रागदास पहले ही से मौजूद थे। अतएव फतहपुर के साधु-भक्त महाजनो की प्रार्थना से ये भी वही ठहर गये। फतहपुर के नवाब अलिफ खा, दौलत खा और ताहिर खा के साथ भी इनका बडा मेल हो गया था। अलिफ खा भी भाषा के कवि थे।

स० १६८८ मे प्रागदास का देहान्त होजाने पर इनका चित्त फतहपुर में बहुत कम लगता था। इससे ये प्रायः देशाटन के लिए चले जाया करते थे।

सुन्दरदासजी डीलडौल में बडे सुन्दर, गोरे रङ्ग के, तेजस्वी और लम्बे थे। आखें बडी सुन्दर और चमकदार थी। बोलते बहुत मधुर थे। स्वभाव ऐसा अच्छा था कि जो इनसे मिलता, बस, वह इनका भक्त ही हो जाता। बालकों से ये बडा प्रेम रखते थे। ये बाल ब्रह्मचारी थे। स्त्री-चर्चा से इनको बड़ी घृणा थी। ये स्वच्छता को बहुत पसंद करते थे। इसीसे देश-देश के मलिन व्यवहार की इन्होंने खूब ही दिल्लगी उडाई है। गुजरात के लिए—"आभड छोत अतीतसो कीजिये, बिलाईरु कूकुर चाटत हाड़ी," मारवाड़ के लिये—"वृच्छन नीर न उत्तम

चीर सुदेशन में गत देश है मारू," दक्षिण के लिए—"रांधत प्याज बिगारत नाज न आवत लाज करें सब भच्छन," पूर्व के लिये—"ब्राह्मण क्षत्रिय बैसरु सूदर चारोहि बर्न के मच्छ बघारत" फतहपुर की स्त्रियो के लिए—"फूहड नार फतेहपुर की" आदि वाक्यों से इनका मनोभाव प्रकट होता है। मालवा और उत्तरा खड इन्हे बहुत प्रिय थे।

सुन्दरदास बाल-कवि थे। इनकी कविता से प्रकट होता है कि ये अच्छे ज्ञानी और काव्य-कला मर्मज्ञ थे। अन्य सतों की वानी की अपेक्षा मुझे इनकी कविता मे अधिक भाव समझ पडा है। इन्होने वेदान्त पर अच्छी कविता की है। इनके रचे छोटे-मोटे ग्रथो की सख्या ४० से अधिक है।

कुछ के नाम ये है---हरिबोल चितावनी, साखी, सवैया, सुन्दर साख्य, तर्कचिन्तामणि, ज्ञान विलास, सुन्दर विलास, सहजानन्द, अद्-भुत उपदेश आदि।

सुन्दरदास ने कार्तिक सुदी ८ वृहस्पतिवार सवत् १७४६को सागानेर (जयपुर के पास) मे शरीर छोड़ा। शरीर छोड़ते समय इन्होने ये दोहे कहे थे :—

मान लिये अत:करण , जे इन्द्रन के भोग।
सुन्दर न्यारो आतमा , लगो देह को रोग॥
वैद्य हमारे राम जी , औषधि हू हरि नाम।
सुन्दर यहै उपाय अब , सुमिरण आठो जाम॥
सुन्दर ससय को नही , बडो महुच्छव एह।
आतम परमातम मिलो , रहो कि बिनसो देह॥
सात बरस सौ में घटै , इतने दिन की देह।
सुन्दर आतम अमर है , देह खेह की खेह॥

सुन्दरदासजी की जहा दाह-क्रिया की गई थी, वहां एक गुमटी बनी है। उसमें सफेद पत्थर पर यह लिखा है—

सवत सत्रह सै छीयाला। कार्तिक सुदी अष्टमी उजाला।
तीजे पहर भरस्पति बार। सुन्दर मिलिया सुन्दर सार॥

फतहपुर के आश्रम मे अब भी सुन्दरदास के कपडे और उनके हाथ की लिखी पुस्तकें आदि चीजे रक्खी है। जब मै फतहपुर मे था, तब एक दिन मेरे सुहृदय मित्र बाबू केशवदासजी नेटविया मुझे सुन्दरदास का आश्रम और इनके वस्त्र आदि दिखाने ले गये थे।

इनके कुछ छन्द नीचे लिखे जाते है—

कौन कुबुद्धि भई घट अन्तर तू अपने प्रभु सूं मन चोरै।
भूलि गयो विषया सुख मे सठ लालच लागि रह्यो अति थोरै॥
ज्यू कोउ कचन छार मिलावत लेकरि पत्थर सू नग फोरै।
सुन्दर या नरदेह अमूलक तीर लगी नवका कित बोरै॥ १॥

गेह तज्यो पुनि नेह तज्यो पुनि खेह लगाइ के देह सवारी।
मेघ सहै सिर सीत सहै तन धूप समै जु पचागिनि बारी॥
भूख सहै रहि रूख तरे पर सुन्दरदास समै दुख भारी।
डासन छाडिके कासन ऊपर आसन मारिपै आस न मारी॥ २॥

काहू सो न रोष तोष काहू सो न राग द्वेष काहू सों न वैर भाव काहू सो न घात है। काहू सो न बकवाद काहू सो नही विषाद काहू सो न सङ्ग न तौ काहू पच्छपात है॥ काहू सों न दुष्ट बैन काहू सो न लेन देन ब्रह्म को विचार कछू और न सुहात है। सुन्दर कहत सोई ईसन को महाईस सोई गुरुदेव जाके दूसरी न बात है॥ ३॥

बोलिये तौ तब जब बोलिबे की सुधि होइ न तौ मुख मौन गहि चुप होइ रहिये। जोरिये तौ तब जब जोरिबे की जानि परै तुक छन्द अरथ अनूप जामे लहिये॥ गाइये तौ तब जब गाइबे को कण्ठ होइ स्रौन के सुनत ही मन जाइ गहिये। तुक भग छन्द भग अरथ मिलै न कछु सुन्दर कहत ऐसी बानी नही कहिये॥ ४॥

पतिही सूं प्रेम होइ पतिही सूं नेम होइ पतिही सूं छेम होइ पति ही सूं रत है। पति ही है जज्ञ जोग पतिही है रस भोग पति ही सू

मिटै सोग पतिही को जत है ।। पतिही है ज्ञान ध्यान पतिही है पुन्य दान पतिही है तीर्थ न्हान पति ही को मत है । पति बिनु पति नाहि पति बिनु गति नाहिं सुन्दर सकल विधि एक पतिव्रत है ।। ५ ।।

ब्रह्म ते पुरुष अरु प्रकृति प्रकट भई प्रकृति तें महत्तत्व पुनि अहकार है । अहकार हूते तीन गुण सत रज तम तमहू ते महाभूत विषय पसार है ।। रजहू ते इन्द्री दस पृथक पृथक भईं सत्तहूं तें मन आदि देवता बिचार है । ऐसे अनुक्रम करि सिष्य सू कहत गुरु सुन्दर सकल यह मिथ्या भ्रम जार है ।। ६ ।।

सुनन नगारे चोट बिकसै कमल मुख अधिक उछाह भूल्यो मायहू न तन मे । फेरे जब साग तब कोई नहिं धीर धरै कायर कपायमान होत देखि मन मे ।। कूदि के पतग जैसे परत पावक माहिं ऐसे टूटि परै बहु सावंत के घन मे । मारि घमसान करि सुन्दर जुहारै स्याम सोई सूर-बीर रोपि रहै जाइ रन मे ।। ७ ।।

पाव रोपि रहै रण माहिं रजपूत कोऊ हय गज गाजत जुरत जहा दल है । बाजत जुझाऊ सहनाई सिन्धु राग पुनि सुनतहि कायर की छूटि जात कल है ।। झलकत बरछी तिरीछी तरवार बहै मार मार करत परत खलभल है । ऐसे जुद्ध मे अडिग्ग सुन्दर सुभट सोई घर माहिं सूरमा कहावत सकल है ।। ८ ।।

आसन बसन बहु भूषण सकल अङ्ग सम्पति विविध भाति भरयो सब घर है । श्रवण नगारो सुनि छिनन मे छाडि जात ऐसे नहिं जानै कछु मेरो वहा मर है ।। तन मे उछाह रण माहिं टूक टूक होइ निर्भय निसक वाके रचहू न डर है । सुन्दर कहत कोऊ देह को ममत्व नाहिं सूरमा को देखियत सीस बिनु धर है ।। ९ ।।

कामिनी की देह अति कहिये सघन बन जहा सु तौ जाय कोऊ भूलि कै परत है । कुन्जर है गति कटि केहरि की भय यामे वेनी कारी नागिन सी फन को धरत है ।। कुच है पहार जहां काम चोर बैठो तहा

साधि कै कटाक्ष बान प्रान को हरत है ॥ सुन्दर कहत एक और अति भय तामे राक्षसी बदन खाव खाव ही करत है ॥ १० ॥

देखहु दुरमति या ससार की ।
हरि सो हीरा छाड़ि हाथ ते, बाधत मोट विकार की ॥
नाना विधि के करम कमावत, खबरि नही सिर भार की ।
झूठे सुख मे भूलि रहे है, फूटी आख गवार की ॥
कोइ खेती कोइ बनजी लागै, कोइ आस हथ्यार की ।
अध धुध मे चहुं दिसि ध्याये, सुधि बिसरी करतार की ॥
नरक जानि कै मारग चाले, सुनि सुनि बात लबार की ।
अपने हाथ गले में बाही, पासी माया जार की ॥
बारम्बार पुकार कहत हौं, सौंहै सिरजनहार की ।
सुन्दरदास बिनस करि जैहै, देह छिनक में छार की ॥११॥
पुरुष प्रकृति संयोग जगत उपजत है ऐसे ।
रवि दर्पण दृष्टान्त अग्नि उपजत है तैसे ॥
सुई होहिं चैतन्य यथा चुम्बक के सगा ।
यथा पवन संयोग उदधि मे उठहिं तरगा ॥
अरु यथा सूर सयोग पुनि चक्षु रूप कौं गहत है ।
यों जड़ चेतन सयोग तें सृष्टि उपजती कहत है ॥१२॥
गज क्रीड़त अपने रङ्गा, वन में मदमत्त अनङ्गा ।
बलवन्त महा अधिकारी, गहि तरवर लेइ उपारी ।
इक मनुष तहा कोउ आवा, तिहि कुन्जर देखन पावा ।
उन ऐसी बुद्धि विचारी, फिर आवा नग्र मझारी ।
तब कह्यो नृपति सौं जाई, इक गज बन माझ रहाई ।
जौ लै आवै गज भाई, दैहौ तब बहुत बधाई ।
तब विदा होइ घर आवा, मन मे कछु फिकिर उपावा ।
तब बुद्धि विधाता दीनी, कागद की हथिनी कीनी ।
तब दूत तहां लै जाही, गज रहत जहा वन माही ।

तहं खन्दक कीना जाई, पतरे तृन दीन छवाई।
तृन ऊपर मृतिका नाखी, तब ऊपर हथिनी राखी।
हथिनी को देख स्वरूपा, सठ धाय परचो अधकूपा।
धाइ परचो गज कूप मे, देखा नहि विचारि।
काम-अंध जानै नही, कालबूत की नारि ॥१३॥

दूभर रैनि बिहाय अकेली सेजरी।
जिनके सग न पीव बिरहिनी सेजरी ॥
बिरहै सकल वाहि विचारी सेजरी।
सुन्दर दुख अपार न पाऊ सेजरी ॥१४॥

तो सही चतुर तू जान परवीन अति
परै जानि पिंजरे मोह कूवा ॥
पाइ उत्तम जनम लाइ लै चपल मन
गाइ गोविन्द गुन जीति जूवा ॥
आपही आपु अज्ञान नलिनी बध्यो
विना प्रभु विमुख कै बेर मूवा।
दास सुन्दर कहै परम पद तौ लहै
राम हरि राम हरि बोल सूवा ॥१५॥

सुन्दर जो गाफिल हुआ, तौ वह साईं दूर।
जो वन्दा हाजिर हुआ, तौ हाजरा हजूर ॥१६॥
रसु सोई अमृत पिवै, रन सोई जिहि ज्ञान।
सुप सोई जो बुद्धि बिन, तीनौं उलटे जान ॥१७॥
लालन मेरा लाड़ला, रूप बहुत तुझ माहि।
सुन्दर राखै नैन मे, पलक उघारै नाहि ॥१८॥
सुन्दर पछी बिरछ पर, लियो बसेरा आनि।
राति रहे दिन उठि गये, त्यों कुटुम्ब सब जानि ॥१९॥
लौन पूतरि उदधि मे, थाह लेन कौ जाइ।
सुन्दर थाह न पाइये, बिचही गई बिलाइ ॥२०॥

बिहारीलाल

कविवर बिहारीलाल ककोर कुल के चौबे ब्राह्मण थे। उनका जन्म अनुमान से स० १६६० में ग्वालियर के निकट बसुआ गोविन्दपुर में हुआ। ऐसा अनमान किया जाता है कि स० १७२० म इनकी मृत्यु हुई।

बिहारीलाल जयपुर के महाराज जयसिंह के यहा रहा करते थे। एक बार जयसिंह अपनी छोटी रानी के प्रेम मे इतने अनुरक्त हो गये कि उन्होंने बाहर निकलना ही बन्द कर दिया। इससे दरबारियो में बड़ी व्याकुलता फैली। तब उनकी प्रेरणा से बिहारीलाल ने यह दोहा लिखकर किसी तरह महाराज के पास भिजवाया—

नहि पराग नहि मधुर मधु, नहि विकास यहि काल।
अली कली ही मे बिध्यो, आगे कवन हवाल॥

दोहे का गूढ अभिप्राय समझकर महाराज बाहर चले आये। उस दिन से दरबार मे बिहारीलाल का सम्मान बढ चला। इनको एक अशरफी प्रति दिन मिला करती थी। जयपुर मे ही इन्होने सतसई बनाई, जो अपने ढग की एक ही पुस्तक है। शृङ्गार रस का ऐसा मनोहर ग्रथ अभी तक हिन्दी-साहित्य मे दूसरा नही है। इसकी लगभग तीस टीकाए हो चुकी हैं। इतने पर भी रसिको की तृप्ति नही हुई है। अब इसकी एक और टीका पडित पद्मसिंह शर्म्मा की लिखी हुई प्रकाशित हो रही है। दो भाग प्रकाशित हो चुके हैं। यह टीका अब तक की सब टीकाओ से उत्तम मानी जाती है। हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन ने इस टीका के लिए टीकाकार पडित पद्मसिंह को १२००) का मगलाप्रसाद पारितोषिक देकर सम्मानित किया है। कहा नही जा सकता कि शर्म्मा जी की इस टीका से रसिको की प्यास बुझेगी या बढ़ेगी। अभी हाल मे लाला भगवान-दीन ने "बिहारी बोधिनी" नाम से सतसई की एक और टीका प्रकाशित की है। अभी अयोध्या जी मे, सुनते हैं बाबू जगन्नाथदास जी रत्नाकर बिहारी सतसई की एक विस्तृत टीका और तैयार कर रहे हैं।

सतसई में कुल ७१९ दोहे हैं। एक-एक दोहे में विहारीलाल ने इतना चमत्कार भर दिया है कि उसमें कवियों की कल्पना-शक्ति की खासी झलक दिखाई पड़ती है। यों तो विहारीलाल के सभी दोहे अशर्फियों के मोल के हैं, परन्तु स्थानाभाव से हम उन सब को प्रकाशित करने में असमर्थ हैं। उनमें से कुछ चुने हुए दोहे नीचे लिखे जाते हैं—

मेरी भव बाधा हरो, राधा नागरि सोय।
जा तनु की झाईं परे, श्याम हरित द्युति होय॥ १॥

मकराकृत गोपाल के, कुंडल सोहत कान।
धस्यो मनो हियघर समर, ड्योढी लसत निसान॥ २॥

अधर धरत हरि के परत, ओठ दीठ पट जोति।
हरित बांस की बांसुरी, इन्द्रधनुष रंग होति॥ ३॥

अपने अंग के जानिके, यौवन नृपति प्रवीन।
स्तन मन नयन नितम्ब को, बडो इजाफा कीन॥ ४॥

विहँसि बुलाय विलोकिउत, प्रौढ तिया रस घूमि।
पुलकि पसीजति पूत को, पिय चूम्यो मुख चूमि॥ ५॥

कंजनयनि मंजन किये, बैठे व्यौरति बार।
कच अंगुरिन विच दीठि दै, चितवति नन्दकुमार॥ ६॥

पहुचति डटि रन सुभट लौं, रोकि सके सब नाहिं।
लाखनहू की भीर में, आंखि वही चलि जाहिं॥ ७॥

छिनकु उघारति छिन छुवति, राखति छिनकु छिपाय।
सब दिन पिय खंडित अधर, दर्पन देखति जाय॥ ८॥

चाह भरी अति रिस भरी, विरह भरी सब बात।
कोरि संदेसे दुहुनि के, चले पौरि लौ जात॥ ९॥

युवति जोन्ह में मिल गई, नेकु न होति लखाइ।
सौंधे के डोरे लगी, अली चली संग जाइ॥ १०॥

तू रहि सखि हौंही लखौं, चढि न अटावलि बाल।
बिनही ऊगे ससि समुझि, देहैं अर्घ अकाल॥ ११॥

नाक चढ़े सीवी करै, जितै छबीली छैल।
फिरि फिरि भूल उहै गहै, पिय ककरीली गैल ॥ १२ ॥
अलि इन लोयन को कछू, उपजी बड़ी बलाय।
नीर भरे नितप्रति रहै, तऊ न प्यास बुझाय ॥ १३ ॥
इन दुखिया अंखियान को, सुख सिरजोई नाहिं।
देखत बनै न देखते, बिन देखे अकुलाहिं ॥ १४ ॥
लरिका लेवे के मिसुनि, लगर मो ढिग आय।
गयो अचानक आंगुरी, छाती छैल छुवाय ॥ १५ ॥
डग कुडगति सी चलि ठठकि, चितई चली निहारि।
लिये जात चित चोरटी, वहै गोरटी नारि ॥ १६ ॥
फेर कछू करि पौरते, फिर चितई मुसक्याय।
आई जामन लेन को, नेहै चली जमाय ॥ १७ ॥
यद्यपि सुन्दर सुघर पुनि, सगुनो दीपक देह।
तऊ प्रकास करै तितौ, भरिये जितो सनेह ॥ १८ ॥
जो चाहत चटक न घटै, मैलो होय न मित्त।
रज राजस न छुवाइये, नेह चीकने चित्त ॥ १९ ॥
अनियारे दीरघ नयनि, किती न तरुनि समान।
वह चितवनि औरे कछू, जिहि बस होत सुजान ॥ २० ॥
वर जीते सर मैन के, ऐसे देखे मै न।
हरिनी के नैनान तें, हरिनी के ये नैन ॥ २१ ॥
बेसर मोती धनि तुही, को पूछै कुल जाति।
पीवो कर तियो अधर को, रस निधरक दिन राति ॥ २२ ॥
तो लखि मो मन जो गही, सो गति कही न जात।
ठोड़ी गाड़ गड़्यो तऊ, उड़्यो रहत दिन रात ॥ २३ ॥
जहां जहां ठाड़्यो लख्यो, स्याम सुभग सिरमौर।
उनहूं बिन छिन गहि रहत, दृगनि अजहुं वहि ठौर ॥ २४ ॥

चिरजीवो जोरी जुरै, क्यों न सनेह गभीर।
को घटि ये वृषभानुजा, वे हलधर के वीर ॥ २५ ॥
सोहत ओढे पीतपट, स्याम सलोने गात।
मनो नीलमन सैल पर, आतप परचो प्रभात ॥ २६ ॥
छुटी न सिसुता की झलक, झलक्यो जोवन अङ्ग।
दीपति देह दुहून मिलि, दिपत ताफता रंग ॥ २७ ॥
दृगन लगत वेधत हियो, विकल करत अँग आन।
ये तेरे सब ते विषम, ईछन तीछन बान ॥ २८ ॥
झूठे जानि न संग्रहे, मन मुँह निकसे बैन।
याही ते मानो किये, बातन को विधि नैन ॥ २९ ॥
जटित नीलमनि जगमगति, सींक सुहाई नाक।
मनो अली चंपक कली, बसि रस लेत निसाक ॥ ३० ॥
वेसरि मोती दुति झलक, परी ओठ पर आय।
चूनो होय न चतुर तिय, क्यो पट पोंछो जाय ॥ ३१ ॥
ललित स्याम लीला ललन, चढी चिबुक छवि दून।
मधु छाक्यो मधुकर परचो, मनो गुलाब प्रसून ॥ ३२ ॥
दुरत न कुच विच कंचुकी, चुपरी सादी सेत।
कवि अंकन के अर्थ लौ, प्रगट दिखाई देत ॥ ३३ ॥
अर्जो तरचो नाही रह्यो, स्रुति सेवत इक अंग।
नाक बास वेसर लह्यो, बसि मुकतन के संग ॥ ३४ ॥
वाहि लखे लोयन लगै, कौन युवति की जोति।
जाके तन की छाह ढिग, जोन्ह छाह सी होति ॥ ३५ ॥
दृग अरुझत टूटत कुटुम, जुरत चतुर चित प्रीति।
परति गांठि दुरजन हिये, दई नई यह रीति ॥ ३६ ॥
क्यो बसिये क्यों निबहिये, नीति नेह पुर नाहिं।
लगा लगी लोयन करै, नाहक मन बंधि जाहिं ॥ ३७ ॥

नैना नेकु न मानही, किती कही समझाय।
तन मन हारे हू हसे, तिन सो कहा बसाय॥ ३८॥
लटकि लटकि लटकत चलत, डटत मुकुट की छाह।
चटक भर्‌यो नट मिलि गयो, अटक भटक बट माह॥ ३९॥
लाज लगाम न मानही, नैना मो बस नाहि।
ये मुहजोर तुरग लौ, ऐंचत हू चलि जाहि॥ ४०॥
सन सूखौ बीत्यो बनी, ऊखौ लई उखारि।
अरी हरी अरहरि अजौ, धर धरहरि हिय नारि॥ ४१॥
कहा कहौ वाकी दसा, हरि प्रानन के ईस।
विरह ज्वाल जरिबो लखे, मरिबो भयो असीस॥ ४२॥
निस अधियारी नीलपट, पहिरि चली पिय गेह।
कहो दुराई क्यो दुरै, दीप सिखा सी देह॥ ४३॥
ल्याई लाल बिलोकिये, जिय को जीवनमूलि।
रही भौन के कोन मे, सोन जुही सी फूलि॥ ४४॥
कोटि जतन कोऊ करौ, तन की तपनि न जाय।
जौ लौ भीजे चीर लौ, रहै न प्यौ लपटाय॥ ४५॥
भौहनि त्रासति मुख नटति, आखिन सो लपटाति।
ऐचि छुड़ावति कर इची, आगे आवति जाति॥ ४६॥
बतरस लालच लाल की, मुरली धरी लुकाय।
सौंह करै भौहन हसै, देन कहै नटि जाय॥ ४७॥
मिलि मिलि चलि चलि मिलि चलत, आगन अथयो भानु।
भयो मुहूरत भोर के, पौरिहि प्रथम मिलानु॥ ४८॥
तनक झूठ निसवादिली, कौन बात पर जाय।
तिये मुख रति आरम्भ की, नहि झूठिये मिठाय॥ ४९॥
छतौ नेह कागद हिये, भई लखाइ न टाक।
विरह तचे उघर्‌यो सु अब, सेहुड़ को सो आक॥ ५०॥

करके मीड़े कुसुम लौं, गई विरह कुम्हिलाय।
सदा समीपिन सखिन हू, नीठि पिछानी जाय ॥ ५१ ॥
औंधाई सीसी सुलखि, विरह बरति बिललात।
बीचहिं सूखि गुलाब गो, छींटौ छुयो न गात ॥ ५२ ॥
तच्यो आंच अति विरह की, रह्यो प्रेमरस भीजि।
नैनन के मग जल वहै, हियो पसीजि पसीजि ॥ ५३ ॥
बिछुरे जिये सकोच यह, बोलत बने न बैन।
दोऊ दौरि लगे हिये, किये निचौ हैं नैन ॥ ५४ ॥
अहे दहेंडी जिनि धरै, जिनि तू लेहि उतारि।
नीके है छीके छुये, ऐसी ही रहि नारि ॥ ५५ ॥
तौ लगि या मन सदन मे, हरि आवैं केहि बाट।
विकट जटे जौ लौं निपट, खुलें न कपट कपाट ॥ ५६ ॥
पत्राही तिथि पाइये, वा घर के चहु पास।
नितप्रति पून्यो ही रहत, आनन ओप उजास ॥ ५७ ॥
पाय महावर देन को, नायन बैठी आय।
फिरि फिरि जानि महावरी, एडी मीडत जाय ॥ ५८ ॥
मानहु विधि तनु अच्छ छवि, स्वच्छ राखिबे काज।
दृग पग पोछन को कियो, भूषन पायनदाज ॥ ५९ ॥
बाल छबीली तियन मे, बैठी आप छिपाय।
अरगटही फानूससो, परगट होत लखाय ॥ ६० ॥
पहिर न भूषन कनक के, कहि आवत यहि हेत।
दर्पन कैसे मोरचे, देह दिखाई देत ॥ ६१ ॥
कागज पर लिखत न बनत, कहत सदेस लजात।
कहिहै सब तेरो हियो, मेरे हिय की बात ॥ ६२ ॥
जब जब वे सुधि कीजिये, तब तब सब सुधि जांहि।
आखिन आख लगी रहै, आखे लागति नांहि ॥ ६३ ॥

सघन कुज छाया सुखद , सीतल मन्द समीर ।
मन ह्वै जात अजौ वही , वा जमुना के तीर ॥ ६४ ॥
इत आवत चलि जात उत , चली छ· सातिक हाथ ।
चढ़ी हिंडोरे सी रहै , लगी उसासनि साथ ॥ ६५ ॥
करी विरह ऐसी तऊ , गैल न छाड़त नीच ।
दीन्हे हू चसमा चखनि , चाहै लखै न मीच ॥ ६६ ॥
नासा मोरि नचाय दृग , करी ककाकी सौंह ।
काटेसी कसकत हिये , गड़ी कटीली भौंह ॥ ६७ ॥
रस सिंगार मञ्जन किये , कजन भजन दैन ।
अजन रजन हू विना , खजन गजन नैन ॥ ६८ ॥
भूषन भार सभारही , क्यो यह तनु सुकुमार ।
सूधो पाय न परत महि , सोभा ही के भार ॥ ६९ ॥
मै वरजी कै वार तू , उत कत लेत करोट ।
पखुरी लगे गुलाब की , परिहै गात खरोट ॥ ७० ॥
गोरी गदकारी परत , हंसत कपोलन गाड़ ।
कैसी लसत गवार यह , सुन किरवा की आड़ ॥ ७१ ॥
भिर घर को नूतन पथिक , चले चकित चित भागि ।
फूल्यो देखि पलास बन , समुहै समुझि दवागि ॥ ७२ ॥
कहलाने एकत रहत , अहि मयूर मृग बाघ ।
जगत तपोवनसो कियो , दीरघ दाघ निदाघ ॥ ७३ ॥
प्यासे दुपहर जेठ के , थके सबै जल सोधि ।
मरुधर पाय मतीरहू , मारू कहत पयोधि ॥ ७४ ॥
बिखम वृखादित की तृखा , जियत मतीरनि सोधि ।
अमित अपार अगाध जल , मारी मूड़ पयोधि ॥ ७५ ॥
पावस घन अधियार में , रहो भेद नहिं आन ।
राति दिवस जान्यो परे , लखि चकई चकवान ॥ ७६ ॥

अरुन सरोरुह कर चरन , दृग खजन मुख चद ।
समय आय सुन्दर शरद , काहि न करत अनद ॥ ७७ ॥
जेती सम्पति कृपन की , तेती तू मति जोर ।
बढत जाय ज्यों ज्यों उरज , त्यों त्यो हियो कठोर ॥ ७८ ॥
कोटि यतन कोऊ करै , परै न प्रकृतिहि बीच ।
नल बल जल ऊंचो चढै , अन्त नीच को नीच ॥ ७९ ॥
तन्त्री नाद कवित्त रस , सरस राग रति रग ।
अनबूडे बूडे तरे , जे बूडे सब अग ॥ ८० ॥
कैसे छोटे नरन ते , सरत बडनि के काम ।
मढो दमामो जात है , कहिं चूहे के चाम ॥ ८१ ॥
अति अगाध अति ऊथरो , नदी कूप सर वाय ।
सो ताको सागर जहा , जाकी प्यास बुझाय ॥ ८२ ॥
जगत जनायो जिहि सकल , सो हरि जान्यो नाहिं ।
ज्यों आखिन सब देखिये , आख न देखी जाहिं ॥ ८३ ॥
मीत न नीति गलीत ह्वै , जो धरिये धन जोरि ।
खाये खरचे जो बचै , तौ जोरिये करोरि ॥ ८४ ॥
दुसह दुराज प्रजान मे , क्यों न करै दुख द्वन्द ।
अधिक अधेरो जग करत , मिलि मावस रवि चन्द ॥ ८५ ॥
घर घर डोलत दीन ह्वै , जन जन याचत जाय ।
दिये लोभ चसमा चखनि , लघु पुनि बडो लखाय ॥ ८६ ॥
बसै बुराई जासु मन , ताही को सन्मान ।
भलो भलो कहि छाडिये , खोटे ग्रह जप दान ॥ ८७ ॥
कहै यहै श्रुति समृतिहू , सबै सयाने लोग ।
तीन दबावत निकट ही , राजा पातक रोग ॥ ८८ ॥
इक भीजे चहले परे , बूडे बहे हजार ।
कितने अवगुन जग करत , नै वै चढती बार ॥ ८९ ॥

बुरो बुराई जो तजै, तौ मन खरो सकात।
ज्यो निकलक मयक लखि, गनै लोग उतपात ॥ ९० ॥
सीतलताऽरु सुगन्ध की, महिमा घटी न मूर।
पीनसवारे जो तज्यो, सोरा जानि कपूर ॥ ९१ ॥
बढत बढत सपति सलिल, मन सरोज बढि जाइ।
घटत घटत पुनि ना घटै, बरु समूल कुम्हिलाइ ॥ ९२ ॥
सगति सुमति न पावई, परे कुमति के धध।
राखो मेलि कपूर में, हीग न होय सुगध ॥ ९३ ॥
सबै हसत करतार दै, नागरता के नाव।
गयो गरव गुन को सबै, बसे गमेले गाव ॥ ९४ ॥
को कहि सकै बड़ेन सो, लखे बड़ीयो भूल।
दीने दई गुलाव की, इन डारन ये फूल ॥ ९५ ॥
चले जाहु ह्या को करै, हाथिन को व्योपार।
नहि जानत यहि पुर बसै, धोबी औड़ कुम्हार ॥ ९६ ॥
नर की अरु नल नीर की, एकै गति करि जोय।
जेतो नीचो ह्वै चलै, तेतो ऊचो होय ॥ ९७ ॥
गिरिते ऊचे रसिक मन, बूडे जहा हजार।
वहै सदा पसु नरन को, प्रेम-पयोधि पगार ॥ ९८ ॥
जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सो बीति बहार।
अब अलि रही गुलाब मे, अपत कटीली डार ॥ ९९ ॥
इहि आशा अटक्यो रहै, अलि गुलाब के मूल।
हुइ है बहुरि वसन्त ऋतु, इन डारन वे फूल ॥१००॥
पट पाखें भख काकरे, सदा परेई सङ्ग।
सुखी परेवा जगत मे, एकै तुही बिहग ॥१०१॥
मरत प्यास पिंजरा परयो, सुआ समय के फेर।
आदर दै दै बोलियतु, वायस बलि की बेर ॥१०२॥

नहिं पावस ऋतुराज यह , तज तरुवर मति भूल ।
अपत भये बिन पाइ है , क्यो नव दल फल फूल ॥१०३॥
वे न यहां नागर बडे , जिन आदर तो आव ।
फूल्यो अनफूल्यो भयो , गवई गाव गुलाब ॥१०४॥
कर ले सूघि सराहि कै , रहै सबै गहि मौन ।
गन्धी गन्ध गुलाब को , गवईं गाहक कौन ॥१०५॥
करि फुलेल को आचमन , मीठो कहत सराहि ।
चुप करि रे गन्धी चतुर , अतर दिखावत काहि ॥१०६॥
कनक कनक ते सौगुनी , मादकता अधिकाय ।
वहि खाये बौराय जग , यहि पाये बौराय ॥१०७॥
बडे न हूजे गुनन बिन , बिरद बडाई पाय ।
कहत धतूरै सो कनक , गहनो गढो न जाय ॥१०८॥
कन देब्यो सौप्यौ ससुर , बहू थुरहथी जानि ।
रूप रहिचढे लखि लग्यो , मागन सब जग आनि ॥१०९॥
गुरुजन दूजे ब्याह को , नित उठि रहत रिसाय ।
पति की पति राखत बधू , आपुन बाझ कहाय ॥११०॥
परतिय दोष पुरान सुनि , हसि मुलकी सुखदानि ।
कसकरि राखी मिश्र हू , मुह आई मुसुकानि ॥१११॥
बहुधन ले अहसान कै , पारो देत सराहि ।
वैदवधू हसि भेद सो , रही नाह मुख चाहि ॥११२॥
या अनुरागी चित्त की , गति समझै नहि कोय ।
ज्यो ज्यो बूडै श्याम रग , त्यो त्यो उज्जल होय ॥११३॥
दीरघ सास न लेइ दुख , मुख साई मति भूल ।
दई दई क्यो करत है , दई दई सु कबूल ॥११४॥
थोरेई गुन रीझते , बिसराई वह बानि ।
तुमहू कान्ह मनो भये , आज काल के दानि ॥११५॥

अरे हंस या नगर मे , जैयो आप विचारि ।
कागन सों जिन प्रीति कर , कोयल दई विड़ारि ॥११६॥
यदपि पुराने बक तऊ , सरवर निकट कुचाल ।
नये भये तो का भये , ये मनहरन मराल ॥११७॥
संगति दोष लगे सबन , कहे जु साचे बैन ।
कुटिल वक भ्रूसंग मे , कुटिल वक गति नैन ॥११८॥
सतसैया के दोहरे , ज्यो नावक के तीर ।
देखत के छोटे लगे , घाव करैं गम्भीर ॥११९॥
ब्रज भाषा बरनी कविन , बहु विधि बुद्धि विलास ।
सब की भूषन सतसई , करी विहारीदास ॥१२०॥
संवत ग्रहससि जलधि छिति , छठ तिथि वासर चन्द ।
चैत मास पख कृष्ण में , पूरन आनन्द कन्द ॥१२१॥
जन्म लियो द्विजराज कुल , प्रगट वसे ब्रज आय ।
मेरो हरो कलेस सब , केसव केसवराय ॥१२२॥
मोहूं दीजै मोष , ज्यो अनेक अधमनि दियो ।
जो बांधे ही तोष , तौ बाधो अपने गुनन ॥१२३॥
मै समुझो निरधार , यह जग काचो काच सो ।
एकै रूप अपार , प्रतिबिंवित लखिये जहां ॥१२४॥
सीस मुकुट कटि काछनी , कर मुरली उर माल ।
यहि बानिक मो मन वसो , सदा बिहारीलाल ॥१२५॥

चिन्तामणि

चिन्तामणि महाकवि भूषण के बड़े भाई थे । इनका जन्मकाल सं० १६६६ के लगभग अनुमान किया जाता है । ठाकुर शिवसिंह ने इनके बनाये पाच ग्रन्थ लिखे हैं—छन्द विचार, काव्य विवेक, कवि कुल कल्पतरु, काव्य प्रकाश और रामायण । ये कुछ दिनो तक नागपुर के सूर्यवंशी भोसला मकरन्दशाह के यहां रहे । राजा महाराजाओ के यहा इनका अच्छा मान था ।

इनकी कविता के कुछ नमूने यहा देखिये—

चोखी चरचा ज्ञान की, आछी मन की जीति।
सगति सज्जन की भली, नीकी हरि की प्रीति ॥ १ ॥

सरद ते जल की ज्यो दिन ते कमल की ज्यो, धन ते ज्यो थल की निपट सरसाई है। घन ते सावन को ज्यो आप ते रतन की ज्यो, गुन त सुजन की ज्यो परम सुहाई है ॥ चिन्तामनि कहै लाछे अच्छरन छन्द की ज्यो, निसागम चन्द की ज्यो दृग सुखदाई है। नगते ज्यो कचन बसन्त तें ज्यो बन की, यो जोवन ते तनकी निकाई अधिकाई है ॥ २ ॥

कोटि बिलास कटाक्ष कलोल बढावें हुलास न प्रीतम हीतर।
यो मनि यामे अनूपम रूप जो मैनका मैन बधू कहि ईतर ॥
सुन्दरि सारी सुफेद ये सोहत यो छवि ऊचे उरोजन की तर।
जोबन मत्त गयन्द के कुम्भ लसै जनु गग तरगनि भीतर ॥३॥

आखिन मूदिबे के मिस आनि अचानक पीठि उरोज लगावै।
केहू कहू मुसुकाइ चितै अगराइ अनूपम अग दिखावै ॥
नाह छुई छल सो छतिया हसि भौह चढाइ आनन्द बढावै।
जोबन के मद मत्त तिया हित सो पति को नित चित्त चुरावै ॥४॥

भूषण

कानपुर जिले मे यमुना नदी के बाए किनारे पर तिकवापुर एक गाव है। उस गाव के पास ही "अकबरपुर बीरबल" नाम का एक अच्छा-सा मौजा है। जहा अकबरशाह के सुप्रसिद्ध मत्री बीरबल का जन्म हुआ था। उसी तिकवापुर गाव में रत्नाकर त्रिपाठी नाम के एक कान्यकुब्ज कश्यप-गोत्री ब्राह्मण रहते थे। उनके चार पुत्र हुए—चिन्तामणि, भूषण, मतिराम, और नीलकठ (उपनाम जटाशङ्कर) चारो भाई कवि थे। उनमें भूषण वीररस के बडे प्रतिभा-शाली कवि हुए। इनके रचे हुए चार ग्रथ सुने जाते है— शिवराज भूषण, भूषण हजारा, भूषण उल्लास, दूषण उल्लास। परन्तु अब केवल शिवराज भूषण और कुछ स्फुट छद ही मिलते

है। हिन्दी-साहित्य सम्मेलन ने भूपण की जितनी कवितायें मिल सकी है, सबको "भूषण-ग्रथावली" के नाम से टीकासहित प्रकाशित किया है।

भूषण वडे प्रतिभाशाली और वीर कवि थे। ये हिन्दुओं के जातीय कवि थे। हिन्दू-जाति की उन्नति और ऐश्वर्य के ये उत्कट अभिलाषी थे। इनके समान अपनी कविता मे जातीयता का ध्यान रखनेवाला हिन्दी के पुराने कवियों मे कोई नही हुआ और इनके समान वीर-कवि तो अब तक कोई न हुआ। यह दन्तकथा प्रसिद्ध है कि भूषण पहले बहुत निकम्मे थे। इनके भाई चिन्तामणि कमाते थे और ये घर वैठे मौज उड़ाया करते थे। एक दिन भोजन करने के समय इन्होने अपनी भावज से नमक मागा। भावज ने ताना मारकर कहा—क्या नमक कमाकर लाये हो, जो उठा करके दू? यह बात इनको ऐसी लगी कि ये उसी समय भोजन छोड़कर घर से निकल गये। चलते समय इन्होने भावज से कहा—अच्छा अब नमक कमाकर लावेगे, तभी भोजन करेगे। कहा जाता है कि इसके पश्चात् साहित्य का ज्ञान प्राप्त करने मे इन्होने बड़ा परिश्रम किया। और जब अच्छी कविता करने लगे तब ये चित्रकूटाधिपति हृदयराम सोलकी के पुत्र रुद्रराम के पास गये। ये प्रतिभावान् थे ही, रुद्रराम ने इनकी कविता का चमत्कार देख इन्हे कवि भूषण की उपाधि दी। इस नाम से ये इतने प्रसिद्ध हुए कि अब इनके मुख्य नामका पता ही नही चलता। वहा से ये औरगजेब के दरबार मे गये, जहा इनके बड़े भाई चिन्तामणि रहते थे। चिन्तामणि ने बादशाह से इनका परिचय कराया। औरङ्गजेब ने इनकी कविता सुनने की इच्छा प्रकट की। इस पर इन्होने कहा—आप हाथ धोकर बैठिये, तब मै कविता सुनाऊगा, क्योंकि शृङ्गार रस की कविता सुनकर आपका हाथ ठौर कुठौर पड़ा होगा, इससे वह अपवित्र होगया है। मेरी कविता सुनकर आप का हाथ मोछो पर चला जायगा। हाथ न धोने से मोछ अपवित्र हो जायगी। औरङ्गजेब ने यह सुनकर क्रोध से कहा—यदि हाथ मोछ पर न गया तो तेरा सिर कटवा लूगा। भूषण ने निर्भयता से कहा—हां। निदान औरङ्गजेब हाथ धोकर बैठा और

भूषण ने कविता पढनी प्रारम्भ की। भूषण की वीररसमयी ओजस्विनी कविता सुनकर औरङ्गजेब को सचमुच जोश आया और वह मोछ पर ताव देने लगा। बस, भूषण की प्रतिज्ञा पूरी हुई। औरङ्गजेब ने भूषण को बहुत पुरस्कार दिया। उस दिन से दरबार मे इनकी प्रतिष्ठा बढ चली। स० १७२३ में शिवाजी दिल्ली गये। उस समय भूषण दिल्ली ही मे थे। औरङ्गजेब का हिन्दू-द्वेष देखकर उनका चित्त उससे बहुत विरक्त था। परन्तु शिवाजी को हिन्दू-जाति और धर्म की रक्षा के लिए खड़ा देखकर उनको बडी आशा हुई। शिवाजी के दिल्ली से चले जाने पर एक दिन औरङ्गजेब ने कवियों से कहा—तुम लोग मेरी झूठी बढाई किया करते हो, सच्ची बात कहो। अन्य कवि तो चुप रहे, परन्तु भूषण से न चुप न रहा गया। इन्होने दो कवित्त मे उसकी खासी निन्दा की। इससे औरङ्गजेब बहुत ही बिगडा और वह भूषण को मारने उठा। परन्तु दरबारियों के समझाने से रुक गया। भूषण उसी समय से दिल्ली छोडकर शिवाजी के दरबार मे चले गये। वहा इनका बडा सम्मान हुआ। लाखो रुपये, घोड़े, हाथी और गाव इनको मिले। ये शिवाजी के साथ कई लड़ाइयो में भी उपस्थित थे। ऐसी कहावत है कि वहा से इन्होने एक लाख रुपये का नमक खरीदकर अपनी भावज के पास भेजा था।

शिवाजी के यहा से भूषण स० १७३१ में घर लौटे। राह मे आते समय महाराज छत्रसाल बुन्देला के यहा भी गये थे। छत्रसाल ने चलते समय इनकी पालकी का डडा अपने कधे पर रखकर इनका सम्मान बढाया था। शिवाजी और छत्रसाल जैसे स्वाभाविक वीर थे, वैसे भूषण भी सोने में सुगध होगये। कविता द्वारा जितना सम्मान भूषण को मिला, उतना हिन्दी के किसी कवि को नही मिला।

भूषण का जन्म अनुमान से स० १६७० में और मरण १७७२ में हुआ। भूषण अब इस ससार में नही है। सैकडो वर्ष पहले ही वे विधि-विधान से विवश हो चले गये। परन्तु उनके हृदय का चित्र कविता-रूप

मे अब भी हमारे सम्मुख है । भूषण अजर और अमर की भाति हमारे साथ चल रहे है । वे एक पुष्प की तरह विकसित होकर अनन्त काल के लिए सुगध छोड गए । भगवान् फिर इस देश मे शिवाजी ऐसे वीर और भूषण ऐसे सुकवि उत्पन्न करे ।

हिन्दी मे भूषण ही वीर रस के सर्वोत्तम कवि है । इससे हमने इन की कुछ अधिक कविताए उद्धृत की है । भूषण की कुछ चुनी हुई कविताए आगे दी जाती है—

आए दरबार बिललाने छरीदार देखि जापता करनहार नेकहू न मनके । भूषण भनत भौसिला के आय आगे ठाढ़े बाजे भए उमराय तुजक करन के ॥ साहि रह्यो जकि सिव साहि रह्यो तकि और चाहि रह्यो चकि बने ब्योत अनवन के । ग्रीषम के भानु सो खुमान को प्रताप देखि तारे सम तारे गए मूदि तुरकन के ॥ १ ॥

इन्द्र जिमि जम्भ पर बाडव सुअम्भ रावन सदम्भ पर रघुकुल राज है । पौन बारिबाह पर सम्भु रतिनाह पर ज्यो सहस्रबाहु पर राम द्विजराज है ॥ दावा द्रुम दड पर चीता मृगझुण्ड पर भूषण बितुण्ड पर जैसे मृग-राज है । तेज तम अस पर कान्ह जिमि कस पर त्यो मलिच्छ बस पर सेर सिवराज है ॥ २ ॥

ऐसे बाजिराज देत महाराज सिवराज भूषण जे बाज की समाजै निदरत है । पौन पाय हीन, दृग घूघट मे लीन, मीन जल में बिलीन क्यो बराबरी करत है ॥ सब ते चलाक चित्त तेऊ कुलि आलम के रहै उर अन्तर मै धीर न धरत है । जिन चढि आगे को चलाइयतु तीर तीर एक भरि तऊ तीर पीछे ही परत है ॥ ३ ॥

अफजलखान को जिन्होने मयदान मारा बीजापुर गोलकुण्डा मारा जिन आज है । भूषण भनत फरासीस त्यो फिरगी मार हबसी तुरुक डारे उलटि जहाज है ॥ देखत मै रुसतमखा को जिन खाक किया सालकी सुरति आजु सुनी जो अवाज है । चौकि चौकि चकता कहत चहुंघा ते यारो लेत रही खबरि कहां लौ सिवराज है ॥ ४ ॥

पैज प्रतिपाल भूमिभार को हमाल चहु चक्क को अमाल भयो दडक जहान को । साहिन को साल भयो ज्वाल को जवाल भयो हर को कृपाल भयो हार के विधान को ।। वीर रस ख्याल शिवराज भुवपाल तुव हाथ को बिसाल भयो भूषन बखान को । तेरो करवाल भयो दच्छिन को ढाल भयो हिन्द को दिवाल भयो काल तुरकान को ।। ५ ।।

दुरजन दार भजि भजि बेसम्हार चढी उत्तर पहार डरि सिवाजी नरिन्द ते । भूषन भनत बिन भूषन बसन, साधे भूखन पियासन है नाहन को निन्दते ।। बालक अयाने बाट बीच ही बिलाने कुम्हिलाने मुख कोमल अमल अरबिन्द ते । दृगजल कज्जल कलित बढ्यो कढ्यो मानो दूजा सोत तरनितनूजा को कलिन्द ते ।। ६ ।।

छूट्यो है हुलास आम खास एक सग छूट्यो हरम सरम एक सग बिनु ढग ही । नैनन ते नीर धीर छूट्यो एक सग छूट्यो सुख रुचि मुख रुचि त्योही बिन रग ही ।। भूषन बखानै सिवराज मरदाने तेरी धाक बिललाने न गहत बल अगही । दक्खिन के सूबा पाय दिल्ली के अमीर तजैं उत्तर की आस जीव आस एक सगही ।। ७ ।।

बचैगा न समुहाने बहलोल खा अयाने भूषन बखाने दिल आनि मेरा बरजा । तुझते सवाई तेरा भाई सलहेरि पास कैद किया साथ का न कोई वीर गरजा ।। साहिन के साहि उसी औरग के लीन्हे गढ जिसका तू चाकर औ जिसकी तू परजा । साहि का ललन दिली दल का दलन अफजल का मलन सिवराज आया सरजा ।। ८ ।।

पूरब के उत्तर के प्रवल पछाह हू के सब बादशाहन के गढ कोट हरते । भूपन कहै यों अवरग सो वजीर, जीति लीबे को पुरतगाल सागर उतरते ।। सरजा सिवा पर पठावत मुहीम काज हजरत हम मरिबे को नाहिं डरते । चाकर है उजुर कियो न जाय नेक पै कछू दिन उवरते तो घने काज करते ।। ९ ।।

बैर कियो सिव चाहत हो तबलो अरि बाह्यो कटार कठैठो ।
यो ही मलिच्छहिं छाडै नही सरजा मन तापर रोस मे पैठो ।।

भूषन क्यो अफजल्ल बचै अठपाव कै सिंह को पाव उमैंठो ।
बीछू के घाय धुक्योई घरक ह्वै तौ लग धाय धराधर बैठो ॥१०॥

बिना चतुरग सग बानरन लै कै बाधि बारिधि को लक रघुनन्दन जराई है । पारथ अकेले द्रोन भीषम सो लाख भट जीति लीन्ही नगरी बिराट मे बडाई है ॥ भूषन भनत ह्वै गुसलखाने मे खुमान अवरग साहिबी हथ्याय हरि लाई है । तौ कहा अचभो महाराज सिवराज सदा बीरन के हिम्मतै हथ्यार होत आई है ॥ ११ ॥

लोमस की ऐसी आयु होय कौन हू उपाय तापर कवच जो करनवारा धरिये । ताहू पर हूजिये सहसबाहु, तापर सहसगुनो साहस जो भीमहु ते करिये ॥ भूषन कहे यो अवरगजू सों उमराव नाहक कहो तौ जाय दच्छिन में मरिये । चलै न कछू इलाज भेजियत वे ही काज ऐसो होय साज तौ सिवा सो जाय लरिये ॥ १२ ॥

ब्रह्म के आनन तें निकसे तें अत्यन्त पुनीत तिहू पुर मानी ।
राम युधिष्ठिर के बरने बलमीकहु व्यास के अग सोहानी ॥
भूषन यो कलि के कविराजन राजन के गुन गाय नसानी ।
पुन्य चरित्र सिवा सरजैं सर न्हाय पवित्र भई पुनि बानी ॥१३॥

दान समै द्विज देखि मेरुहू कुबेरहू की सम्पति लुटाइबे को हियो ललकत है । साहि के सपूत सिव साहि के बदन पर सिव की कथान में सनेह झलकत है ॥ भूषन जहान हिन्दुवान के उबारिबे को तुरकान मारिबे को बीर बलकत है । साहिन सो लरिबे की चरचा चलत आनि सरजा के दृगन उछाह छलकत है ॥ १४ ॥

काहू के कहे सुने ते जाही ओर चाहै ताही ओर इकटक घरी चारिक चहत है । कहे ते कहत बात कहे ते पियत खात भूषन भनत ऊची सांसन जहत है ॥ पौढे है तौ पौढे, बैठे बैठे, खरे खरे, हमको है, कहा करत, यो ज्ञान न गहत है । साहि के सपूत सिव साहि तव बैर इमि साहि सब रात-दिन सोचत रहत है ॥१५॥

आजु यहि समै महाराज सिवराज तुही जगदेव जनक जजाति अम्ब-

रीक सों। भूषन भनत तेरे दान जल-जलधि मे गुनिन को दारिद गयो बहि खरीक सों ।। चद कर कंजलक, चादनी पराग, उड़ बृन्द मकरन्द बुन्द पुज के सरीक सो। कन्द सम कयलास, नाक गग नाल, तेरे जस पुण्डरीक को अकास चचरीक सो ।।१६।।

चित अनचैन आसू उमगत नैन देखि बीबी कहे बैन मिया कहियत काहिनै। भूषन भनत बूझे आये दरबार ते कपत बार बार क्यो सम्हार तन नाहिनै ।। सीनो धकधकत पसीनो आयो देह सब हीनो भयो रूप न चितीत बाए दाहिनै। सिवाजी की सङ्क मानि गयेही सुखाय तुम्हे जानियत दक्खिन को सूबा करो साहिनै ।।१७।।

मार करि पातसाही खाकसाही कीन्ही जिन जेर कीन्ही जोर सो लै हद्द सब मारे की। खिसि गई सेखी फिसि गई सूरताई सब हिसि गई हिम्मति हजारो लोग सारे की ।। बाजत दमामे लाखो धौसा आगे घहरात गरजत मेघ ज्यो बरात चढे भारे की। दूलहो सिवाजी भयो दच्छिनी दमामे वारै दिल्ली दुलहिन भई सहर सितारे की ।।१८।।

चकित चकत्ता चौंकि चौंकि उठै बार बार दिल्ली दहसति चितै चाह करषति है। बिलखि बदन बिलखात बिजैपुर पति फिरत फिरगिन की नारी फरकति है ।। थर थर कापत कुतुबशाह गोलकुण्डा हहरि हबस-भूप भीर भरकति है। राजा सिवराज के नगारन की धाक सुनि केते बादसाहन की छाती दरकति है ।।१९।।

मालवा उजैन भनि भूषन भेलास ऐन सहर सिरोज लौ परावने परत है। गोडवानो तिलगानो फिरंगानो करनाट रुहिलानो रुहिलन हिये हहरत है ।। साहि के सपूत सिवराज तेरी धाक सुनि गढपति वीर तेऊ धीर न धरत है। बीजापूर गोलकुण्डा आगरा दिली के कोट बाजे बाजे रोज दरवाजे उघरत है ।।२०।।

राखी हिन्दुवानी हिन्दुवान को तिलक राख्यो अस्मृति पुरान राखे वेद विधि सुनी मे। राखी रजपूती राजधानी राखी राजन की धरा मे धरम राख्यो राख्यो गुन गुनी मे ।। भूषन सुकवि जीति हद्द मरहट्टन की

देस देस कीरति बखानी तव सुनी मैं । साहि के सपूत सिवराज समसेर तेरी दिल्ली दल दावि के दिवाल राखी दुनी मैं ॥२१॥

सारस से सूबा करवानक से साहजादे मोर से मुगल मीर धीर हीं बचै नहीं । बगुला से बगस बलूचियो बतक ऐसे काबुली कुलङ्ग याते रन मे रचै नही ॥ भूषन जू खेलत सितारे मे शिकार शिवा साहि को सुवन जाते दुवन सचै नही । बाजी सब बाज से चपेटे चगु चहूँ ओर तीतर तुरुक दिल्ली भीतर बचै नही ॥२२॥

"सिवा की बड़ाई औ हमारी लघुताई क्यो कहत बार बार" कहि पातसाह गरजा । सुनिये "खुमान हरि तुरुक गुमान महिदेवन जे वायो" कवि भूषन यो अरजा ॥ तुम वाको पाय कै जरूर रन छोरो वह रावरे वजीर छोरि देति करि परजा । मालुक तिहारो होत याहि मे निबेरो रन कायर सो कायर औ सरजा सो सरजा ॥२३॥

फिरगाने फिकिरि औ हद्द सुनि हबसाने भूषन भनत कोऊ सोवत न घरी है । बीजापुर बिपति बिडारि सुनि भाज्यो सब दिल्ली दरगाह बीच परी खरभरी है ॥ राजन के राज सब साहिन के सिरताज आज सिवराज पातसाही चित धरी है । बलख बुखारे कसमीर लौ परी पुकार धाम धाम धूम धाम रूम साम परी है ॥२४॥

दारा की न दौर यह रार नही खजुवे की बाँधिवो नही है कैधो मीर सहवाल को । मठ बिस्वनाथ को न बास ग्राम गोकुल को देवी को न देहरा न मन्दिर गोपाल को ॥ गाढे गढ लीन्हे अरु बैरी कतलाम कीन्हे ठौर ठौर हासिल उगाहत है साल को । बूडति है दिल्ली सो सम्हारै क्यो न दिल्लीपति धक्का आनि लायो सिवराज महा-काल को ॥२५॥

कत्ता की कराकनि चकत्ता को कटक काटि कीन्ही सिवराज वीर अकह कहानियां । भूषन भनत तिहु लोक मे तिहारी धाक दिल्ली औ बिलाइत सकल बिललानिया ॥ आगरे अगारन ह्वै फादत कगारन छ्वै

बाधती न बारन मुखन् कुम्हलानिया। कीबी कहै कहा औ गरीबी गहे भागी जाहि बीबी गहे सूथनी सु नीबी गहे रानिया ॥२६॥

छूटत कमान और तीर गोली बानन के मुसकिल होत मुरचान हू की ओट मै। ताही समै सिवराज हुकुम कै हल्ला कियो दावा बाधि पर हला बीर भट जोट मै॥ भूषन भनत तेरी किस्मत कहा लौ कहौ हिम्मत यहा लगि है जाकी भट झोट मै। ताव दै दै मूछन कगूरन पै पाव दै दै अरि मुख घाव दै दै कूदे परे कोट मे ॥२७॥

जीत्यो सिवराज सलहेरि को समर सुनि सुनि असुरन के सु सीने धरकत है। देव लोक नाग लोक नर लोक गावे जस अजहू लौ परे खग्ग दात खरकत है। कटक कटक काटि कोट से उड़ाय केते भूषन भनत मुख मोरे मरकत है। नरभूमि लेटे अध कटे कर लेटे परे रुधिर लपेटे पठनेटे फरकत है ॥२८॥

सबन के ऊपर ही ठाढो रहिबे के जोग ताहि खरो कियो जाय जारन के नियरे। जानि गैरमिमिल गुमीले गुसा धारि उर कीन्हो ना सलाम ना बचन बोले सियरे॥ भूषन भनत महावीर बलकन लाग्यो सारी पातसाही के उड़ाय गये जिगरे। तमकते लाल मुख सिवा को निरखि भये स्याह मुख नौरग सिपाह मुख पियरे ॥२९॥

देवल गिरावते फिरावते निशान अलि ऐसे डूबे राव राने सबे गए लब की। गौरी गनपति आप औरन को देत ताप आपके मकान सब मार गये दबकी॥ पीरा पयगम्बरा दिगम्बरा दिखाई देत सिद्ध की सिधाई गई रही बात रबकी। कासिहु ते कला जाती मथुरा मसीद होती सिवा जी न होतो तौ सुनति होति सब की ॥३०॥

ऊंचे घोर मन्दिर के अन्दर रहनवारी ऊचे घोर मन्दिर के अन्दर रहाती है। कन्द मूल भोग करै कन्द मूल भोग करै तीन बेर खाती सो तो तीन बेर खाती है। भूषन सिथिल अङ्ग भूखन सिथिल अङ्ग बिजन डुलाती ते वे बिजन डुलाती है। भूषन भनत सिवराज वीर तेरे त्रास नगन जड़ाती ते वै नगन जडाती है ॥३१॥

सोधे को अधार किसमिस जिनको अहार चारि को सो अंक लक चन्द सरमाती हैं। ऐसी अरि नारी सिवराज वीर तेरे त्रास पायन में छाले परे कन्द मूल खाती हैं॥ ग्रीषम तपनि एती तपती न सुनी कान कज कैसी कली बिनु पानी मुरझाती है। तोरि तोरि आछे से पिछौरा सो निचोरि मुख कहै "अब कहा पानी मुकतो मे पाती है" ॥३२॥

डाढ़ी के रखैयन की डाढी सी रहति छाती वाढी मरजाद जस हद्द हिन्दुवाने की। कढि गई रैयत के मन की कसक सब मिट गई ठसक तमाम तुरकाने की। भूपन भनत दिल्लीपति दिल धकधका सुनि सुनि धाक सिवराज मरदाने की। मोटी भई चडी बिनु चोटी के चवाय मुण्ड खोटी भई सम्पति चकत्ता के घराने की ॥३३॥

वेद राखे विदित पुरान राखे सारयुत राम नाम राख्यो अति रसना सुवर में। हिन्दुन का चोटी रोटी राखी है सिपाहिन की कांधे में जनेऊ राख्यो माला राखी गर मे॥ मीड़ि राखे मुगल मरोड़ि राखे पातसाह वैरी पीसि राखे वरदान राख्यो कर में। राजन की हद्द राखी तेग बल सिवराज देव राखे देवल स्वधर्म राख्यो घर में ॥३४॥

मतिराम

मतिराम भूषण के सगे भाई थे। इनका जन्म सं० १६७४ के लगभग और मरण सं० १७७३ के लगभग हुआ। ये बूदी के महाराज राव भाऊसिंह के यहां रहा करते थे। ये शृंङ्गार रस के अच्छे कवि थे।

इनके रचे ललित ललाम, रसराज, छन्दसार पिंगल और साहित्य-सार आदि ग्रन्थ है।

इनके कुछ छन्द नीचे लिखे जाते है:—

जगत विदित बूदी नगर, सुख सम्पति को धाम।
कलिजुगहू में सत्यजुग, तहां करत विश्राम ॥ १ ॥
पढ़त सुनत मन दै निगम, आगम स्मृति पुरान।
गीत कवित्त कलान के, जहं सब लोग सुजान ॥ २ ॥

सरद वारिधर के लसत, अमल धौरहर धौल।
चित्रित चित्रित सिखर जह, इन्द्रधनुष से नौल ॥ ३ ॥
महलनि ऊपर जह बने, कचन कलस अनूप।
निज प्रभानि सौ करत है, गगन पीत अनुरूप ॥ ४ ॥
जह विमान-वनितान के, श्रमजल हरत अनूप।
सौंव पताकनि के वसन, होइ विजन अनुरूप ॥ ५ ॥
वीना वेनु निनाद मृग, मोहि अचल करि चन्द।
सौंध सिखर ऊपर जहा, दम्पति करत अनन्द ॥ ६ ॥
जहा छहीं ऋतु मे मधुर, सुनि मृदङ्ग मृदु सोर।
सङ्ग ललित ललनानि के, नृत्य करत गृह मोर ॥ ७ ॥
मरकत लाल प्रवाल मनि, मुकुत हीर अवदात।
ललित राजपथ मे जहा, जरकस बसन बिकात ॥ ८ ॥
मद जल वरषत भूमि के, जलधर सम मातङ्ग।
बिना परनि के खग जहा, सुन्दर तरल तुरङ्ग ॥ ९ ॥
सदा प्रफुल्लित फलित जह, द्रुम वेलिन के बाग।
अलि कोकिल कलधुनि सुनत, लहत श्रवन अनुराग ॥१०॥
कमल कुमुद कुवलयन के, परिमल मधुर पराग।
सुरभि सलिल पूरे जहा, वापी कूप तड़ाग ॥११॥
शुक चकोर चातक चुहिल, कोक मत्त कलहस।
जह तरवर सरवरन के, लसत ललित अवतस ॥१२॥
अक्षैबट बालक उदर, ज्यो ससार समाय।
सकल जगत पानिप रह्यौ, बूदी मै ठहराय ॥१३॥
तामै प्रतिबिम्बित मनौ, सम्पति जुत सुरलोक।
घर घर नर नारी लसै, दिव्य रूप के ओक ॥१४॥
चन्द्रमुखिन के भौह जुग, कुटिल कठोर उरोज।
बाननि सौ मन कौं जहा, मारत एक मनोज ॥१५॥

जहा चित्त चोरी करै, मधुर बदन मुसकानि ।
रूप ठगत है दृगन कौं, और न दूजो जानि ॥१६॥
ता नागरी को प्रभु वडो, हाडा सुरजनराव ।
रच्यो एक सब गुननि को, वर विरचि समुदाव ॥१७॥

वाजत नगारे जहा गाजत गयन्द, तहा सिंह सम कीनो वीर संगर विहार है। कहै मतिराम कवि लोगनि को रीझि करि, दीने ते दुरद जे चुवत मदधार है॥ शत्रुसाल नन्दराव भावसिंह तेग त्याग, तोसे और औनितल आजु न उदार है। हाथिन विदारिवे को हाथ है हथ्यार तेरे, दारिद विदारिवे को हाथियै हथ्यार है॥१८॥

चरन धरै न भूमि विहरै तहाई जहा, फूले फूले फूलन विछायो परजक है। भार के डरनि सुकुमार चारु अंगनि मे, करत न अगराग कुकुम को पक है। कहै मतिराम देखि वातायन वीच आयो, आतप मलीन होत बदन मयक है। कैसे वह वाल लाल वाहर विजन आवै, विजनवयार लागे लचकत लङ्क है॥१९॥

जूथपति वैठ्यो पानी पोषत प्रवलमद कलभ करेनु कनि लीनै सग सुखते। ग्रह गह्यो गाढे वैर पीछले के वाढे भयो वलहीन विकल करन दीह दुखते। कहै मतिराम सुमिरत ही समीप लखे एसी करतूति भई साहिव सुरुख तें। दोऊ वाते छूटी गजराज की वरावर ही पाव ग्राह मुख ते पुकार निज मुखते॥२०॥

सोने कैसे वेली अति सुन्दर नवेली वाल, ठाढ़ी ही अकेली अलवेली द्वार महिया। मतिराम अखियां सुधा की वरषासी भई, गई जब दीठि वाके मुखचन्द्र पहिया॥ नेक नीरे जाइ करि वातनि लगाय करि, कछू मन पाइ हरि वाकी गही वहियां। सैननि चरचि लई गौननि थकित भई नैननि मे चाह करै वैननि में नहियां॥२१॥

गुच्छनि के अवतस लसै सिखिपच्छनि अच्छ किरीट वनायो।
पल्लव लाल समेत छरी कर-पल्लव में, मतिराम सुहायो॥

गुञ्जनि के उर मंजुल हार निकुञ्जनि ते कढि बाहिर आयो ।
आज को रूप लखे ब्रजराज को आजही आंखिन को फल पायो ॥२२॥
कुन्दन को रंग फीको लगै झलकै अति अंगनि चारु गोराई ।
आंखिन मे अलसानि चितौनि मे मंजु विलासन की सरसाई ॥
कोटिन मोल बिकात नही मतिराम लहै मुसुकान मिठाई ।
ज्यो ज्यो निहारिये नेरे ह्वै नैननि त्यो त्यो खरी निकरै सुनिकाई ॥२३॥
खेलत चोर मिहीचनी आजु गई हुती पाछिले द्योस की नाई ।
आली कहा कहौ एक भई मतिराम नई यह बात तहाई ॥
एकहि भौन दुरे एक संगही अंगसो अंग छुवायो कन्हाई ।
कम्प छूट्यो तन स्वेद बढ्यो तनुरोम उठ्यो अंखिया भरि आई ॥२४॥
केलि की राति अघाने नही दिनही मे लला पुनि घात लगाई ।
प्यास लगी कोउ पानी देजाइयो भीतर बैठि के बात सुनाई ॥
जेठ पठाई गई दुलही हंसी हेरे हरै मतिराम बुलाई ।
कान्ह के बोल पै कान न दीन्ही सु गेह की देहरि पै धरि आई ॥२५॥
आपने हाथ सो देत महावर आपहि बार श्रृंगारत नीके ।
आपनही पहिरावत आनि कै हारि संवारि के मौलसिरी के ॥
हौं सखि लाजन जात गडी मतिराम स्वभाव कहा कहौ पीके ।
लोग मिले घर घेरे कहै अबही ते ये चेरे भये दुलही के ॥२६॥
प्यार पगी पगरी पियकी बसि भीतर आपने सीस संवारी ।
एते मे आंगन ते उठिकै तह आइ गये मतिराम बिहारी ॥
देखि उतारनि लागि तिया पिय सौहनि सो बहुरी न उतारी ।
नैन नचाइ लजाइ रही मुसुकाइ लला उर लाइ पियारी ॥२७॥

पियत रहै अधरानि को, रस अति मधुर अमोल ।
ताते मीठो कढत है, बाल बदन ते बोल ॥२८॥
नैन जोरि मुख मोरि हंसि, नैसुक नेह जनाय ।
आग लेन आई हिये, मेरे गई लगाय ॥२९॥

प्रीतम को मन भावती , मिलत प्रेम उत्कण्ठ ।
बाहि न छूटै कठ ते , नाहि न छूटै कण्ठ ॥३०॥

कुलपति मिश्र

कुलपति मिश्र आगरे के रहनेवाले चतुर्वेदी ब्राह्मण थे। चतुर्वेदी ब्राह्मणों मे मिश्र, शुक्ल आदि सभी आस्पद होते है । इनके पिता का नाम परशुराम मिश्र था । इनका जन्म अनुमान से संवत् १६७७ विक्रम में हुआ । इनका रचा हुआ एक ग्रथ "रस रहस्य" मिलता है, वह स० १७२७ में समाप्त हुआ था । इनके मरण-काल का कुछ पता नही चलता ।

कुलपति मिश्र सस्कृत के बड़े विद्वान् थे । मम्मट के आधार पर रस-रहस्य में इन्होने काव्य के कई अङ्गों की विद्वत्तापूर्ण आलोचना की है । काव्य के दोष, गुण, अलङ्कार, रस आदि का वर्णन रस-रहस्य में अच्छा है । यह ग्रथ इडियन प्रेस, प्रयाग से प्रकाशित हो चुका है, परन्तु बहुत अशुद्ध है । इसके सिवा द्रोण-पर्व, गुण-रस-रहस्य, सग्रह-सार, युक्ति-तरङ्गिणी और नखशिख नामक ग्रथ भी इनके रचे हुए बतलाये जाते हैं; परन्तु अभी तक कही से वे प्रकाशित नही हुए ।

ये जयपुर के महाराजा जयसिह के पुत्र रामसिह के यहा रहते थे । रसरहस्य में अलङ्कारो के उदाहरण में रामसिह की प्रशंसा के ही छन्द अधिक है । कुलपति ने अपनी कविता मे प्राकृत-मिश्रित और उर्दू-मिश्रित हिन्दी-भाषा का प्रयोग किया है ।

इनकी कविता के कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते है—

(१)

डर बेधत पानिप हरत , मुक्ता जनि बिलखाय ।
नाक वास लहि है गुनी , दे अधरन सिर पाय ॥

(२)

दान बिन धनी सनमान बिन गुनी ऐसे विष बिन फनी अनी सूर न सहत है । मत्र बिन भूप ऐसे जल बिन कूप जैसे लाज बिन कामिनि के

गुननि कहत है ॥ वेद विन यज्ञ जप जोग मन बस विन ज्ञान बिन योगी मन ऐसे निबहत है । चंद विन निशा प्राणप्यारी अनुराग विन सील बिन लोचन ज्यो सोभा को लहत है ॥

(३)

दिसि पूरि प्रभा करिकै दसहू गुन कोकन के अति मोद लहै ।
रंगि राखी रसा रंग कुंकुम के अलि गुञ्जत ते जस पुञ्ज कहै ॥
निस एक ह्वै पङ्कज की पतनीन के वाके हिये अनुराग रहै ।
मनो याही ते सूरज प्रात समै नित आवत है अरुनाई लहै ॥

(४)

नीति विना न विराजत राज न राजत नीति जु धर्म बिना है ।
फीको लगै विन साहस रूप रु लाज बिना कुल की अबला है ॥
सूर के हाथ बिना हथियार गयंद बिना दरबार न भा है ।
मान विना कविता की न ओर है दान विना जस पावै कहा है ॥

जसवन्तसिंह

जसवन्तसिंह जोधपुर के महाराज, महाराज गजसिंह के द्वितीय पुत्र और अमरसिंह के छोटे भाई थे । इनका जन्म सं० १६८२ मे हुआ । ये सं० १६९५ में अपने पिता के स्वर्गवासी होने पर सिंहासनासीन हुए। औरंगजेब के इतिहास से जसवन्तसिंह के जीवन का बहुत सम्बन्ध है जो इतिहास पढ़नेवालो से छिपा नही है । इनका देहान्त सं०१७३८में, काबुल में हुआ । कहते है, औरङ्गजेब ने इन्हे विष दिलाकर मरवा डाला था ।

जसवन्तसिंह भाषा के बडे मर्मज्ञ कवि थे । इन्होने इन ग्रन्थो की रचना की है—भाषा-भूषण, अपरोक्ष सिद्धान्त, अनुभव-प्रकाश, आनन्द-विलास, सिद्धान्त-बोध, सिद्धान्त-सार, प्रबोध चन्द्रोदय नाटक । भाषा-भूषण के सिवा इनके शेष ग्रन्थ वेदान्त सम्बन्धी है। भाषा-भूषण २६१ दोहो का अलंकार का ग्रन्थ है ।

जसवन्तसिंह की कविता के कुछ नमूने नीचे दिये जाते है—

मुखशशि वा शशि सो अधिक , उदित जोति दिन राति ।
सागर ते उपजी न यह , कमला अपर सोहाति ॥ १ ॥
नैन कमल ये ऐन हैं , और कमल केहि काम ।
गमन करत नीकी लगै , कनक-लता यह वाम ॥ २ ॥
धरक दुरै आरोप ते , सुद्धापन्हुति होय ।
उर पर नाहिं उरोज ये , कनक-लता फल दोय ॥ ३ ॥
परजस्ता गुन और को , और विषे आरोप ।
होय सुधाधर नाहिं ये , वदन सुधाधर ओप ॥ ४ ॥

बनवारी

बनवारी स० १६९० के लगभग हुए । शाहजहाँ के दरबार मे सलाबतखा ने अमरसिंह को "गवार" कह दिया था । इसी पर क्रुद्ध होकर अमरसिंह ने उसे दरबार ही मे मार डाला ।

अमरसिंह जोधपुर के महाराज गजसिंह के बडे पुत्र और औरङ्गजेब के सुप्रसिद्ध सहायक जसवन्तसिंह के बडे भाई थे । उद्धत स्वभाव होने के कारण स० १६९१ मे अमरसिंह को गजसिंह ने राज पाने के अधिकार से च्युत करके राज से निकाल दिया था । इसीसे गजसिंह के बाद जसवन्तसिंह को जोधपुर की गद्दी मिली। अमरसिंह शाहजहा के पास चले आये। शाहजहां ने उन्हे अपने दरबार मे अच्छा पद दिया था । एक बार अमरसिंह ने शाहजहा से कुछ दिनो की छुट्टी ली । पर रानी के प्रेम ने उन्हें ऐसा विवश किया कि वे ठीक समय पर छुट्टी समाप्त करके दरबार में हाजिर न हो सके । शाहजहा का एक मुख्य दरबारी अमरसिंह से कुछ द्वेष रखता था । उसने अमरसिंह के प्रति बहुत-सी बे-सिर-पैर की शिकायतें सुनाकर बादशाह के कान खूब भरे । और जब वे दरबार में हाजिर हुए तब उनकी सलाह से गैरहाजिरी के लिए उन पर एक बड़ा जुरमाना किया गया । अमरसिंह इस अपमान को सह न सके । और उन्होने भरे दरबार मे क्षत्रियोचित निर्भयता के साथ बादशाह की आज्ञा का प्रतिवाद किया । बादशाह तो चुपचाप सुनता रहा, पर सलाबतखा ने

जोश मे आकर अमरसिंह को "गवार" कह दिया। अमरसिंह ने तलवार निकालकर भरे दरबार मे सलाबतखा का सिर काट लिया। शाहजहा सिहासन छोड भागा। दरबारी भी रफूचक्कर हुए। जिन्होंने कुछ रोक-थाम की, अमरसिंह ने उन्हे तलवार के घाट उतारा। वहां से निकलकर अमरसिंह अपने महल मे आये और कुछ दिनों तक फिर दरबार मे न गये।

शाहजहा तो क्रुद्ध था ही, दरबारियो ने उसके कान और भरे। सब ने मिलकर अमरसिंह के एक निकट सम्बन्धी को इसलिये तैयार किया कि वह किसी तरह से अमरसिह को दरबार में लावे। दरबार में उन पर यथाविधि अपराध लगाकर, उन्हे दड दिया जायगा। उसने अमरसिंह से मिलकर, वहुत ऊचा-नीचा समझाकर, उन्हे दरबार में आकर शाहजहा से मिलने के लिए राजी किया। उसने झूठमूठ यह भी कहा कि शाहजहा ने तुम्हारा अपराध क्षमा कर दिया है।

अमरसिह उसकी वातों में आगये। वे उसके साथ दरबार की ओर चले। शाहजहा के सामने पहुचने के लिए जो द्वार था, वह इतना नीचा था कि बिना सिर झुकाये कोई उसके अन्दर प्रवेश नही कर सकता था। शाहजहां को यह भय था कि शायद अमरसिंह उसे सलाम न करेंगे। इसलिए यह युक्ति की गई थी कि जब अमरसिंह द्वार में प्रवेश करने के लिये सिर झुकावेंगे, तब उसे सलाम समझकर शाहजहां की ओर से उसकी स्वीकृति जाहिर कर दी जायगी।

अमरसिंह ताड गये। उन्होंने पहले द्वार के अन्दर सिर न डालकर पैर डाला। इतने में पीछे से उनके सम्बन्धी (शायद अर्जुनसिंह) ने तलवार मारकर उनका सिर धड से जुदा कर दिया। वह अमरसिंह का सिर लेकर खुशी-खुशी शाहजहां के सामने हाजिर हुआ और कोई वडा पुरस्कार पाने की आशा से शाहजहा और उसके दरबारियों की ओर सतृष्ण नेत्रों से देखने लगा। शाहजहा को उस पर वडा क्रोध आया। क्योंकि यद्यपि वह अमरसिंह से रुष्ट हो गया था, पर उनकी वीरता पर वह हृदय से मुग्ध भी था। उसने अमरसिंह की हत्या करनेवाले को घोर तिरस्कार और यन्त्रणायुक्त मृत्यु दण्ड दिया।

अमरसिंह की विधवा रानी ने सती होने की इच्छा प्रकट की। लाश मागने पर शाहजहा ने कहला भेजा कि अमरसिंह के पुत्र मे कुछ शक्ति हो तो वह आकर लाश ले जाय।

अमरसिंह के एक ही पुत्र था। उसका नाम रामसिंह था। रामसिंह की अवस्था उस समय १५ वर्ष से अधिक नही थी। शाहजहां का व्यंग सुनकर रानी चुप हो रही, पर रामसिंह ने माता के चरणों पर सिर रख कर कहा,—"मा, अब तो मुझे मह प्रमाणित करना ही होगा कि मै वीर-पिता का वीर-पुत्र हू।" यह कहकर रामसिंह कुछ विश्वस्त और वीर राजपूतो को साथ लेकर राजमहल की ओर चला, जहा शाहजहा ने लाश को कडे पहरे मे रखवा दिया था। वीर बालक रामसिंह ने पहरे वालो को एक कडी लडाई मे परास्त करके लाश को घोडे पर रक्खा और मां के सामने लाकर रख दिया। शाहजहा अपने महल की खिड़की से यह सब हाल देख रहा था। रामसिंह की वीरता पर वह हृदय से मोहित हो गया। उसने उसी वक्त रानी के पास सवार भेजकर कहलाया कि बादशाह खुद अमरसिंह की रथी के साथ स्मशान तक आरहे है। शाहजहां अपने सब दरबारियों को साथ लेकर धूमधाम से शरीक हुआ। उसने रामसिंह को गोद मे लेकर कहा,—"तुम्हारा तेज देखने के लिए ही मैंने लाश को रोकवा रक्खा था। तुम वीर-पिता के वीर-पुत्र हो, तुमको दरबार मे अमरसिंह का स्थान दिया जायगा।" शाहजहा अमरसिंह को याद करके कुछ समय तक आसू गिराता रहा। रानी उसके सामने ही अमरसिंह की लाश के साथ सती होगई।

अमरसिंह के सम्बन्ध की यह कथा लोक मे ऐसी ही प्रसिद्ध है। इस घटना को लेकर दो एक काव्य भी रचे गये है। बनवारी ने अपने छन्दों मे सलाबतखा के मारे जाने भर का जिक्र किया है।

बनवारी ने शृङ्गाररस की कविता भी की है, और लोग उसे भी पसन्द करते है। इनका लिखा कोई ग्रन्थ हमारे देखने मे नही आया। यहां इनके कुछ छन्द लिखे जाते है—

(१)

धन्य अमर छिति छत्रपति , अमर तिहारो नाम ।
शाहजहा की गोद मे , हत्यो सलाबत खान ।।

(२)

उत गवार मुख ते कढी , इत निकसी जमधार ।
"वार" कहन पायो नही , कीन्हो जमधर पार ।।

आनि कै सलाबत खा जोरि कै जनाई बात तोरि धर पजर करेजे जाय करकी । दिल्लीपति साह को चलन चलिबे को भयो गाज्यो गजसिंह को सुनी है बात बर की ।। कहै बनवारी बादसाहि के तखत पास फरकि फरकि लोथ लोथिन सो अरकी । करकी बडाई कै बडाई बाहिबे की करौं बाढि की बडाई कै बडाइ जमधर की ।। ३ ।।

नेह बरसाने तेरे नेह बरसाने देखि यह बरसाने वर मुरली बजावेगे । साजू लाल सारी लाल करै लालसारी देखिबे की लालसारी लाल देखे सुख पावेगे ।। तू ही उरबसी उर बसी नहिं और तिय कोटि उरबसी तजि तोसो चित्त लावेगे । सेज बनवारी बनवारी तन आभरन गोरे तनवारी बनवारी आज आवेगे ।। ४ ।।

गोपालचन्द्र मिश्र

गोपालचन्द्र मिश्र का जन्म छत्तीसगढ मे सं० १६९० के लगभग माना जाता है । इनके पिता का नाम गगाराम और पुत्र का माखनचन्द्र था । माखनचन्द्र भी अच्छे कवि थे । रामप्रताप-काव्य का आधा गोपालचन्द्र नें लिखा था, और शेष उनकी आज्ञा से माखनचन्द्र ने लिखकर ग्रन्थ को पूर्ण किया ।

छत्तीसगढ की प्राचीन राजधानी रतनपुर के हैहयवशी राजा राजसिंह के दरबार मे गोपालचन्द्र का बडा मान था । कहा जाता है कि इनको राजा राजसिंह ने अपना दीवान बना लिया था । राजा की इच्छानुसार इन्होने स० १७४६ मे "खूब तमाशा" नामक काव्य की रचना की ।

इनके रचे हुए ग्रन्थो के नाम ये है—

खूब तमाशा (१७४६), जैमिनी अश्वमेध (१७५२), सुदामाचरित्र (१७५५), भक्ति चिन्तामणि (१७५९), रामप्रताप, छन्दविलास (पिंगल)।

यहा इनकी कविता के कुछ नमूने उद्धृत किये जाते है—

(१)

सोई नैन नैन जो बिलोके हरि मूरति को, सोई बैन बैन जे सुजस हरि गाइये। सोई कान कान जामे सुनिये गुनानुवाद, सोई नेह नेह हरि जू सो नेह लाइये॥ सोई देह देह जामे पुलकित रोम होत, सोई पांव पांव जामे तीरथन जाइये। सोई नेम नेम जे चरन हरि प्रीति बाढे, सोई भाव भाव जो गोपाल मन भाइये॥

(२)

दान सुधा जल ते जिन सीच सतोगुन बीच बिचार जमायो।
बाढि गयो नभमंडल लौ महिमंडल घेर दसों दिसि छायो॥
फूल घने परमारथ फूलनि पुण्य बड़े फल तें सरसायो।
कीरति वृक्ष बिसाल गुपाल सु कोविद वृन्द बिहंग बसायो॥

चारों दिशाओं के सुख दुःख

दोहा

रूप विशेष विशेष धन, भूमि सुहावन देस।
जाय करौं याते अबै, पूरब को परदेस॥

कवित्त

ताफताऽरु बाफता मुसज्जर श्री साफ़ मखमलऽरु मुकेसी पट नाना सुखदाइये। सरस कृपान तरकसऽरु कमान बान जरकसी चीरा हीरा जहां जाइ लाइये॥ सुकवि "गुपाल" फुलवारी धाम धाम अम्ब श्रीफल कदम्ब पौड़ा पानन को खाइये। बड़े होत केस, मिले तन्दुल असेस, प्यारी पूरब के देस मे विशेष सुख पाइये॥

सोरठा

लगैं चोर ठगवाइ , पेट चलै पानी लगै ।
कीजै कबहु न जाइ , पूरब के परदेस को ।।

कबित्त

पानी लगि जात बहु फूलि जात गात पुनि पेट चलि जात कछु खाइ जात जबहू । जादू करि करिकै सभोग सुख काज पशु पच्छी करि राखै नारि नरन को अबहूं ।। ब्राह्मन बनिक मीन मास मधु खात तेल हरद लगाय न्हात नारी नर सबहू । फासी देकै हाल मारि डारैं ठगजाल यातें जैये न "गुपाल" दिसि पूरब की कबहू ।।

दोहा

दयावान धनवान पुनि , लोग बड़े गुनवान ।
याते दच्छिन देस को , करिये सदा पयान ।।

कबित्त

चीरा चीर सालू सेला समला बहारदार जरकसी काम जहा होत नाना भाति है। सुकवि "गोपाल" लाल रतन प्रबाल मन मानिक बिसाल मोती महगी सुजाति है ।। मेवा औ मिठाई फल फूल मूल मुक्त गज तरुनी अनूप रूप झलकत गात है । देखे बनै बात सदा सोभा सरसात प्यारी दच्छिन दिसा के गुन कहे नहिं जात है ।।

दोहा

दक्षिण पिय सुन कान दे , दक्षिण दक्षिण जात ।
लक्षण लक्षण गक्षि के , लक्षण ही लगि जात ।।

कबित्त

घोटू लौ उघारी निरलज्ज रहे नारी मास मदिरा अहारी द्विज होइ अनाचारी है । सुकवि "गुपाल" प्याज लहसुन खात बहु लूटैं ठग चोर प्रजा रहै न सुखारी है ।। लोग निरहेत भानिजे को ब्याहि बेटी देत रीति बिपरीति सब देखत में न्यारो है । बढत अगारी होति बड़ी बडी ख्वारी दिसि दक्षिण मझारी जात होत दुख भारी है ।।

दोहा

राखे दक्षिण ते अवै, जो दिसि पश्चिम जात।
ताके अब सुन लीजिये, प्यारी! मुख अवदात॥

कवित्त

लोग दयावान तिय सुन्दर सुजान मीठी बोलनि निदान नीर लगै न तहा कहू। वृषभ विसाल ऊचे पुलकार वस्त्र विधि विविध प्रकारन है सूत के जहां कहू॥ सुकवि "गुपाल" ताते तरल तुरंग मिलै, मधुर मतीर भूख लगत जहा कहू। पार नही लहू जिय सोचत ही रहूं प्यारी पच्छिम दिसा के सुख बरनि कहा कहूं॥

दोहा

मरत रैन दिन वारि बिन, भटकि भटकि नर नारि।
करिये नही पयान पिय, पश्चिम ओर निहारि॥

कवित्त

धूरिन के थल सावे ढोल के ढमक्के जल तरु बिन थल तहा सोभा नही यामे है। चावरऽरु गेहू रस गोरस न फूल फल मोठ बाजरी को खाय दिवस बितामे है॥ रहत मलीन धर्म कर्म करि हीन लोग पहरत पीन पट ऊनन के जामे है। सुकवि "गुपाल" कछु कहत न आवे जात जेते दुख होत सदा पश्चिम दिसा मे है॥

दोहा

हरिद्वार ते कै परसि, बद्रिनाथ केदार।
होत कृतारथ जीव यह, उत्तर खड़ मझार॥

कवित्त

लायची लवग दाख दाड़िम वदाम सेंव सालम अगूर पिस्ता खैये उठि भोर को। कस्तूरी केसरि जावित्री जायफल दालचीनी देवदारु की सुगंधि चहुंओर को॥ साल औ दुसाले घुस्सा नाना पसमीना ओढ़ि देखत रहत आछि तियन की मोर को। कहत "गुपाल" प्यारी सुनिये निहोर मोपै कह्यो नहि जात सुख उत्तर की ओर को॥

दोहा

सदा सीत भयभीत नर , व्याघ्र सिह वृष घोर ।
कीजै नही पयान पिय , उत्तर दिसि की ओर ।।

कबित्त

विकट पहार झार घने सिह स्यार निरबाह नही होत रथ बहल को जामे है । गिलटी रुगिल्लर अनेक रोग होत जहा चारिहु बरन जीव हिंसक हरामे है ।। सुकवि "गोपाल" सदा सीत भयभीत लोग बरफ के मारे दुरे रहत गुफा मे है । राह मे न गामे चल्यो जात न निसा में याते वहु दुख यामे जात उत्तर दिसा मे है ।।

दोहा

गाम इजारो छाडि के , खेती करिहौ बाम ।
सब जग जाके करे ते , खात पियत निज धाम ।।

कबित्त

साझहू सबेरे दही दूध के रहत सुख लीयो करै स्वाद ये रसाल नई नई को । नित प्रति रहै सातो पौनि पै हुकुम सरकार मे रहत भलो बस्सा ठकुरई को ।। जीवै जग जाते जग जीव को कनूका मिलै मिलै भली बात यह काम मरदई को । कहत "गुपाल" बीस नह की कमाई याते सबहीते भला यह पेसा किसनई को ।।

दोहा

खेती करत किसान के , मोते दुख सुनि लेउ ।
हर लै कै पिय खेत में , भूलि पाव मति देउ ।।

कबित्त

कारी होत देह सहे सीत घाम मेह नित रहै लेह देह सुख नही खान पान को । बरहे में वास राखे ब्यौहरे की आस ईतिभीति तें उदास गिरि मान नय मान को ।। राजै देत पोता हर जोता सुख सोता नाहि खोता दिन योही रहै लेसन सयान को । देह में न चाम रहै हाथ मे न दाम याते कहत "गुपाल" काम कठिन किसान को ।।

बेनी

बेनी नाम के दो तीन कवि होगये है। एक बेनी असनी के बन्दीजन थे। उनका समय सं० १६९० कहा जाता है। वे दिल्लगी की कविताए बनाने में बड़े निपुण थे। दूसरे बेनी जि० रायबरेली मे बेंती गाव के बन्दीजन थे। शिवसिंह सरोज मे उनका समय सं० १८४४ लिखा है। और तीसरे बेनी लखनऊ के वाजपेयी थे। उनका समय शिवसिंह सरोज मे सं० १८७६ लिखा है। तीसरे बेनी कविता में अपना नाम "बेनी प्रवीन" रखते थे। दिल्लगी की कविताए प्राय सब असनीवाले बेनी की बनाई हुई है। पहले और दूसरे बेनी की बहुत सी कविताओं मे यह निर्णय करना कठिन है कि कौन किसकी बनाई हुई है। तीसरे बेनी की कविता "बेनी प्रवीन" के नाम से सहज मे ही पहचानी जा सकती है। यहा हम पहले और दूसरे बेनी की कुछ कविताएं और नमूने के लिए एक कवित्त "बेनी प्रवीन" का भी उद्धृत करते है.—

कारीगर कोऊ करामात कै बनाय लायो लीनी दाम थोरे जानि नई सुघरई है। रायजू को रायजू रजाई दई राजी ह्वै के सहर मे ठौर ठौर सोहरत भई है। बेनी कवि पाय के अघाय रहे घरी द्वैक कहत न बने कछु ऐसी मति ठई है। सास लेत उड़िगो उपल्ला और भितल्ला सबै दिन द्वै के बाती हेत रूई रह गई है ॥ १ ॥

आध पाव तेल मे तयारी भई रोशनी की आध पाव रूई मे पोशाक भई बर की। आध पाव छाले के गिनौरा दियो भाइन को मागि मागि लायो है पराई चीज घर की। आधी आधी जोरि बेनी कवि की बिदाई कीनी ब्याहि आयो जब तें न बोले बात थिरकी। देखि देखि कागद तबीअत सुमादी भई सादी कहा भई बरबादी भई घर की ॥ २ ॥

सेर चार चाउर पसेरिक पिसान माड्यो तापै खरे डाटे कोउ साने बड़ी घानी ना। बहू को बुलाय मसलहत सिखाय कान पैठ जा रसोई कोऊ परसे बेगानी ना ॥ बेनी कवि कहै कहा आये आज याके यहा देखि

सुनि परे कहू अन्न की निसानी ना। कीनी मेहमानी जुरयो पान औ न पानी बकै आपै बड़ो दानी कोऊ जानी कोऊ जानी ना ।। ३ ।।

हावभाव विविध दिखावे भली भातिन सों मिलत न रतिदान जागे संग जामिनी। सुबरन भूषण सवारे ते विफल होत जाहिर किये ते हसे नर गजगामिनी ।। रहे मन मारे लाज लागत उघारे बात मन पछतात न कहत कहू भामिनी। बेनी कवि कहै बड़े पापन ते होत दोउ सूम को सुकवि औ नपुसक को कामिनी ।। ५ ।।

सभु नैन जाल औ फनी को फूतकार कहा जाके आगे महाकाल दौरत हरौलीते। सातो चिरजीवी पुनि मारकडे लोमस लो देख कम्पमान होत खोले जब झोलीते ।। गरल अनल औ प्रलै को दावानल भल बेनी कवि छेदि लेत गिरत हथोलीते। बचन न पावे धनवन्तरि जो आवे हर गोविन्द बचावै हरगोविन्द की गोली ते ।। ५ ।।

बार-बार लीखे लगी लाखन जुआ के जोट आखिन बरौनिन में कीचर छपानो है। कानन कनोई नाक चपटी चुवत टरे कारे कारे दतन में कीट लपटानो है ।। मूड पै मकर जारो दौलत अधारो लगै ओढे मैलवारो फटो वसन पुरानो है। बोलत हा थूक के फुहारे चले फूहरि के पाद पाद पीसत पिसान हू उड़ानो है ।। ६ ।।

गडि जात बाजी औ गयन्द गन अड़ि जात सुतुर अकडि जात मुसकिल गऊ की। दावत उठाय पाय धोखे जो धरत होत आप गरकाप रहि जात पाग मऊ की ।। बेनी कवि कहै देखि थर थर कापे गात रथन के पथ न विपद बरदऊ की। बार बार कहत पुकार करतार तोसो मीच है कबूल पै न कीच लखनऊ की ।। ७

चूक सो लगत चाखे लूक सो लगावै कठ ताप सरसावै है अपूरब अराम के। रस का न लेस चोपी रेसा है बिसेस छाड़ि दीन्हे सब देस पकसाने परे घाम के ।। बुरे बदसूरत बिलाने बदबोयदार बेनी कहै बकला बनाये मानो चाम के। कौडी के न काम के सु आये बिन दाम के हैं निपट निकाम है ये आम दयाराम के ।। ८ ।।

चीटी की चलावै को मसा के मुख आय जांय सांस की पवन लागे कोसन भगत है। ऐनक लगाय मरू मरू कै निहारे परै अनु परमानु की समानता खगत है। वेनी कवि कहै हाल कहा लौं वखान करौं मेरी जान ब्रह्म को विचारिवो सुगत है। ऐसे आम दीन्हें दयाराम मन मोद करि जाके आगे सरसों सुमेरु सी लगत है ॥ ९ ॥

वियत विलोकत ही मुनि मन डोलि उठे वोलि उठे वरही विनोद भरे वन वन। अकल विकल ह्वै विकाने रे पथिक जन ऊर्द्ध मुख चातक अवोमुख मराल गन ॥ वेनी कवि कहत मही के महाभाग भये सुखद संयोगिन वियोगिन के ताप तन। कंज-पुञ्ज गंजन कृषीदल के रंजन सो आये मानभंजन ये अंजन वरन घन ॥ १० ॥

करि की चुराई चाल सिंह को चुरायो लंक शशि को चुरायो मुख नासा चोरी कीर की। पिक को चुरायो वैन मृग को चुरायो नैन दसन अनार हासी वीजरी गम्भीर की ॥ कहै कवि वेनी वेनी व्याल की चुराइ लीनी रती-रती शोभा सव रति के शरीर की। अव तो कन्हैया जू को चितहू चुराइ लीन्ही छोरटी है गोरटी या चोरटी अहीर की ॥ ११ ॥

ऊंची चोली चिक्क मिसी दातन मे वातन में वार वार हेरि हेरि मन मुसकाने है। मुख के न दरस परस मरदूमिन के लै रहै मुकुर और अतर अंग साने है ॥ वेनी कवि कहै आहिऊहि में प्रवीन बड़े निपट निकाम कहूं काहू के न माने है। अजस के खाने जिन्हे कवि न वखाने जिन ऐसे धरे वाने ते जनाने सम जाने है ॥ १२ ॥

पृथु नल जनक जजाति मानधाता ऐसे केते भये भूप यश छिति पर छाइगे। काल चक्र परे सक्र संकरन होत जात कहा लौ गनावो विधि वासर विताइगे ॥ वेनी साज सम्पति समाज साज सेना कहा पायन पसारि हाथ खोले मुख वाइगे। छुद्र छितिपालन की गिनती गिनावै कौन रावन से वली तेऊ वुल्ला से विलाइगे ॥ १३ ॥

वेद मत सोधि सोधि देखि कै पुरान सवै सन्तन असन्तन को भेद को वतावतो। कपटी कपूत कूर कलि के कुचाली लोग कौन रामनाम हू

की चरचा चलावतो ॥ बेनी कवि कहै मानो मानो रे प्रमान यही पाहन से हिये कीन प्रेम उमगावतो । भारी भवसागर में कैसे जीव होते पार जो पै रामायण न तुलसी बनावतो ॥ १४ ॥

बदन सुधाकरै उघारत सुधाकरै प्रकास बसुधा करु सुधाकरै मुधा करै । चरन धरा धरै मृणालऊ धराधरै सू ऐसे अधराधरै ये बिम्ब अवराधरै ॥ बैनी दृग हा करै निहारत कहा करै सु बेनी कविता करै त्रिवेनी समता करै । सुरत मे सी करै सु मोहनै बसी करै विरचिहु यसी करै सु सौतिन मसी करै ॥ १५ ॥

मानव बनाये देव दानव बनाये यक्ष किन्नर बनाये पशु पक्षी नाग कारे है । दुरद बनाये लघु दीरघ बनाये केते सागर उजागर बनाये नदी नारे है । रचना सकल लोक लोकन बनाये ऐसी जुगुति मे बेनी परबीनन के प्यारे है । राधे को बनाय विधि धोयो हाथ जाम्यो रग ताको भयो चन्द्र कर झारे भये तारे है ॥ १६ ॥

वाजी के सुपीठ पै चढायो पीठि आपनी दै कवि हरिनाथ को कछोहा मान सादरै। चक्कवै दिल्ली के जे अथक्क अकबर सोऊ नरहरि पालकी को आपने कधा धरै ॥ बेनी कवि देनी की (औ) न देनी की न मोको सोच नावै नैन नीचे लखि वीरन को कादरै । राजन को दीबो कविराजन को काज अब राजन को लाज कविराजन को आदरै ॥ १७ ॥

सुखदेव मिश्र

सुखदेव मिश्र कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे । इनका जन्म स० १६९० के लगभग माना जाता है । ये कम्पिला के रहने वाले थे, और उसी नगर मे इनका विवाह भी हुआ था । इनके वशधर अब भी दौलतपुर, जिला रायबरेली मे वर्तमान है । स्वरचित वृत्तविचार नामक ग्रन्थ मे इन्होने अपने जन्मस्थान कम्पिला का और अपने पूर्वजो का विस्तृत वर्णन लिखा है ।

कुछ दिन तक कम्पिला मे विद्याध्ययन करने के बाद ये काशी चले

गये और वहाँ एक संन्यासी से साहित्य पढने लगे । वहा से संस्कृत और भाषा-साहित्य के पूर्ण विद्वान् होकर ये असोथर जिला फतेपुर के राजा भगवतराय खीची के यहां चले गये । वहा इनका बड़ा सम्मान हुआ । वहा कुछ दिन रहने के बाद ये क्रमश: औरङ्गजेब के मन्त्री फाजिल अली, अमेठी के राजा हिम्मतसिंह, मुरारिमऊ के राजा देवी-सिंह के यहा गये और सर्वत्र इन्होने पूरा सन्मान पाया । राजा देवी-सिंह के कहने ही से ये कम्पिला छोडकर सकुटुम्ब दौलतपुर मे आगये ।

इन्होने निम्नलिखित ग्रथो की रचना की है—

वृत्त-विचार, छन्द-विचार, फाजिलअली-प्रकाश, रसार्णव, शृङ्गारलता, अध्यात्म-प्रकाश, दशरथराय और नखशिख । वृत्त-विचार और छन्द-विचार पिङ्गल के ग्रथ है । मिश्र जी ने सस्कृत और प्राकृत मे भी कविताएं रची थी, परन्तु अब उनका कही पता नही चलता ।

इनकी कुछ कविताये यहा उद्धृत की जाती है—

ननद निनारी सासु मायके सिधारी अहै रैनि अधियारी भरी सूझत न करु है । पीतम को गौन सुखदेव न सुहात भौन दारुन बहत पौन लाग्यो मेघ झरु है । सङ्ग ना सहेली, बैस नवल अकेली, तन परी तलबेली महा लायो मैन सरु है । भई अधरात, मेरो जियरा डेरात, जागु जागु रे बटोही इहां चोरन को डरु है ॥१॥

जोहै जहा मगु नन्दकुमार तहा चली चन्दमुखी सुकुमार है ।
मोतिन ही को कियो गहनो सब फूलि रही जनु कुन्द की डार है ॥
भीतर ही जु लखी सु लखी अब वाहर जाहिर होत न दार है ।
जोन्हसी जोन्है गईमिलि यों मिलिजात ज्यो दूध मे दूधकी धार है॥२॥

यो कछु कीन्ही अचानक चोट जु ओट सखीन सकी कै दुकूल है ।
देह कपै मुँह पीरी परी सो कह्यो नहि जो ह्वै गयो हिय सूल है ॥
माझ उरोज मे आनि लग्यो अगिरात जही उचक्यो भुजमूल है ।
कौन है ख्याल ? खेलार अनोखे! निसक ह्वै ऐसे चलैयत फूल है ॥३॥

मीन की विछुरता कठोरताई कच्छप की हिये वाय करिवे को कोल

ते उदार है। बिरह बिदारिबे का बली नरसिंह जू सो बामन सो छली बलिदाऊ अनुदार है ॥ द्विज सो अजीत बनबीर बलदेव ही सो राम सो दयाल सुखदेव या विचार है। मौनता मे बौध कामकला मे कलकी चाल प्यारी के उरोज ओज दसौ अवतार है ॥४॥

मन्दर महिन्द गधमादन हिमालय में जिन्हे चल जानिये अचल अनुमाने ते। भारे कजरारे तैसे दीरघ दतारे मेघ मडल बिहुडे जेवै शुण्डा दड ताने ते ॥ कीरति विशाल छितिपाल श्री अनूप तेरे दान जो अमान का पै बनत बखाने ते। इतै कवि मुख जस आखर खुलत उतै पाखर समेत पील खुलै पीलखाने ते ॥५॥

सबलसिंह चौहान

सबलसिंह चौहान का जन्म सवत् १७०० के लगभग और मरण सवत् १७९२ के लगभग अनुमान किया जाता है । शिवसिंह ने इनको "इटावा के किसी गाव का जमीदार" लिखा है । इन्होने महाभारत के अठारहो पर्वों की कथा दोहे चौपाई मे लिखी है । कई पर्वों मे इन्होने उनके रचे जाने का सवत् भी दिया है। भीष्म पर्व स० १७१८ में, स्वर्गारोहण १७८१ में रचा गया। इससे मालूम होता है कि सारा महाभारत इन्होने ६५ वर्षों में समाप्त किया होगा । इन्होने लगातार परिश्रम नही किया होगा, जब जी मे कुछ उमङ्ग उठी, तब कुछ लिख डाला। भाषा महाभारत के सिवा इनका लिखा हुआ रूपविलास पिङ्गल, षटऋतु बरवे और भाषा ऋतुसंहार भी कहे जाते है। महाभारत मे इन्होने युद्धो का वर्णन बडा रोचक किया है। महाभारत में चक्रव्यूह युद्ध में अभिमन्यु के अन्तिम प्रयास की कथा का वर्णन सुनिये, ये कैसा करते है :—

अभिमनु घेरे आय सब, मारत अस्त्र अनेक।
जिमि मृगगण के यूथ मह, डरत न केहरि एक ॥

लैके सूल कियो परिहारा। बीर अनेक खेत मह मारा ॥
जूझी अनी भभरि कै भागे। हुसिके द्रोण कहन अस लागे ॥

धन्य धन्य अभिमनु गुनआगर । सब क्षत्रिन महं बडो उजागर ॥
धन्य सहोद्रा जग मे जाई । ऐसे वीर जठर जनमाई ॥
धन्य धन्य जग मे पितु पारथ । अभिमनु धन्य धन्य पुरुपारथ ॥
एक वीर लाखन दल मारे । अरु अनेक राजा संहारे ॥
धनु काटे शङ्का नहि मन मे । रुधिर प्रवाह चलत सब तन मे ॥
यहि अन्तर बोले कुरुराजा । धनुष नाहि भाजत केहि काजा ॥
एक वीर को सबै डरत है । घेरि क्यों न रथ धाय धरत है ॥
बालक देखु करि यह करणी । सेना जूझि परी सब धरणी ॥

दुर्योधन या विधि कह्यो, कर्ण द्रोण सों वैन ।
बालक सब सेना बधी, तुम सब देखत नैन ॥

यह कहि कै दुर्योधन आये । शब्द वीर आगे ह्वै धाये ॥
क्षत्री घेरो अभिमनु रन मे । मानहु रवि आच्छादित घन मे ॥
लै के खड्ग फरी गहि हाथा । काट्यो वहु क्षत्रिन को माथा ॥
अभिमनु धाइ खड्ग परिहारे । सम्मुख ज्यहि पावै त्यहि मारे ॥
भूरिश्रवा बाज दश छाटे । कुवर हाथ को खड़गहि काटे ॥
तीन बाण सारथि उर मारे । आठ बाण ते अश्व सहारे ॥
सारथि जूझि गिरे मैदाना । अभिमनु वीर चित्त अनुमाना ॥
यहि अन्तर सेना सब धाये । मारु मारु कै मारन आये ॥
रथ को खैंच कुवर कर लीन्हे । ताते मारु भयानक कीन्हें ॥
अभिमनु कोपि खम्भ परिहारे । यक यक घाव वीर सब मारे ॥

अर्जुनसुत इमि मारु किय, महावीर परचंड ।
रूप भयानक देखियतु, जिमि जम लीन्हे दण्ड ॥

क्रोधित होइ चहू दिशि धाये । मारि सबै सेना विचलाये ॥
यहि विधि किये भयानक भारत । साहम धन्य धन्य पुरुषारथ ॥
ऐसी मारु खम्भ सो कीन्हे । दश सहस्र राजा बध लीन्हे ॥
मारि सबै राजा विचलाये । कर लै गदा कुरूपति धाये ॥
शत बान्धव नृप -सगहि आये । अरु अनेक राजा मिलि धाये ॥

चहु दिशि महारथी सब घेरे । क्षत्री सबै वीर बहुतेरे ॥
नाना अस्त्र सबहिं परिहारे । निकट न जाहिं दूरि ते मारे ॥
दुर्योधन कहं देखन पाये । गहे खम्भ अभिमनु तब धाये ॥
जुरे वीर क्षत्री बहुतेरे । खम्भ घाव ते बधेउ घनेरे ॥
जब नरेस के निकटहिं आये । द्रोण गुरू दश बाण चलाये ॥

गुरू द्रोण अति क्रोध कै, मारे बाण अचूक ।
कुवर हाथ को खम्भ तब, काटि कियो दो टूक ॥

खम्भ कटे अभिमनु भे कैसे । मणि विनु फणिक विकल जग जैसे ॥
क्रोधित भये सहोद्रानन्दन । चरण घात कै तोरेउ स्यन्दन ॥
रथते कूदि कुवर कर लीन्हे । चका उठाय रणहिं शुभ कीन्हे ॥
चका कुवर कर शोभित कैसे । हरि कर चक्र सुदर्शन जैसे ॥
रुधिर प्रवाह चलत सब अङ्गा । महा शूर मन नेकु न भङ्गा ॥
गहि कै चका चहू दिशि धावै । जेहि पावै तेहि मारि गिरावै ॥
दुर्योधन पर चका चलाये । गमा रोपि कुरुनाथ बचाये ॥
क्षत्री घेरि लगे शर मारन । जुरे आइ केते हथियारन ॥
दुस्सासनसुत गदा प्रहारे । अभिमनु के शिर, ऊपर मारे ॥
जूझे कुअर परे तब धरनी । जग मह रही सदा यह करणी ॥

धन्य धन्य सब, कोउ कहै, कुअर रहौ मैदान ।
पै गुरु द्रोण मलीन मुख, कहे बचन परिमान ॥

कालिदास त्रिवेदी

कालिदास त्रिवेदी कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे । इनका जन्म अनुमान से सं० १७१० के लगभग बनपुरा गाव (जिला कानपुर) में हुआ । इनकी पुस्तकों से इनके जन्म का कुछ पता नही चलता । इनके पुत्र कवीन्द्र और पौत्र दूलह भी बड़े प्रसिद्ध कवि हुये । कालिदास औरंगजेब के दल मे किसी राजा के साथ स० १७४५ की बीजापुर-गोलकुण्डा वाली लड़ाई मे गये थे । इनके लिखे हुए केवल तीन ग्रन्थो का अभी तक पता चला

है—बधू-विनोद, कालिदास-हजारा, जजीरा। बधू विनोद नायिका-भेद का ग्रन्थ है। हजारा मे हिन्दी के पुराने २१२ कवियो के एक हजार छन्द संग्रह किये गये हैं। जजीरा मे ३२ घनाक्षरी छद बडे अद्भुत हैं। इनके रचे हुए राधा माधव बुधमिलन विनोद नामक एक और ग्रन्थ का भी नाम सुना जाता है।

इनकी कविता के कुछ नमूने नीचे लिखे जाते है—

गढन गढी से गढि महल मढी से मढि बीजापुर ओप्यो दलि मलि सुघराई मे। "कालिदास" कोप्यो वीर औलिया अलमगीर तीर तरवारि गह्यो पुहुमी पराई मे॥ बूद तें निकसि महिमडल घमड मची लोहू की लहरि हिमगिरि की तराई मे। गाड़ि कै सु झडा आड कीन्ही बादशाहत ताते डकरी चमुण्डा गोलकुण्डा की लडाई में॥ १॥

चूमो कर कज मजु अमल अनूप तेरो रूप के निधान कान्ह मो तन निहारि दे। कालिदास कहै मेरे पास हरि हेरि हरि माथे धरि मुकुट लकुट कर डारि दे॥ कुवर कन्हैया मुख चन्द की जुन्हैया चारु लोचन चकोरन की प्यासन निवारिदे। मेरे कर मेहंदी लगी है नंदलाल प्यारे लट उरझी है नकबेसर संभारि दे॥ २॥

प्रथम समागम के औसर नबेली बाल सकल कलानि पिय प्यारे को रिझायो है। देखि चतुराई मन सोच भयो प्रीतम के लखि परनारि मन संभ्रम भुलायो है। कालिदास ताही समै निपट प्रवीन तिया काजर लै भीतिहू मे चित्रक बनायो है। व्यात लिखी सिंहिनी निकट गजराज लिख्यो योनि ते निकसि छौना मस्तक पै आयो है॥ ३॥

आलम और शेख

ठाकुर शिवसिंह ने आलम को सनाढय ब्राह्मण लिखा है, और इनका जन्म सं० १७१२ बतलाया है। ये औरगजेब के समय मे थे, और औरंगजेब के पुत्र शाहजादा मुअज्जम के पास रहा करते थे। एक बार आलम ने शेख नामक रगरेजिन को अपनी पगड़ी रंगने को दी। भूल

से एक कागज का टुकडा, जिसमे आलम ने आधा दोहा लिखकर फिर किसी समय उसे पूरा करने के लिए बाध दिया था, बधा ही रह गया। पगडी धोते समय शेख ने उस कागज के टुकडे को खोल कर पढ़ा। उसमें यह लिखा था—

"कनक छरी सी कामिनी, काहे को कटि छीन।"

शेख ने उसके नीचे "कटि को कचन काटि विधि, कुचन मध्य धरि दीन" लिखकर, पगडी धोकर उसी मे बाध दिया। जब आलम को वह पगड़ी मिली और उन्होंने दोहे की पूर्ति हुई देखी, तब उसी समय वे शेख के घर गये, और उन्होने उसे एक आना पगडी की रगाई और एक हजार रुपये दोहे की पूर्ति कराई दी। उसी दिन से दोनों में प्रेम हो गया। यहा तक कि आलम न मुसलमानी मत ग्रहण करके शेख से विवाह कर लिया। आलम और शेख दोनो की कविताए प्रेम के चमत्कार से पूर्ण है। शेख के गर्भ से आलम के एक पुत्र भी था, जिसका नाम जहान था। एक दिन मुअज्जम ने हसी मे शेख से पूछा—"क्या आलम की औरत आपही है?" शेख ने तुरन्त उत्तर दिया—हा, "जहापनाह, जहान की मा मै ही हू"। मुअज्जम इससे बहुत लज्जित हुआ।

कोई-कोई ऊपर के दोहे के स्थान पर शेख द्वारा नीचे लिखे कवित्त के चतुर्थ चरण की पूर्ति होनी बतलाते है। तीन चरण आलम ने बनाये थे, चौथे चरण की पूर्ति शेख ने की—

प्रेम रग पगे जगमगे जगे जामिनि के जोबन की जोति जगि जोर उमगत है। मदन के माते मतवारे ऐसे घूमत है झूमत है झुकि झुकि झपि उघरत है।। आलम सो नवल निकाई इन नैननि की पाखुरी पद्दुम पै भवर थिरकत है। चाहत है उडिबे को देखत मयङ्कमुख जानत है रैनि ताते ताहि में रहत है।।

पडित नकछेदी तिवारी ने इसी घटना-सम्बन्धी एक और ही कवित्त लिखा है। वह यह है—

घट जमानिका है कारे कारे केश निशि खुटिला जराय जरे दीपक

उजारी है। बाजत मधुर मृदबानी सो मृदङ्ग धुनि नैना नटनागर लकुट लट धारी है ॥ आलम सुकवि कहै रति विपरीत समै श्रम विन्दु अजुलि पुहुप भरि डारी है। अधर सु रङ्गभूमि नृपति अनग आगे नृत्य करै बसर की मोती नृत्यकारी है ॥

इनमें से चाहे जिस छन्द की पूर्ति पर आलम रीझे हों, परन्तु इसमे सदेह नही कि दोनो बडे प्रेमी जीव थे। इन दोनो प्रेमियो की जितनी कविताए मिलती है, सब मे बडा चमत्कार है। शेख के कवित्तो मे श्री कृष्णचद्र के प्रति उसकी बड़ी भक्ति झलकती है। आलम और शेख की कविताओ का एक सग्रह "आलमकेति" नाम से प्रकाशित हुआ है। इसके सिवा माधवानल-कामकदला नामक ग्रथ भी इन्ही का रचा हुआ कहा जाता है। इधर उधर पुस्तकों मे कुछ फुटकर छन्द भी मिलते है। पाठको के विनोदार्थ कुछ छन्द हम नीचे प्रकाशित करते है—

रति रन विषे जे रहे है पति सनमुख तिन्है बकसीस बकसी है मै बिहसि कै। करन को ककन उरोजन को चन्द्रहार कटि माहि किकिनी रही है अति लसि कै ॥ "शेख" कहै आदर सो आनन को दीन्हो पान नैनन मे काजर बिराजै मन बसि कै। एरे बैरी बार ये रहे है पीठि पाछे ताते बार बार बाधति हौ बार-बार कसि कै ॥१॥

कैधो मोर सोर तजि गये री अनत भाजि कैधो उत दादुर न बोलत है ये दई। कैधो पिक चातक बधिक काहू मारि डारे कैधो बक पाति उत अतगति ह्वै गई ॥ "आलम" कहत आली अजहू न आये कत कैधो उत रीति विपरीति विधि ने ठई। मदन महीप की दोहाई फिरिबे ते रही जूझि गये मेघ कैधो बीजुरी सती भई ॥२॥

जा थल कीन्हें विहार अनेकन ता थल काकरी बैठि चुन्यो करै।
जा रसना सो करी बहु बातन ता रसना सो चरित्र गुन्यो करै ॥
आलम जौन से कुजन मे करी केलि तहा अब सीस धुन्यो करै।
नैनन में जो सदा रहते तिनकी अब कान कहानी सुन्यो करै ॥३॥

चंद को चकोर देखै निसि दिन को न लेखै, चद बिन दिन छवि

लागत अंध्यारी है। "आलम" कहत आली अलि फूल हेत चलै, काटे सी कटीली बेलि ऐसी प्रीति प्यारी है॥ कारो कान्ह कहत गवारी ऐसी लागति है, मोहि वाकी स्यामताई लागत उज्यारी है। मन की अटक तहा रूप को बिचार कहां, रीझिबे को पैडो तहा बूझि कछु न्यारी है॥४

पैडों सम सूधो बैडो कठिन किवार द्वार द्वारपाल नही तहा सबल भगति है। "शेख" भनि तहा मेरे त्रिभुवन राय है जु दीनबधु स्वामी सुरपतिन को पति है॥ बैरी को न बैर बरियाई को न परबेस हीने का हटक नाही छीने को सकति है। हाथी की हकार पल पाछे पहुँचन पावै चीटा की चिघार पहले ही पहुचति है॥ ५॥

लाल

लाल का पूरा नाम गोरेलाल पुरोहित था। भूषण की तरह ये भी बड़े वीर-कवि थे। इनका जन्म स० १७१४ के लगभग माना जाता है। ये महाराजा छत्रसाल के दरबार मे रहा करते थे। बुन्देलखड में प्रसिद्ध है कि महाराजा छत्रसाल के साथ किसी लडाई में गये थे, और वही लड कर मारे गये। इन्होने छत्रप्रकाश, विष्णुविलास और राजविनोद नामक तीन ग्रथ रचे। "छत्रप्रकाश" मे दोहा चौपाइयो मे महाराज छत्रसाल की जीवनी बडी हा उत्तमता से लिखी गई है। यह पुस्तक काशी ना० प्र० सभा द्वारा प्रकाशित हुई है। महाराज छत्रसाल शिवाजी महाराज के समय मे बुन्देलखण्ड में हुए थे। ये एक साधारण स्थिति से बढते-बढते बुन्देलखण्ड के राजा हो गये। इन्होने पाच सवार और २५ पयादों को लेकर औरगजेब ऐसे कट्टर बादशाह का सामना किया और अपने साहस के बल पर यवनो का बुन्देलखण्ड से पैर उखाड़ दिया। लाल की कविता के कुछ नमूने देखिये—

दान दया घमसान में, जाके हिये उछाह।
सोई वीर बखानिये, ज्यो छत्ता छितिनाह॥

जिन मे छिति छत्री छवि जाये। चारिहु युगन होत जे आये॥

भूमि भार भुज दडिन थम्भे । पूरन करे जु काज अरम्भे ॥
गाय वेद द्विज के रखवारे । जुद्ध जीति जे देत नगारे ॥
छत्रिन की यह वृत बनाई । सदा जग की खाय कमाई ॥
गाय वेद विप्रन प्रतिपालै । घाउ ऐंडधारिन पर घालै ॥
उद्यम ते सपति घर आवै । उद्यम करै सपूत कहावै ॥
उद्यम करै सग सब लागै । उद्यम ते जग मे जस जागै ॥
समुद उतरि उद्यम ते जैये । उद्यम ते परमेश्वर पैयं ॥
जब यह सृष्टि प्रथम उपजाई । जग वृति क्षत्रिन तब पाई ॥
यह ससार कठिन रे भाई । सबल उमड़ि निर्बल को खाई ॥
छत्रिनक राजसपति के काजै । बधुन मारत नधु न लाजै ॥
कछू कालगति जानि न जाई । सब मे कठिन कालगति भाई ॥
सदा प्रबुद्धि बुद्धि है जाकी । तासों कैसे चले कजाकी ॥
साहस तजि उर आलस माड़ै । भाग भरोसे उद्यम छाडै ॥
ताहि तजै जग सपति ऐसे । तरुनी तजै वृद्धपति जैसे ॥
बिपति मांह हिम्मत ठिक ठाने । बढती भये छिमा उर आने ॥
बचन सुदेस सभनि में भाखै । सुजस जोरिबे मे रुचि राखै ॥
जुद्धनि जुरे अकेले जैसे । सहज सुभाय वड़ेन के ऐसे ॥
जाकी धरम रीति जग गावै । जो प्रसिद्ध बलवन्त कहावै ॥
जाहि जोट भैयन की भावै । करत अनारबीन बनि आवै ॥
लै अवतार बड़े कुल आवै । जुद्ध न जुरै जगत जस गावै ॥
सत्य बचन जाके ठिक ठाये । प्रीति जोग ये सात गनाये ॥

गुरु गोविन्दसिंह

गुरु गोविन्दसिंह सिक्खो के दसवें गुरु थे । इनका जन्म सं० १७२३ जेष्ठ शुक्ला सप्तमी, शनिवार को अर्द्धरात्रि के समय पटना नगर मे हुआ । इनके पिता का नाम गुरु तेगबहादुर और माता का गूजरी जी था । इनका विवाह सात ही वर्ष की अवस्था में लाहौर निवासी हरियश खत्री की कन्या से हुआ ।

किसी समय गुरु गोविन्दसिंह हिन्दू जाति की ढाल हुए थे। इन्होने पजाब में, हिन्दू जाति और धर्म की रक्षा के लिये एक वीर जाति ही उत्पन्न करदी। विद्वानो का ये बड़ा आदर करते थे। स्वय भी बड़े मेधावी, देशकालज्ञ और रणनिपुण थे। भादो बदी ४ स० १७६४ की आधी रात मे सोते समय अताउल्ला और गूलखा नामक दो सगे भाई पठानो ने गोदावरी नदी के किनारे अविचल नामक नगर मे इनके पेट मे कटार भोक दी। क्योकि उन पठानो के पिता को गुरु ने युद्ध में मार डाला था। गुरु साहब चीखकर जाग उठे, और उन्होने उसी समय तलवार उठाकर लपककर ऐसा हाथ मारा कि खा के दो टुकडे हो गये। घाव से अधिक रक्त निकलने के कारण वही इनके भी प्राण गये।

गुरु गोविन्दसिंह सस्कृत और फारसी के विद्वान् और हिन्दी के कवि थे। इन्होने जाप, सुनीतिप्रकाश, ज्ञानप्रबोध, प्रेम, सुमार्ग, बुद्धि सागर, विचित्र नाटक और ग्रथ साहब के कुछ अश की रचना की। इनकी कविता के कुछ नमूने नीचे दिये जाते है—

निरजुर निरूप हो कि सुन्दर सरूप हो कि भूपन से भूप हो कि दाता महा दान हो। प्रान के बचैया दूध पूत के दिवैया रोग सोग के मिटैया किधौ मानी महामान हो॥ विद्या के विचार हो कि अद्वैत अवतार हो कि सिद्धता का सूर्त हो कि सिद्धता की सान हो। जोबन के जाल हो कि कालहू के गाल हो कि सत्रुन के सूल हो कि मित्रन के प्रान हो॥१॥

खूक मलहारी गज गदह विभूति धारी गिदुआ मसान बास करयोई करत है। घूघू मठ बासी लगे डोलत उदासी मृग तरवर सदीव मौन साधेई मरत है॥ बिन्दु के सिधैया ताहि ताज की बड़ैया देत बन्दरा सदीव पाय नागे ही फिरत है। अगना अधीन काम क्रोध मे प्रवीन एक ज्ञान के विहीन छीन कैसे के तरत है॥२॥

धन्य जियो तिह को जग मुख ते हरि चित्त मे युद्ध बिचारै।
देह अनित्त न नित्त रहै जसु नाव चढ़े भवसागर तारै॥

धीरज धाम बनाइ इहै तन बुद्धि सु दीपक ज्यो उजियारै।
ज्ञानहिं की बढनी मनो हाथ लै कायरता कतवार बुहारै ॥३॥
का भयो जो सबही जग जीत सु लोगन को बहु त्रास दिखायो।
और कहा जु पै देश विदेसन माहि भले गज गाहि बधायो ॥
जो मन जीतत है सब देस वहै तुमरे नृप हाथ न आयो।
लाज गई कछु काज सर्यो नहिं लोक गयो परलोक गमायो ॥४॥

घनआनन्द

घनआनन्द जाति के कायस्थ और निम्बार्क सम्प्रदाय के वैष्णव थे। दिल्ली मे रहते थे और मुहम्मदशाह के मुशी थे। गानविद्या और काव्य-रचना मे वडे प्रवीण थे। स० १७९६ मे जब नादिरशाह ने मथुरा को लूटा, ये उसी समय मारे गये। इनका जन्म स० १७४६ के लगभग माना जाता है। ये नागरीदासजी के समकालीन थे। वृन्दावन मे दोनों का सत्संग हुआ करता था।

श्रीकृष्णचन्द्र में इनका सच्चा प्रेम था।

मीरमुशी की हालत मे घनआनन्दजो सुजान नाम की एक वेश्या पर आसक्त थे। एक दिन बादशाह ने इन्हे ध्रुपद गाने को कहा। इन्होने इन्कार कर दिया, पर सुजान के कहने से भरे दरबार मे गा दिया। गाते समय पीठ बादशाह की तरफ और मुह सुजान की तरफ कर लिया था। गाने से बादशाह खुश तो वहुत हुआ, पर बेअदबी माफ न कर सका। उसने घनआनन्द को दिल्लीसे निकाल दिया। चलते समय इन्होने सुजान से साथ चलने को कहा। उसने अस्वीकार किया। ये उसके विरह में व्याकुल वृन्दावन पहुचे, वहा राधाकृष्ण के रग मे रंग गये। इनके प्रायः सभी छन्दो मे सुजान शब्द आया है। इनके सवैये छन्द बडे ही मनोहर है। इनके रचे हुए ग्रन्थो के नाम ये है – सुजानसागर, घनानन्द कवित्त, रस-केलिवल्ली, कृपाकाण्ड निबन्ध, कोकसार विरहलीला। इनकी कविता मे प्रेम और विरह का वर्णन वडा मनोहर हुआ है। भक्तिरस की कविता

भी इन्होंने अच्छी की है। इनकी कुछ कविताओ का सग्रह भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने "सुजान-शतक" नाम से किया है। उसमे सौ से अधिक सवैया, कवित्त, छप्पय और दोहे है।

यहा इनकी कविता के कुछ नमूने दिये जाते है—

(१)

पहिले अपनाय सुजान सनेह सो क्यो फिर नेह को तोरियै जू।
निरधार आधार दै धार मझार दई गहि बाह न बोरियै जू॥
घनआनद आपने चातक को गुन बाधि कै मोह न छोरियै जू।
रस प्याय कै ज्याय बढाय कै आस बिसास मै क्यो विष घोरियै जू॥

(२)

अति सूधो सनेह को मारग है जहा नेको सयानप बाक नही।
तहां साचे चलै तजि आपनपौ झिझकै कपटी जो निसाक नही॥
घनआनद प्यारे सुजान सुनौ इत एक तै दूसरो आक नही।
तुम कौन धौ पाटी पढे हौ लला मन लेहु पै देहु छटाक नही॥

(३)

पर कारज देह को धारे फिरौ परजन्य जथारथ ह्वै दरसौ।
निधि नीर सुधा समान करौ सब हो विधि सज्जनता सरसौ॥
घनआनद जीवन दायक हौ कछू मोरियौ पीर हिये परसौ।
कबहू वा बिसासी सुजान के आगन मो असुवान को लै बरसौ॥

(४)

तब तो दुरि दूरहि ते मुसकाय बचाय कै और की दीठि हसे।
दरसाय मनोज की मूरति ऐसी रचाय कै नैनन मे सरसे॥
अब तो उर माहि बसाय कै मारत एजू बिसासी कहा धौ बसे।
कछु नेह निबाहन जानत है तो सनेह की धार में काहे धसे॥

(५)

हमसौ हित कै कित कौ नित ही चित बीच बियोगहि पोइ चले।
सु अखैबट बीज लौ फैलि परचो बनमाली कहा धौ समोइ चले॥

घनआनंद छाह वितान तन्यो हमै ताप के आतप खोइ चले।
कवहू तेहि मूल तो वैठिये आइ सुजान जो वीजहिं वोइ चले ॥

(६)

गुरनि वतायो राधामोहन हू गायो सदा सुखद सुहायो वृन्दावन गाढे गहुरे। अद्भुत अभूत महि मडन परे तो परे जीवन को लाहु हाहा क्यो न ताहि लहुरे ॥ आनद को घन छायो रहत निरन्तर ही सरस सुदेय सों पपीहा पन वहुरे। जमुना के तीर केलि कोलाहल भीर ऐसी पावन पुलिन पै पतित परि रहुरे ॥

देव

देव बडे प्रेमी कवि थे। इनका जन्म स० १७३० वि० मे इटावे मे हुआ। ये सनाढच ब्राह्मण थे। ये ७२ ग्रथो के रचयिता कहे जाते है। हिन्दी के पुराने कवियो मे इतनी अधिक सख्या मे ग्रथ किसी ने नही रचे। अवतक इनके रचे हुए निम्नलिखित ग्रथो का पता लगा है—

(१) भाव विलास, (२) अष्टयाम, (३) भवानी विलास, (४) सुन्दरी सिन्दूर, (५) सुजान विनोद, (६) प्रेम तरङ्ग, (७) राग रत्नाकर, (८) कुशल विलास, (९) देव चरित्र, (१०) प्रेम चन्द्रिका (११) जाति विलास, (१२) रसविलास, (१३) काव्य रसायन, (१४) सुखसागर तरङ्ग, (१५) देव माया प्रपच (नाटक) (१६) वृक्ष विलास, (१७) पावस विलास, (१८) ब्रह्म दर्शन पचीसी, (१९) तत्व दर्शन पचीसी, (२०) आत्मदर्शन पचीसी, (२१) जगदशन पचीसी, (२२) रसानन्द लहरी, (२३) प्रेम दीपिका, (२४) सुमिल विनोद, (२५) राधिका विलास, (२६) नीति शतक, (२७) नखशिख।

इनके ग्रन्थ प्राय. सब शृङ्गार रस पर है। इनकी भाषा विशुद्ध ब्रजभाषा है। इनकी रचना मे प्रसाद, माधुर्य, अर्थव्यक्तता और ओज आदि गुणो का अच्छा चमत्कार देखने में आता है। इनकी कविता मे कही-कही बहुत गूढ-बारीक भाव ऐसे मिलते है जो पढते ही समझ में न आने से कुछ रूखे से जान पड़ते है। परन्तु कुछ विचार करने से उनमें मनोहर

रहस्य भरा हुआ मिलता है। उर्दू कवियो मे गालिब की कविता में भी ऐसी ही विलक्षणता पाई जाती है। देव का अपनी भाषा पर पूरा अधिकार दिखाई पडता है।

देव की कविता से ऐसा बोध होता है कि इन्होने सारे भारतवर्ष की यात्रा की थी। क्योकि इनकी कविता में भारत की प्रत्येक जाति की—प्रत्येक प्रान्त की स्त्रियो का विलास वर्णित है, जो प्रत्यक्ष देखे बिना नही हो सकता।

इन्होने स० १७४६ के लगभग औरंगजेब के बडे पुत्र आजमशाह को भाव विलास और अष्टयाम सुनाया था। आजमशाह ने इन ग्रन्थो की प्रशसा भी की थी। फिर ये क्रमशः भवानीदत्त वैश्य, कुशलसिंह (फफूद इटावा निवासी) राजा उद्योतसिंह, राजा भोगीलाल, पिहानी के अकबरअली खा आदि के आश्रय मे रहे। परन्तु किसी आश्रयदाता ने इनका यथोचित सम्मान नही किया। मेरी राय मे आश्रयदाताओ से सम्मान न पाने के कारण इनकी कविता का जटिल होना ही है।

देव बड़े विलासी और रसिक थे। शोभा और शृंगार के बड़े चाहक थे। इसमें सन्देह नही कि इनकी प्रतिभा ऊचे दरजे की थी, परन्तु खद है कि सिवा प्यारी और प्यारे के हाव भाव, कटाक्ष, सयोग, वियोग, हास-परिहास वर्णन के लोक-हित-साधन की चर्चा ये बहुत कम कर सके। इसी कारण से इनकी पुस्तको का आदर और प्रचार भी हिन्दू समाज मे कम हुआ। जीवन के अन्त समय मे इन्होने वैराग्य पर भी कुछ कविताएं लिखी। परन्तु वे इन्द्रिय-शैथिल्य के कारण लिखी गईं जान पडती है, समाज-हित की स्वाभाविक कामना से नही। देव की जीवनी का निचोड हमें यही जान पडता है कि ये विषयी और शृंगारी कवि थे, परन्तु थे सूक्ष्मदर्शी। इनको गाने-बजाने का भी बडा शौक था। इनका मरणकाल स० १८०२ के लगभग अनुमान किया जाता है। नमूने के तौर पर इनके कुछ छन्द यहा लिखे जाते है—

कुल की सी करनी कुलीन की सी कोमलता सील की सी सपति

सुसील कुल कामिनी। दान को सो आदर उदारताई सूर की सी, गुन की लुनाई गज गति गजगामिनी॥ ग्रीषम को सलिल सिसिर कैसो घाम "देव" हेमत हसत जलदागम की दामिनी। पूनो को सो चन्द्रमा प्रभात को सो सूरज सरद को सो वासुर वसन्त की सी जामिनी॥ १॥

सूरजमुखी सों चन्द्रमुखी को विराजै मुख कंदकली दन्त नासा किंशुक सुधारी सी। मधुप से लोयन मधूक दल ऐसे ओठ श्रीफल से कुच कच वेलि तिमिरारी सी॥ मोती बेल कैसे फूली मोतिन मे भूषण सुचीर गुल-चादनी सो चपक की डारी सी। केलि के महल फूलि रही फुलवारी "देव" ताही मे उज्यारी प्यारी भूली फुलवारी सी॥ ४॥

डार द्रुम पालन बिछौना नव-पल्लव के सुमन झगूला सोहे तन छवि भारी दै। पवन झुलावै केकी कीर बतरावे "देव" कोकिल हलामें हुल-सावे करतारी दै॥ पूरति पराग सो उतारा करै राई नोन कज कली नायिका लतानि सिर सारी दै। मदन महीप जू को बालक वसन्त ताहि प्रात हिये लावत गुलाब चटकारी दै॥ ३॥

नीलपट तन पर घन से घुमाय राखौ दन्तन की चमक छटा सी बिचरित हौ। हीरन की किरन लगाइ राखौ जुगुनू सी कोकिला पपीहा पिक बानी सो भरति हौं॥ कीच असुवान के मचाय कवि "देव" कहै बालम बिदेश को पधारिबो हरति हौ। इन्द्र कैसो धनु साज वेसर कसत आज रहु रे वसन्त तोहि पावस करति हौ॥ ४॥

आवन सुनो है मनभावन को भावती ने आखिन अनन्द आसू ढरकि ढरकि उठै। "देव" दृग दोउ दौरि जात द्वार देहरी लो केहरी सी सासै खरी खरकि खरकि उठै॥ टहलै करति टहलै न हाथ पांय रगमहलै निहारि तनी तरकि तरकि उठै। सरकि सरकि सारी दरकि दरकि आंगी औचक उच्चै है कुच फरकि फरकि उठै॥ ५॥

प्रेम चरचा है अरचा है कुल नेमन रचा है चित और अरचा है चित चारी को। छोड़्यो परलोक नरलोक वरलोक कहा हरख न सोक ना अलोक नरनारी को॥ घाम सित मेंह न विचारै सुख देहहु को प्रीति ना

सनेह उरु वन ना अध्यारी को । भूलेहु न भोग बडी विपति वियोग व्यथा जाग हू ते कठिन सयोग परनारी को ॥ ६ ॥

दुहू मुख चद ओर चितवें चकोर दोऊ चितै चितै चौगुनो चितैबो ललचात है । हासनि हसत बिन हासी बिहसत मिले गातनि सो गात वात बातनि मे बात है ॥ प्यारे तन प्यारी पेखि पेखि प्यारी पिय तन पियत न खात नेकहू न अनखात है । देखि ना थकत देखि देखि ना सकत "देव" देखिवे की घात देखि देखि न अघात है ॥ ७ ॥

वरुनी वघम्बर मे गूदरी पलक दोऊ कोये राते बसन भगोहे भेख रखिया । बूडी जलही मे दिन जामिनी रहति भौहे घूम शिर छायो विरहानल बिलखिया ॥ आसू ज्यो फटिक माल लाल डोरे सेल्ही सजि भई है अकेली तजि चेली सग सखिया । दीजिये दरस "देव" लीजिये सजोगिन कै जोगिन ह्वै बैठी वा वियोगिन की अखिया ॥ ८ ॥

सखी के सकोच गुरु सोच मृगलोचनि रिसानी पियसो जु उन नेकु हसि छुयो गात । देव वै सुभाय मुसुकाय उठि गये यहि सिसिक सिसिक निसि खोई रोय पायो प्रात ॥ को जानै री बीर बिनु बिरही विरह विथा हाय हाय करि पछिताय न कछू सोहात । बडे बडे नैनन सो आसू भरि भरि ढरि गोरो गोरो मुख आजु ओरो सो विलानो जात ॥ ९ ॥

कोई कहौ कुलटा कुलीन अकुलीन कहौ कोई कहौ रकिनी कलकिनी कुनारी हौं। कैसो नर लोक परलोक बर लोकनि मे लीन्ही मे अलोक लोक लोकनि ते न्यारी हौ ॥ तन जाउ, मन जाउ, "देव" गुरुजन जाउ, प्रान किन जाउ, टेक टरति न टारी हौ । वृन्दावन वारी बनवारी की मुकुट वारी पीतपट वारी वहि मूरति पै वारी हौ ॥ १० ॥

जब ते कुंवर कान्ह रावरी कलानिधान कान परी वाके कहू सुजस कहानी सी । तब ही ते देव देखी देवता सी हसति सी रीझति सी खीझति सी रूठति रिसानी सी ॥ छोही सी छली सी छीन लीनी सी छकी छिन सी जकी सी टकी सी लगी थकी थहरानी सी । बीधी सी वधी सी विष बूडति बिमोहित सी बैठी बाल बकति बिलोकति बिकानी सी ॥ ११ ॥

बालम विरह जिन जान्यो न जनम भरि वरि वरि उठे ज्यों ज्यों वर्सं वरफ राति । बीजनो ढुरावती सखी जन त्यो सीतहू मे सौति के सराप तन तायनि तरफराति । देव कहै स्वासन ही असुवा सुखात मुख निकसे न वात ऐसी सिसकी सरफराति । लोटि लोटि परत करोट पट पाटी लै लै सूखे जल सफरी ज्यों सेज पै फरफराति ।। १२ ।।

देव जू जो चित चाहिये नाह तो नेह निवाहिये देह हर्‌यो परै ।
जो समझाइ सुझाइये राह अमारग मे पग धोखे धर्‌यो परै ।।
नीके मे फीके ह्वै आसू भरो कत उचे उसास गर्‌यो क्यों भर्‌यो परै ।
रावरो रूप पियो अखियान भर्‌यो सो भर्‌यो उवर्‌यो सो ढर्‌यो परै ।।१३।।

चोट लगी इन नैनन की दिनहू इन खोरिन सो कढती हौ ।
देखन में मन मोहि लियो छिपि ओट झरोखन के झकती हौ ।।
"देव" कहै तुम हौ कपटी तिरछी अखिया करि कै तकती हौ ।
जानि परै न कछू मन की मिलिहौ कबहूं कि हमै ठगती हौ ।।१४।।

भेस भये विष भावते भूखन भूख न भोजन की कछु ईछी ।
मीचु की साध न सोवे की साध न दूध सुधा दधि माखन छीछी ।।
चदन तो चितयो नहि जात चुभी चित माहि चितौनि तिरीछी ।
फूल ज्यो सूल सिलासम सेज बिछौननि वीच बिछी जनु वीछी ।।१५।।

जाके न काम न क्रोध विरोध न लोभ छ्वै नहि छोभ को छाहौ ।
मोह न जाहि रहै जग वाहिर मोल जवाहिर ता अति चाहौं ।।
बानी पुनीत त्यो देवधुनी रस आरद सारद के गुन गाहौ ।
सील ससी सविता छविता कविता हि रचै कवि ताहि सराहौ ।।१६।।

कचन वेलि सी नौल वधू जमुनाजल केलि सहेलिनि आनी ।
रोमवली नवली कहि देव सु गोरे से गात नहात सुहानी ।।
कान्ह अचानक वोलि उठे उर वाल के व्यालवधू लपटानी ।
धाइ कै धाइ गही ससवाइ दुहू कर झारति अग अयानी ।।१७।।

वारे वड़े उमड़े सब जैवे को तौन तुम्हे पठवो वलिहारी ।
मेरे तो जीवन देव यही धनु या व्रज पाई मै भीख तिहारी ।।

जानै न रीति अथाइन की नित गाइनि मैं बन भूमि निहारी।
याहि कोऊ पहिचानै कहा कछु जानै कहा मेरो कुजबिहारी ॥१८॥
प्रेमपयोधि परो गहिरे अभिमान को फेन रह्यो गहिरे मन।
कोप तरगनि सो बहिरे पछिताय पुकारत क्यो बहिरे मन॥
देव जू लाज जहाज ते कूदि रह्यो मुख मूदि, अजौ रहिरे मन।
जोरत तोरत प्रीति तुही अब तेरी अनीति तुही सहि रे मन॥१९॥

आई हुती अन्हवावन नाइनि सोंधे लिये वह सूधे सुभायनि।
कचुकी छोरी उतै उपटैबे को ईंगुर से अग की सुखदायनि॥
"देव" सरूप की रासि निहारति पाय ते सीस लौं सीस तेपायनि।
ह्वै रही ठौर ही ठाढी ठगी सी, हसै कर ठोड़ी धरे ठकुरायनि॥२०॥

ऐसो जो हौं जानतो कि जैहै तू विषै के सग एरे मन मेरे, हाथ पाव तेरे तोरतो। आजु लौं हौ कत नरनाहन की नाही सुनि, नेह सो निहारि हारि बदन निहारतो॥ चलन न देतो "देव" चचल अचल करि, चाबुक चितावनीन मारि मुह मोरतो। भारी प्रेम पाथर नगारो है गरे सो बाधि राधावर विरुद के बारिधि मे बोरतो॥ २१॥

श्रीपति

श्रीपति कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। इनका निवासस्थान काल्पी था। इन्होने स० १७७७ में काव्य सरोज' नामक ग्रथ बनाया। इसके सिवा विक्रमविलास, कवि कल्पद्रुम, सरोज कलिका, अलकार गगा आदि ग्रथ भी इनके रचे हुये कहे जाते हैं। ये अच्छे कवि थे। इनकी कविता के कुछ नमूने नीचे दिये जाते हैं—

उर्द के पचाइबे को हीग अरु सोठ जैसे केरा को पचाइबे को घिव निरधार है। गोरस पचाइबे को सरसो प्रबल दण्ड आम के पचाइबे को नीबू को अचार है॥ श्रीपति कहत परधन के पचाइबे को कानन छुआय हाथ कहिबो नकार है। आज के जमाने बीच राजा राव जाने सबै रीझि के पचाइबे को वाह वा डकार है॥ १॥

सारस के नादन को बाद न सुनात कहू नाहक की बकवाद दादुर महा करै। श्रीपति सुकवि जहा ओज ना सरोजन की फूल ना फुलत जाहि चित दै चहा करै॥ बकन की बानी की विराजत है राजधानी काई सो कलित पानी फेरत हहा करै। घोघन के जाल जामे नरई सेवाल व्याल ऐसे पापी ताल को मराल लै कहा करै॥२॥

ताल फीको अजल कमल विन जल फीको कहत सकल कवि हवि फीको रूम को। विन गुन रूप फीको ऊसर को कूप फीको परम अनूप भूप फीको विन भूम को॥ श्रीपति सुकवि महावेग विन तुरी फीको जानत जहान सदा जोह फीको धूम को। मेह फीको फागुन अबालक को गेह फीको नेह फीको तिय को सनेह फीको सूम को॥३॥

तेल नीको तिल को फुलेल अजमेर ही को साहब दलेल नीको मैल नीको चद को। विद्या को विवाद नीको रामगुण नाद नीको कोमल मधुर सदा स्वाद नीको कद को॥ गऊ नवनीति नीको ग्रीषम को शीत नीको श्रीपति जू मीत नीको विना फरफद को। जातरूप घट नीको रेशम को पट नीको वसीवट नट नीको नन्द को॥४॥

चोरी नीकी चोर की सुकवि की लबारी नीकी गारी नीकी लागती ससुरपुर धाम की। नाही नीकी मान की सयान की जबान नीकी तान नीकी तिरछी कमान मुलतान की। तातहू की जीति नीकी निगम प्रतीति नीकी श्रीपति जू प्रीत नीकी लागे हरिनाम की। रेवा नीकी बानखेत मुदरी सुवा की नीकी मेवा नीकी कावुल की सेवा नीकी राम की॥५॥

कीरति किशोरी गोरी तेरे गात की गुराई बीज सी सुहाई तेरे विधुकर जाल सी। सहज सुवास सखी केसर सी केतकी सी कौल सी सुखद अति अमल मराल सी। "श्रीपति" निदाघ नवनीति मखमल सम सर्व ऋतु गरम परम मिही साल सी। कनक प्रवाल सी नवीन दिनपाल सी कपूर की मसाल सी सलोनी लाल माल सी॥६॥

रोहिनी रमन की मरीची सी सुखद सीची सोहनी सरस महा मोहनी के थल सी। "श्रीपति" सुकवि छवि रवि वाल कर सी है मैन के

मुकुर सो अमलगग जल सी ।। गोरी गरबीली तेरे गात की गुराई आगे चपला निकाई अति लागत सहल सी । माखन महल सी पराग के चहल सी गुलाब के पहल सी नरम मखमल सी ।।७।।

हारिजात बारिजात मालती बिदारि जात वारि जात पारिजात सोधन में करी सी । माखन सी मैन सी मुरारी मखमल सम कोमल सरस तन फूलन की छरी सी ।। गहगही गरुवी गुराई गोरी गोरे गात श्रीपति बिल्लौर सीसी ईंगुर सौ भरीसी । विज्जु थिर धरी सी कनक रेख करी सी प्रबाल छविहरी सी लसत लाल लरी सी ।।८।।

कैसे रतिरानी के सिधोरे कवि "श्रीपति" जू जैसे कलधौत के सरोरुह सवारे है । कैसे कलधौत के सरोरुह सवारे कहि जैसे रूपनट के बटा से छवि ढारे है ।। कैसे रूप नटके बटा से छवि ढारे कहु जैसे काम भूपति कै उलटे नगारे है । कैसे काम भूपति के उलटे नगारे कहु जैसे प्राणप्यारी ऊचे उरज तिहारे है ।।९।।

वृन्द

वृन्द औरङ्गजेब के दरबारी कविथे। औरङ्गजेब का पोता अजीमुश्शान ब्रजभाषा और उर्दू का अच्छा कवि और कवियो का आश्रयदाता था । उसने वृन्द को औरङ्गजेब से माग लिया था । वह बङ्गाल, बिहार और उडीसे का सूबेदार था, और ढाके मे रहा करता था। वृन्द को भी वह अपने साथ ढाके ही मे रखता था ।

वृन्द ने सात सौ दोहो की दृष्टान्त सतसई या वृन्दविनोद सतसई नाम की पुस्तक लिखी है । उसके अन्त मे कवि ने स्वय लिखा है—

समय सार दोहानि कौ , सुनत होय मन मोद ।
प्रकट भई वह सतसई , भाषा वृन्दविनोद ।।
अति उदार, रिझवार जग , शाह अजीमुश्शान ।
सतसैया सुनि बृन्द को , कीनी अति सनमान ।।
सवत ससि रस बार ससि , कातिक सुदि ससिवार ।
सातै ढाका सहर में , उपज्यो यहै विचार ।।

अन्तिम दोहे से सतसई का निर्माणकाल स० १७६१, कातिक शुक्ला सप्तमी, सोमवार निकलता है। और यह भी पता चलता है कि सतसई ढाका शहर मे लिखी गई।

वृन्दावननिवासी गोस्वामी किशोरीलाल जी ने वृन्द कवि के विषय मे काकरौली-नरेश स्व० श्री गोस्वामी बालकृष्णलालजी से सुनी हुई कुछ बाते प्रकाशित की है। उनमे से कुछ ये है—

'यह कवि गौड ब्राह्मण कुल में मथुरा प्रात के किसी गांव में पैदा हुआ था। इसने कहां और कितनी शिक्षा पाई, इसका कुछ पता नही। किसी तरह यह औरङ्गजेब के दरबार में पहुच गया, और दरबारी कवि बना लिया गया। एक दिन यह मथुरा के उस पार श्रीगोकुल जी के ठाकुर श्री गोकुलनाथ जी के दर्शनो को गया। और वहां के तत्कालीन गोस्वामीजी का शिष्य हो गया। इसीसे इसने अपनी सतसई के मङ्गला चरन में "श्री गुरुनाथ प्रभाव तें" इत्यादि कहकर वस्तु निर्देशात्मक मङ्गलाचरण किया है। श्री गोकुलनाथजी की गद्दी के आरभ से लेकर आज तक जितने शिष्य हुये है, उन सब का संक्षिप्त इतिवृत वहा के वही-खातो में लिखा हुआ है। सिहोर के श्रीयुत गोविन्द गिल्लाभाई कहते है कि "वृन्द का जन्म मारवाड़ में जोधपुर ताबा के मेड़ता गाव में हुआ है। उनके वंशज आजकल मेडता में जयपुर मे, और किसनगढ में रहते है।" उन्होंने वृन्द कवि के बनाये सब ग्रन्थो के नाम और चित्र देकर उनका जीवनचरित्र छपाया है।

"वृन्द कवि ने दृष्टान्त सतसई के अतिरिक्त और भी कोई काव्य-ग्रथ बनाया होगा। कारण, उसकी छाप के कवित्त, सवैये और पद आदि भी सुनने में आते है।"

सतसई के सिवा वृन्द-रचित "भाव पंचासिका" नाम की एक और पुस्तक सुनी जाती है। इसका नाम हमें भारतजीवन प्रेस की पुस्तकों के सूचीपत्र में मिला था। पर पुस्तक हमारे देखने मे नही आई। याद पड़ता है कि भारतजीवन के सूचीपत्र में यह भी जिक्र था कि पुस्तक

सवैया छन्दों मे है । मिश्रबन्धुओं ने अपने विनोद मे वृन्द-रचित "शृङ्गार-शिक्षा" नाम की एक और पुस्तक का उल्लेख किया है ।

वृन्द का जन्म-सवत् १७४२ के लगभग माना जाता है । क्योकि वृन्द ने १७६१ में सतसई लिखी । १७४२ को जन्म-संवत् मानने से उस समय उनकी आयु १९ वर्ष की हुई । सतसई लिखने के पहले वे शिक्षा पाकर औरगजेब के दरबार मे पहुचे । वहां कुछ दिन रहकर अपनी कवित्व-शक्ति का परिचय देकर ही वे अजीमुश्शान के कृपापात्र हुए होगे । इतना सब १९ वर्ष की आयु में किसी दैवी शक्ति ही से संभव है । दृष्टान्त-सतसई जैसा अनुभवपूर्ण ग्रंन्थ लिखने के समय वृन्द की आयु ३० वर्ष से कम न रही होगी । अतएव वृन्द का जन्म सवत् १७३० के लगभग मानना चाहिये ।

वृन्द की कविता नीति-विषयक है । हिन्दी मे वृन्द के समान किसी कवि ने नीति पर सुदर दोहे नही लिखे । दोहो की भाषा बड़ी सरल है, और बोलचाल मे दृष्टान्त के ढङ्ग पर शहरो से लेकर गांवो तक उनका प्रचार भी बहुत है । दोहों के सिवा वृन्द की अन्य कविता भी बहुत सरस है । उनका एक प्रसिद्ध सवैया यहा लिखा जाता है--

जो कछु वेद पुरान कही सुनि लीनी सबै जुग कान पसारे ।
लोकहु मे यह ख्यात प्रथा छिन में खल कोटि अनेकन तारे ॥
"बृन्द" कहै गहि मौन रहै किमि हौ हठ कै बहु बार पुकारे ।
बाहर ही के नही सुनौ हे हरि ! भीतर हू ते अहौ तुम कारे ॥

यह सवैया भावपचासिका का जान पडता है । आगे दृष्टान्त-सतसई से कुछ दोहे चुनकर लिखे जाते है—

नीकी पै फीकी लगै, बिन अवसर की बात ।
जैसे बरनत युद्ध मे, रस शृगार न सुहात ॥ १ ॥
फीकी पै नीकी लगै, कहिये समय विचारि ।
सब को मन हर्षित करै, ज्यौ विवाह में गारि ॥ २ ॥

जो जाको गुन जानही , सो तिहि आदर देत ।
कोकिल अबहि लेत है , काग निबोरी हेत ॥ ३ ॥
जाही ते कछु पाइये , करिये ताकी आस ।
रीते सरवर पै गये , कैसे बुझत पियास ॥ ४ ॥
गुन हो तऊ मगाइये , जो जीवन सुख भौन ।
आग जरावत नगर तऊ , आग न आनत कौन ॥ ५ ॥
रस अनरस समझै न कछु , पढ़ै प्रेम की गाथ ।
बीछू मन्त्र न जानही , सांप पिटारे हाथ ॥ ६ ॥
कैसे निबहै निबल जन , कर सबलन सों गैर ।
जैसे बस सागर विषै , करत मगर सो वैर ॥ ७ ॥
दीबो अवसर को भलो , जासों सुधरै काम ।
खेती सूखे बरसिवो , घन को कौने काम ॥ ८ ॥
अपनी पहुच विचारि कै , करतब करिये दौर ।
तेते पाव पसारिये , जेती लावी सौर ॥ ९ ॥
पिसुन छल्यो नर सुजन सों , कसत बिसास न चूकि ।
जैसे दाध्यो दूध को , पीवत छाछहिं फूकि ॥ १० ॥
विद्याधन उद्यम बिना , कहौ जु पावै कौन ।
बिना डुलाये ना मिले , ज्यों पखा की पौन ॥ ११ ॥
ओछे नर की प्रीति की , दीनी रीति बताय ।
जैसे छीलर ताल जल , घटत घटत घट जाय ॥ १२ ॥
बुरे लगत सिख के बचन , हिये विचारो आप ।
करुवो भेषज बिन पिये , मिटै न तन की ताप ॥ १३ ॥
गुरुता लघुता पुरुष की , आश्रय वशतें होय ।
करी वृन्द मे विंध्य सो , दर्पन मे लघु सोय ॥ १४ ॥
रहे समीप बड़ेन के , होत बड़ो हित मेल ।
सबही जानत बढ़त है , वृक्ष बराबर बेल ॥ १५ ॥

होय बडेरु न हूजिये , कठिन मलिन मुख रङ्ग ।
मर्दन बधन छत सहत , कुच इन गुननि प्रसग ॥ १६ ॥
कहू जाहु नाहि न मिटत , जो विधि लिख्यो लिलार ।
अकुश भय करि कुभ कुच , भये तहा नख मार ॥ १७ ॥
फेर न ह्वै है कपट सो , जो कीजे व्यौपार ।
जैसे हाडी काठ की , चढै न दूजी बार ॥ १८ ॥
करिये सुख को होत दुख , यह कहो कौन सयान ।
वा सोने को जारिये , जासों टूटे कान ॥ १९ ॥
नयना देय बताय सब , हिय कौ हेत अहेत ।
जैसे निर्मल आरसी , भली बुरी कहि देत ॥ २० ॥
अति परचै ते होत है , अरुचि अनादर भाय ।
मलयागिरि की भीलनी , चदन देति जराय ॥ २१ ॥
भले बुरे सब एक सो , जौ लौं बोलत नाहि ।
जानि परतु है काक पिक , ऋतु बसत के माहि ॥ २२ ॥
निष्फल श्रोता मूढ पै , कविता बचन विलास ।
हाव भाव ज्यो तीयके , पति अधे के पास ॥२३॥
हितहू की कहिये न तिहि , जो नर होय अबोध ।
ज्यो नक्टे को आरसी , होत दिखाये क्रोध ॥ २४ ॥
सबै सहायक सबल के , कोउ न निबल सहाय ।
पवन जगावत आग को , दीपहि देत बुझाय ॥ २५ ॥
कछु बसाय नहि सबलसों , करै निबल पर जोर ।
चले न अचल उखार तरु , डारत पवन झकोर ॥ २६ ॥
रोष मिटे कैसे कहत , रिस उपजावन बात ।
ईंधन डारे आगमो , कैसे आग बुझात ॥ २७ ॥
जो जेहि भावे सो भलो , गुन को कछु न विचार ।
तज गजमुकता भीलनी , पहिरति गुज्जा हार ॥ २८ ॥

दुष्ट न छांडे दुष्टता, कैसे हूं सुख देत।
धोये हू सौ बेर के, काजर होत न सेत ॥ २९ ॥
कहु अवगुन सोइ होत गुन, कहु गुन अवगुन होत।
कुच कठोर त्यो हैं भले, कोमल बुरे उदोत ॥ ३० ॥
जाको जैसो उचित तिहिं, करिये सोइ विचारि।
गीदर कैसे ल्याइ है, गजमुक्ता गज मारि ॥ ३१ ॥
जैसें बधन प्रेम को, तैसो बध न और।
काठहि भेदै कमल को, छेद न निकरै भौर ॥ ३२ ॥
जे चेतन ते क्यो तजै, जाकों जासों मोह।
चुबक के पीछे लग्यो, फिरत अचेतन लोह ॥ ३३ ॥
जो पावै अति उच्च पद, ताकौ पतन निदान।
ज्यों तपि तपि मध्याह्नलौं, अस्त होतु है भान ॥ ३४ ॥
जिहि प्रसग दूषन लगे, तजिये ताको साथ।
मदिरा मानत है जगत, दूध कलाली हाथ ॥ ३५ ॥
जाके संग दूषण दुरै, करिये तिहि पहिचानि।
जैसे समझै दूध सब, सुरा अहीरी पानि ॥ ३६ ॥
मूरख गुन समझै नही, तौ न गुनी मे चूक।
कहा घट्यो दिन को विभौ, देखै जो न उलूक ॥ ३७ ॥
करै बुराई सुख चहै, कैसे पावै कोइ।
रोपै बिरवा आक की, आम कहां ते होइ ॥ ३८ ॥
बहुत निबल मिल बल करै, करै जु चाहै सोय।
तिनकन की रसरी करी, करी निबन्धन होय ॥ ३९ ॥
साच झूंठ निर्णय करै, नीति निपुन जो होय।
राजहंस बिन को करै, छीर नीर को दोय ॥ ४० ॥
दोषहिं को उमहै गहै, गुन न गहै खललोक।
पियै रुधिर पय ना पियै, लागि पयोधर जोंक ॥ ४१ ॥

कारज धीरै होतु है, काहे होत अधीर।
समय पाय तरुवर फलै, केतक सींचो नीर ॥ ४२ ॥
क्यों कीजै ऐसो जतन, जाते काज न होय।
परवत पर खोदै कुआ, कैसे निकसै तोय ॥ ४३ ॥
वीर पराक्रम ना करे, तासो डरत न कोइ।
बालकहू को चित्र को, बाघ खिलौना होइ ॥ ४४ ॥
उत्तम जन सो मिलत ही, अवगुन सो गुन होय।
घनसंग खरो उदधि मिलि, बरसै मीठो तोय ॥ ४५ ॥
करत करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात तें, सिल पर परत निसान ॥ ४६ ॥
भली करत लागति विलम, विलम न बुरे विचार।
भवन बनावत दिन लगै, ढाहत लगत न वार ॥ ४७ ॥
कुल सपूत जान्यो परै, लखि सुभ लच्छन गात।
होनहार बिरवान के, होत चीकने पात ॥ ४८ ॥
छोटे मन में आय है, कैसे मोटी बात।
छेरी के मुह में दियो, ज्यो पेठा न समात ॥ ४९ ॥
होत निवाह न आपनो, लीने फिरे समाज।
चूहा बिल न समात है, पूछ बाधिये छाज ॥ ५० ॥
अपनी प्रभुता को सबै, बोलत झूठ बनाय।
वेश्या बरस घटावही, योगी बरस बढ़ाय ॥ ५१ ॥
कछु कहि नीच न छेड़ियै, भलो न वाको संग।
पाथर डारे कीच में, उछरि बिगारै अंग ॥ ५२ ॥
ऊपर दरसै सुमिल सा, अन्तर अनमिल आक।
कपटी जन की प्रीति है, खीरा की सी फांक ॥ ५३ ॥
सब सो आगे होय कै, कबहु न करिये बात।
सुधरे काज समाज फल, बिगरे गारी खात ॥ ५४ ॥

बुरो तऊ लागत भलो, भली ठौर पर लीन।
तिय नैननि नीको लगे, काजर जदपि मलीन ॥ ५५ ॥
गुरुमुख पढ़्यो न कहतु है, पोथी अर्थ विचारि।
सो शोभा पावै नहीं, जार-गर्भ-युत नारि ॥ ५६ ॥
छमा खड्ग लीने रहै, खल को कहा बसाय।
अगिन परी तृनरहित थल, आपहि ते बुझि जाय ॥ ५७ ॥
ओछे नर के पेट मे, रहै न मोटी बात।
आध सेर के पात्र में, कैसे सेर समात ॥ ५८ ॥
वचन रचन का पुरुष के, कहूँ न छिन ठहराय।
ज्यो कर पद मुख कछप के, निकसि निकसि दुर जाय ॥ ५९ ॥
जूवा खेले होतु है, सुख सम्पति को नास।
राजकाज नल ते छुट्यो, पाडव किय बनबास ॥ ६० ॥
सरस्वति के भंडार की, बड़ी अपूरब बात।
ज्यों खरचै त्यों त्यों बढ़ै, बिन खरचै घट जात ॥ ६१ ॥
विरह पीर व्याकुल भए, आयो पीतम गेह।
जैसे आवत भाग ते, आग लगे पर मेह ॥ ६२ ॥
भले बंस को पुरुष सो, निहुरै बहु धन पाय।
नवै धनुष सदबंश को, जिहि द्वै कोटि दिखाय ॥ ६३ ॥
लोकन के अपवाद को, डर करिये दिन रैन।
रघुपति सीता परिहरी, सुनत रजक के बैन ॥ ६४ ॥
कहा कहौं विधि को अविधि, भूले परे प्रवीन।
मूरख को सम्पति दई, पंडित संपतिहीन ॥ ६५ ॥
वह संपति केहि काम की, जिन काहू पै होउ।
नित्य कमावै कष्ट करि, बिलसै औरहि कोउ ॥ ६६ ॥
तृनहूं ते अरु तूलते, हरुवो याचक आहि।
जानतु है कछु मागि है, पवन उड़ावत नाहि ॥ ६७ ॥

सेइय नृप गुरुतिय अनिल , मध्य भाग जग माहि ।
है विनाश अति निकट ते , दूर रहे फल माहि ॥ ६८ ॥

बैताल

बैताल कवि का जन्म स० १७३४ मे हुआ । ये विक्रमशाह के दरबार मे रहते थे । इन्होंने अपने छन्द प्राय. विक्रम को सम्बोधन करके बनाये हैं । ये नीति-विषयक बडी अच्छी कविता करते थे । इनका रचा हुआ कोई ग्रथ नही मिलता । केवल थोडे-से स्फुट छन्द मिलते है । उनमें से कुछ छन्दो को हम नीचे प्रकाशित करते है—

जीभि जोग अरु भोग जीभि बहु रोग बढावै ।
जीभि करै उद्योग जीभि लै कैद करावै ॥
जीभि स्वर्ग लै जाय जीभि सब नरक दिखावै ।
जीभि मिलावै राम जीभि सब देह धरावै ॥
निज जीभि ओठ एकग्र करि बाट सहारे तोलिये ।
बैताल कहै विक्रम सुनो जीभि सभारे बोलिये ॥१॥

टका करै कुलहूल टका मिरदङ्ग बजावै ।
टका चढै सुखपाल टका सिर छत्र धरावै ॥
टका माय अरु बाप टका भैयन को भैया ।
टका सास अरु ससुर टका सिर लाड़ लड़ैया ॥
अब एक टके बिनु टकटका रहत लगाये रात दिन ।
बैताल कहै विक्रम सुनो धिक जीवन एक टके बिन ॥२॥

मरै बैल गरियार मरै वह अडियल टट्टू ।
मरै करकसा नारि मरै वह खसम निखट्टू ॥
बाभन सो मरि जाय हाथ लै मदिरा प्यावै ।
पूत वही मरि जाय जु कुल मे दाग लगावै ॥
अरु बे नियाब राजा मरै तबै नीद भरि सोइये ।
बैताल, कहै विक्रम सुनो एते मरे न रोइये ॥ ३ ॥

राजा चचल होय मुलुक को सर करि लावै ।
पंडित चचल होय सभा उत्तर दै आवै ॥
हाथी चंचल होय समर मे सूड़ि उठावै ।
घोड़ा चचल होय झपटि मैदान दिखावै ॥
है ये चारो भले राजा पडित गज तुरी ।
बैताल कहै विक्रम सुनो तिरिया चचल अति बुरी ॥ ४ ॥

दया चट्ट ह्वै गई धरम धँसि गयो धरन मे ।
पुण्य गयो पाताल पाप भो बरन बरन में ॥
राजा करै न न्याय प्रजा की होत खुवारी ।
घर घर मे बेपीर दुखित भे सब नर नारी ॥
अब उलटि दान गजपति मगै सील सतोष कितै गयो ।
बैताल कहै विक्रम सुनो यह कलजुग परगट भयो ॥ ५ ॥

मर्द सीस पर नवै मर्द बोली पहिचानै ।
मर्द खिलावै खाय मर्द चिन्ता नहि मानै ॥
मर्द देय औ लेय मर्द को मर्द बचावै ।
गाढ़े सकरे काम मर्द के मर्दै आवै ॥
पुनि मर्द उनहि को जानिये दुखसुख साथी दर्द के ।
बैताल कहै विक्रम सुनो लच्छन है ये मर्द के ॥ ६ ॥

चोर चुप्प ह्वै रहै रैन अधियारी पाये ।
संत चुप्प ह्वै रहै मढी मे ध्यान लगाये ॥
बधिक चुप्प ह्वै रहै फांसि पंछी लै आवै ।
छैल चुप्प ह्वै रहै सेज पर तिरिया पावै ॥
वर पिपर पात हस्ती स्रवन कोइ कोइ कवि कुछ कुछ कहै ।
बैताल कहै विक्रम सुनो चतुर चुप्प कैसे रहै ॥ ७ ॥

ससि बिन सूनी रैन ज्ञान बिन हिरदै सूनो ।
कुल सूनो बिन पुत्र पत्र बिन तरुवर सूनो ॥

गज सूनो इक दत ललित बिन सायर सूनो ।
बिप्र सून बिन वेद और बिन पुहुप बिहूनो ।।
हरिनाम भजन बिन सत अरु घटा सून बिन दामिनी ।
बैताल कहै विक्रम सुनो पति बिन सूनी कामिनी ।। ८ ।।
बुधि बिन करे बेपार दृष्टि बिन नाव चलावे ।
सुर बिन गावे गीत अर्थ बिन नाच नचावे ।।
गुन बिन जाय विदेश अकल बिन चतुर कहावे ।
बल बिन बाधे युद्ध हौस बिन हेत जनावे ।।
अनइच्छा इच्छा करे, अनदीठी बाता कहे ।
बैताल कहै विक्रम सुनो, यह मूरख की जात है ।। ९ ।।
पग बिन कटे न पथ बाहु बिन हटे न दुर्जन ।
तप बिन मिले न राज्य भाग्य बिन मिले न सज्जन ।।
गुरु बिन मिले न ज्ञान द्रव्य बिन मिले न आदर ।
बिना पुरुष सिंगार मेघ बिन कैसे दादुर ।।
बैताल कहै विक्रम सुनो, बोल बोल बोली हटे ।
धिक्क धिक्क ये पुरुष को मन मिलाइ अन्तर कटे ।। १० ।।

उदयनाथ [कवीन्द्र]

कवीन्द्र उदयनाथ कालिदास त्रिवेदी के पुत्र थे। इनका जन्म स० १७३६ के लगभग हुआ। ये अमेठी के राजा हिम्मतसिंह और उनके पुत्र गुरुदत्तसिह के पास रहा करते थे। ये भगवन्त राय खीची और बूदी के राव बुद्धसिंह के यहा भी गये थे, और वहा इन्हे बड़ा सम्मान भी मिला था। इनका रस चन्द्रोदय नामक ग्रथ बहुत प्रसिद्ध है। इनकी कविता ब्रजभाषा मे शृगार विषयक अच्छी है।

इनके कुछ छन्द यहा उद्धृत किये जाते है—

कुजन ते मग आवत गावत राग बनावत देवगिरी को ।
सो सुनि कै वृषभानुसुता तलफै जिमि पजर जीव चिरी को ।।

तार थकै नहिं नैनन ते सजनी असुआन की धार झिरी को।
मार मनोहर नन्दकुमार के हार हिये लखि मौलसिरी को ॥

छिति छमता की परमिति मृदुता की कैधो ताकी है अनीति सौति जनता की देह की। सत्य की सता है, सील तरु की लता है रसता है कै विनीत परनीत निज नेह की ॥ भनत कविन्द सुर नर नाग नारिन की सिच्छा है कि इच्छा रूप रच्छन अछेह की। पतिव्रत पारावार बारी कमला है साधुता की कै सिला है कै कला है कुल गेह की ॥ २ ॥

कैसी ही लगन जामे लगन लगाई तुम प्रेम की पगनि के परेखे हिये कसके। केतिको छपाय के उपाय उपजाय प्यारे तुमतें मिलाप के वढ़ाये चोप चसके ॥ भनत कविन्द हमे कुज मे बुलाय कर बसे कित जाय दुख देकर अबस के। पगनि मे छाले परे नाघिवे को नाले परे तऊ लाल लाले परे रावरे दरस के ॥ ३ ॥

ऐसे मै न मैन के न देखे ऐन सैन के जगैया दिन रैन के जितैया सौति सीन के। कमल कलीन मुकलित जु करनहार कानन की कोरन लौ कोरन रगीन के ॥ भनत कविन्द भावती के नैन चायक से देखे मैन पायक से नायक नवीन के। साचे है अमीन के अमीन मानो मीन के बखानै को मृगीन के खगीन पन्नगीन के ॥ ४ ॥

राजै रस मै री तैसी बरसा समै री चढी चचला नचैरी चकचौधा कौधा वारै री। व्रती व्रत हारै हिये परत फुहारै कछू छोरै कछू धारै जलधर जलधारे री ॥ भनत 'कविन्द" कुज भौन पौन सौरभ सो काके न कपाय प्रान परहथ पारै री। काम के तुका से फूल डोलि डोलि डारे मन औरे किये डारै ये कदम्बन की डारै री ॥ ५ ॥

सहर मझारत पहर एक लाग जैहै छोर मे नगर के सराय है उतारे की। कहत कविन्द मृग माझि ही परैगी साझ खबर उड़ानी है बटोही द्वैक मारे की ॥ घर के हमारे परदेस को सिधारे याते दया के बिचारे हम रीति राह बारे की। उतरो नदी के तीर वर के तरे ही तुम चौको जिन चौकी तहां पाहरू हमारे की ॥ ६ ॥

नेवाज

नेवाज नाम के दो-तीन कवि पाये जाते है। एक नेवाज महाराज छत्रसाल बुदेला के यहा थे। ये जाति के ब्राह्मण थे। दूसरे नेवाज बिलग्राम के जुलाहे थे। तीसरे नेवाज शिवसिंह के कथनानुसार गाजीपुर के भगवत राय खीची के यहा थे। दूसरे और तीसरे नेवाज साधारण कवि थे। अतएव हम यहां प्रथम नेवाज ही की चर्चा करते है।

ठाकुर शिवसिंह ने इनका जन्म स० १७३९ माना है और जन्मस्थान अतर्वेद बतलाया है। ये छत्रसाल के समय मे थे, इसके प्रमाण मे ठाकुर साहब ने एक दोहा लिखा है—

तुम्है न ऐसी चाहिये , छत्रसाल महराज।
जह भगवत गीता पढी , तह कवि पढत नेवाज॥

यह दोहा मालूम होता है, भगवत के स्थान पर नेवाज के नियत हो जाने पर बना था।

नेवाज ब्राह्मण थे। शकुन्तला नाटक के सिवा इनका रचा हुआ कोई ग्रथ नही मिलता। कही-कही पुस्तको मे इनके फुटकर छद मिलते है। नेवाज बड़े रसिक कवि थे। कही-कही भावो मे इन्होने बडी अश्लीलता भर दी है। इनके कुछ छन्द नीचे लिखे जाते है—

देखि हमै सब आपस मे जो कुछ मन भावे सोई कहती है।
ए घरहाई लोगाई सबै निसि द्योस नेवाज हमैं दहती है॥
बाते चबाव भरी सुनि कै रिसि आवत पै चुप ह्वै रहती है।
कान्ह पियारे तिहारे लिए सिगरे ब्रज को हसिबो सहती है॥ १॥

पीठि दै पौढि दुराय कपोल को मानै न कोटि पिया उत पोढत।
बाहन बीच हिये कुच दोऊ गहे रसना मन ही मन सोचत॥
सोवत जानि निवाज पिया कन्र सो कर दै निज ओर करोटत।
नीबा विमोचत चौकि परी मृगछौना सी बाल बिछौना पै लोटत॥२

पारथ समान कीन्हो भारत मही मै आनि बाधि सिर बाना ठान्यो

सरम सपूती को। कोर कोर कटि गयो हटि कै न पग दयो लयो रन जीति किरवान करतूती को॥ भनत "नेवाज" दिल्लीपति सो सहादत खा करत बखान एती मान मजवूती को। कतल मरद्द नद्द सोनित सो भरि गयो करि गयो हद्द भगवन्त रजपूती को॥ ३॥

आगे तौ कीन्ही लगाली लोयन कैसे छिपे अजहू जौ छिपावति।
तू अनुराग कौ सोध कियो ब्रज की वनिता सब यो ठहरावति॥
कौन सकोच रह्यो है "नेवाज" जौ तू तरसै उनहूं तरसावति।
बवरी जो पै कलक लग्यो तौ निसक ह्वै क्यो नहि अक लगावति॥४

रसलीन

सैयद गुलाम नबी विलग्रामी का उपनाम रसलीन था। बिलग्राम जिला हरदोई मे एक मशहूर कस्बा है। वहा वहुत दिनो से बड़े-बड़े विद्वान मुसलमान होते आये है, और अब भी वर्तमान है। रसलीन वही के रहने वाले थे। इनका जन्म अनुमान से स० १७४६ के लगभग हुआ था। इनके रचे हुए दो ग्रथ मिलते है, अग-दर्पण और रस-प्रबोध। अग-दर्पण मे नखशिख का वर्णन है और रस-प्रबोध मे रसो का। मुसलमान होकर ब्रजभाषा मे ऐसी सुन्दर रचना करने के लिए रसलीन धन्यवाद के पात्र है। शिवसिंह ने इनको अरबी-फारसी का आलम फाजिल और भाषा कविता मे बड़ा निपुण बताया है। इनकी कविता के कुछ नमूने नीचे दिये जाते है—

मुखससि निरखि चकोर अरु, तन पानिप लखि मीन।
पद पकज देखत भवर, होत नयन रसलीन॥ १॥
धरति न चौकी नग जरी, याते उर में लाइ।
छाह परे पर पुरुष की, जिन तिय धरम नसाइ॥ २॥
चख चलि श्रवन मिल्यो चहत, कच बढि छुवन छवानि।
कटि निज दरब धरचो चहत, वक्षस्थल मे आनि॥ ३॥
सौतिन मुख निसि कमल भो, पिय चख भये चकोर।
गुरुजन मन सागर भये, लखि दुलहिनि मुख ओर॥ ४॥

रमनी मन पावत नही, लाज प्रीति को अत।
दुहू ओर ऐचो रहै, ज्यो बिबि तिय को कत ॥ ५ ॥
लिखी बिरचि राख्यो हुतो, यह सयोग इक सग।
कुच उतंग तिय उर चढै, पिय उर चढै अनग ॥ ६ ॥
यो तिय नैननि लाज ज्यो, लसत काम के भाय।
मिल्यो सलिल में नेह ज्यो, ऊपर ही दरसाय ॥ ७ ॥
मुकुत भये घर खोय कै, कानन बैठे जाय।
घर खोवत है और को, कीजै कौन उपाय ॥ ८ ॥

घाघ

घाघ कन्नौज निवासी थे। इनका जन्म स० १७५३ मे कहा जाता है। ये कब तक जीवित रहे, न तो इसका ठीक-ठीक पता है, और न इनका या इनके कुटुम्ब ही का कुछ हाल मालूम है। इन्होने कविता का कोई ग्रन्थ लिखा या नही, यह भी अभी तक अज्ञात है। पर इनके सामयिक नीति-सम्बन्धी छद इतने लोक-प्रिय है कि गावो मे बातचीत करते समय लोग उन्हे कहावतो की तरह प्रयोग करते है। किसानो में खेतीबारी के बहुत-से काम इनके छदो के आधार पर ही होते है। इनसे यह जान पडता है कि ये बडे अनुभवी और प्रतिभावान् कवि थे।

कहते है कि घाघ का गांव गंगा जी के जिस किनारे पर था, ठीक उसके सामने दूसरे किनारे पर लालबुझक्कड़ का गाव था।

घाघ बुद्धिमान्, अनुभवी और प्रत्युत्पन्नमति थे। उनके गाव वाले उनका आदर भी बहुत करते थे। घाघ ने भी लोगो की साधारण बोल-चाल मे छंद रचकर उनमें ज्ञान का विकास किया था। घाघ की प्रतिष्ठा और यश देखकर लाल बुझक्कड से न रहा गया। वे भी उनके समान अपने ज्ञान की धाक जमाने के लिए उद्योग करने लगे। पर उनमे घाघ की-सी प्रतिभा नही थी। सयोग से उनके गाव वाले भी वैसे ही समझ-बूझ के थे। उन्हे कोई भी नई बात देखकर आश्चर्य होता था और वे

लालबुझक्कड़ के पास यह बूझने के लिए दौड़े जाते थे कि "यह क्या है ?" लालबुझक्कड़ को अपनी प्रतिष्ठा बनाये रखने के लिए कुछ न कुछ बूझना ही पडता था; इसलिये उनके नाम के साथ वुझक्कड उपाधि जुड़ गई। लाल उनका असली नाम था,

एक बार लालबुझक्कड़ के गाव वाले को राह मे हाथी के पैर के चिह्न मिले। वह चकराया कि "यह क्या है, जो लगातार दूर तक चला गया है ?" इतनी बड़ी शका का समाधान लालबुझक्कड के सिवा और कौन कर सकता था ? वह अपना कामकाज छोड़कर इस शंका की निवृत्ति के लिए लालबुझक्कड के पास पहुचा। लालबुझक्कड़ ने शङ्का सुनते ही हसते हुए तत्काल उत्तर दिया—

लालबुझक्कड़ बूझते, और न बूझै कोय।
पैर मे चक्की बांध के, हरिना कूदा होय॥

इस तरह उन्होंने अपनी प्रखर-बुद्धि से गांव वाले का समाधान कर दिया।

एक दिन एक गाव वाले को कही राह मे एक कोल्हू पड़ा हुआ मिला। कोल्हू पुराना होकर काम का न रहा होगा और किसी ने उसे लापरवाही से फेक दिया होगा। गांव वाले की समझ मे यह बात न आई कि यह क्या पदार्थ है। वह लालबुझक्कड़ के घर पहुंचा। लाल-बुझक्कड ने सर्वज्ञ की तरह मुसकुराते हुए कहा—

लालबुझक्कड बूझते, वे तों है गुरु ज्ञानी।
पुरानी होकर गिर पडी, खुदा की सुर्मादानी॥

इसी तरह लालबूझक्कड ने अपनी आशु कविता का चमत्कार दिखा कर घाघ को परास्त करने का प्रयत्न किया। पर आज हम घाघ को जहां किसानो में एक मित्र की भाति सम्मति देते हुए पाते है, वहां लालबुझक्कड़ को विदूषक की तरह अपना बेसिर-पैर की बातों से हसा-हंसाकर उनको थकावट मिटाते और जी बहलाते हुए देखते है।

पर कविता की भाषा से घाघ कन्नौज के निवासी नही जान पड़ते।

कुछ लोग इन्हे फतहपुर जिले के किसी गाव का निवासी बतलाते है, उनका यह भी कहना है कि घाघ की पुत्र-वधू कन्नौज की थी । उसने भी कुछ रचनाए की है, और घाघ की बातो का मजाक उडाते हुये खडन किया है। कहा जाता है कि उससे ही झेपकर घाघ घर छोड कर कन्नौज जा बसे। यहा घाघ के कुछ छन्द लिखे जाते है—

वनियक सखरज ठकुरक हीन । वयदक पूत व्याधि नहिं चीन ।
पडित चुपचुप वेसवा मइल । कहे घाघ पाचो घर गइल ॥ १ ॥
नसकट खटिया दुलकन घोर । कहे घाघ यह बिपत क ओर ॥
बाछा बैल पतुरिया जोय । ना घर रहे न खेती होय ॥ २ ॥
भुइया खेड हर ह्वै चार । घर ह्वै गिहिथिन गऊ दुधार ॥
अरहर की दाल जडहन का भात । गागल निबुआ औ घिव तात ॥
सहरस खड दही जो होय । बाके नैन परोसै जोय ॥
कहे घाघ तब सब ही झूठा । उहा छाडि इहवे बैकुठा ॥ ३ ॥
कुच कट पनही वतकट जोय । जो पहलौंठी बिटिया होय ॥
पातरि कृपी बौरहा भाय । घाघ कहे दुख कहा समाय ॥ ४ ॥

मुये चाम से चाम कटावे, भुइ सकरी मा सोवै ।
घाघ कहे ये तीनो भकुआ, उडरि गये पर रोवै ॥ ५ ॥
सुथना पहिरे हर जोतै, औ पौला पहिरि निरावै ।
घाघ कहे ये तीनों भकुआ, सिर बोझा औ गावै ॥ ६ ॥
उधारि काढि व्यौहार चलावे, छप्पर डारें तारो ।
सारे के सग बहिनी पठवे, तीनिउ का मुह कारो ॥ ७ ॥
आलस नीद किसानै नासै, चोरै नासै खासी ।
अखिया लीबर बेसवै नासै, तिरमिर नासै पासी ॥ ८ ॥

ना अति बरखा ना अति धूप । ना अति बकता ना अति चूप ॥
लरिका ठाकुर बूढ दिवान, ममिला बिगरे साझ बिहान ॥ ९ ॥
माघ क ऊखम जेठ क जाड़ । पहिले बरिखे भरिगै गाड ॥
कहै घाघ हम होब वियोगी । कुआ खोदि के धोइहै धोबी ॥ १० ॥

सावन सुकला सत्तमी, जो गरजे अधरात।
तू पिय जैहो मालवा, हौं जैहों गुजरात॥ ११॥
सावन सुकला सत्तमी, चन्दा उगे तुरन्त।
की जल मिले समुद्र मे, की नागरि कूप भरन्त॥ १२॥
सावन सुकला सत्तमी, छिपि के ऊगे भानु।
तब लगि देव बरीसिहै, जब लगि देव उठान॥ १३॥
सावन कृष्ण एकादसी, जेतो रोहिन होय।
तेतो समया जानियो, खरी घसैं जिनि कोय॥ १४॥
बहु बजार बनिहार बनि, बारी बेटा बैल।
ब्योहर बढई बन बबुर, बात सुनो यह छैल॥ १५॥
जो बकार बारह बसै, सो पूरन गिरहस्त।
औरन को सुख दै सदा, आप रहै अलमस्त॥ १६॥
सावन पछिवा भादो पुरवा, आसिन बहै ईसान।
कातिक कन्ता सीक न डोले, गाजे सबै किसान॥ १७॥
गया पेट जब बकुला बैठा। गया गेह जब मुडिया पैठा॥
गया राज जह राजा लोभी। गया खेत जहं जामी गोभी॥१८॥
घर घोड़ा पैदल चलै, तीर चलावे बीन।
थाती धरै दमाम घर, जग में भकुआ तीन॥ १९॥
सदा न बागा बुलबुल बोलै, सदा न बाग बहारा।
सदा न ज्वानी रहती यारो, सदा न सोहबत यारां॥ २०॥
साँझे भोर ऊपर बदराई, कहै घाघ अब गेरुई खाई॥
पछिवा हवा ओसावै जोई, घाघ कहै घुन कबहु न होई॥२१॥
सावन केरे प्रथम दिन, उगत न दीखै भान।
चार महीना बरसै पानी, याको है परमान॥ २२॥
जेठ मास जो तपै निरासा, तो जानो बरसा की आसा॥
दिवस बादर रात को तारे, चलो कन्त जह जीवें बारे॥२३॥

ताका भैसा गादर बैल । नारि कुलच्छनि बालक छैल ॥
इनसे बाचें चातुर लोग । राज छोड के साधै जोग ॥२४॥
सावन घोड़ी भादों गाय, माघ मास जो भैंस बिग्राय ॥
कहै घाघ यह साची बात, आपै मरै कि मलिकै खाय ॥२५॥
बिन बैलन खेती करै, बिन भैयन को रार ।
बिन मेहरारू घर करै, चौदह साख लबार ॥ २६ ॥
बूढा बैल बिसाहे, झीना कपडा लेय ।
आपुन करै नसौनी, दैवै दूषण देय ॥ २७ ॥
बैल चौकना जोत मे, औ चमकीली नार ।
ये बैरी है जान के, कुशल करै करतार ॥ २८ ॥

दास

दास का पूरा नाम भिखारीदास था । जि० प्रतापगढ के ट्योगा गाव में म० १७५५ के लगभग इनका जन्म हुआ था । ये जाति के कायस्थ थे । इनके पिता का नाम कृपालदास और पितामह का वीरभान था । इनके रचे हुए काव्य निर्णय, रससाराश, विष्णुपुराण, नामप्रकाश, छन्दोर्णव और शृङ्गारनिर्णय काव्य के उत्तम ग्रन्थ है । इनकी कविता के कुछ नमूने हम नीचे उद्धृत करते है—

सुजस जनावै भगतनही से प्रेम करै चित्तअति ऊजरे भजति हरि नाम है । दीन के दुखन देखै आपनो सुखन लेखै विप्र पापरत तन मैन मोहै धाम है ॥ जग पर जाहिर है धरम निबाहि रहै देव दरसन ते लहत बिसराम है । दास जू गनाये जे असज्जन के काम है समुझि देखो एई सब सज्जन के काम है ॥ १ ॥

धूरि चढै नभ पौन प्रसंग ते कीच भई जल-सगति पाई ।
फूल मिलै नृप पै पहुचै कृमि-कीटनि सग अनेक बिथाई ॥
चन्दन सग कुदारु सुगन्ध ह्वै नीच प्रसग लहै करुआई ।
दास जू देख्यो सही सब ठौरनि सगति को गुन-दोषन जाई ॥ २ ॥
पडित पडित सों सुखमंडित सायर सायर कै मन मानै ।

संतहिं संत अनंत भलौ गुनवंतनि को गुनवंत बखानै ॥
जा पहं जा सह हेतु नही कहिये सु कहा तिहि की गति जानै ।
सूर को सूर सती को सती अरु दास जती को जती पहचानै ॥ ॥३॥
प्रानबिहीन के पाइ पलोटि अकेले ह्वै जाइ घने बन रोयो ।
आरसी अंधके आगे धर्‌यो बहिरे को मतौ करि उत्तर जोयो ॥
ऊसर में बरस्यो बहु बारि पखान के ऊपर पङ्कज बोयो ।
दास बृथा जिन साहब सूम की सेवनि मै अपनो दिन खोयो ॥४॥
दृग नासा न तो तप जाल खगी, न सुगंध सनेह के ख्याल खगी ।
स्रुति जीहा बिरागै न रागै पगी मति रामै रगी औ न कामै रगी ॥
तप मे ब्रत नेम न पूरन प्रेम न भूति जगी न विभूति जगी ।
जग जन्म वृथा तिनको जिनके गरे सेली लगी न नवेली लगी ॥५॥
कंज सकोच गड़े रहे कीच मे मीनन बोरि दियो दह नीरन ।
दास कहै मृगहू को उदास कै बास दियो है अरन्य गंभीरन ॥
आपुस मे उपमा उपमेय ह्वै नैन ये निन्दित है कवि धीरन ।
खंजनहू को उड़ाय दियो हलुके करि डारे अनङ्ग के तीरन ॥ ६ ॥
नैनन को तरसैये कहां लौं कहां लौं हिये बिरहागि मे तैये ।
एक घरी न कहू कल पैये कहां लगि प्रानन को कलपैये ॥
आवै यही अब जी में विचार सखी चल सौतिहुं के घर जैये ।
मान घटे ते कहा घटिहै जु पै प्रानपियारे को देखन पैये ॥ ७ ॥

रसनिधि

रसनिधि का असली नाम पृथ्वीसिंह था। ये दतिया राज्य के अन्तर्गत जागीरदार थे। इनके जन्म-मरण का ठीक समय निश्चित नही है; परन्तु सं० १७६० में इनका होना माना जाता है।

इनका रचा हुआ रतनहजारा अद्भुत ग्रंथ है। हजारा मे कुल दोहे ही दोहे है। भावो को झलकाने में इन्होंने बड़ी बारीक बुद्धि से काम लिया है। इनके दोहे बिहारी के दोहो से टक्कर लेते है। नीचे इनके कुछ दोहे लिखे जाते है। देखिये कैसे लुभावने है—

रसनिधि वाको कहत है, याही ते करतार।
रहत निरन्तर जगत को, वाही के कर तार ॥ १ ॥
आये इसक लपेट मे, लागी चसम चपेट।
सोई आया जगत मे, और भरे सब पेट ॥ २ ॥
सज्जन पास न कहु अरे, ये अनसमझी बात।
मोम रदन कहु लोह के, चना चवाये जात ॥ ३ ॥
हित करियत यहि भाति सो, मिलियत है वहि भात।
छीर नीर तै पूछ लै, हित करिबे की बात ॥ ४ ॥
पसु पच्छीहू जानही, अपनी अपनी पीर।
तव सुजान जानौ तुम्है, जब जानौ पर पीर ॥ ५ ॥
रूप नगर बस मदन नृप, दृग जासूस लगाइ।
नहनि मन को भेद उन, लीनौ तुरत मगाइ ॥ ६ ॥
सुन्दर जोवन रूप जो, बसुधा मे न समाइ।
दृग तारन तिल बिच तिन्है, नेही धरत लुकाइ ॥ ७ ॥
सरस रूप को भार पल, सहि न सकै सुकुमार।
याही तै ये पलक जनु, झुकि आवै हर बार ॥ ८ ॥
सुनियत मीननि मुखलगै, वसी अबै सुजान।
तेरी ये वसी लगै, मीनकेत कौ बान ॥ ९ ॥
जिहि मग दौरत निरदई, तेरे नैन कजाक।
तिहि मग फिरत सनेहिया, किये गरेबा चाक ॥ १० ॥
चतुर चितेरे तुव सबी, लिखत न हिय ठहराइ।
कलम छुवत कर आगुरी, कटी कटाछन जाइ ॥ ११ ॥
मन गयद छवि मद छके, तोर जजीरन जात।
हित के झीने तार सों, सहजै ही बधि जात ॥ १२ ॥
उडौ फिरत जो तूल सम, जहा तहा बेकाम।
ऐसे हरुये को धरयो, कहा जान मन नाम ॥ १३ ॥

लेउ न मजनू गोर ढिग, कोऊ लै लै नाम।
दरदवन्त को नेक तो, लैन देउ बिसराम ॥ १४ ॥
चसमन चसमा प्रेम को, पहिले लेहु लगाइ।
सुन्दर मुख वह मीत को, तब अवलोको जाइ ॥ १५ ॥
अद्भुत-गति यह प्रेम की, बैनन कही न जाइ।
दरस भूख लागे दृगन, भूखहि देह भगाइ ॥ १६ ॥
प्रेम नगर मे दृग बया, नोखे प्रगटे आइ।
दो मन को करि एक मन, भाव देत ठहराइ ॥ १७ ॥
न्यारो पैंडो प्रेम को, सहसा धरो न पाव।
सिर के पैंडे भावते, चलो जाय तो जाव ॥ १८ ॥
अद्भुत गति यह प्रेम की, लखो सनेही आइ।
जुरै कहू टूटै कहूं, कहू गाठि पर जाइ ॥ १९ ॥
अद्भुत बात सनेह की, सुनो सनेही आइ।
जाकी सुध आवै हिये, सबही सुध बुध जाइ ॥ २० ॥
कहनावत मै यह सुनी, पोषत तनु को नेह।
नेह लगाये अब लगी, सूखन सिगरी देह ॥ २१ ॥
बोलन चितवन चलन मे, सहज जनाई देत।
छिपत चतुरई कर कहू, अरे हिये को हेत ॥ २२ ॥
यह बूझन को नैन ये, लग लग कानन जात।
काहू के मुख तुम सुनी, पिय आवन की बात ॥ २३ ॥
कञ्चन से तन मे यहा, भरो सुहाग बनाइ।
विरह आच वापै कहो, सहो कौन विधि जाइ ॥ २४ ॥

नागरीदास और बनीठनीजी

नागरीदास नाम के ब्रजभाषा के चार कवि हुए है। पहले नागरीदास श्री वल्लभाचार्य महाप्रभु के शिष्य थे। दूसरे नागरीदास स्वामी हरिदास की शिष्य-परम्परा मे थे। तीसरे नागरीदास गोस्वामी हितहरि-

वश वा श्रीकृष्ण चैतन्य महाप्रभु की सम्प्रदाय मे हुए। और चौथे नागरी-दास कृष्णगढ (राजपूताना) के राजा थे । इनके पिता का नाम राजसिंह था । इनका असली नाम सावतसिंह था । ये कविता मे अपना उपनाम नागर, नागरिया अथवा नागरीदास रखते थे । इनकी रचना कृष्णगढ मे अभी तक सुरक्षित है । ये राठौर क्षत्रिय थे । इनका जन्म पौष कृष्ण १२ स० १७५६ को हुआ । कवि होने के सिवा ये वीर भी थे । इन्होने दस वर्ष ही की अवस्था मे एक उन्मत्त हाथी को विचलित कर दिया था, और तेरह वर्ष की अवस्था मे बूदी के राव जैतसिंह का समर मे वध किया था। बीस वर्ष की अवस्था मे अकेले ही एक सिंह को मारा था । कई घराऊ झगड़ों के कारण स० १८१४ मे ये राजपाट छोड़कर वृन्दावन चले गये और वही रहने लगे। ये महाप्रभु वल्लभाचार्य सम्प्रदाय के शिष्य थे। स १८२१ मे भादव सुदी३ को वृन्दावन में इन्होने शरीर छोडा । वहा इनकी छतरी है, जिसमे लेख भी है ।

वृन्दावन इन्हे बहुत प्रिय था । वहा इनका सम्मान भी बहुत था । वहाँ के भक्तो मे इनको कविता का आदर इनके जीवनकाल ही मे बहुत होगया था । इन्होने ७५ ग्रन्थो की रचना की । इनमे से अन्त के दो अब नही मिलते । ग्रन्थो के नाम ये है—

(१) सिङ्गारसार, (२) गोपी प्रेमप्रकाश, (३) पद प्रसङ्गमाला, (४) ब्रजबैकुण्ठ तुला, (५) ब्रजसार, (६) भोरलीला, (७) प्रातरस-मञ्जरी, (८) विहारचद्रिका, (९) भोजनानन्दाष्टक, (१०) जुगलरस-मञ्जरी, (११) फूलविलास, (१२) गोधन आगमन, (१३) दोहनआनन्द, (१४) लग्नाष्टक (१५) फागविलास, (१६) ग्रीष्मविहार, (१७) पावस पचीसी, (१८) गोपी बैनविलास, (१९) रासरसलता, (२०) रैनरूपरस, (२१) शीतसार, (२२) इश्कचमन, (२३) मजलिस मडन, (२४) अरिलाष्टक, (२५) सदा की माझ, (२६) वर्षाऋतु की माझ, (२७) होरी की माझ, (२८) कृष्णजन्मोत्सव कबित्त, (२९) प्रिया जन्मोत्सव कवित्त, (३०) साझी के कबित्त (३१) रास के कबित्त, (३२) चादनी के कवित्त,

(३३)दिवारी के कवित्त,(३४)गोवर्द्धनधारन के कवित्त, (३५)होरी के कवित्त, (३६)फाग गोकुलाष्टक,(३७)हिंडोरा के कवित्त,(३८)वर्षा के कवित्त (३९) मार्ग मगदीपिका, (४०) तीर्थानन्द, (४१) फागविहार, (४२) बालविनोद, (४३) सुजनानन्द, (४४) बनविनोद (४५) भक्ति-सार, (४६) देहदसा, (४७) वैरागवल्ली, (४८) रसिक रत्नावली, (४९) कलि वैराग वल्लरी, (५०) अरिल्ल पचीसी (५१) छूटकविधि, (५२) पारायण विधि प्रकाश (५३) सिखनख, (५४) नखसिख, (५५) छूटक कवित्त, (५६) चरचरिया, (५७) रेखता, (५८) मनोरथ मञ्जरी, (५९) रामचरित्र माला, (६०) पद प्रबोधमाला, (६१) जुगल भक्ति विनोद, (६२) रसानुक्रम के दोहे, (६३) शरद की मांझ, (६४) सांझी फूल बीनन समेत सम्वाद, (६५) वसन्त वर्णन, (६६) फाग खेलन समेतानुक्रम कवित्त, (६७) रसानुक्रम कवित्त, (६८) निकुञ्ज विलास, (६९) गोविन्द परचई, (७०) वनजन प्रशंसा, (७१) छूटक दोहा, (७२) उत्सव माला, (७३) पद मुक्तावली, (७४) बैन-विलास, (७५) गुप्तरस प्रकाश।

अन्त की दो पुस्तके अब नही मिलतीं। इनकी पुस्तकों का एक सग्रह 'नागर समुच्चय' नाम से ज्ञानसागर छापाखाना बम्बई ने प्रकाशित किया है। पर वह बहुत अशुद्ध है। उसमे अन्य कवियो के भी बहुत-से छन्द मिल गये है।

ये वल्लभ-सम्प्रदाय के थे। इनकी कविता बड़ी सरस, भक्तिरस-पूर्ण होती थी। हिन्दी काव्य के रसिको को इनकी पुस्तकें अवश्य पढनी चाहिए। इनकी कविता के कुछ नमूने देखिये—

उज्जल पख की रैन चैन उज्जल रस दैनी।
उदित भयौ उड़राज अरुन दुति मन हर लैनी॥
महा कुपित ह्वै काम ब्रह्म अस्त्रहि छोड्यो मनु।
प्राची दिसितें प्रजुलित आवति अगिनि उठी जनु॥
दहन मानपुर भये मिलन को मन हुलसावत।
छावत छपा अमन्द चन्द ज्यो ज्यो नभ आवत॥

जगमगाति बन जोति सोत अमृतधारा से ।
नवद्रुम किसलय दलनि चारु चमकत तारा से ॥
स्वेत रजत की रैन चैन चित मैन उमहनी ।
तैसी मन्द सुगन्ध पौन दिन मनि दुख दहनी ॥
मधि नायक गिरिराज पदिक बृन्दावन भूषन ।
फटिक सिला मनि शृङ्ग जगमगति दुति निर्दूषन ॥
सिला सिला प्रति चन्द चमकि किरननि छबि छाई ।
बिच बिच अम्ब कदम्ब झम्ब झुकि पायनि आई ॥
ठौर ठौर चहु फेर ढेर फूलन के सोहत ।
करत सुगन्धित पवन सहज मन मोहत जोहत ॥
विमल नीर निर्झरत कहू झरना सुख करना ।
महा सुगन्धित सहज बास कुमकुम मद हरना ॥
कहु कहु हीरन खचित रचित मण्डल सुरासि के ।
जटित नगन कहु जुगल खम्भ झूलनि विलास के ॥
ठौर ठौर लखि ठौर रहत मनमथ सो भारी ।
विहरत विविध बिहार तहा गिरि पर गिरधारी ॥ १ ॥
इश्क चमन महबूब का, जहां न जावे कोय ।
जावे सो जीवे नही, जिये सो बौरा होय ॥ २ ॥
जामे रस सोई हरचो, यह जानत सब कोय ।
गौर स्याम द्वै रंग बिन, हरचो रग नहिं होय ॥ ३ ॥
ऐ तबीब उठि जाहु घर, अवस छुवै का हाथ ।
चढी इश्क की कैफ यह, उतरै सिर के साथ ॥ ४ ॥
अरे पियारे का करौं, जाहि रहो है लाग ।
क्यो करि दिल बारूद में, छिपै इश्क की आग ॥ ५ ॥
फूले फूलनि स्वेत बिच, अलि बैठे मधु लैन ।
दम्पति हित वृन्दा विपिन, धारे अगणित नैन ॥ ६ ॥

कलह कलपना काम कलेस निवारनो।
परनिन्दा परद्रोह न कबहु विचारनो॥
जग प्रपच चटसार न चित्त चढ़ाइये।
ब्रजनागर नदलाल सु निसिदिन गाइये॥ ७॥
अन्तर कुटिल कठोर भरे अभिमान सो।
तिनके गृह नहिं रहे सन्त सनमान सो॥
उनकी सगति भूलि न कवहू जाइये।
ब्रजनागर नदलाल सु निसिदिन गाइये॥ ८॥
कहू न कबहू चैन जगत दुखकूप है।
हरि भक्तन को सग सदा सुखरूप है॥
इनके ढिग आनन्दित समै बिताइये।
ब्रजनागर नदलाल सु निसिदिन गाइये॥ ९॥

महाराजा नागरीदास की दासी बनीठनीजी भी कविता करती थी और कविता में अपना उपनाम रसिकबिहारी रखती थी। ये सदा नागरी दासजी की सेवा मे रहती थी। इनका देहान्त सं० १८२२ मे हुआ। इनके बनाये कुछ पद नीचे लिखे जाते है—

रतनारी हो थारी आखड़िया।
प्रेम छकी रस बस अलसाणी जाणि कमल की पाखड़िया॥
सुन्दर रूप लुभाई गति मति हो गई ज्यू मधु माखड़िया।
रसिकबिहारी वारी प्यारी कौन बसी निस काखड़िया॥ १॥

हो झालो दे छे रसिया नागर पना।
सासा देखे लाज मरा छा आवा किण जतना॥
छैल अनोखो कयो न मानै लोभी रूप सना।
रसिकबिहारी नणद बुरी छै हो लाग्यो म्हारो मना॥ २॥

पावस रितु वृन्दावन की दुति दिन दिन दूरी दरसै है, छबि सरसै है। लूम झूम सावन घनो घन बरसै है॥

हरिया तरवर सरवर भरिया जमुना नीर कलोलै है, मन मोलै है।
प्यारी जा रो बाग सुहावणो मोर बोलै है ॥

आभा आया बीज चिमकै जलधर गहरो गाजै है, रितुराजै है।
स्यामा सुन्दर मुरली रली वन बाजै है ॥

रसिकविहारीजी रो भीज्यो पीताम्बर प्यारी जी री चूनर सारी है,
सुखकारी है। कुजा कुजा झूल रया पिय प्यारी है ॥

चरनदास

चरनदास जी ढूसर वनिया थे। इनका जन्म भाद्रपद शुक्ला तृतीया मगलवार स० १७६० वि० मे राजपूताना के देहरा नामी गाव मे हुआ। इन्होने ७९ वर्ष की अवस्था मे, सवत् १८३९ मे, दिल्ली म शरीर छोडा। इनका पहले का नाम रनजीतसिंह था। इनके पिता का नाम मुरलीघर, माता का कुजो और गुरु का शुकदेव था। चरनदासजी ने सात वर्ष की अवस्था मे घर छोडा। घर से ये दिल्ली चले आये और वहाँ अपने नाना के घर रहने लगे। वही १९ वर्ष की अवस्था मे इन्हे वैराग्य हुआ। शिवसिह सरोज मे इनका जन्म स० १५३७ और जन्मस्थान पडितपुर, जिला फैजाबाद लिखा है, और उसी के आधार पर मिश्रवन्धुओं ने भी वैसा ही लिखा है जो नितान्त अशुद्ध है। हमने सहजोबाई की बानी और ज्ञान स्वरोदय से इनके जीवन चरित्र का सग्रह किया है।

उस समय इनके ५२ शिष्य थे, जिनकी ५२ गद्दिया अलग अलग आजकल वर्तमान है, और उनके हजारो अनुयायी है। इनकी चेलियो मे सहजोबाई और दयाबाई बडी प्रेमिणी थी। वे बराबर इनकी सेवा में लगी रहती थी। इन दोनो चेलियो ने भी कविता की है, जो उनकी बानी के नाम से प्रसिद्ध हं।

चरनदास के दो ग्रथ मिलते है, एक ज्ञानस्वरोदय और दूसरा चरनदास की बानी। यहा इनके दोनो ग्रन्थो मे से कुछ पद्य चुनकर लिखे जाते है—

दोहा

चार वेद का भेद है, गीता का है जीव।
चरनदास लखु आपको, तो मै तेरा पीव ॥ १ ॥
सब योगन को योग है, सब ज्ञानन को ज्ञान।
सबै सिद्धि को सिद्धि है, तत्व सुरन को ध्यान ॥ २ ॥
इगला पिंगला सुखमणा, नाड़ी तीन बिचार।
दहिने बाये स्वर चलै, लखै धारना धार ॥ ३ ॥
पिंगला दहिने अंग है, इडा सु बाये होय।
सुषुमण इनके बीच है, जब स्वर चालै दोय ॥ ४ ॥
जब स्वर चालै पिंगला, मध्य सूर्य तह बास।
इडा सु बाये अंग है, चन्द्र करत परकास ॥ ५ ॥
चित्त अपनो स्थिर करै, नासा आगे नैन।
स्वांसा देखै दृष्टि सों, जब पावै स्वर बैन ॥ ६ ॥
भोरहिं जो सुषुमण चलै, राज होय उत्पात।
देखनवालो बिनसिहै, और काल पर नात ॥ ७ ॥

चौपाई

बिवाह दान तीरथ जो कहै। बस्तर भूषण घर पग धरै।
बायें स्वर मे यह सब कीजै। पोथी पुस्तक जो लिख लीजै ॥ ८ ॥
योगाभ्यास अरु कीजै प्रीति। औषध नाड़ी कीजै मीत।
दीक्षा मन्त्र बोवे नाज। चन्द्रयोग थिर बैठे राज ॥ ९ ॥
चन्द्रयोग मे स्थिर पुनि जानो। थिर कारज सबही पहिचानो।
करै हवेली छप्पर छावै। बाग बगीचा गुफा बनावै ॥ १० ॥
हांकिम जाय कोट में वरै। चन्द्रयोग आसन पग धरै।
चरणदास शुकदेव बतावै। चन्द्रयोग थिर काज कहावै ॥ ११ ॥
जो खांड़ो कर लीयो चाहै। जाकर बैरी ऊपर बाहै।
युद्ध बाद रण जीते सोई। दहिने स्वर म चालै कोई ॥ १२ ॥

भोजन करै करै अस्नान । मैथुन कर्म भानु परधान ।
बही लिखै कीजै व्योहारा । गज घोडा वाहन हथियारा ॥ १३ ॥
विद्या पढै नई जो साधै । मन्त्रसिद्धि औध्यान अराधै ।
बैरी भवन गवन जो कीजै । अरुकाहू को ऋण जो दीजै ॥ १४ ॥
ऋण काहू पै तू जो मागे । विष औ भूत उतारन लागे ।
चरनदास शुकदेव विचारी । ये चर कर्म भानु की नारी ॥ १५ ॥

दोहा

गाव परगने खेत पुनि, इधर उधर मे मीत ।
सुषुमण चलत न चालिये, बरजत हैं रणजीत ॥ १६ ॥
छिन बाएं छिन दाहिने, सोई सुषुमण जानि ।
ढील लगै कै ना मिलै, कै कारज की हानि ॥ १७ ॥
होय क्लेश पीडा कछू, जो कोई कहिं जाय ।
सुषुमण चलत न चालिये, दीन्हो तोहिं बताय ॥ १८ ॥
पूरब उत्तर मत चलो, बाये स्वर परकाश ।
हानि होय बहुरे नही, आवन की नहिं आश ॥ १९ ॥
दहिने चलत न चालिये, दक्षिण पश्चिम जानि ।
जो रै जाय बहुरे नही, औ होवे कछु हानि ॥ २० ॥
दहिने स्वर मे जाइये, पूरब उत्तर राज ।
सुख सम्पति आनद करै, सभी होय सुख काज ॥ २१ ॥
बाये स्वर में जाइये, दक्षिण पश्चिम देश ।
सुख आनंद मंगल करै, जो रे जाय परदेश ॥ २२ ॥
दहिने सेती आयकर, बाए पूछे कोय ।
जो बाये स्वर बन्द है, सफल काज नहिं होय ॥ २३ ॥
बाये सेती आयकर, दहिने पूछै धाय ।
जो दहिने स्वर बन्द है, कारज अफल बताय ॥ २४ ॥
जब स्वर भीतर को चलै, कारज पूछै कोय ।
पैज बाध वासों कहो, मनसा पूरण होय ॥ २५ ॥

जब स्वर बाहिर को चलै, तब कोई पूछै तोर।
वाको ऐसे भाषिये, नहि कारज विधि कोर॥ २६॥
बाईं करवट सोइये, जल बाये स्वर पीव।
दहिने स्वर भोजन करै, तो सुख पावै जीव॥ २७॥
बाये स्वर भोजन करै, दहिने पीवै नीर।
दस दिन भूला यो करै, पावै रोग शरीर॥ २८॥
दहिने स्वर झाडे फिरै, बाये लघु शकाय।
युक्ती ऐसी साधिये, तीनो भेद बताय॥ २९॥
आठ पहर दहिनो चलै, बदलै नहि जो पौन।
तीन वर्ष काया रहै, जीव करै फिर गौन॥ ३०॥
दिन को तो चन्दा चलै, चलै रात को सूर।
यह निश्चय करि जानिये, प्रान गमन बहु दूर॥ ३१॥
राति चले स्वर चन्द्र मे, दिन को सूरज बाल।
एक महीना यो चलै, छठे महीना काल॥ ३२॥
जब साधू ऐसी लखै, छठे महीना काल।
आगेही साधन करै, बैठ गुफा तत्काल॥ ३३॥
ऊपर खैचि अपान को, प्राण अपान मिलाय।
उत्तम करै समाधि को, ताको काल न खाय॥ ३४॥
पवन पिये ज्वाला पचे, नाभि तलै कर राह।
मेरुदण्ड को फोरि के, बसे अमरपुर मांह॥ ३५॥
जहा काल पहुचे नही, यम की होय न त्रास।
नभ मण्डल को जायकर, उनमे करै निवास॥ ३६॥
जहा काल नहि ज्वाल है, छूटै सकल सन्ताप।
होय उनमनी लीन मन, बिसरै आपा आप॥ ३७॥
तीनो बध लगाय के, या बाये को साध।
योग सुषुमणा ह्वै चले, देखै खेल अगाध॥ ३८॥

शक्ति जाय शिव सो मिलै, जहा होय मन लीन।
महा खेचरी जो लगै, जाने जान प्रबीन ॥ ३९ ॥
आसन पद्म लगाय कर मूल बन्ध को बाध।
मेरुदण्ड सीधो करै, सुरत गगन को साध ॥ ४० ॥
चन्द्रसूर्य दोउ सम करै, ठोढी हिये लगाय।
षट चक्कर को वेधकर, शून्य शिखर को जाय ॥ ४१ ॥
इड़ा पिंगला साधकर, सुषुमण मे करै बास।
परमज्योति झिलमिलि वहा, पूजै मन विश्वास ॥ ४२ ॥
सूर्य उत्तरायन लखै, शुक्ल पक्ष के माहिं।
योगी काया त्यागिये, यामे सशय नाहिं ॥ ४३ ॥
मुक्त होय बहुरै नही, जीव खोज मिटि जाय।
बुन्द समुन्दर मिलि रहै, दुनिया ना ठहराय ॥ ४४ ॥
जो रण ऊपर जाइये, दहिने स्वर परकास।
जीत होय हारै नही, करै शत्रु को नाश ॥ ४५ ॥
सूक्षम भोजन कीजिये, रहिये ना पड सोय।
जल थोरा सा पीजिये, बहुत बोल मत खोय ॥ ४६ ॥
पावक पानी वायु है, धरती और अकाश।
पाच तत्व के कोट मे, आय कियो तै वास ॥ ४७ ॥
सतगुरु मेरा सूरमा, करै शब्द की चोट।
मारै गोला प्रेम का, ढहै भरम का कोट ॥ ४८ ॥
मै मिरगा गुरु पारधी, शब्द लगायो बान।
चरनदास घायल गिरे, तन मन बीधे प्रान ॥ ४९ ॥
धन नगरी धन देस है, धन पुर पट्टन गाव।
जह साधू जन उपजियो, ताकी बलि बलि जाव ॥ ५० ॥
जग माही ऐसे रहो, ज्यों अम्बुज सर माहि।
रहै नीर के आसरे, पै जल छूवत नाहिं ॥ ५१ ॥

दया नम्रता दीनता, छिमा सील सन्तोष।
इन कू लै सुमिरन करै, निहचै पावै मोख ॥ ५२ ॥
चरनदास यो कहत है, सुनियो सन्त सुजान।
मुक्ति मूल आधीनता, नरक मूल अभिमान ॥ ५३ ॥
पहिले पहरे सब जगे, दूजे भोगी मान।
तीजे पहरे चोरही, चौथे जोगी जान ॥ ५४ ॥

तोष

तोष का पूरा नाम तोषनिधि है। ये सिंगरौर, जिला इलाहाबाद के रहनेवाले चतुर्भुज शुक्ल के पुत्र थे। सं० १७९१ में इन्होंने सुधानिधि नामक नायिका-भेद का एक ग्रंथ रचा। इनके जन्ममरण के ठीक-ठीक संवत् का पता नहीं चलता। इनके रचे हुए विनय शतक और नखशिख नामक दो ग्रंथों का और भी नाम सुना जाता है। इनकी कविता कहीं-कहीं बड़ी सरस हुई है। हम नीचे कुछ उदाहरण उद्धृत करते हैं—

एक कहैं हँसि ऊधवजी ब्रज की जुवती तजि चन्द्र प्रभा सी।
जाइ कियो कहि तोष प्रभू एक प्रानप्रिया लहि कंस की दासी ॥
जो हुते कान्ह प्रवीन महा सो हहा मथुरा में कहा मति नासी।
जीव नहीं उबि जात जबै ढिग पौढ़ति है कुबजा कछुहा सी ॥१॥
श्रीहरि की छवि देखिबे को अँखिया प्रति रोमन मैं करि देतो।
बैनन के सुनिबे कहँ श्रौन जितै तित सो करतो करि हेतो ॥
मो ढिग छोडि न काम कछू कहि तोष यहै लिखितो विधि एतो।
तौ करतार इती करनी करि कै कलि मैं कलकीरति लेतो ॥२॥
भूषण भूषित दूषणहीन प्रवीन महा रस मैं छबि छाई।
पूरी अनेक पदारथ तें जिहि मैं परमारथ स्वारथ पाई ॥
औ उकतैं मुकतैं उलही कवि तोष अनोख भरी चतुराई।
होति सबै सुख की जनिता बनि आवति जो बनिता कविताई ॥३॥

रघुनाथ

रघुनाथ बन्दीजन महाराज काशिराज बरिबड सिंह के राजकवि थे। महाराज ने इनको काशी के समीप चौरा गाव दिया था, उसी मे ये सकुटुम्ब रहते थे।

इनके रचे हुए निम्नलिखित ग्रन्थ मिलते हैं—काव्य-कलाधर, रसिक-मोहन और इश्कमहोत्सव। काव्य-कलाधर की रचना स०१८०२ मे हुई। ठाकुर शिवसिंह ने लिखा है कि इन्होने सतसई की टीका भी बनाई है।

रघुनाथ व्रजभाषा मे कविता करते थे,परन्तु इश्कमहोत्सव मे इन्होने आजकल की सी हिन्दी भाषा मे कविता लिखी है।

इनकी कविता के कुछ नमूने नीचे दिये जाते है—

देख हे देख या ग्वालिन की मग नेकु नही थिरता गहती है।
आनद सो "रघुनाथ" पगी पगी रगन सो फिरतै रहती है॥
छोर को छोर तरौना को छवै कर ऐसी बडी छवि को लहती है।
जोबन आइबे की महिमा अखिया मनो कानन सो कहती है॥१॥

सूखति जाति सुनी जब सो कछु खात न पीवति कैसे धौ रैहै।
जाकी है ऐसी दसा अबही "रघुनाथ"सो औधि अधार क्यो पैहै॥
ताते न कीजिए गौन बलाइ ल्यो गौन करे यह सीस बिसैहै।
जानति ही दृग ओट भये तिय प्रान उ सासहि के सग जैहै॥२॥

सम्पति के बढे सो प्रतिष्ठा बाढै बाढै सोच कहै रघुनाथ ताके राखिबे के रुख को। मन मागे स्वादनि लपेटि पेट परचो तासो अङ्ग मे अपार सङ्ग प्रगटो कलुष को॥ दारा सुत सखा को सनेह सो सतापकारी भारी है बचन यह बडन के मुख को। जगत को जितनो प्रपच तितनो है दुख सुख इतनो जो सुख मानि लेनो दुख को॥३॥

देखिबो को दुति पूनो के चद की हे रघुनाथ श्री राधिका रानी।
आई बुलाय कै चौतरा ऊपर ठाढी भई सुख सौरभ सानी॥

ऐसी गई मिलि जोन्ह की जोति मे रूप की रासि न जाति बखानी।
वारन ते कछु भौहन तें कछु नैनन की छवि त पहिचानी ॥४॥

ग्वालन सग जैबो ब्रज गायन चरैबो ऐबो अब कहा दाहिने ये नैन फरकत है। मोतिन की माल वारि डारौं गुज माल पर कुंजनि की सुधि आये हियो धरकत है॥ गोवर को गारो "रघुनाथ" कछू याते भारो कहा भयो महलन मनि मरकन है। मन्दिर है मन्दर ते ऊंचे मेरे द्वारिका के ब्रज के खरिक तऊ हिये खरकत है ॥५॥

सुथरे सिलाह राखै, वायु वेगी वाह राखै, रसद की राह राखै, राखे रहै वन को। चोर को समाज राखै, वजा औ नजर राखै, खबरि को काज बहुरूपी हरफन को॥ अगम भखैया राखै, सकुन लेवैया राखै, कहै रघुनाथ औ विचार बीच मन को। बाजी राखै कबहू न औसर के परे जौन ताजी राखै प्रजन को राजी सुभटन को ॥६॥

फूलि उठे कमल से अमल हितू के नैन कहै रघुनाथ भरे चैन रस सियरे। दौरि आये भौंर से करत गुनी गुन गान सिद्ध से सुजान सुख सागर सो नियरे॥ सुरभी सी खुलन सुकवि की सुमति लागी चिरिया सी जागी चिन्ता जनक के हियरे। धनुष पै ठाढे राम रवि से लसत आजु भोर कैसे नखत नरिन्द भये पियरे ॥७॥

आप दरियाव पास नदियों के जाना नही दरियाव पास नदी होयगी सो धावैगी। दरखत बेलि आसरे को कभी राखत ना दरखत ही के आसरे को वेलि पावैगी। मेरे लायक जो था कहना सो कहा मैंने रघुनाथ मेरी मति न्यावही को गावैगी। वह मोहताज आपकी है आप उसके न आप कैसे चलो वह आसपास आवैगी ॥८॥

गुमान मिश्र

गुमान मिश्र के जन्म-मरण का समय अभी तक ठीक-ठीक निश्चित नही हो सका। इनके विषय में केवल इतना ही पता चलता है कि इन्होने सं० १८०१ में पिहानी के मोहमदी अधिपति अली अकबरखां की आज्ञा

से श्रीहर्ष कृत नैषध काव्य का विविध छन्दो मे अनुवाद किया। इन बातो का पता इनके अनुवादित ग्रन्थ से ही चलता है। अब इनके रचे हुए अलकार, नायिका-भेद, काव्य-रीति आदि विषयो के कई ग्रन्थ तथा कृष्णचन्द्रिका का पता लगा है, परन्तु नैषध काव्य के सिवा और सब ग्रन्थ अप्रकाशित है।

इसमे सन्देह नही कि गुमान संस्कृत भाषा काव्य के अच्छे ज्ञाता थे, परन्तु नैषध का अनुवाद उनसे अच्छा नही हो सका। कही-कही तो मूल से भी अधिक जटिल होगया है। आजकल जो वेंकटेश्वर प्रेस का छपा हुआ गुमानकृत नैषध काव्य मिलता है, वह तो नितान्त अशुद्ध है। सभवत. गुमान ने ऐसी अशुद्ध रचना न की होगा।

नैषध मे से इनकी कविता के कुछ नमूने यहा दिये जाते है—

नल के यश तेज विराजत है। शशि भानु वृथा छवि छाजत है॥
जब ही जब यो विधि चित्त धरै। तब छेकन को परिवेश करै॥१॥
विधि भाल दरिद्र लिख्यो जेहि के। नहिं कीजत अक वृथा तेहि के॥
नल येतिकु ताहि तुरन्त दियो। जिमि टारि दरिद्र को दूरि कियो॥२॥

दूलह

दूलह कवीन्द्र के पुत्र और कालिदास त्रिवेदी के पौत्र थे। इनके जन्म-मरण के ठीक-ठीक समय का अभी तक पता नही चला। अनुमान से इनका जन्मकाल विक्रम स० १९६१ के लगभग ठहरता है। दूलह का "कविकुल-कठाभरण" नामक केवल एक ही ग्रन्थ मिलता है। उसमें कुल एक्यासी छन्द है। इनके सिवा कुछ स्फुट छन्द भी मिलते है। दूलह का काव्य-गुण पैतृक है। कालिदास से कवीन्द्र की कविता अच्छी है और कवीन्द्र से दूलह की।

दूलह की कविता के कुछ नमूने नीचे दिये जाते है—

फल बिपरीत को जतन सो "विचित्र" हरि ऊचे हेत बामन में बलि के सदन मे। आधार बड़े ते बड़ो आधेय "अधिक" जानो चरन समाना

नाहि चौदहो भुवन में ॥ आधेय अधिक ते आधार की अधिकताई दूसरो अधिक आयो ऐसो गणनन मे । तीनो लोक तन मे अमान्यो ना गगन मे वसै ते संत मन मे कितेक कहो मन मे ॥१॥

उत्तर उत्तर उतकरष वखानो "सार" दीरघ ते दीरघ लघू ते लघू भारी को । सब ते मधुर ऊख ऊख तें पियूष ना पियूष हू ते मधुर है अधर पियारी को ॥ जहां कमिकन को क्रमै तें यथा क्रम "यथा संख्य" वैन, नैन, नैनकोन ऐसे धारी को । कोकिल तें कल, कजदल तें अदल भाव जीत्यो जिन काम की कटारी नोकवारी को ॥२॥

धरी जव वाही तव करी तुम नाही पाइ दियौ पलिकाही नाही नाही कै सुहाई हो । वोलत मे नाही पट खोलत मे नाही कवि दूलह उछाही लाख भांतिन लहाई हो ॥ चुम्वन मे नाही परिरम्भन मे नाहीं सव आसन विलासन में नाही ठीक ठाई हो । मेलि गलवाहीं केलि कीन्हीं चित चाही यह हा से भली नाही सो कहा ते सीख आई हो ॥३॥

माने सनमाने तेई माने सनमाने सनमाने सनमाने सनमान पाइयतु है । कहै कवि दूलह अजाने अपमाने अपमान सो सदन तिनही को छाइयतु है ॥ जानत है जेऊ तेऊ जात है विराने द्वार जान वूझ भूले तिनको सुनाइयतु है । काम वस परे कोऊ गहत गरूर तो वा अपनी जरूर जाजरूर जाइयतु है ॥४॥

गिरिधर कविराय

गिरिधर कविराय का जन्म सं० १७७० में हुआ कहा जाता है। इन्होंने वहुत-सी कुण्डलियां वनाई हे, जो वड़ी लोकप्रिय हैं। इनकी कविता की भाषा से इनका जन्म-स्थान कहीं अवध में जान पड़ता है । इनके विषय में एक कहावत प्रसिद्ध है कि एक वार इनके पड़ोस में एक बढ़ई आ वसा । उसने एक ऐसा पलङ्ग वताया, जिसके चारों पावो पर पंखें लगे थे । जव कोई उस पलङ्ग पर लेटता, तो पखे आप से आप चलने लगते थे । वढ़ई ने वह पलङ्ग ले जाकर राजा को दिया । राजा ने उससे

वैसे ही और भी कई पलङ्ग बना लाने को कहा। गिरिधर के आगन मे बेर का एक बडा सुन्दर वृक्ष था। बढई और गिरिधर से कुछ खटपट होगई थी। इसलिए बढ़ई ने राजा से वही बेर का पेड लकडी के लिए मागा। राजा ने आज्ञा देदी। गिरिधर ने राजा से बहुत प्रार्थना की, कि वह पेड़ न दिया जाय, परन्तु राजा ने नही सुनी। इससे रुष्ट होकर गिरिधर उस राज्य को त्यागकर भ्रमण करने लगे। उसी भ्रमण के समय मे स्त्री-पुरुष ने मिलकर कुडलियो की रचना की। कहा जाता है कि जिन कुंडलियोके प्रारम्भ मे "साईं" शब्द है, वे सब गिरिधरकी स्त्री की बनाई हुई है। गिरिधर की कुडलिया नाम से इनकी कुडलियो का सग्रह छपा हुआ मिलता है।

हम गिरिधर की कुछ कविता यहा उद्धृत करते है—

साईं बेटा बाप के, बिगरे भयो अकाज।
हरिनाकस्यप कस को, गयउ दुहुन को राज॥
गयउ दुहुन को राज, बाप बेटा में बिगरी।
दुस्मन दावागीर, हसै महिमडल नगरी॥
कह गिरिधर कविराय, युगन याही चलि आई।
पिता पुत्र के बैर, नफा कहु कौने पाई॥ १ ॥

बेटा बिगरे बाप सों, करि तिरियन सों नेहु।
लटापटी होने लगी, मोहि जुदा करि देहु॥
मोंहि जुदा करि देहु, घरीमा माया मेरी।
लेहौं घर अरु द्वार, करौं मै फजिहत तेरी॥
कह गिरिधर कविराय, सुनो गदहा के लेटा।
समय पर्‌यो है आय, बाप से झगरत बेटा॥ २ ॥

साईं ऐसे पुत्र से, बाझ रहे बरु नारि।
बिगरी बेटे बाप से, जाय रहे ससुरारि॥
जाय रहै ससुरारि, नारि के नाम बिकाने।
कुल के धर्म नसाय, और परिवार नसाने॥

कह गिरिधर कविराय, मातु झखै वहि ठाईं।
असि पुत्रनि नहिं होय, वाझ रहतिउं बरु साईं॥ ३॥

काची रोटी कुचकुची, परती माछी वार।
फूहर वही सराहिये, परसत टपकै लार॥
परसत टपकै लार, झपटि लरिका सोचावै।
चूतर पोछै हाथ, दोउ कर सिर खजुवावै॥
कह गिरिधर कविराय, फुहर के याही बेना।
कजरौटा बरु होइ, लुकाठन आजै नैना॥ ४॥

शुक ने कह्यो सदेस, सेमर के पग लागिहौ।
पग न परै वहि देस, जब सुधि आवै फलन की॥ ५॥

साईं बैर न कीजिये, गुरु पंडित कवि यार।
बेटा बनिता पवरिया, यज्ञ करावनहार॥
यज्ञ करावनहार, राजमन्त्री जो होई।
विप्र परोसी वैद्य, आप को तपै रसोई॥
कह गिरिधर कविराय, युगन ते यह चलि आई।
इन तेरह सो तरह, दिये बनि आवै साईं॥ ६॥

सोना लादन पिय गये, सूना करि गये देश।
सोना मिले न पिय मिले, रूपा ह्वै गये केश॥
रूपा ह्वै गये केश, रोय, रग रूप गंवावा।
सेजन को बिसराम, पिया बिन कबहु न पावा॥
कह गिरिधर कविराय, लोन बिन सबै अलोना।
बहुरि पिया घर आव, कहा करिहौ लै सोना॥ ७॥

जाकी धन धरती हरी, ताहि न लीजै संग।
जो चाहै लेतो बनै, तो करि डारु निपङ्ग॥
तो करि डारु निपङ्ग, भूलि परतीति न कीजै।
सौ सौगन्दै खाय, चित्त मे एक न दीजै॥

कहँ गिरिधर कविराय, खटक जैहै नहिं ताकी।
अरि समान परिहरिय, हरी धन धरती जाकी॥ ८॥
दौलत पाय न कीजिये, सपने मे अभिमान।
चचल जल दिन चारिको, ठाउ न रहत निदान॥
ठाउ न रहत निदान, जियत जगमे यश लीजै।
मीठे बचन सुनाय, विनय सबही की कीजै॥
कह गिरिधर कविराय, अरे यह सब घट तौलत।
पाहुन निशिदिन चारि, रहत सबही के दौलत॥ ९॥
गुन के गाहक सहस नर, बिनु गुन लहै न कोय।
जैसे कागा कोकिला, शब्द सुनै सब कोय॥
शब्द सुनै सब कोय, कोकिला सबै सुहावन।
दोऊ को एक रग, काग सब भये अपावन॥
कह गिरिधर कविराय, सुनो हो ठाकुर मन के।
बिनु गुन लहै न कोय, सहस नर गाहक गुन के॥ १०॥
साईं सब ससार मे, मतलब का व्यवहार।
जब लग पैसा गाठ मे, तबलग ताको यार॥
तबलग ताको यार, यार सगही सग डोलै।
पैसा रहा न पास, यार मुखसे नहिं बोलै॥
कह गिरिधर कविराय, जगत यहि लेखा भाई।
करत बेगरजी प्रीति, यार बिरला कोई साईं॥ ११॥
रहिये लटपट काटि दिन, बरु घामे मा सोय।
छाह न वाकी बैठिये, जो तरु पतरो होय॥
जो तरु पतरो होय, एक दिन धोखा दैहै।
जा दिन बहै बयारि, टूटि तब जर से जैहै॥
कह गिरिधर कविराय, छाह मोटे की गहिये।
पाता सब झरि जाय, तऊ छाया मे रहिये॥ १२॥

साईं घोड़े आछतहि, गदहन पायो राज।
कौआ लीजै हाथ मे, दूरि कीजिये बाज॥
दूरि कीजिये बाज, राज पुनि ऐसो आयो॥
सिंह कीजिये कैद, स्यार गजराज चढ़ायो॥
कह गिरिधर कविराय, जहा यह बूझि बधाई।
तहा न कीजै भोर, साझ उठि चलिये साईं॥ १३॥

साईं अवसर के पड़े, को न सहै दुख द्वन्द।
जाय बिकाने डोम घर, वै राजा हरिचन्द॥
वै राजा हरिचन्द, करै मरघट रखवारी।
धरे तपस्वी वेष, फिरे अर्जुन बलधारी॥
कह गिरिधर कविराय, तपै वह भीम रसोईं।
को न करै घटि काम, परे अवसर के साईं॥ १४॥

साईं ये न विरोधिये, छोट बड़े सब भाय।
ऐसे भारी वृक्ष को, कुल्हरी देत गिराय॥
कुल्हरी देत गिराय, मारके जमी गिराई।
टूक टूक कै काटि, समुद मे देत बहाई॥
कह गिरिधर कविराय, फूट जेहि के घर आई।
हिरणाकश्यप कस, गये बलि रावण साईं॥ १५॥

लाठी मे गुण बहुत है, सदा राखिये सग।
गहिर नदी नारा जहां, तहां बचावै अंग॥
तहां बचावै अग, झपटि कुत्ता कह मारै।
दुश्मन दावागीर, होयं तिनहूं को झारै॥
कह गिरिधर कविराय, सुनो हो धूर के बाठी।
सब हथियारन छांड़ि, हाथ महं लीजै लाठी॥ १६॥

कमरी थोरे दाम की, बहुतै आवै काम।
खासा मलमल वाफता, उनकर राखै मान॥

उनपर राखै मान , बुन्द जह आडे आवै ।
बकुचा बाधै मोट , राति को झारि बिछावै ॥
कह गिरिधर कविराय , मिलत है थोरे दमरी ।
सब दिन राखै साथ , बडी मर्यादा कमरी ॥ १७ ॥

बिना बिचारे जो करै , सो पीछे पछिताय ।
काम बिगारै आपनो , जग मे होत हसाय ॥
जग मे होत हसाय , चित्त मे चैन न पावै ।
खान पान सन्मान , राग रग मनहिं न भावै ॥
कह गिरिधर कविराय , दुःख कछु टरत न टारे ।
खटकत है जिय माहि किये जो बिना बिचारे ॥ १८ ॥

बीती ताहि बिसारि दे , आगे की सुधि लेइ ।
जो बनि आवै सहज में , ताही मे चित देइ ॥
ताही में चित देइ , बात जोई बनि आवै ।
दुर्ज्जन हसै न कोइ , चित्त में खता न पावै ॥
कह गिरिधर कविराय , यहै करु मन परतीती ।
आगे को सुख समुझि , होइ बीती सो बीती ॥ १९ ॥

साईं अपने चित्त की , भूलि न कहिये कोइ ।
तब लग मन में राखिये , जबलग कारज होइ ॥
जबलग कारज होइ , भूलि कबहुँ नहिं कहिये ।
दुरजन हंसे न कोय , आप सियरे ह्वै रहिये ॥
कहै गिरिधर कविराय , बात चतुरन के ताईं ।
करतूती कहि देत , आप कहिये नहिं साईं ॥ २० ॥

साईं अपने भ्रात को , कबहु न दीजै त्रास ।
पलक दूर नहिं कीजिये , सदा राखिये पास ॥
सदा राखिये पास , त्रास कबहू न दीज ।
त्रासि दियो लकेश , ताहि की गति सुनि लीजै ॥

कह गिरिधर कविराय, रामसो मिलियो जाई।
पाय विभीषण राज, लंकपति बाज्यो साईं॥ २१॥
साईं समय न चूकिये, यथाशक्ति सन्मान।
को जाने को आइ है, तेरी पौरि प्रमान॥
तेरी पौरि प्रमान, समय असमय तकि आवै।
ताको तू मन खोलि, अंक भरि हृदय लगावै॥
कह गिरिधर कविराय, सबै यामें सधि आई।
शीतल जल फल फूल, समय जनि चूको साईं॥ २२॥
पानी बाढ़ो नाव में, घर में बाढ़ो दाम।
दोनों हाथ उलीचिये, यही सयानो काम॥
यही सयानो काम, राम को सुमिरन कीजै।
परस्वारथ के काज, शीश आगे धरि दीजै॥
कह गिरिधर कविराय, बडेन की याही बानी।
चलिये चाल सुचाल, राखिये अपनो पानी॥ २३॥
राजा के दरबार में, जैये समया पाय।
साईं तहां न बैठिये, जहं कोउ देय उठाय॥
जहं कोउ देय उठाय, बोल अनबोले रहिये।
हसिये नहीं हहाय, बात पूछे ते कहिये॥
कह गिरिधर कविराय, समय सो कीजे काजा।
अति आतुर नहिं होय, बहुरि अनखैहै राजा॥ २४॥
कृतघन कबहु न मानही, कोटि करै जो कोय।
सर्वस आगे राखिये, तऊ न अपनो होय॥
तऊ न अपनो होय, भले की भली न मानै।
काम काढ़ि चुप रहै, फेरि तिहि नहिं पहिचानै।
कह गिरिधर कविराय, रहत नितही निर्भय मन।
मित्र शत्रु सब एक, दाम के लालच कृतघन॥ २५॥

सूदन

सूदन मथुरा निवासी माथुर ब्राह्मण थे । इनके पिता का नाम बसन्त था । ये भरतपुर के महाराज सूरजमल के आश्रय मे रहा करते थे। इनके जन्म-मरण के ठीक ठीक समय का पता नही है। इन्होने २३४ पृष्ठो के सुजान चरित्र नामक एक ग्रन्थ की रचना की है। उसे नागरी-प्रचारिणी-सभा काशी ने प्रकाशित किया है । उसमे स० १८०२ से १८१० तक सूरजमल के युद्धो का और विविध घटनाओ का वर्णन है। सूदन की कविता वीररस से पूर्ण है । प्राचीन कवियो मे भूषण और लाल के पश्चात् वीररस की कविता रचने मे सूदन ही सफल हुए है। इनका युद्ध की तैयारी का वर्णन उत्तम है। इनकी भाषा मे व्रजभाषा और खडी बोली का मिश्रण है। इनकी कविता के कुछ नमूने नीचे दिये जाते है—

सेलनु धकेला ते पठान मुख मैला होत केते भट मेला है भजाये भुव भग मै। तग के कसे ते तुरकानी सब तग कीनी दग कीनी दिली औ दुहाई देत बग मै ।। सूदन सराहत सुजान किरवान गहि धायो धीर धारि वीरताई की उमङ्ग मै। दक्खिनी पछेला करि खेला तै अजब खेल हेला मारि गङ्ग मै रुहेला मारे जङ्ग मे ।।१।।

एकै एक सरस अनेक जे निहारे तन भारे लाज भारे स्वामिकाज प्रतिपाल के। चङ्ग लौ उडायो जिन दिली की वजीर भीर मारी बहु मीरन किये है वे हवाल के ।। सिह बदनेस के सपूत श्री सुजानसिह सिह लौं झपटि नख दीन्हे करवाल के। वेई पटनेटे सेल सागन खखेटे भूरि धूरि सौ लपेटे लेटे भेटे महाकाल के ।।२।।

वङ्गन के लाज मऊखेत की अवाज यह सुने ब्रजराज ते पठान वीर बबके। भाई अहमदखान सरन निदान जानि आयो मनसूर तौ रहै न अब दबके। चलना मुझे तौ उठ खडा होना देर क्या है ? बार बार कहे ते दराज सीने सब के। चड भुजदडवारे हयन उदडवारे कारे कारे डीलन सवारे होत रब के ।।३।।

महल सराय से रवाने बुआ बूबू करो, मुझे अफसोस बडा बड़ी बीबी जानी का। आलम में माजुम चकत्ता का घराना यारो जिसका हवाल है तनैया जैसा तानी का ॥ खने खाने बीच से अमाने लोग जाने लगे आफत ही जानो हुआ औल दहकानी कां। रब की रजा है हमे सहना बजा है वक्त हिन्दू का गजा है आया छोर तुरकानी का ॥४॥

आप बिस चाखै भैया षटमुख राखै देखि आसन मे राखै बस बास जाको अचलै। भूतन के छैया आसपास के रखैया और काली के नथैया हू के ध्यान हू ते न चलै ॥ बैल बाघ बाहन बसन को गयन्द खाल भांग को धतूरे को पसारि देत अचलै। घर को हवाल यहै संकर की बाल कहै लाज रहै कैसे पूत मोदक को मचलै ॥५॥

पूत मजबूत बानी सुनि कै सुजान मानी सोई बात जानी जासों उर में छमा रहै। जुद्ध रीति जानो मत भारत को मानो जैसो होय पुठवार ताते ऊन अगमा रहै ॥ बाम और दच्छिन समान बलवान जान कहत पुरान लोकरीति मो रमा रहै। सूदन समर घर दोउन की एकै विधि घर मे जमा रहै तो खातिर जमा रहै ॥६॥

सीतल

सीतल स्वामी हरिदास की टट्टी-सम्प्रदाय के महत थे। इनका समय इस सम्प्रदाय के लोग स० १७८० के लगभग बतलाते है, मरणकाल का कुछ पता नही चलता। सीतल ने चार भागो मे गुलजार चमन नामक ग्रथ की रचना की थी। उसके तीन भाग मिलते है, जिनके नाम गुलजार चमन, आनन्द चमन और विहार चमन है। इनके विषय मे यह किम्वदन्ती सुनी जाती है कि ये शाहाबाद जिला हरदोई के समीप किसी ग्राम के निवासी थे, और लालबिहारी नाम के एक लड़के पर आसक्त थे। इनकी कविता प्रेमरस से सराबोर है। कुछ छन्दो का भाव सासारिक प्रेम और भगवत्प्रेम दोनो ओर लगाया जा सकता है। लालबिहारी का नाम इनके छन्दो मे प्राय. अधिक आया है। सम्भव है, इसी भ्रम मे आकर लोगों ने उपर्युक्त कल्पना की हो।

सीतल हिन्दी के सिवा संस्कृत और फारसी भी जानते थे। इनकी कविता वर्तमान हिन्दी के ढंग की है। नीचे इनके कुछ छंद लिखे जाते हैं—

शिव विष्णु ईश बहु रूप तुई नभ तारा चारु सुधाकर हैं।
अम्बा धारानल शक्ति स्वधा स्वाहा जल पौन दिवाकर हैं॥
हम अंशांश समझते हैं सब खाक जाल से पाक रहैं।
सुन लालबिहारी ललित ललन हम तो तेरे ही चाकर हैं॥१॥
कारन कारज ले न्याय कहैं जोतिस मत रवि गुरु ससी कहा।
जाहिद ने हक्क हसन यूसुफ अरहत जैन छबि बसी कहा॥
रतिराज रूप रस प्रेम इश्क जानी छबि शोभा लसी कहा।
लाला हम तुमको वह जाना जो ब्रह्म तत्व त्वम असी कहा॥२॥
मुख सरद चन्द्र पर ठहर गया जानो के बूंद पसीने का।
या कुन्दन कमल कली ऊपर झमकाहट रक्खा मीने का॥
देखे से होश कहां रहवै जो पिदर बू अली सीने का।
या लाल बदख्शा पर खींचा चौका इल्मास नगीने का॥३॥
हम खूब तरह से जान गये जैसा आनन्द का कंद किया।
सब रूप सील गुन तेज पुञ्ज तेरे ही तन में बन्द किया॥
तुझ हुस्न प्रभा की बाकी ले फिर विधि ने यह फरफंद किया।
चम्पकदल सोनजुही नरगिस चामीकर चपला चंद किया॥४॥
मुख सरद चन्द्र पर स्रम सीकर जगमगैं नखत गन जोती से।
कैं दल गुलाब पर शबनम के हैं कनके रूप उदोती से॥
हीरे की कनियां मंद लगैं है सुधा किरन की गोती से।
आया है मदन आरती को धर कनक थार में मोती से॥५॥
बरनन करने को क्या बरनूं बरनूंगा जेती बानी हैं।
ग्रह तीन उच्च के पडे हुये जानी यह यूसुफ सानी हैं॥
ससि भवन जीव सफरी में गुर कन्या बुध जोतिस ज्ञानी हैं।
इस लालबिहारी की सीतल क्या अर्द्ध चन्द्र पेशानी हैं॥६॥

चन्दन की चौकी चारु पडी सोता था सब गुन जटा हुआ ।
चौके की चमक अधर विहसन मानो एक दाडिम फटा हुआ ।।
ऐसे मे ग्रहन समै सीतल एक ख्याल बडा अटपटा हुआ ।
भूतल ते नभ, नभ ते अवनी, अंग उछलै नट का बटा हुआ ।।७।।

ब्रजबासीदास

ब्रजबासीदास का जन्म स०१७९० के आसपास हुआ । ये वल्लभ सम्प्रदाय के थे । इन्होंने स०१८२७, माघ शुक्ला पचमी सोमवार को ब्रजविलास प्रारम्भ किया था । इस ग्रन्थ मे कुल इतने छन्द है—दोहा ८८९,सोरठा ८८९, चौपाई १०६००, हरिगीतिका १०६ । इस ग्रन्थ मे भगवान कृष्ण की व्रजलीला का वर्णन है । तुलसीदास के रामायण के ढग पर यह लिखा गया है । इसकी कविता कृष्ण-भक्तो को विशेष प्रिय है । इन्होंने प्रबोध चद्रोदय का भी विविध छन्दो मे अनुवाद किया है । यहा ब्रजविलास से चन्द्रमा के लिए कृष्ण के मचलने की कथा उद्धृत की जाती है—

ठाढी अजिर जसोदा रानी । गोदी लिये श्याम सुखदानी ।।
उदय भयो ससि सरद सुहावन । लागी सुत को मात दिखावन ।।
देखहु श्याम चद यह आवत । अति सीतल दृग ताप नसावत ।।
चितै रहे हरि इकटक ताही । करते निकट बुलावत ताही ।।
मैया यह मीठो है खारो । देखत लगत मोहि यह प्यारो ।।
देखि मगाय निकट मे लैहो । लागी भूख चद मै खैहो ।।
देहि वेगि मै बहुत भुखानो । मांगत ही मागत बिरुझानो ।।
जसुमति हसत करत पछतायो । काहे को मै चन्द दिखायो ।।
रोवत है हरि बिनहो जाने । अब धो कैसे करिकै माने ।।
विविध भाति करि हरिहि भुलावै । आन बतावै आन दिखावै ।।

कहत जसोदा कौन विधि, समझाऊं अब कान्ह ।
भूलि दिखायो चद मै, ताहि कहत हरि खान ।।

अनहोनी कहुं होय, तात सुनी यह बात कहुं।
याहि खात नहिं कोय, चद खिलौना जगत को ॥
यही देत नित माखन मोको। छिन छिन देत तात सो तोको ॥
जो तुम श्याम चन्द को खैहो। बहुरो फिरि माखन कह पैहो ॥
देखत रहौ खिलौना चन्दा। हठ नहिं कीजै बाल गोबिन्दा ॥
मधु मेवा पकवान मिठाई। जो भावै सो लेहु कन्हाई ॥
पालागो हठ अधिक न कीजै। मै बलि रिस ही रिस तन छीजै ॥
खसि खसि कान्ह परत कनिया ते। दै ससि कहत नन्द रनिया ते ॥
जसुमति कहत कहा धौ कीजै। मागत चन्द कहा ते दीजै ॥
तब जसुमति इक जलपुट लीनो। कर मे लै तेहि ऊचो कीनो ॥
ऐसे कहि श्यामहि बहकावै। आव चन्द तोहि लाल बुलावै ॥
याही में तू तन धरि आवै। तोहिं देखि लालन सुख पावै ॥
हाथ लिये तोहिं खेलत रहिये। नेक नही धरनी पर धरिये ॥
जलपुट आनि धरनि पर राख्यो। गहि आनहु ससि जननी भाख्यो ॥
लेहु लाल यह चन्द्र मैं, लीनो निकट बुलाय।
रोवै इतने के लिए, तेरी श्याम बलाय ॥
देखहु श्याम निहारि, या भाजन मे निकट ससि।
करी इती तुम आरि, जा कारण सुन्दर सुवन ॥
ताहि देखि मुसुकाय मनोहर। बार बार डारत दोऊ कर ॥
चन्दा पकरत जल के मांही। आवत कछू हाथ में नाही ॥
तब जलपुट के नीचे देखे। तह चन्दा प्रतिबिम्ब न पेखे ॥
देखत हसी सकल ब्रजनारी। मगन बालछबि लखि महतारी ॥
तबहिं श्याम कुछ हसि मुसुकाने। बहुरो माता सों बिरुझाने ॥
लउगौ री मा चन्दा लउगौ। वाहि आपने हाथ गहूंगौ ॥
यह तो कलमलात जल माही। मेरे कर में आवत नाही ॥
बाहर निकट देखियत माही। कहौ तो मै गहि लावौ ताही ॥
कहत जसोमति सुनहु कन्हाई। तुव मुख लखि सकुचत उडुराई ॥

तुम तिहि पकरन चहत गुपाला । ताते ससि भजि गयो पताला ॥
अब तुमते ससि डरपत भारी । कहत अहो हरि सरन तुम्हारी ॥
विरुझाने सोये दै तारी । लिय लगाय छतियां महतारी ॥

लै पौढ़ाये सेज पर, हरि को जसुमति माय ।
अति विरुझाने आज हरि, यह कहि कहि पछिताय ॥
करसो ठोंकि सुवाय, मधुरे सुर गावत कछुक ।
उठि बैठे अतुराय, चटपटाय हरि चौंकि के ॥

सहजोबाई

सहजोबाई राजपूताना के एक प्रतिष्ठित ढूसर कुल की स्त्री थी। इन्होंने अपने विषय मे एक स्थान पर लिखा है—

हरिप्रसाद की सुता नाम है सहजोबाई ।
ढूसर कुल मे जन्म सदा गुरु चरन सहाई ॥

इनके जन्मकाल का ठीक-ठीक पता नही चलता । परन्तु इन्होंने अपने गुरु साधु चरनदासजी का जन्म समय भादव सुदी ३, मंगलवार स० १७६० विक्रमीय लिखा है । इससे केवल यह माना जा सकता है, कि उन्ही दिनो के आसपास इनका भी जीवन-काल है ।

सहजोबाई की कविता से प्रकट होता है कि उनमे बड़ी गुरु-भक्ति थी । उनकी कविता बडी मधुर और बड़े मर्म की है । हम उनकी रचना के कुछ नमूने यहां उद्धृत करते है—

निसचै यह मन डूबता, मोह लोभ की धार ।
चरनदास सतगुरु मिले, सहजो लई उबार ॥ १ ॥
सहजो गुरु दीपक दियो, नैना भये अनन्त ।
आदि अन्त मध एक ही, सूझ पड़ै भगवन्त ॥ २ ॥
जब चेतै जब ही भला, मोह नीद सू जाग ।
साधू की सगत मिलै, सहजो ऊंचे भाग ॥ ३ ॥
दीर्घ बुद्धि जिनकी महा, सील सदा ही नैन ।
चेतनता हिरदै बसै, सहजो सीतल बैन ॥ ४ ॥

ना सुख दारा सुख महल , ना सुख भूप भये ।
साधु सुखी सहजो कहै , तृश्ना रोग गये ॥ ५ ॥
साधु वृक्ष बानी कली , चर्चा फूले फूल ।
सहजो संगत बाग मे , नाना फल रहे झूल ॥ ६ ॥
बैठ बैठ बहुतक गये , जग तरवर की छाँहि ।
सहज बटाऊ बाट के , मिलिमिलिबिछुडतजाँहि ॥ ७ ॥
अभिमानी नाहर बडो , भरमत फिरत उजार ।
सहजो नन्ही बाकरी , प्यार करै ससार ॥ ८ ॥
सीस कान मुख नासिका , ऊचे ऊचे ठाव ।
सहजो नीचे कारने , सब कोउ पूजै पाव ॥ ९ ॥
भली गरीबी नवनता , सकै न कोई मार ।
सहजो रुई कपास की , काटै ना तरवार ॥ १० ॥
प्रेम दिवाने जो भये , पलट गयो सब रूप ।
सहजो दृष्टि न आवई , कहा रक कह भूप ॥ ११ ॥
मै अखण्ड व्यापक सकल , सहज रहा भरपूर ।
ज्ञानी पावे निकट ही , मूरख जानै दूर ॥ १२ ॥
जोगी पावै जोग सू , ज्ञानी लहै विचार
सहजो पावै भक्ति सू , जाके प्रेम अधार ॥ १३ ॥
साल छिमा सन्तोष गहि , पांचो इन्द्री जीत ।
राम नाम ले सहजिया , मुक्ति होन की रीत ॥ १४ ॥
जब लग चावल धान मे , तब लग उपजै आय ।
जब छिलके कू तजि निकस , मुक्ति रूप ह्वै जाय ॥ १५ ॥

दयाबाई

दयाबाई भी साधु चरनदास की शिष्या और सहजोबाई की गुरु-बहन थीं। ये चरनदासजी की सजातीय अर्थात् दूसर जाति की थी। चरनदासजी के जन्मस्थान मेवाड़ के डेहरा नामक गाव मे इनका भी जन्म

हुआ था। वहा से ये अपने गुरूजी के साथ दिल्ली आकर भक्ति कमाती रही। दिल्ली ही मे इन्होने शरीर छोड़ा।

स० १८१८ में इन्होने अपना पहला ग्रथ दयाबोध रचा। सहजोबाई की तरह इन्होंने भी गुरु चरनदासजी की महिमा खूब गाई है। इनकी कविता बडी मधुर और प्रेम से युक्त है। हम यहा दयाबोध से कुछ दोहे उद्धृत करते हैं—

जो पग धरत सो दृढ धरत, पग पाछे नहिं देत।
अहङ्कार कू मार करि, राम रूप जस लेत॥ १॥
बौरी ह्वै चितवत फिरूं, हरि आवे केहि ओर।
छिन उट्ठू छिन गिरि परू, राम दुखी मन मोर॥ २॥
प्रेम पुञ्ज प्रकटै जहा, तहा प्रकट हरि होय।
दया दया करि देत है, श्रीहरि दर्शन सोय॥ ३॥
"दया कुवर" या जगत मे, नही रह्यो थिर कोय।
जैसो बास सराय को, तैसो यह जग होय॥ ४॥
तात मात तुम्हरे गये, तुम भी भये तयार।
आज काल मे तुम चलो, दया होहु हुसयार॥ ५॥
बडो पेट है काल को, नेक न कहूं अघाय।
राजा राना छत्रपति, सब कूं लीले जाय॥ ६॥
दुख तजि सुख की चाह नहिं, नहिं बैकुण्ठ बेवान।
चरन कमल चित चहत हौ, मोहि तुम्हारी आन॥ ७॥
साधु सग मे सुख बडो, जो करि जाने कोय।
आधो छिन सतसंग को, कलमख डारे खोय॥ ८॥

ठाकुर

ठाकुर असनी के रहने वाले ब्रह्मभट्ट थे। इनका जन्म स० १७९२ के लगभग कहा जाता है। इनकी कविता इतनी लोकप्रिय है कि कभी-कभी उसका उपयोग कहावतो की तरह किया जाता है। ठाकुर नाम के कई कवि हुए, परन्तु सब से प्रसिद्ध असनी वाले ही हैं। प्रेम का वर्णन

इनकी कविता का मुख्य गुण है। नीचे हम कुछ कविताए उद्धृत करते है; उनसे ठाकुर के हृदय का बडा सुन्दर परिचय मिलता है।

वैर प्रीति करिबे की मन मे न राखै सक राजा राव देखिकै न छाती धकधाकरी। अपनी उमग की निबाहिबे की चाह जिन्हे एक सो दिखात तिन्हे बाघ और बाकरी॥ ठाकुर कहत मै विचार कै विचार देखो यहै मरदानन की टेक बात आकरी। गही जौन गही जौन छोडी तौन छोड दई करी तौन करी बात ना करी सो ना करी॥ १॥

सामिल मे पीर मे सरीर में न भेद राखै हिम्मत कपट को उघारै तौ उघरि जाय। ऐसे ठान ठानै तौ बिनाहू जन्त्र मन्त्र किये साप के जहर को उतारै तौ उतरि जाय। ठाकुर कहत कछु कठिन न जानौ अब, हिम्मत किये तें कहो कहा न सुधरि जाय। चारि जने चारिहू दिसा ते चारो कोन गहि मेरु को हिलाय कै उखारै तौ उखरि जाय॥ २॥

अन्तर निरन्तर के कपट कपाट खोलि प्रेम को झलाभल हिये में छाइयतु है। लटी भई आप सो भई है करतूत जौन बिरह विथा की कथा को सुनाइयतु है। ठाकुर कहत वाहि परम सनेही जानि दुख सुख आपने विधिसो गाइयतु है। कैसों उतसाह होत कहत मते की बात जब कोऊ सुघर सुनैया पाइयतु है।॥ ३॥

जौलों कोऊ पारखी सों होन नहि पाई भेंट तब ही लों तनक गरीब लो सरीरा है। पारखी सो भेंट होत मोल बढे लाखन को, गुनन के आगर सुबुद्धि के गंभीरा है॥ ठाकुर कहत नहि निन्दो गुनवारन को देखिबे को दीन ये सपूत सूरबीरा हैं। ईश्वर के आनस तें होत ऐसे मानस जे मानस सहूरवारे धूर भरे हीरा हैं॥ ४॥

सुकवि सिपाही हम उन रजपूतन के दान युद्ध वीरता मे नेकहू न मुरके। जस के करैया है मही के महिपालन के हिये के बिशुद्ध हैं सनेही साचे उर के॥ ठाकुर कहत हम बैरी बेवकूफन के जालिम दमाद हैं अदेनिया ससुर के। चोजन के चोजी महा मौजिन के महाराज हम कविराज है पै चाकर चतुर के॥ ५॥

ठाकुर या मन की परतीति है जो पै सनेह न मानति ह्वै है।
आवत है नित मेरे लिए इतनो तो बिसेसहू जानति ह्वै है ॥११॥
यह प्रेम कथा कहिये किहि सो सो कहेसों कहा कोऊ मानत है।
पर ऊपरी धीर बधायो चहै तन रोग न वा पहिचानत है॥
कहि ठाकुर जाहि लगी कसकै सु तो को कसकै उर आनत है।
बिन आपने पाय बेवाय गये कोऊ पीर पराई न जानत है ॥१२॥
ये जे कहै ते भले कहिबो करै मान सही सौ सबै सहि लीजै।
ते बकि आपुहि ते चुप होयगी काहे को काहुवै उत्तर दीजै॥
ठाकुर मेरे मते की यहै धनि मान कै जोबन रूप पतीजै।
या जग मै जनमै को जियै को यहै फल है हरि सो हित कीजै ॥१३॥
एक ही सो चित चाहियै और लौ बीच दगा को परै नहिं टाको।
मानिक सो चित बेचि कै जू अब फेरि कहा परखावनो ताको॥
ठाकुर काम नही सब को इक लाखन में परबीन है जाको।
प्रीति कहा करिबे मे लगै करिकै इक ओर निबाहनो वाको ॥१४॥
वह कंज सो कोमल अग गुपाल को सोऊ सबै पुनि जानती हौ।
बलि नेक रुखाई धरे कुम्हलात इतौऊ नही पहिचानती हौ॥
कवि ठाकुर या कर जोरि कह्यो इतने पै बनै नहि मानती हौ।
दृग बान ये भौह कमान कहौ अब कान लौं कौन पै तानती हौ ॥१५॥

बोधा

बोधा का पहला नाम बुद्धिसेन था। ये सरवरिया ब्राह्मण थे। कोई कोई इनका निवास-स्थान राजापुर (जिला बादा) और कोई कोई फिरोजाबाद (जिला आगरा) बतलाते है। परन्तु फीरोजाबादी बोधा एक भिन्न कवि हुए है। पन्ना से उनका कोई सम्बन्ध नही था। उनके वंशज अब तक फीरोजाबाद में वर्तमान है। उन्होने "बागविलास" नामक काव्य-ग्रन्थ की रचना की थी, जो अब दुष्प्राप्य हो रहा है। जान पड़ता है कि पन्ना दरबार से सम्बन्ध रखने वाले बोधा राजापुर ही के

रहने वाले थे। इनके जन्म-मरण का ठीक समय अभी निश्चित नहीं हो सका है। शिवसिंह सरोज में इनका जन्म-सवत् १८०४ लिखा है। अनुमान से यही ठीक जान पड़ता है।

पन्ना दरबार में इनके सम्बन्धियों की अच्छी प्रतिष्ठा थी। बालकपन में ये उन्ही के पास जाकर रहने लगे। ये हिन्दी के अतिरिक्त संस्कृत और फारसी के अच्छे पडित थे। इनके गुणों से प्रसन्न होकर पन्ना-नरेश इन्हे बहुत चाहने लगे। प्यार के कारण उन्होंने ही इनका नाम बुद्धिसेन से बोधा रख दिया। दरबार में सुभान नाम की एक वेश्या थी। बोधा ने उससे कुछ सम्बन्ध स्थापित कर लिया। जब इसका समाचार राजा साहब को मालूम हुआ, तब उन्होंने बोधा को छः महीने के लिए अपने राज से निकाल दिया। इस अवसर में इन्होंने इस वेश्या के विरह में "विरह वारीश" नामक ग्रन्थ की रचना की। छ मास के उपरान्त जब ये फिर दरबार में गये, और राजा साहब को इन्होंने अपना "विरह वारीश" सुनाया, तब राजा ने प्रसन्न होकर इनसे वर मांगने को कहा। इन्होंने कहा—"सुभान अल्लाह"। राजा ने प्रसन्न होकर सुभान वेश्या इन्हें समर्पित की। अपने "इश्कनामा" में इन्होंने सुभान की बड़ी प्रशंसा की है। पन्ना ही में इनका देहान्त हुआ।

बोधा प्रेमी कवि थे। प्रेम के उपासक थे। प्रेम के मर्मज्ञ थे। इनकी कविता-तरंगिणी में प्रेम ही की लहर लहराती है। यहां हम इनके कुछ छन्द उद्धृत करते हैं:—

अति खीन मृनाल के तारहु ते तेहि ऊपर पांव दै आवनो है।
सुइ वेह ते द्वार सकी न तहां परतीति को टांडो लदावनो है॥
कवि बोधा अनी घनी नेजहु ते चढि तापे न चित्त डरावनो है।
यह प्रेम को पन्थ कराल महा तरवारि की धार पै धावनो है॥ १॥

एक सुभान के आनन पै कुरवान जहां लगि रूप जहां को।
कैयो सतक्रतु की पदवी लुटियै लखि कै मुसुकाहट ताको॥

सोक जरा गुजरा न जहा कवि बोधा जहा उजरा न तहा को ।
जान मिलै तो जहान मिलै नहि जान मिलै तो जहान कहा को ॥ २ ॥
लोक की लाज औ सोक प्रलोक को वारिये प्रीति के ऊपर दोऊ ।
गाव को गेह को देह को नातो सनेह मे हातो करै पुनि सोऊ ॥
बोधा सुनीति निबाह करै धर ऊपर जाके नही सिर होऊ ।
लोक की भीति डेरात जो मीत तौ प्रीति के पैडे परे जनि कोऊ ॥ ३ ॥
बोधा किसू सो कहा कहिये सो बिथा सुनि पूरि रहै अरगाइ कै ।
याते भले मुख मौन धरै उपचार करै कहू औसर पाइ कै ॥
ऐसो न कोऊ मिल्यो कबहू जो कहै कछु रच दया उर लाइ कै ।
आवतु है मुख लौ वढि कै फिरि पीर रहै या सरीर समाइ कै ॥ ४ ॥
कबहू मिलिबो कबहू मिलिबो यह धीरज ही मे धरैबो करै ।
उर ते कढि आवै गरे ते फिरै मन की मनही मे सिरैबो करै ॥
कवि बोधा न चाउ सरी कबहू नितही हरवासो हिरैबो करै ।
सहते ही बनै कहते न बनै मन ही मन पीर पिरैबो करै ॥ ५ ॥

बिछुरे दरद न होत , खर सूकर कूकुरन को ।
हस मयूर कपोत , सुघर नरन बिछुरन कठिन ॥६॥
बोधा सब जग ढूढयो फिरि फिरि धाइ ।
जेहि मनही मन चाहत सो न लखाइ ॥७॥

हिलि मिलि जानै तासो मिलि कै जनावै हेत हित को न जानै ताको हितू न बिसाहिये । होय मगरूर तापै दूनी मगरूरी कीजै लघु ह्वै चलै जो तासो लघुता निबाहिये ॥ बोधा कवि नीति को निबेरो यही भाति अहै आपको सराहै ताहि आपहू सराहिये । दाता कहा सूर कहा सुन्दर सजान कहा आपको न चाहै ताके बाप को न चाहिए ॥८॥

वह प्रीति की रीति को जानत थो तब ही तौ बच्यो गिरि ढाहन ते।
गज ;ज चिकारि कै प्रान तज्या न जरचौ सग होलिका दाहन ते ॥
कवि बोध । कछू न अनोखी यहै का बनै नही प्रीति निबाहन तें ।
प्रह्लाद की ऐसी प्रतीति करै तब क्यो न कढै प्रभु पाहन ते ॥९॥

पदमाकर

पदमाकर का जन्म स० १८१० मे वांदा मे हुआ, और स० १८९० में ये कानपुर में गङ्गातट पर स्वर्गवासी हुए। ये तैलङ्ग ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम मोहनलाल भट्ट था। पदमाकर सस्कृत और प्राकृत के अच्छे पंडित थे। ये कुछ दिनो तक जयपुर के महाराज जगतसिंह के पास भी रहे थे, और उन्ही के नाम पर इन्होने जगद्विनोद नामक बड़ा रोचक काव्य ग्रंथ बनाया। इनके रचे हुए जगद्विनोद, गङ्गालहरी, हिम्मत बहादुर विरदावली, पद्माभरण, आलीजाप्रकाश, भाषा हितोपदेश और प्रबोधपचासा ग्रन्थ है, पर सब प्रकाशित नही है। इन्होने राम रसायन नाम से बाल्मीकि रामायण का पद्यानुवाद भी किया था। इनके प्राय: सब ग्रथ भारत जीवन प्रेस बनारस मे छप चुके है। कविता द्वारा इन्होने बड़ा धन प्राप्त किया था। ये सदैव राजा महाराजाओ की तरह रहा करते थे। इनकी कविता मे अनुप्रास का आनद खूब मिलता है। हम यहा इनकी कविता के कुछ नमूने प्रस्तुत करते है—

जाहिरै जागत सी जमुना जब बूड़ै बहै उमहै वह बेनी।
त्यो पदमाकर हीरा के हारन गङ्ग तरङ्गन सी सुखदेनी॥
पायन के रग सो रगि जात सी भांति सरस्वति सेनी।
पैरै जहांई जहा वह बाल तहा तहा ताल में होत त्रिवेनी॥ १॥

ये अलि या बलि के अधरानि में आनि चढ़ी कछु माधुरईसी।
ज्यो पदमाकर माधुरी त्यो कुच दोउन की चढ़ती उनईसी॥
ज्यो कुच त्योही नितम्ब चढे कछु ज्योही नितम्ब त्यो चातुरईसी।
जानि न ऐसी चढ़ाचढ़ि मे किहि धौ कटि बीच ही लूटि लईसी॥ २॥

चौक मे चौकी जराय जरी तिहि पै खरी बार बगारत सौधे।
छोरि परी है सुकंचुकी न्हान को अगन तेज में ज्योति के कौधे॥
छाइ उरोजन की छवि ज्यो पदमाकर देखत ही चकचौंधे।
भागि गई लरिकाई मनो लरिकै दुहुं दुन्दुभि औंधे॥ ३॥

जाहि न चाह कहू रति की सु कछू पति को पतिय न लगी है ।
त्यों पदमाकर आनन मे रुचि कानन भौहे कमान लगी है ।।
देत तिया न छुवै छतिया बतियान मे तो मुसकान लगी है ।
प्रीतम पान खवाइबे को परयङ्क के पास लों जान लगी है ।। ४ ।।

आई जु चालि गुपाल घरै ब्रजबाल विशाल मृणाल सों बाही ।
त्यों पदमाकर मूरति मे रति छू न सकै कितहू परछाही ।।
शोभित शम्भु मनो उर ऊपर मौज मनोभव की मनमाही ।
लाज विराज रही अखियान में प्रान में कान्ह जबान मे नाही ।। ५ ।।

सोरह श्रृगार कै नवेली के सहेलिन हू कीन्ही केलि मन्दिर मे कलपित केरे हे । कहै पदमाकर सुपास ही गुलाब पास खासे खसखास खसबोईन के ढेरे है ।। त्यों गुलाब नीरन सो हीरन के हौज भरे दम्पति मिलाप हित आरती उजेरे है । चोखी चादनीन पर चौरस चमेलिन के चन्दन की चौकी चारु चादी के चगेरे हे ।। ६ ।।

चहूचही चहल चहूघा चारु चन्दन की चन्द्रन चमीन चौक चौकन चढो है आब । कहै पदमाकर फराकत फरसबन्द फहरि फुहारन की फरस फबी है फाब ।। मोद मदमाती मनमोहन मिले के काज साजि मन मन्दिर मनोज कैसी महताब । गोल गुल गादी गुल गोल मे गुलाब गुल गजक गुलाबी गुल गिन्दुक गले गुलाब ।। ७ ।।

कौन है तू कित जाति चली बलि बीती निशा अधराति प्रमाने ।
हौ पदमाकर भावति हौ निज भावत पै अबही मुहि जाने ।।
तो अलबेली अकेली डरै किन क्यो डरौ मेरी सहाय के लाने ।
है सखि सग मनोभव सो भट कान लो बान सरासन ताने ।। ८ ।।

झाकतिहै का झरोखा लगो लग लागिबेको यहा झेल नही फिर ।
त्यो पदमाकर ताखे कटाक्षन कीसर कौसर सेल नही फिर ।।
नैन नही कि घलाघल के घन घावन को कछु तेल नही फिर ।
प्रीति पयोनिधि में धसिकै हसिकै कढिबो हसी खेल नही फिर ।। ९ ।।

वैन सुधा के सुधाहँसी हसी बसुधा मे सुधा की सटा करती है ।
त्यों पदमाकर बारहिं बार सुबार बगारि लटा करती है ॥
बीर बिचारे बटोहिन पै इक काज ही तौ यो लटा करती है ।
बिज्जु छटासी अटा पै चढ़ी सु कटाछनि घालि कटा करती है ॥१०॥

कूलन मे केलि मे कछारन मे कुजन में क्यारिन मे कलिन कलीन किलकत है । कहै पदमाकर परागन मे पानहूं में पानन मे पीक मे पलाशन पगत है ॥ द्वार में दिशान मे दुनी मे देश देशन मे देखो दीप दीपन में दीपत दिगत है । बीथिन मे ब्रज मे नबेलिन में बेलिन में बनन मे बागन मे बगरो बसंत है ॥ ११ ॥

पात बिन कीन्हे ऐसी भाति गन बेलिन के परत न चीन्हे जे ये लरजत लुञ्ज हैं । कहै पदमाकर बिसासी या बसंत के सु ऐसे उतपात गात गोपिन के भुञ्ज है ॥ ऊधो यह सूधो सो सदेसो कहि दीजो भलो हरि सो हमारे ह्यां न फूले वन कुंज है । किशुक गुलाब कचनार औ अनारन की डारन पै डोलत अंगारन के पुज है ॥ १२ ॥

ये ब्रजचन्द्र चलो किन वा ब्रज लूक बसत की ऊकन लागी ।
त्यो पदमाकर पेखो पलासन पावक सी मनो फूकन लागी ॥
वै ब्रजनारी विचारी बधू बन बावरी लौ हिये हूकन लागी ।
कारी कुरूप कसाइन पै सु कुहू कुहू क्वैलिया कूकन लागी ॥१३॥

फहरै फुहारे नीर नहरै नदी सी वहै छहरै छबीन छाम छीटिन की छाटी है । कहै पदमाकर त्यो जेठ की जलाकै तहां पावे क्यो प्रबेस बेस वेलिन की वाटी है ॥ वारहू दरीन वीच चारहू तरफ तैसी बरफ बिछाई तापै शीतल सुपाटी है । गजक अगूर की अगूर से उचो है कुच आसव अंगूर को अगूर ही की टाटी है ॥ १४ ॥

मल्लिकान मजुल मलिन्द मतवारे मिले मद मद मारुत मुहीम मनसा की है । कहै पदमाकर त्यो नादत नदीन नित नागर नवेलिन की नजर निशा की है ॥ दौरत दरेरे देत दादुर सुदूदै दीह दामिनी दमकनि दिसनि

मे दशा की है । बद्दलनि बुन्दनि बिलोको बगुलानि बाग बगलनि बेलिन बहार बरसा की है ।। १५ ।।

तालन पै ताल पै तमालन पै मालन पै बृन्दाबन बीथिन बहार बसीबट पै । कहै पदमाकर अखड रासमडल पै मण्डित उमडि महा कालिन्दी के तट पै ।। छिति पर छान पर छाजत छतान पर ललित लतान पर लाडिली के लट पै । आई भले छाई यह सरद जुन्हाई जिहि पाई छबि आजु ही कन्हाई के मुकट पै ।। १६ ।।

अगर की धूप मृगमद को सुगन्ध वर बसन बिशाल जाल अग ढाकियतु है । कहै पदमाकर सु पौन को न गौन जह ऐसे भौन उमगि उमगि छाकियतु है ।। भोग औ सयोग हित सुरति हिमत ही मे एते और सुखद सहाय वाकियतु है । तान की तरग तरुणापन तरणि तेज तेल तूल तरुणि तमाल ताकियतु है ।। १७ ।।

गुलगुली गिल मे गलीचा है गुनी जन है चादनी है चिक है चिरागन की माला है । कहै पदमावर त्यो गजक गिजा है सजी सेज है सुराही है सुरा है और प्याला है ।। शिशिर के पाला को न व्यापत कसाला तिन्हे जिनके अधीन एते उदित मसाला है । ताम तुकताला है बिनोद के रसाला है सुबाला है दुशाला है विशाला चित्रशाला है ।। १८ ।।

जात हती नित गोकुल मे हरि आवै तहा लखिकै मन सूना ।
तासो कही पदमाकर यो अरे सावरे बावरे तै हमे छूना ।।
आजधौ कैसी भई सजनी उत वा विधि बोल कढयोई कहू ना ।
आनि लगायो हियोसो हियोभरि आयो गरो कहि आयो कछूना ।।१९।।

शोभित सुमनवारी सुमना सुमनवारी कौनहू सुमनवारी को नही निहारी है । कहै पदमाकर त्यो बाधनू बसनवारी वा ब्रज बसनवारी हयो हरन हारी है ।। सुबरनवारी रूप सुबरनवारी सजै सुबरनवारी काम कर की सवारी है । सीकरनवारी स्वेद सीकरनवारी रति सीकरनवारी सो बसीकरनवारी है ।।२० ।।

अचल के ऐचे चल करत दृगचल को चचला तै चचल चलै न

भजि द्वारे को। कहै पदमाकर परै सी चौक चुम्बन मे छलनि छपावै कुच कुंभनि किनारे को ।। छाती के छुवे पै परी राती सी रिसाय गलबाही किये करै नाहिं नाहिं पै उचारे को । ही करति शीतल तमासे तुग ती करति सी करति रति मे बसीकरति प्यारे को ।। २१ ।।

फाग के भीर अभीरनि त्यो गहि गोविन्द लै गई भीतर गोरी ।
भाय करी मन को पदमाकर ऊपर नाय अबीर की झोरी ।।
छीन पितम्मर कम्मर तै सु बिदा दई मीड़ कपोलन रोरी ।
नैन नचाय कही मुसुक्याय लला फिर आइयो खेलन होरी ।।२२।।

कै रतिरग थकी थिर ह्वै परयक पै प्यारी परी मुख बाय कै ।
त्यो पदमाकर स्वेद के बुन्द रहे मुकताहल से तन छाय कै ।।
बिन्दु रचे मेहदी के लसे कर तापर यो रह्यो आनन आय कै ।
इन्दु मनो अरविन्द पै राजत इन्द्रबधून से वृन्द बिछाय कै ।।२३।।

रे मन साहसी साहस राख सु साहस सो सब जेर फिरैगे ।
त्यो पदमाकर या सुख में दुख त्यो दुख में सुख सेर फिरैगे ।।
वैसे ही वेणु बजावत श्याम सुनाम हमारो हू टेर फिरैगे ।
एक दिना नहिं एक दिना कबहू फिर वे दिन फेर फिरैगे ।।२४।।

जैसो तै न मोसो कहू नेकहू डरात हुतो तैसो अब हौहू नेकहू न तोसो डरिहौ। कहै पदमाकर प्रचड जो परैगो तो उमड करि तोसो भुजदड ठोकि लरिहौ ।। चलो चलु चलो चलु बिचलु न बीच ही ते कीच बीच नीच तो कुटुम्ब को कचरिहौ । येरे दगादार मेरे पातक अपार तोहि गगा के कछार मे पछार छार करिहौ ।। २५ ।।

जगजीवन को फल जानि परयो धनि नैननि को ठहरैयतु है ।
पदमाकर ह्यो हुलसै पुलकै तनु सिन्धु सुधा के अन्हैयतु है ।।
मन पैरत सो रस के नद मे अति आनन्द मे मिलि जैयतु है ।
अब ऊंचे उरोज लखे तिय के सुरराज के राज सो पैयतु है ।।२६।।

पाली पैज पन की प्रवेश करि पावक मे पौन से सिताब सहगौन की गती भई । कहै पदमाकर पताका प्रेम पूरण की प्रकट पतिब्रत की सौगुनी

रती भई ।। भूमिहू अकाशहू पतालहू सराहै सब जाको यश गावत पवित्र मो मती भई । सुनत पयान श्री प्रताप को पुरन्दर पै धन्य पटरानी जोधपुर मे सती भई ॥२७॥

चोरन गोरिन मे मिलि कै इतै आई है हाल गुवाल कहाकी ।
कौन बिलोकि रह्यो पदमाकर वा तिय की अवलोकनि बाकी ॥
धीर अबीर की धूधुरि मे कछु फेर सोंकै मुख फेरिकै झाकी ।
कै गई काटि करेजनि के कतरे कतरे पतरे करिहा की ॥२८॥

घर ना सुहात ना सुहात बन बाहिर हू बाग ना सुहात जो खुशाल खुशबोही सो । कहै पदमाकर घनेरे धन धाम त्योही चैन ना सुहात चादनी हू योग जोही सो ।। सांझ हू सुहात ना सुहात दिन माझ कछु ब्यापी यह बात सो बखानत हो तोही सो । रातिहु सुहात ना सुहात परभात आली जब मन लागि जात काहू निरमोही सो ॥२९॥

बगसि वितुण्ड दिये झुण्डन के झुण्ड रिपु मुडन की मालिका दई ज्यो त्रिपुरारी को। कहै पदमाकर करोरन को कोष दये षोडसहू दीन्हे महादान अधिकारी को ।। ग्राम दये धाम दये अमित अराम दये अन्न जल दीने जगती के जीवधारी को । दाता जयसिह दोय बातै तौ न दीनी कहू बैरिन को पीठि और दीठि परनारी को ॥३०॥

सम्पति सुमेर की कुबेर की जो पावै ताहि तुरत लुटावत बिलम्ब उर धारै ना । कहै पदमाकर सुहेम हय हाथिन के हलके हजारन के बितर बिचारै ना ।। दीन्हे गज बकस महीप रघुनाथ राय याहि गज धोखे कहू काहू देइ डारै ना । याही डर गिरिजा गजानन को गोइ रही गिरिते गरेते निज गोद ते उतारै ना ॥३१॥

देव नर किन्नर कितेक गुन गावत पै पावत न पार जा अनन्त गुन पूरे को । कहै पदमाकर सु गाल के बजावत ही काज करि देत जन जाचक जरूरे को ।। चन्द की छटान जुन पन्नग फटान जुत मुकुट बिराजै जटा जूटन के जूरे को । देखो त्रिपुरारिकी उदारता अपार जहा पैये फल चार फूल एक दै धतूरे को ॥३२॥

आनंद के कन्द जग ज्यावत जगतबन्ध्य दसरथनन्द के निबाहेई निबहिये कहै पदमाकर पवित्र पन पालिबे को चौर चक्रपानि के चरित्रन को चहिये ॥ अवधबिहारी के बिनोदन मे वीथि वीथि गीधा गुह गोधे के गुनानुवाद गहिये । रैन दिन आठो जाम राम राम राम राम सीताराम सीताराम सीताराम कहिये ॥३३॥

हानि अरु लाभ ज्यान जीवन अजीवनहू भोगहू वियोगहू सयोगहू अपार है । कहै पदमाकर इते पै और केते कहो तिनको लख्यो न बेदहू में निरधार है ॥ जानियत याते रघुराय की कला को कहू काहू पार पायो कोऊ पावत न पार है । कौन दिन कौन छिन कौन घरी कौन ठौर कौन जाने कौन को कहा धौं होनहार है ॥३४॥

व्याधहू ते बिहद असाधु हौ अजामिल लौ ग्राह ते गुनाही कहो तिनमें गिनाओगे । स्योरी हौं न सूद्र हौं न केवट कहू को त्यो न गोतमी तिया हौ जापै पग धरि आओगे ॥ राम सो कहत पदमाकर पुकारि तुम मेरे महापापन को पारहू न पाओगे । झूठोही कलक सुनि सीता ऐसी सती तजी हौ तो साचोहू कलकी ताहि कैसे अपनाओगे ॥ ३५ ॥

लल्लूजीलाल

लल्लूजीलाल गुजराती ब्राह्मण, आगरे मे रहते थे । ये स० १८६० मे वर्तमान थे । कुछ दिनो तक ये कलकत्ते के फोर्ट विलियम कालेज मे नौकर थे । वही इन्होने ब्रजभाषा मिश्रित वर्तमान बोलचाल की भाषा मे भागवत दशम स्कध की कथा के आधार पर प्रेमसागर नामक एक ग्रथ लिखा । कथा गद्य मे है । कही कही हिन्दी के कुछ दोहे, चौपाइयां भी है । वर्तमान गद्य के जन्मदाता ये ही कहे जाते है । प्रेमसागर के सिवा इनके रचे हुए निम्नलिखित ग्रथ है—लतायफ, हिन्दी, भाषा हितोपदेश, सभाविलास, माधवविलास, सतसई की टीका, भाषा व्याकरण, मसादिरे भाषा, सिंहासन बत्तीसी, वैताल पच्चीसी, माधवानल और शकुतला । इनके रचे पद्यो के कुछ नमूने नीचे दिये जाते है—

चूक कछू बालकसो परै । साधु न कबहू मन मे धरै ॥
घट घट माहि ज्योति ह्वै रहै । ताही सों जग निर्गुण कहै ॥
आपहि सिरजै आपहि हरै । रहै मिल्यो बाध्यो नहि परै ॥
भू आकाश वायु जल जोति । पचतत्व ते देह जो होति ॥
प्रभु की शक्ति सबनि मे रहै । वेद माहि विधि ऐसे कहै ॥
सहसब आहुति बली बखान्यो । परशुराम ताको बल भान्यो ॥
बेणु रूप रावण हो भयो । गर्व आपने सोऊ गयो ॥
भौमासुर बाणासुर कस । भये गर्व ते ते बिध्वस ॥
श्रीमद गर्ब करो जिन कोय । त्यागे गर्व सो निर्भय होय ॥
सुनौ मुनीस सोई बड भागी । जो सुर धेनु विप्र अनुरागी ॥
जा घर चरन साधु के परै । ते नर सुख सम्पति अनुसरै ॥
याचक कहा न मागई, दाता कहा न देय ।
गृहसुत सुन्दरि लोभ नहि, तन धन दे जस लेय ॥

जयसिंह

जयसिंह रीवा के महाराज थे । इनका जन्म स० १८२१ मे हुआ । १८९१ तक इन्होने राज्य किया । अपने जीवनकाल ही मे इन्होने राज्याधिकार अपने पुत्र विश्वनाथसिंह को सौप दिया था । ये लगभग १०० वर्ष तक जीवित रहे ।

जयसिंह बडे भक्त और सच्चे वैष्णव थे, यह इनकी रचना से अच्छी तरह बोध होता है । इन्होने १८ ग्रथो की रचना की थी । उनमे से कुछ के नाम ये हैं— कृष्णतरङ्गिणी, हरे चरितामृत, त्रयवेदान्त प्रकाश, निर्णय सिखान्त, गङ्गालहरी, हरिचरित्रचन्द्रिका । इनकी रचना सरस और अलकारपूर्ण होती थी । इनके ग्रथो में हरिचरित्रचन्द्रिका इस समय हमारे सामने है । हम उसी में से कुछ छद उद्धृत करके पाठको के सामने रखते है—

वर्षा गई सरद ऋतु आई । नवल बधू सम सुखद सोहाई ॥
कमल बदन खञ्जन चख छाजे । सुरंग सुमन बर बसन बिराजै ॥

कल मराल नव नूपुर बाजत । सुनि मुनि मानस मान विभाजत ॥
फूली कास सु दुति धरि धाई । पतिव्रता कीरति जिमि पाई ॥
बरसर लसहिं सरोरुह फूले । सुकृती भूप प्रजागन तूले ॥
महि जल सूखो प्रगटी महि इमि । नसत पखड लसत श्रुति पथ जिमि ॥
सरि सर जल इमि निर्मल छाजत । जिमि तजि विषय विरागी राजत ॥

ककुभ कुटज आदिक बिना, विकसे कुसुम निकाय ।
जिमि खल मद मथि नृप नगर, राख्यो सुजन बसाय ॥

जल बिन जलद सेत छवि छाजत । सब धन दै जिमि दाता राजत ॥
निर्मल भयो गगन घन फूटे । जिमि हिय विषय वासना छूटे ॥
लसत इंदु उडगन मिलि ऐसो । नृप नय निपुन प्रजा जुत जैसो ॥
परसि चादनी यो छिति सोही । सती सो सौति पाइ जिमि जोही ॥
जनमनरजन खजन कैसे । पूरब पुण्य समय फल जैसे ॥
जलचर नित जल घटत न जानहिं । आयु कमत जिमि जन नहि मानहिं ॥
रवि सताप शरद शशि नाशत । मोह नसत जिमि ज्ञान प्रकाशत ॥
छन छबि छबि नहिं गगन प्रकासै । तोषित हिय जिमि तृष्णा नासै ॥

परसि कमल कुबलय बहत, वायु ताप नसि जाइ ।
सुनत बात हरि गुननि जुत, जिमि जन पाप पराइ ॥

कहु कहु बध्रक सुमन सुहाये । जनु अनुरागी जन मन भाये ॥
मदन मराल मिलो तजि मोरनि । अलि तजि चित्र कुसुम जनि कोलनि ॥
बाल मराल मजु धुनि करही । सामवेद मुनिवर उच्चरही ॥
प्रफुलित उपवन जूही जाती । मनु नभ उड़ु पांती दरसाती ॥
घन समीप सुरधनु न देखाही । जिमि न सुजन ढिग दुर्जन जाही ॥
क्षुद्र नदी घटि चली बनाई । जिमि खल विभव नसे नै जाई ॥
सूखी कीच महीतल माही । ज्यो सत हिय कामादि सुखाही ॥
पूरण अन्न सहित छिति छाजै । जिमि धनयुत दाता मति राजै ॥

वन बाटिका उपवन मनोहर फूल फल तरु मूल से ।
सर सरित कमल कलाप कुबलय कुमुद बन बिकसे गसे ॥

सुख लहत यो फल चखत मनु पीयत मधुप सो नीति सों।
मनु मगन ब्रह्मानन्द रस जोगीस मुनिगन प्रीति सों॥
कूजि रहे खग कुल मधुप, गुञ्जि रहे चहु ओर।
तेहि बन शिशु गोगन सकल, प्रविशे नन्दकिशोर॥

रामसहाय दास

रामसहायदास के पिता का नाम भवानीदास था। इनका जन्म और मरण किस सवत् मे हुआ, इसका अभी तक कुछ पता नही चला है। भारतजीवन प्रेस, काशी मे इनका एक ग्रथ "शृगार सतसई" नाम से छपा है। वह प्रकाशक को स० १८६२ का हस्तलिखित मिला था। इनका कविताकाल स० १८७७ माना जाता है। इन्होने अपने विषय मे अपने पिता के नाम के सिवा और कुछ नही लिखा। शृगारसतसई के सिवा वृत्त तरगिनी, ककहरा, राम सप्तसतिका और वाणी भूषन नामक ग्रन्थ भी रामसहायदास के रचे हुए सुने जाते है।

शृगारसतसई मे सात सौ दोहे बिहारी सतसई के टक्कर के है। वास्तव मे ये बिहारी के दोहो को लक्ष्य करके बनाये गये मालूम होते है।

शृंगारसतसई से यहां कुछ दोहे उद्धृत किये जाते है—

सतरोहै मुख रुख किये, कहै रुखौहै बैन।
रैन जगे के नैन ये, सनें सनेहु दुरै न॥ १॥
खजन कंज न सरि लहै, बलि अलि को न बखानि।
एनी की अखियान ते, ये नीकी अंखियानि॥ २॥
गुलुफन लौ ज्यों त्यों गयो, करि करि साहस जोर।
फिर न फिरचो मुरवानि चपि, चित अति खात मरोर॥ ३॥
पोखि चन्दचूड़हि अली, रही भली विधि सेइ।
खिनखिन खोटति नखनछद, न खनहु सूखन देइ॥ ४॥
सीस भरोखे डारि कै, भाकी घूघुट टारि।
कैबर सी कसकै हिये, बाकी चितवनि नारि॥ ५॥

बेनि कमान प्रसून सर, गहि कमनैन वसन्त।
मारि मारि विरहीन के, प्रान करै री अन्त॥ ६॥
मनरजन तव नाम को, कहत निरजन लोग।
जदपि अधर अजन लगे, तदपि न नीदन जोग॥ ७॥
सखि सग जात हुती सुती, भट भेरो भो जानि।
सतरौही भौंहन करी, बतरौही अँखियानि॥ ८॥
भौह उचै अँखिया नचै, चाहि कुचै सकुचाय।
दरपन मे मुख लखि खरी, दरप भरी मुसुकाय॥ ९॥
ल्याई लाल निहारिये, यह सुकुमारि विभाति।
कुचके उचके भात ते, लचकि लचकि कटि जाति॥ १०॥

ग्वाल

ग्वाल मथुरा निवासी ब्रह्मभट्ट सेवाराम के पुत्र थे। इनका जन्म स० १८४८ मे और मरण १९२८ वि० मे सुना जाता है। ये जगदम्बाके उपासक थे और शिवजी की भी आराधना किया करते थे। स० १८७९ मे इन्होने एक शिवमदिर बनवाया था, जो मथुरा मे अब तक है।

ग्वाल बालकपन में जब अपने गुरु दयालजी के पास पढ रहे थे, तब एक बार ये गुरुजी से प्रणाम करना भूल गये। गुरुजी ने इन्हे घमडी कहकर निकाल दिया। इन्होने बहुत अनुनय विनय की, पर गुरुजी प्रसन्न न हुए, तब ये यमुनातट के निकट गाय चराने लगे। कहा जाता है कि बन मे इन्हे एक तपस्वी मिले, जिनकी ये तन मन से सेवा करने लगे। उनके लिए ये घर से भोजन भी ले जाया करते थे। एक दिन यमुना बहुत बढी थी, तब भी उसके प्रबल प्रवाह को पार करते हुए ये भोजन लेकर तपस्वी महाराज की सेवा मे जा उपस्थित हुए। इनकी भक्ति से तपस्वी बहुत प्रसन्न हुए। उनकी कृपा से इनकी बद्धि में अपूर्व विकास हुआ और कवित्व-शक्ति जागृत हुई। इनकी प्रतिभा यहा तक बढ चली थी कि एक समय मे ये आठ काम कर लेते थे। जैसे ग्रन्थ रचना, कविता

बनाना, शिष्यों को पढाना, जगदम्बा, जगदम्बा कहते रहना, शतरज खेलना, अदृष्ट कथन करना, आगत पुरुषो से बात-चीत का सिलसिला कायम रखना, समस्यापूर्ति करना आदि। ये शतरज के अच्छे खिलाडी थे।

इनके दो पुत्र थे, खेमचन्द और रूपचन्द। दोनो पिता के समान ही कविता करते थे। ग्वाल का आना जाना पजाब मे बहुत रहता था। पंजाब के सिवा अन्य प्रान्तो मे भी इन्होने भ्रमण किया होगा, इसी से प्रान्ताय भाषाओ मे भी इनके छद मिलते है। कहा जाता है कि महाराजा रणजीतसिंह के दरबार मे भी इनकी पहुच थी और महाराजा ने इनको कुछ जमान जायदाद भी दी थी, जो इनकी मृत्यु के बाद ले ली गई। ये कभी महाराज के साथ भ्रमण मे भी जाया करते थे।

इनके रचित ग्रन्थो की सख्या ६०, ७० तक कही जाती है। जिनमे से निम्नलिखित ग्रन्थ कही न कही से प्रकाशित हो चुके है—

१—रसरंग, २—भक्त भावन, ३—नेह निवाहन, ४—कुब्जाष्टक, ५—कृष्णाष्टक, ६—रामाष्टक, ७—गणेशाष्टक, ८—गणेशाष्टक (दूसरा), ९—राधिकाष्टक, १०—गोपी पचीसी, ११—दृगशतक, १२—श्रीकृष्ण जी का नखशिख, १३—यमुना लहरी, १४—हमीरहठ, १५—कवि हृदय विनोद।

अप्रकाशित पुस्तकों मे कुछ के नाम ये है—रसिकानन्द, साहित्यानद, कविदर्पण, साहित्यदर्पण, साहित्यदूषण, शृगार दोहा, शृगार कवित्त, कवित्त ग्रन्थ माला, वशी बीसा।

इनकी कविता चमत्कारपूर्ण होती थी। यहा इनकी कविता के कुछ नमूने उद्धृत किये जाते है—

गीधे गीध तारि कै सुतारि कै उतारि कै जू धारि कै हिये मै निज बात जटि जायगी। तारि कै अवधि करी अवधि सुतारिबे की विपति विदारिबे की फास कटि जायगी।। ग्वाल कवि सहज न तारिबो हमारो गिनो कठिन परैगी पाप पाति पटि जायगी। यातें जो न तारिहौ तुम्हारी सौंह रघुनाथ अधम उधारिबे की साख घटि जायगी।। १ ।।

राम घनश्याम के न नाम ते उचारे कभू कामवश ह्वै कै वाम गरे बांह ढाली है। एक एक स्वास ये अमोल कढे जात हाय लोल चित यहै ढोल फोरत उताली है। ग्वाल कवि कहै तू विचारै वर्ष बढे मेरे एरे! घटे छिन छिन आयु की वहाली है। जैसे धार दीखत फुहारे की वढत आछे पाछे जल घटे हौज होत आवे खाली है ॥२॥

पूर्वी भाषा

मोरपखा सिर ऊपर सोहै अधर वसुरिया राजत वाय।
गाय वजाय नचावे अंखियन करिया कमरी साजत वाय॥
ग्वाल लिये सग घाट बाट में छरा छूइ मोर भाजत वाय।
हाय ननदिया का करिहौं मे कहत बाद जिय लाजत वाय ॥३॥

गुजराती भाषा

तुम तौ कहो छो छैया मोटो ऊधमी छै म्हारी मटकी मठानी ढुरकावा नो निदान छै। सो तो म्हने जानयू तमे सगली जु भाषों झूठ दीधी म्हने सीख मस्ती मोटी पहचान छै॥ ग्वाल कवि साने एवा चरित रचो छौ तमे सगली थई छौ गेली अड़को मा आन छै। घेर मां रमे छै हवणा तौ दीकरान माहे तमतें सू दोस मोकलावा वाला जान छै ॥४॥

पंजाबी भाषा

जेड़ी थ्वाडे चित्त विच्च भाउदी है आंउदी है ओहो तुसां करणाविगाणे कानू कस्स दे। साडी खुशी ये हो आप आरा दी खुशी दे विच्च जेही चाहो तेही करो नेही कानू नस्स दे॥ ग्वाल कवि होउ करमा दा लिख्या लेख जेड़ा साडी वल्ल नैना नू पियारे रख्यो हुंस्स दे। छल्लरल्ली गल्ला थ्वांडी सोंहणी नहू दी श्याम सिद्धी गल्ल साड्डे नाल क्यू कर न दस्स दे ॥५॥

षट्ऋतु वर्णन

सरसों के खेत की बिछायत बसंती बनी तामें खडी चादनी बसंती रति कत की। साने के पलंग पर बसन बसंती साज सोनजुही मालै हालै हिय हुलसत की॥ ग्वाल कवि प्यारो पुखराजन को प्याला पूर

प्यावत प्रिया को करै बात बिलसंत की। राग मै बसंत बाग बाग मै बसत फूल्यो लाग मैं बसंत क्या बहार है बसंत की ।। ६ ।।

ग्रीषम की गजब धुकी है धूप धाम धाम गरमी झुकी है जाम नाम अति तापिनी । भीजे खस बीजन झले हू ना सुखात स्वेद गात ना सुहात बात दावा सी डरापिनी ।। ग्वाल कवि कहे कोरे कुभन ते कूपन तें लै लै जलधार बार बार मुख थापिनी । जब पियो तब पियो अब पियो फेर अब पीवत हू पीवत मिटै न प्यास पापिनी ।। ७ ।।

जेठको न त्रास जाके पास ये बिलास होंय खस के मवास पै गुलाब उछरयो करै । बिही के मुरब्बे डब्बे चादी के बरक भरे पेठे पाग केवरे मे बरफ परयो करै ।। ग्वाल कवि चन्दन चहल मै कपूर चूर चंदन अतर तर बसन खरयो करै । कज मुखी कज नैनी कंज के बिछौनन पै कंजन की पंखी कर कज ते करयो करै ।। ८ ।।

तरल तिलगन के तुङ्ग तेह तेजदार कानन कदंब को कदब सरसायो है । सूबेदार मोर घोर दादुर हवलदार बग जमादार औ तबूर पिक भायो है ।। ग्वाल कवि बाढै गरराट घन घट्टन की कपनी को कपू झला होय छवि छायो है । भूपत उमंगी कामदेव जोर जगी जान मुजरा को पावस फिरंगी बनि आयो है ।। ९ ।।

मोरन के सोरन की नेकौ न मरोर रही घोरहू रही न धन घने या फरद की । अम्बर अमल सर सरिता विमल भल पक को न अंक औ न उडनि गरद की ।। ग्वाल कवि चित्त मै चकोरन के चैन भये पंथिन की दूर भई दूखन दरद की । जल पर थल पर महल अचल पर चादी सी चमक रही चांदनी सरद की ।। १० ।।

झर झर झांपै बडे दर दर ढांपै नापै तऊ कांपै थर थर बाजत बतीसी जाइ । फेर पसमीनन के चौहरे गलीचन पै सेज मखमली सौरि सोऊ सरदी सी जाइ ।। ग्वाल कवि कहे मृगमद के धुकाये धूम ओढि ओढि छार भार आगहू छपी सी जाइ । छाकै सुरा सीसीहू न सीसी पै मिटैगी कभ जौलौं एकसीसी छाती छाती सो न मीसी जाइ ।। ११ ।।

फुटकर

ईरषा की सैन लिये कलिजुग जब आयो झूठ के नगारे मो बजत दिन रात है। काम क्रोध लोभ मोह तेग तीर बन नेजा अदया अगर तोप चड घहरात है॥ ग्वाल कवि गव्वर गमीले गोल गोला चलै टोना कूर बचनो के पूर लहरात है। हूजियो हुश्यार यार गात के मवासे माहि पाप की पताका आसमान फहरात है॥ १२॥

देखा कलिजू के राजनीति को तमासो यह वासो कियो आय हर एक की अकल पै। खानदानवारे पानदान लिये दौरत हैं तान गानवारे बैठे जोवत महल पै॥ ग्वाल कवि कहै चारु चतुरन को चैन है न ऐस में रहत लैस कूर चढे वल पै। मलमल धारे जे वै धूर रहे मलमल मल-खानवारे सोवैं सेज मखमल पै॥ १३॥

जाकी खूब खूबी खूब खूबन कै खूबी इहा ताकी खूब खूबी खूब खूबी नभ गाहना। जाकी बदजाती बदजाती इहा चारन में ताकी बदजाती बदजाती ह्वाँ उराहना॥ ग्वाल कवि ये ही परसिद्ध सिद्ध ते है जग वही परसिद्ध ताकी इहा ह्वा सराहना। जाकी इहां चाहना है ताकी वहां चाहना है जाकी इहां चाहना है ताकी वहां चाहना॥ १४॥

चाहिये जरूर इनसानियत मानस को नौवत वजे पै फेर भेद बजनो कहा। जात औ अजात कहा हिन्दू औ मुसलमान जाते कियो नेह फेर ताते भजनो कहा॥ ग्वाल कवि जाके लिये सीस पै वुराई लई लाजहू गमाई कहो फेर लजनो कहा। यातो रंग काहू के न रगिये सुजान प्यारे रग तो रगेई रहै फेर तजनो कहा॥ १५॥

जिसका जितेक साल भर में खरच तिसे चाहिये तौ दूना पै सवायो तो कमा रहै। हूर या परी सी नूर नाजनी सहूरवारी हाजिर हमेश होय तौ दिल थमा रहै॥ ग्वाल कवि साहब कमाल इल्म सोहबत हो याद मे गुसैया के हमेश विरमा रहै। खाने को हमा रहै न काहू की तमा रहै जो गांठ मे जमा रहै तो खातिर जमा रहै॥ १६॥

गङ्गा के न गौरि के गिरीस के न गोविन्द के गोत के न जोत के न

जाये राहगीर के। काहू के न सगी रतिरगी भैन भानजी के जी के अति खोटे सोंटे खैहै जमवीर के ।। ग्वाल कवि कहै देखो नारी को खसम जानै धर्म को पसम जानै पातक सरीर के । निमकहराम बदकाम करै ताजे-ताजे बाजे बाजे बेसहूर गुरू के न पीर के ।। १७ ।।

किये है करार सो बिसार दये दगादार नन्द के कुमार सङ्ग को सजोगिनी बनै । कौन मुख लैके तोहि ऊधव पठायो इहां कैसे कही वाने हाय लङ्कलोगिनी बनै ।। ग्वाल कवि याते एक बात तू हमारी सुन चुनि कै कही है यह तोय भोगिनी बनै । कूबरी को कूब काटि लाय दै सितावी हमै टोपी करि ताकी तब गोपी जोगिनी बनै ।। १८ ।।

सुन्दर सरस सूहे सोसनी गुलाबी पीरे नाफर नरङ्गा आबी तूसी सजि लायो है । मूगिया सबज काही कासनी सुन्हेरी सेत सन्दली सरबती औ नील दरसायो है ।। अगरई किसमिसी जोजई कपूरी स्याह तीजन कू वाम हेत कामवर छायो है । चतुर प्रवीन सखी अचरज भयो आज सावन मे इन्द्र रगरेज बनि आयो है ।। १९ ।।

दिया है खुदा ने खूब खुसी करो ग्वाल कवि खाव पिओ देव लेव यही रह जाना है । राजा राव उमराव केते बादशाह भये कहा ते कहा को गयो लाग्यो ना ठिकाना है ।। ऐसी जिन्दगानी के भरोसे पै गुमान ऐसे देस देस घूमि-घूमि मन बहलाना है। आये परवाना पर चले ना वहाना इहा नेकी करि जाना फेरि आना है न जाना है ।। २० ।।

दीनदयाल गिरि

बाबा दीनदयाल गिरि काशी के पश्चिम द्वार पर विनायक देव के पास रहते थे । ये दसनामी सन्यासियो मे थे । इनके जन्मकाल का कुछ ठीक पता नही चलता । जाति का भी ठीक निश्चय नही । इतना अवश्य निश्चित है कि बनारस के आसपास के किसी ब्राह्मण या क्षत्रिय कुल मे इनका जन्म हुआ था । ये बडे सहृदय और उदार थे । साम्प्रदायिक दुराग्रह इनमे छू भी नही गया था । स्वभाव अत्यन्त सरल और विनोदप्रिय

था। ये बात बात मे लोकोक्तियो का प्रयोग करके लोगो को खूब हसाते थे। बडे दयावान थे। दूसरे का दु:ख नही देख सकते थे। पर स्वाभिमान की मात्रा कम नही थी। कितने ही दु:ख मे रहने पर भी किसी से कुछ मागते न थे। काशी-नरेश तथा तत्कालीन अन्य राजा महाराजा समय-समय पर गुप्त रूप से इनकी सहायता करते थे। कवियो का आना-जाना बराबर लगे रहने से इनकी आर्थिक दशा अच्छी न रहती थी। अमेठी के राजा साहब इन्हे अपने यहा ले जाना चाहते थे, पर ये काशी छोड़कर कही न गये। मणिकर्णिका घाट के निकट छप्पन विनायक पर इनका देहान्त हुआ। प० विजयानन्द त्रिपाठी ने इनका मृत्युकाल सं० १९२२ बतलाया है। अन्य जानकारो के कथन से भी यही ठीक जान पडता है। यह भी सुनने मे आया है कि ये बहुत वृद्ध होकर मरे।

बाबा दीनदयाल के ग्रन्थों से यह पता चलता है कि ये उच्च श्रेणी के कवि थे। इनकी कविता की भाषा और भाव दोनो सरस और स्वच्छ है। शिवसिंह सरोजकार ने इनके सम्बन्ध मे लिखा है कि "ये कवि सस्कृत के बडे महान् पडित थे और उन्होने भाषा साहित्य मे अन्योक्ति कल्पद्रुम नामक ग्रन्थ बहुत ही सुन्दर बनाया है और अनुराग बाग और बाग-बहार ये दो ग्रन्थ भी इनके बहुत विचित्र है।"

काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा ने इनकी एक ग्रन्थावली प्रकाशित की है। इनके जीवन की बहुत-सी बाते हमने उसी से ली है। ग्रन्था-वली में कुल पाच ग्रन्थ है, अनुराग बाग, दृष्टान्त तरङ्गिणी, अन्योक्ति-माला, वैराग्य दिनेश और अन्योक्ति कल्पद्रुम। शिवसिंह सरोज म इनके एक और ग्रन्थ बागबहार का नाम दिया हुआ है, पर अभी तक उसका पता नही चला है। शायद अनुराग बाग ही का दूसरा नाम बाग बहार हो। अनुराग बाग स० १८८८ मे, दृष्टान्त तरगिणी १८७९ में, वैराग्यदिनेश १९०६ में और अन्योक्ति-कल्पद्रुम १९१२ में रचा गया। अन्योक्ति-माला का निर्माण-काल पुस्तक मे वर्णित नही है।

अन्योक्ति-कल्पद्रुम इसका परिवर्द्धित और सशोधित सस्करण जान पड़ता है ।

इनकी कविता के कुछ नमूने यहा दिये जाते है—

घनाक्षरी

छोड़्यो गृहकाज कुललाज को समाज सबै एक ब्रजराज सो कियो री प्रीतिपन है । रहत सदाई सुखदाई पदपकज मे चचरीक नाईं भाई छाड़े नाहिं छन है ॥ रतिपति मूरति विमोहन को नेम धरि लिखै प्रेम रग भरि मति के सदन है ।-कुअर कन्हाई की लुनाई लखि माई मेरो चेरो भयो चित औ चितेरो भयो मन है ॥

दोहे

जा मन होय मलीन सो , पर सपदा सहै न ।
होत दुखी चित चोर को , चितै चद रुचि रैन ॥ १ ॥
तूठे जाके फल नही , रूठे ब्रहु भय होय ।
सेव जु ऐसे नृपति को , अति दुरमति ते लोय ॥ २ ॥
बहु छुद्रन के मिलन ते , हानि बली की नाहिं ।
जूथ जम्बुकन ते नही , केहरि कहु नसि जाहिं ॥ ३ ॥
पराधीनता दुख महा , सुख जग मे स्वाधीन ।
सुखी रमंत सुक बन विषे , कनक पीजरे दीन ॥ ४ ॥
तहा नही कछु भय जहा , अपनी जाति न पास ।
काठ बिना न कुठार कहु , तरु को करत बिनास ॥ ५ ॥
नही रूप कछु रूप है , विद्या रूप निधान ।
अधिक पूजियत रूप ते , बिना रूप विद्वान ॥ ६ ॥
सरल सरल ते होय हित , नही सरल अरु वक ।
ज्यो सर सूधहि कुटिल धनु , डारै दूर निसक ॥ ७ ॥
केहरि को अभिषेक कब , कीन्हो विप्र समाज ।
निज भुज बल के तेज ते , विपिन भयो मृगराज ॥ ८ ॥

इक बाहर इक भीतरे , इक मृदु दुहु दिसि पूर ।
सोहत नर जग त्रिविध ज्यो , बेर बदाम अगूर ॥ ९ ॥
बचन तजे नहि सतपुरुष , तजै प्रान बरु देस ।
प्रान पुत्र दुहु परिहरयो , बचन हेत अवधेस ॥ १० ॥

कुंडलिया

जिनतरुको परिमिल परसि , लियो सुजस सब ठाम ।
तिन भञ्जन करि आपनो , कियो प्रभञ्जन नाम ॥
कियो प्रभञ्जन नाम , बड़ो कृतघन बरजोरी ।
जब जब लगी दवागि , दियो तब झोकि झकोरी ॥
बरनै दीनदयाल , सेउ अब खल थल मरुको ।
ले सुख सीतल छाह , तासु तोरयो जिन तरुको ॥ १ ॥
केतो सोम कला करो , करो सुधा को दान ।
नही चन्द्रमनि जो द्रवै , यह तेलिया पखान ॥
यह तेलिया पखान , बडी कठिनाई जाकी ।
टूटी याके सीस , बीस बहु बाकी टाकी ॥
बरनै दीनदयाल , चद तुमही चित चेतो ।
कूर न कोमल होहि , कला जो कीजे केतो ॥ २ ॥
बरखै कहा पयोद इत , मानि मोद मन माहि ।
यह तो ऊसर भूमि है , अकुर जमिहै नाहि ॥
अकुर जमिहै नाहि , बरष शत जो जल दैहै ।
गरजै तरजै कहा , वृथा तेरो श्रम जैहै ॥
वरनै दीनदयाल , न ठौर कुठौरहि परखै ।
नाहक गाहक बिना , बलाहक ह्या तू बरखै ॥ ३ ॥
भौरा अन्त वसन्त के , है गुलाब इहि रागि ।
फिरिमिलाप अति कठिन है , या वन लगे दवागि ॥
या वन लगे दवागि , नही यह फूल लहैगो ।
ठौरहि ठौर भ्रमात , बड़ो दुख तात सहैगो ॥

बरनै दीनदयाल, किते दिन फिरिहै दौरा।
पछतैहै कर दये, गये ऋतु पीछे भौरा ॥ ४ ॥

रभा झूमत हौ कहा, थोरे ही दिन हेत।
तुमसे केते ह्वै गये, अरु ह्वै है यहि खेत ॥
अरु ह्वै है यहि खेत, मूल लघु साखा हीने।
ताहू पै गज रहै, दीठि तुम पै प्रति दीने ॥
बरनै दीनदयाल, हमै लखि होत अचम्भा।
एक जन्म के लागि, कहा झुकि झूमति रम्भा ॥ ५ ॥

नाही भूलि गुलाब तू, गुनि मधुकर गुञ्जार।
यह बहार दिन चार की, बहुरि कटीली डार ॥
बहुरि कटीली डार, होहिगी ग्रीषम आये।
लुवै चलेगी सग, अग सब जैहै ताये ॥
बरनै दीनदयाल, फूल जौलो तो पाही।
रहे घेरि चहु फेरि, फेरि अलि ऐहै नाही ॥ ६ ॥

टूटे नख रद केहरी, वह बल गयो थकाय।
हाय जरा अब आइ कै, यह दुख दियो बढाय ॥
यह दुख दियो बढाय, चहू दिसि जबुक गाजै।
ससक लोमरी आदि, स्वतन्त्र करै सब राजै ॥
बरनै दीनदयाल, हरिन बिहरै सुख लूटे।
पगु भयो मृगराज, आज नख रद के टूटे ॥ ७ ॥

पैहौ कीरति जगत मे, पीछे धरो न पाव।
छत्री कुल के तिलक हे, महा समर या ठाव ॥
महा समर या ठाव, चलै सर कुन्त कृपानै।
रहे वीर गन गाजि, पीर उर मे नहि आनै ॥
बरनै दीनदयाल, हरखि जो तेग चलैहो।
ह्वैहो जीते जसी, मरे सुरलोकहि पैहो ॥ ८ ॥

भारी भार भर्यो बनिक, तरिबो सिन्धु अपार।
तरी जरजरी फसि परी, खेवनहार गवार॥
खेवनहार गवार, ताहि पर पौन झकोरै।
रुकी भवर मे आय, उपाय चलै न करोरै॥
बरनै दीनदयाल, सुमिर अब तू गिरधारी।
आरत जन के काज, कला जिन निज संभारी॥ ९ ॥

आछी भाति सुधारि कै, खेत किसान बिजोय।
नत पीछे पछतायगो, समै गयो जब खोय॥
समै गयो जब खोय, नही फिर खेती ह्वैहै।
लैहै हाकिम पोत, कहा तब ताको दैहै॥
बरनै दीनदयाल, चाल तजि तू अब पाछी।
सोउ न सालि सभालि, बिहगन ते विधि आछी॥ १० ॥

सोई देस बिचार कै, चलिये पथी सुचेत।
जाके जस आनन्द की, कविवर उपमा देत॥
कविवर उपमा देत, रङ्क भूपति सम जामे।
आवागवन न होय, रहै मुद मङ्गल तामे॥
बरनै दीनदयाल, जहा दुख सोक न होई।
ए हो पथी प्रबीन, देस को जैयो सोई॥ ११ ॥

कोई सङ्गी नहि उतै, है इतहा को सङ्ग।
पथी लेहु मिलि ताहि ते, सबसो सहित उमङ्ग॥
सबसो सहित उमङ्ग, बैठि तरनी के माही।
नदिया नाव सयोग, फेरि यह मिलिहै नाही॥
बरनै दीनदयाल, पार पुनि भेट न होई।
अपनी अपनी गैल, पथी जैहै सब कोई॥ १२ ॥

ग्राहै प्रबल अगाध जल, या मे तीछन धार।
पथी पार जो तू चहै, खेवनहार पुकार॥

खेवनहार पुकार, वार नहिं कोऊ साथी।
और न चलै उपाव, नाव बिन एहो पाथी॥
बरनै दीनदयाल, नही अब बूड़ै थाहै।
रहे महामुख बाय, ग्रसन को भारो ग्राहै॥ १३॥
राही सोवत इत कितै, चोर लगै चहु पास।
तो निज धनके लेन को, गिनै नीद की स्वास॥
गिनै नीद की स्वास, बास बसि तेरे डेरे।
लिये जात बनि मीत, माल ये साझ सबेरे॥
बरनै दीनदयाल, न चीन्हत है तू ताही।
जाग जाग रे जाग, इतै कित सोवत राही॥ १४॥
हारे भूली गैल मे, गे अति पाय पिराय।
सुनो पथ अब तो रह्यो, थोरो सो दिन आय॥
थोरो सो दिन आय, रहे है सग न साथी।
या बन है चहु ओर, घोर मतवारे हाथी॥
बरनै दीनदयाल, ग्राम सामीप तिहारे।
सूधे पथ को जाहु, भूलि भरमो कित हारे॥ १५॥
चारो दिसि सूझै नही, यह नदधार अपार।
नाव जर्जरी भार बहु, खेवनहार गवार॥
खेवनहार गवार, ताहि पर है मतवारो।
लिये भौर मे जाय, जहा जलजन्तु अखारो॥
बरनै दीनदयाल, पथी बहु पौन प्रचारो।
पाहि पाहि रघुबीर, नाम धरि धीर उचारो॥ १६॥
देखो पथिक उघारि कै, नीके नैन बिबेक।
अचरज है बाग मे, राजत है तरु एक॥
राजत है तरु एक, मूल ऊरध अध साखा।
द्वै खग तहा अचाह, एक इक बहुफल चाखा॥

बरनै दीनदयाल , खाय सो निबल बिसेखो ।
जो न खाय सो पीन , रहै अति अद्भुत देखो ॥ १७ ॥

रणधीरसिंह

जौनपुर नगर से २४ मील पश्चिम सिंगरामऊ एक गांव है । वह एक रियासत का मुख्य स्थान है । रियासत न तो बहुत बडी-ही है और न बहुत साधारण ही है । आज से लगभग सवा सौ वर्ष पहले वहा ठाकुर सग्रामसिह राज करते थे । उनके पिता का नाम ठाकुर शिवबक्स-राय सिंह था, जो ठाकुर संग्रामसिह की बाल्यावस्था मे ही स्वर्गवासी हो गये थे । ठाकुर सग्रामसिह का जन्म स० १८३५ वि० मे सिङ्गरामऊ मे हुआ । स० १८९० मे उन्होने काशी मे शरीर त्याग किया । वे बड़े वीर थे । उन्होने ब्रिटिश-सरकार के एक बहुत बडे बागी को स्वय बाहुबल से पकड़ कर सरकार के हवाले किया था । उसके उपलक्ष्य में सरकार उन्हे बारह सौ रुपया वार्षिक दिया करती थी । ठाकुर संग्रामसिह बड़े विद्या-व्यसनी थे । वे एक अच्छे कवि थे । और गुणियो का यथोचित आदर करते थे । वेदान्त शास्त्र के वे अच्छे ज्ञाता थे । छद लक्षण, नायका भेद, अलकार तथा विविध विषयो की उत्तम रचनाओ से विभूषित उनका काव्यार्णव नामका काव्य-ग्रन्थ बहुत उत्तम बना है । वह स० १९२१ मे लेथो में छपा हुआ है ।

राय रणवीरसिह ठाकुर सग्रामसिह के पौत्र थे । इनके पिता का नाम ठाकुर गजराजसिह था । ठाकुर गजराजसिह जी भी कवियो का अच्छा सत्कार करते थे, परन्तु वे स्वय भी कविता करते थे या नही, यह मुझे नही मालूम ।

राय रणवीरसिह का जन्म स० १८७८ वि० मे हुआ । पिता के स्वर्गवासी होने पर स० १९१४ मे उनको राज्याधिकार मिला । सन् १८५७ के विद्रोह मे उन्होने ब्रिटिश-सरकार की बड़ी सहायता की थी, उसके बदले मे उनको रायबहादुर की उपाधि मिली थी ।

राय रणधीर सिंह साहसी, उदार और बडे प्रजाहितैषी थे । प्रजा को उन्होने कभी नही सताया । उनकी सभा पडितो और दूर दूर के कवियो से भरी रहती थी । कविता का उनको व्यसन था । उन्होने पाच ग्रन्थो की रचना की है —१—नामार्णव, २—काव्य रत्नाकर, ३—सालिहोत्र, ४—भूषण कौमुदी, ५—रागमाला । उनके रचे हुए गीत उनकी रियासत मे अब तक बडे प्रेम से गाये जाते है । स० १९५२ वि० मे अयोध्याजी में उन्होंने शरीर त्याग किया । उनके विषय मे शिवसिंह ने अपने सरोज मे लिखा है—"ये राजा कवि कोविदो का बडा सम्मान करते है । इनके बताये हुए भूषण-कौमुदी, काव्यरत्नाकर ये दोनो ग्रन्थ देखने योग्य है ।" इससे प्रकट होता है कि उनकी कीर्ति कम-से कम शिवसिंह सेगर के कान तक तो अवश्य ही पहुच चुकी थी ।

राय रणधीरसिंह के कुटुम्बी ठाकुर रघुराजबहादुर सिंह के द्वारा मुझे राय रणधीर सिंह के हस्तलिखित और लेथो मे छपे हुए काव्य-ग्रथ देखने को मिले । इसके लिए मै ठाकुर रघुराजबहादुर सिंह का बहुत कृतज्ञ हू । राय रणधीरसिंह के कुटुम्बियो और गद्दीधरो को उनके ग्रन्थो को सुन्दरतापूर्वक और सस्ता छपवाकर उनकी कीर्ति को चिरस्थायी बना देना चाहिये । हस्तलिखित पुस्तको को छपवा देना ही उचित है । क्योंकि यदि हस्तलिखित प्रति खो गई तो लेखक के कितने दिनों का परिश्रम, जिसे उसने अपना कलेजा घुला घुलाकर किया है, सहज मे नष्ट हो जायगा ।

राय रणधीरसिंह की कविता के कुछ नमूने हम नीचे उद्धृत करते है—

नामार्णव पिंगल—यह सं० १८९४ वि० मे बना । इसमे एक-एक वस्तु के कई-कई नाम नाना छन्दो मे लिखे गये है । साथ-ही-साथ छन्दो के लक्षण और उदाहरण भी है । पिगल ग्रन्थो मे जितने विषय होने चाहिए, उतने तो है ही, कुछ अन्य बाते जो पद्य-रचयिताओ के लिए ज्ञातव्य है, इस पुस्तक मे वर्णित है । एक उदाहरण देखिये—

अग्निनाम-कुण्डलिया छन्द

सिंहविलोकित रीति दै, दोहा पर रोलाहि।
आदि अंतजुरि जमकयुत, कुंडलिया कहि ताहि॥
अनल बन्हि पावक दहन, ज्वलन शिखी वृषभानु।
शुक्र धनञ्जय, बातसख, ऊषर अग्नि कृषानु॥
ऊषर अग्नि कृषानु आनु वुध चित्रभानु इमि।
धूमध्वज जलजोनि, विभावसु बीतिगोत्र तिमि॥
जातवेद जुत आगि, निसाचर तूल तुल्य दल।
काली जू भ्रुव भग, आजु जारत क्रोधानल॥

काव्य-रत्नाकर—सं० १८९७ वि० में बना। यह नायिकाभेद और अलंकार का ग्रन्थ है। रचना अच्छी है। ग्राम्यवधू का वर्णन देखिये—

गेह काज करति छिनक दौरि हेरै द्वार छिनक उठाय घट जाती जल लैन को। चकबक ताकती इतै उतै बिलोकि काहू मूरि मुसुकाय ललचाय जोरि नैन को॥ मैन मदमाती अठिलाती छाती ऊंची करि खोलति छिपाती चली जाती देती सैन को। लेजूरी गिराती फेरि फेरि फिरि आती लेन पथ मे फिराती त्यों बढ़ाती जाती चैन को॥

सालिहोत्र—यह सं० १९१२ वि० मे लिखा गया। इसमें घोड़ों की पहिचान, उनके गुण दोष, रोग और औषधियों का वर्णन है। उत्तम अश्व का लक्षण इस प्रकार कहा गया है—

तालू रसना अधर अरुन विराजत है उज्जल अरुन स्याम इक रंग अंग है। लोचन विसाल लम्बी ग्रीव मुख मंजुल है कच घुघुरारे बडे स्रुति सुठि तंग है॥ सूच्छम त्वचा है, चौडे उर, पातरे चरन, पूंछ लघु गति लोल, लागी वासु संग है। विरले न दंत, सिर ऊंचे, बंक देखियत लच्छन ये जामें सोई उत्तम तुरग है॥

घोड़े के रोग की दवा

जौ घोडे को देखिये, फूल्यो उदर सिवाय।
पटकि पटकि लोटै धरनि, ताको जतन बताय॥

बैठे उठे घोड तनि आवे । हरैं राई लोन खिलावै ।।
यहि तें जौ कुरकरी न छूटै । तौ दूसर औषधि लै कूटै ।
हँसि मूल को तुचा मगांवै । पातर करि कै ताहि पिलावै ।।

रागमाला—यह सं० १९४६ वि० का छपा है । इसमे राय रणधीर सिंह के रचे हुए भजन और गीत, विविध राग रागिनियो मे है । नमूने के तौर पर एक भजन हम यहा उद्धृत करते है ।

(ध्रुपद राग, पर्ज ताल, चौताल)

आली री अनग अग जनु धारे बनमाली ठाढो है निकुज मध्य प्यारी री । गल सोहै मोती माल, केसर को तिलक भाल मोर पख सीस मानो चद्र की पत्यारी री ।। पीत बसन लसित अग सरसित सुखमा सुढग जलधर ज्यो लीन्यो विद्युत अलोल सग बसी रवित मंजु अधर सुरस धारि रनधीर लेतो है अनन्त तान न्यारी री ।।

भूषण-कौमुदी—यह ग्रन्थ स० १९१७ वि० मे बना । इस ग्रन्थ मे महाराज जसवन्तसिंह के भाषा-भूषण नामक ग्रन्थ पर टीका लिखी गई है । टीका अच्छी है । इस ग्रन्थ के प्रारम्भ का तीसरा छन्द इस प्रकार है—

मजुल सुरगवर शोभित अंचित चारु फल मकरन्द कर मोदित करन है । प्रमित विराग ज्ञान केसर सरस देस विरद असेस जसु पासु प्रसरन है ।। सेवित नृदेव मुनि मधुप समाज ही के रनधीर ख्यात द्रुत दच्छिन भरत है । ईस हृदि मानस प्रकासित सहाई लसै अमल सरोजवर स्यामा के चरन है ।।

विश्वनाथसिंह

रीवा-नरेश महाराजा विश्वनाथ सिंह महाराजा जयसिंह के पुत्र और महाराजा रघुराज सिंह के पिता थे । इनका जन्म सं० १८४६ में हुआ । ये सं० १८९१ में गद्दी पर बैठे और सं० १९११ तक राज करते रहे । ये अच्छे कवि थे और सुकवियो का अच्छा सत्कार करते थे । इन्होने निम्नलिखित ग्रन्थों की रचना की है—

अष्टयामका आन्हिक, आनन्द रघुनन्दन नाटक, उत्तम काव्य प्रकाश, गीता रघुनन्दन शतिका, रामायण, गीता रघुनन्दन प्रमाणिक. सर्वसग्रह, कबीर के बीजक की टीका, विनय पत्रिका की टीका, रामचन्द्र की सवारी भजन, पदार्थ, धनुर्विद्या, परानीय तत्व प्रकाश, आनन्द रामायण, परम धर्म निर्णय, शाति शतक, वेदान्त पच शतिका, गीतावली पूर्वार्द्ध, ध्रुवाष्टक, उत्तम नीति चन्द्रिका. अवाध नीति पाखड खडिनी, आदि मगल, बसन्त चौतीसी, चौरासी रमैनी, ककहरा, शब्द, विश्व भाजन प्रसाद, परमतत्व, सगीत रघुनन्दन, गीता रघुनन्दन, तत्वमस्य सिद्धान्त भाषा, ध्यान मजरी, विश्वनाथ प्रकाश । संस्कृत मे—राधावल्लभी भाष्य, सर्वसिद्धान्त, आनन्द रघुनन्दन (दूसरा), दीक्षा निर्णय, भुक्ति मुक्ति सदानन्द सन्दोह, रामचन्द्रान्हिक सतिलक, राम परत्व, धनुर्विद्या सगीत रघुनन्दन (दूसरा) ।

नमूने के रूप मे इनका ध्रुवाष्टक यहा उद्धृत किया जाता है—

जो बिन कामहि चाकर राखत ऐन अनेक वृथा बनवावै ।
आमद ते अधिको करे खर्च रिनै करि ब्यौहरै व्याज बढावै ॥
बूझत लेखा नही कछुऐ नहिं नीति की रीति प्रजानि चलावै ।
भाखत है विसुनाथ ध्रुवै वहि भूपति के घर दारिद आवै ॥ १ ॥
निश्चय धर्म विचार भयो दबि भाइन भृत्यनि नाहिं चलावै ।
मत्रिय आदि सुलच्छन हीन औ आलसी होय सलाह बतावै ॥
मानि सँकोच करै व्यवहार बृथा ही इनाम की रीति बढावै ।
भाखत है बिसुनाथ ध्रुवै वह भूपति ना कबहूं कल पावै ॥ २ ॥
नारिन की जु सलाह करै अरु भाइन मंत्री स्वतन्त्र बनावै ।
बर के चाकर राखे रहै और अधर्म की राह सदा मन लावै ॥
मत्री कह्यो हित मानै नही अरु साह को सासन नाम न आवै ।
भाखत है बिसुनाथ ध्रुवै कछु काल मे भूप सुराज गवावै ॥ ३ ॥
झूठी सुनै तहकीक करै नहिं ओछेन सगति मे मन लावै ।
रीझ पचाय डरे रन को बिसना जु अठारहौ खूब बढ़ावै ॥

ठट्ठा मे प्रीति कुपात्र में दान कबीन हुं जान गुमान जनावै ।
भाखत है बिसुनाथ ध्रुवै अस भूपति ना कबहूं जस पावै ॥ ४ ॥
चाकर दै धन बाचे जोई अठयों तिहिं भागहि धर्म लगावै ।
साह लिये धरै सातयों भाग छठे सुता ब्याह हितै रखवावै ॥
पांचएं बित्त बढै धरि चौंथ्यहि तीन ते खर्च करै छ बढावै ।
भाखत है बिसुनाथ ध्रुवै तेहि भूपति भौन न दारिद आवै ॥ ५ ॥
भाइन भृत्यन विष्णु सो रैयत भानु मो सत्रुन काल सो भावै ।
सत्रु बली से बचै करि बुद्धि औ अस्त्रसो धर्महि नीति चलावै ॥
जीतन को करे केते उपाय औ दीरघ दष्टि सब फल पावै ।
भाखत है बिसुनाथ ध्रुवै नृप सो कबहू नहिं राज गवावै ॥६॥
होय नही कबहू बस काहु समै सब मे निज भाव जनावै ।
राखे रहै हुकुमै सब पै कहु मित्र बनाय न तेज गवावै ॥
साम औ दाम औ दड औ भेद की रीति करै जु सबै मन भावै ।
भाखत है बिसुनाथ ध्रुवै कला षोडसौ भूपति राज बढावै ॥७॥
जो हरिआह्निक मे मन लाय करै नृप आह्निकहू स्मृति भावै ।
मानै अहै प्रभु को सब है प्रभु रूप सबै निज किंकर भावै ॥
देह ते आपुहि भिन्न गने करि सासन भक्ति प्रजान चलावै ।
भाखत हैं बिसुनाथ ध्रुवै दोऊ लोक मै भूपति सो सुख पावै ॥८॥

राय ईश्वरीप्रतापनारायण राय

राय ईश्वरीप्रतापनारायणजी का जन्म सं० १८५९ मे गोरखपुर जिले के पड़रौना-राजवंश में हुआ। हिन्दा, संस्कृत और फारसी में इनकी अच्छी गति थी। ये निम्बार्क-सम्प्रदाय के शिष्य थे। राधाकृष्ण के बड़े प्रेमी उपासक थे। पडरौना में इनके बनवाये हुए वहुत सुन्दर मन्दिर, बाग और तालाब है। ये बडे उदार, दानी, भगवद्भक्त और सुविचारवान् थे। २२ वर्ष की अवस्था ही से कविता-रचना का इनको चसका लग गया था। राजा होकर, राजकाज के झझटो मे फसे रहकर भी

इन्होंने बड़े मनोयोग से सुन्दर कविता की है, यह इनकी प्रकृष्ट प्रतिभा का प्रमाण है। इनका स० १९२५ में देहान्त हुआ।

इन्होने संस्कृत और हिन्दी दोनो भाषाओ मे कविता की है। कहीं-कही पञ्जाबी की भी झलक आ गई है। इनके रचे हुए कई ग्रन्थ कहे जाते है। अभी केवल एक ग्रन्थ "रहस्य-काव्य-शृङ्गार" वर्तमान पड़रौना-नरेश राजा ब्रजनारायण राय जी ने प्रकाशित किया है। आशा है, शेष ग्रन्थ भी शीघ्र ही प्रकाशित हो जायगे।

इनकी कविता सरस और मनोहर है। ये गानविद्या मे भी बड़े प्रवीण थे। इनकी कविता के कुछ नमूने यहां दिये जाते है—

मोह को जाल पसार चहुं दिस संतत खेलत काल अहेरो।
भाग तू मोह मया तजि मूरख काहू को तू न कोऊ कहु तेरो॥
नश्वर या तन को समवन्ध प्रताप छुटै छिन साम सवेरो।
छोड़ि सबै भ्रमजाल निरंतर श्रीवन में वस हे मन मेरो॥१॥

कोई कहै ग्यान कोई आपहि भगवान बनै कोई कहै दूरि कोई नेरेही लखाव रे। कोई कहै रूप औ अरूपवान कोई कहै कोई कहै निर्गुन कोई सगुन बताव रे॥ तामें मति भरमै औ भूलि के न वाद ठान तोहिं क्या बिरानी पड़ी अपनी मुरझाव रे। अदभुत प्रताप मूरि जीवन है रसिकन की सदा रसिक भक्तन के सदनं रहु बावरे॥२॥

राग सोरठ मलार

तो विन को यह नेह निवाहै।
ऐसा हित प्रतिपालनहारो तू ही एक सदा है॥
हंसे हंसत बोले बोलत हंसि मिले मिलन को उमा है।
जोइ जोइ चाह प्रताप करत चित सोइ राज तू चाहै॥३॥

राग धमार

वेसर थिरकि रही अधरन पै मोती थिरकत जात।
लखि प्रताप पिचकारी लाल जी के रहि गई हाथ की हाथ॥४॥

पजनेस

पजनेस का जन्म पन्ना मे हुआ। शिवसिंह सरोज में इनका जन्म-संवत् १८७२ लिखा है। इनका रचा हुआ कोई ग्रथ अभी तक प्रकाशित नही हुआ। स्वर्गीय बाबू रामकृष्ण वर्मा ने इनके कुछ छन्दों का संग्रह "पजनेस प्रकाश" नाम से प्रकाशित किया था। उसके देखने से पंजनेस एक प्रतिभाशाली कवि जान पड़तेहै। ये शृंङ्गारी कवि थे। इनकी कविता मे कही-कही अश्लील वर्णन भी आ गया है। इनकी कविता से जान पडता है कि ये संस्कृत और फारसी के भी ज्ञाता थे।

इनका रचा एक हस्तलिखित काव्य-ग्रथ हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन के प्रधान मन्त्री बाबू पुरुषोत्तमदास टण्डन के पास है। उसके प्रकाशित होने पर इनकी प्रतिभा का अधिक प्रकाश प्रकट होगा।

यहां हम इनकी कविता के कुछ उदाहरण उपस्थित करते है—

छहरै छबीली छटा छूटि छितिमंडल पै उमग उजेरो महा ओज उजबक सी। कवि पजनेस कंज मंजुल मुखी के गात उपमाधिकात कल कुदन तबक सी॥ फैली दीप दीप दीप दीपति दीपति जाकी दीपमालिकी को रही दीपति दबक सी। परत न ताब लखि मुख महाताब जब निकसी सिताब आफ़ताब के भभक सी॥१॥

नवला सरूप रूप रावरे रुचिर रूप रचना बिरंचि कीनी सकुच न लागी है। भन पजनेस लोल लोयन को लौकौं गोल गुलफ गोराई लाज सकुच न लागी है॥ सुन्दर सुजान सुखदान प्रीति प्रीतम की एकौ ना परेख अब सकुचन लागी है। औचक उचन लागी कंचुकी रुचन लागी सकुचन लागी आली सकुचन लागी है॥२॥

कवि पजनेस केलि मधुप निकेत नव दर मुख दिव्य घरी घटिका लटीकी है। विधु पर बेष चक्र चक्र रविरथ चक्र गोमती के चक्रचक्रता-कृत घटीकी है॥ नीवी तट त्रिबली बली पै दुति कोसतुण्ड कुडली कलित लोमलतिका बुटीकी है। उपटीकी टीकी प्रभाटीकी बधूटी की नाभिटीकी धुजंटी को औ कुटी संपुटीकी है॥३॥

संपुट सरोज कैधो सोभा के सरोवर में लसत सिङ्गार के निसान अधिकारी के। कवि पंजनेस लोल चित्त बिच चोरिबे को चोर इक ठौर नारि ग्रीव वरकारी के ॥ मन्दिर मनोज के ललित कुंभ कंचन के कलित फलित कैधो श्रीफल विहारी के। उरज उठौना चक्रवाकन के छौन कैधो मदन खिलौना ये सलौना प्रानप्यारी के ॥४॥

मानसी पूजा भई पजनेस मलेछन हीन करी ठकुराई।
रोके उदोत सबै सुर गोत बसेरन पै सिकराली बसाई॥
जानि परै न कला कछु आज की काहे सखी अजया इक ल्याई।
पोखे मराल कहो किहि कारन ऐरी भुजंगिनी क्यो पोसवाई ॥५॥

पजनेस तसद्दुकता विसमिल जुलफे फुरकत न कबूल कसे।
महबूब चुनां मदमस्त सनम् अज़दस्त अलावल जुल्फ बसे॥
मजमूये न काफ सफाक रुए सम क़्यामत चश्म से खू बरसे।
मिज़गां सुरमा तहरीर दुतां नुकते विन वे किन ते किन से ॥६॥

शिवसिंह सेंगर

शिवसिंह सेंगर जिला उन्नाव मे काथा ग्राम के निवासी थे। इनके पिता जमीदार थे और उनका नाम रणजीतसिंह था। इनका जन्म सं० १८७८ में हुआ। ये पुलिस के इन्सपेक्टर थे। काव्य में अधिक रुचि होने के कारण इन्होंने हिन्दी, सस्कृत और फारसी की बहुत-सी पुस्तके इकट्ठी की थी।

सं० १९३४ मे इन्होंने "शिवसिंह सरोज" नामक एक बड़े ही उपयोगी ग्रन्थ की रचना की। इसमे लगभग एक हजार हिन्दी के पुराने कवियों की संक्षिप्त जीवनी और उनकी कविताओ के स्वल्प सग्रह है। कविता-कौमुदी लिखते समय हमें इस पुस्तक से वड़ी सहायता मिली। इसके सिवा शिवसिंह ने ब्रह्मोत्तर खंड और शिवपुराण का गद्यानुवाद भी किया था। ये कविता भी करते थे। नमूने के रूप में इनके दो कवित्त यहां उद्धृत किये जाते है—

पियो जब सुधा तब पीबे को कहा है और लियो शिवनाथ तब लेइबो कहा रह्यो । जान्यो जिन रूप तब जानै को कहा है और त्याग्यो मन आस तब त्यागिबो कहा रह्यो ।। भनै शिवसिंह तुम मन मे बिचारि देखो पायो ज्ञान धन तब पाइबो कहा रह्यो । भयो शिवभक्त तब ह्वैबे को कहा है और आयो मन हाथ तब आइबो कहा रह्यो ।।१।।

कहकही काकली कलित कल कठन की कजकली कालिदी कलोल कहलन मे । सेंगर सुकवि ठड लागती ठिठुरवारी ठाठ सब ठटे लगि लेते टहलन मे ।। फहरै फुहारे फबि रही सेज फूलनि सो फेन सी फटिक चौतरा के पहलन मे । चादनी चमेली चम्पा चारु फूल बाग बीच बसिये बटोही मालती के महलन में ।।२।।

रघुराजसिंह

रघुराजसिंह रीवा के महाराज थे । इनका जन्म सवत् १८८० मे हुआ । स० १९११ मे अपने पिता महाराज विश्वनाथसिंह के स्वर्गवासी होने पर ये गद्दी पर बैठे । इनकी मृत्यु स० १९३६ में हुई । इनके १२ विवाह हुए थे । कविता महाराज रघुराजसिंह की पैतृक सम्पत्ति थी । इनके पिता और पितामह भी अच्छे कवि और सत्कवियो के आश्रयदाता थे । रघुराजसिंह हिन्दी और सस्कृत दोनो भाषाओ के पडित और कवि थे । दान और भक्ति मे भी इनकी बडी प्रशसा सुनी जाती है । शिकार खेलने का इन्हे बडा व्यसन था । शिकार मे इन्होने ९१ शेर, एक हाथी, १६ चीते और हजारो हरिण तथा अन्य पशुओ का वध किया था । मृत्यु-काल से ५ वर्ष पूर्व ही से इन्होने राज्यप्रबध से सम्बन्ध छोड दिया था । उस समय ब्रिटिश-सरकार राज्य की देखरेख करती थी । स० १९३३ मे इनको सतान-सुख प्राप्त हुआ ।

इनके आश्रय मे बहुत-से कवि रहा करते थे । उनमे से कुछ के नाम ये है—रसिकनारायण, रसिकबिहारी, श्री गोविन्द, बालगोविन्द और रामचन्द्र शास्त्री ।

महाराज रघुराजसिंह के रचे हुए निम्नलिखित ग्रन्थ है--

सुन्दर शतक, विनयपत्रिका, रुक्मिणीपरिणय, आनन्दाम्बुनिधि, भक्तिविलास, रहस्य पचाध्यायी, भक्तमाल, रामस्वयंवर, यदुराज-विलास, विनयमाला, रामरसिकावली, गद्यशतक, चित्रकूटमाहात्म्य, मृगयाशतक, पदावली, रघुराजविलास, विनयप्रकाश, श्रीमद्भागवत माहात्म्य, राम अष्टयाम, भागवत भाषा, रघुपति शतक, गगा शतक, धर्म विलास, शभु शतक, राजरजन, हनुमतचरित्र, भ्रमर गीत, परम प्रबोध और जगन्नाथ शतक। रघुराजसिंह की कविता कही-कही बड़ी मनोहर हुई है। ये राम भक्त थे। राम को दास भाव से भजते थे। अपनी कविता में कही-कही तुलसीदास की छाया भी इन्होने ली है।

यहां रुक्मिणी परिणय और रघुराजविलास से इनकी कुछ कविताएं उद्धृत की जाती है—

केशव जन्म लै आज्ञा दई तब लै शिशु को वसुदेव सिधारे।
गोकुल मे यशुदा के निकेत मे राखि सुतै दुहिता लै पधारे॥
बाल ही मे बिकरार सुरारिन पूतना धेनुक आदि संहारे।
शक्र के कोप ते राख्यो ब्रजै गिरिधारी सु सात दिनै गिरि धारे॥ १॥

जानि दुखी यदुवशिन को सग दानपती मथुरा कहं आये।
कसहि कूटिकै मातु पिता को छोड़ाय कै वन्वन मोद बढाये॥
आहुक को यदुराज दियो निज बन्धुन के दुख द्वन्द मिटाये।
मागध को मद मंथन कै अब द्वारका द्वारकानाथ वसाये॥ २॥

दीनन पालिवो शत्रुन शालिबो घालिबो भक्तन के दुख को है।
दीठि दया की प्रजा पै पसारिवो धर्म सुधारिवो चित्त वसो है॥
पाप नशाइवो नीति चलाइवो कीरति बेलि बढाइवो सोहै।
वृद्धन मानिवो यज्ञन ठानिवो यों जिनके गुण को सब जोहै॥ ३॥

वुद्धि लखे हिय लाजै वृहस्पति रूप लखे हिय लाजत मार है।
धीरज दासरथी सो अरीनपै कोपिवो शम्भु सों शील अगार है॥

विक्रम जासु त्रिबिक्रम के सम क्षोनीक्षमा सुखसिंधु को सार है ।
तेज कृशानु प्रताप ते भानु यशैते लजै सितभान अपार है ।। ४ ।।
कोमल बोलै कठोरे कहै किये येकहू सेवा सतै करि मानत ।
वाके सबै अपकार बिसारि निजै चित मे उपकारहि आनत ।।
जोई कहै करै सोई सदा द्विज की निज देवता सों जिय ठानत ।
दीनन दान मुनीशन मान अरीन कृपान को देइबो जानत ।। ५ ।।
कंचन दान मे मेरु डरै गजदान मे गोवति गौरी गजानन ।
दान तुरग को देखि दिवाकर दाहिन बाम ह्वै जात दिशानन ।।
दान मही के मही के महीपति त्रासित जी के बिलोकत कानन ।
हेरि कुशा हरि के कर मे डर तो त्रयलोक करै चतुरानन ।। ६ ।।
माधुरी माधव की वह मूरति देखतही दृग देखे बनेरी ।
तीनिहू लोक की जो रुचिराई सुहाई अहै तिनही के घनेरी ।।
सोभा शचीपति औ रति के पति की कछु आई न मेरे मनेरी ।
हेरि मै हारचो हिये उपमा छविहू छवि पाई बिराजित नैरी ।। ७ ।।
ब्रज मे जेहि के मुरली ध्वनि को सुनिकै यह कौतुक होत भयो ।
परिवार बिसारि हिये हरिधारि सुगोपिका छोड़ि अवास दयो ।।
कर नूपुर ककन पायन मे कटि किंकिणी को करि हारु लयो ।
नदनदन के ढिग को यो गई सरितागण सागर को ज्यो गयो ।। ८ ।।
मुख देखतही मनमोहन को अति सोहन जोहन लागी जबै ।
नहि नैन हिलै नहि बैन चलै नहि धाय मिलै नहि शीश नवै ।।
ब्रजबालन हाल लख्यो अस लाल उताल कियो उरमाल तबै ।
रसरास विलास मे हास हुलास सो पूरण के दिय आश सबै ।। ९ ।।
मथुरा के मनोहर मारग मे मुरली धरे मडित ग्वालन सों ।
लखि कूबरी मोहित दै अगराग चह्यो मिलिबो हठि लालन सो ।।
अतिरूप अनूप भयो तेहि को भई पूजित देवन बालन सों ।
रति रभा रमा सुख दुर्लभ जो छनही मे दियो तेहि ख्यालन सो ।।१०।।

दोहे

कल किशलय कोमल कमल, पदतल सम नहिं पाय।
यक सोचत पियरात नित, यक सकुचतु झरि जाय॥ १ ॥
विलसति यदुपति नखनितति, अनुपम द्युति दरिशाति।
उडुपति युत उडु अवलि लखि, सकुचि सकुचि दुरिजाति॥ २ ॥
सविता दुहिता श्यामता, सुखसरिता नख ज्योति।
सुतल अरुणता भारती, चरण त्रिवेणी होति॥ ३ ॥
गुलुफ गुलुफ खोलनि हृदय, हो तौ उपमा तूल।
ज्यों इंदीवर तट असित, द्वै गुलाब के फूल॥ ४ ॥
लाली ये ड़ी लालकी, अति अनुपम दरशाहिं।
काम बाग की नारंगी, सम कहि कवि सकुचाहिं॥ ५ ॥
चारु चरण की आगुरी, मो पै वरणि न जाइ।
कमल कोश की पाखुरी, पेखत जिनहि लजाइ॥ ६ ॥
अति अनुपम कहि जाति नहिं, युगल जघ की ज्योति।
जिनहि जोहि कलकलभ को, शुड कुण्डलित होति॥ ७ ॥
युगल जानु यदुराज की, जोहि सुकवि रसभीन।
कहत मार शृङ्गार के, संपुट द्वै रचि दीन॥ ८ ॥
उरू सलोनें श्याम के, निरखत टरत न नैन।
जैतखभ शृङ्गार के, मानहु विरच्यो मैन॥ ९ ॥
यदुपति कटि की चारुता, को करि सकै बखान।
जासु सुछवि लखि सकुचि हरि, रहत दरीन दुरान॥ १० ॥
पद्मनाभ के नाभिकी, सुखमा सुठि सरसाय।
निरखि भानुजा धार को, भ्रमि भ्रमि भवर भुलाय॥ ११ ॥
लली कान्ह रोमावली, भली बनी छवि छाय।
मनहु काम शृङ्गार की, दीन्ही लीक खचाइ॥ १२ ॥
वर दामोदर को उदर, जेहि नहिं समता पाइ।
नवल अमल वल दल सुदल, डोलत रहत लजाइ॥ १३ ॥

उर अनूपम उनको लसै, सुखमा को अति ठाट।
मनहु सुछबि हिय भरि भये, काम शृङ्गार कपाट॥ १४॥
कामकरभ कर उरग वर, रस शृङ्गार द्रुम डार।
भुजनि जोहि जदुवीर के, देव पराभव पार॥ १५॥
श्री यदुपति के भुज युगल, छाजि रहे छवि भौन।
निरखत जिनहिं भुजङ्गवर, लजि पताल किय गौन॥ १६॥
देवकिनन्दन कंठ को, रच्यो न विधि उपमान।
जे जड़ दरको पटतरहिं, तिन सम जड न जहान॥ १७॥
ग्रीवा गिरिधरलाल की, अनुपम रही विराजि।
निरखि लाज उर दरकि दर, बस्यो उदधि महु भाजि॥ १८॥
मनमोहन के नैनवर, बरणि कौन विधि जाहिं।
कंज खंज मृग मैन शर, मीनहु जेहि सम नाहिं॥ १९॥
यदुपति नैन समान हित, विधि ह्वै बिरचै मैन।
मीन कञ्ज खञ्जन मृगहु, समता तऊ लहै न॥ २०॥
भालपटलि नगवत की, भनति भारती नीठि।
वशीकरन जपकरन की, मनमनोज सिधि पीठि॥ २१॥
बाललाल के भाल मे, सुखमा बसी बिशाल।
सुछवि माल शशि अरध ह्वै, निरखत होत बिहाल॥ २२॥
यदुपति भौंहन की सुछवि, मदन धनुष की सोभ।
जीति लसतहै तिनहिं लखि, दृग न टरत रतलोभ॥ २३॥
भौंह बरुण यदुराज की, रही अपूरुब सोहि।
करहिं लजोहै कामधनु, शरमन लेवै पोहि॥ २४॥
हरिनासा की सुभगता, अटकि रही दृग माह।
कामकीर के ठोर की, सुखमा छुवति न छाह॥ २५॥
गोल कपोल अतोल है, छाये सुछवि अमान।
मदन आरसी रसपसर, सम शर करत अजान॥ २६॥

श्रवण सलोने श्याम के, छहरति छटा नवीन।
मदन महोदधि सीप की, सुखमा लीन्ही छीन ॥२७॥
राजत पुरट किरीट शिर, प्रगटत प्रभा अखंडि।
ज्यो मनहु गिरि नील पर, कनुपम रवि छवि मंडि ॥२८॥

गीत

भजु मनो देवकी जठर महोदधि पूर्ण मृगांकमुदारम्।
यदुकुल कुमुद विनोद विकाशक विभु बसुदेव कुमारम्॥
नलिन नयन नलिनीरुहानन नवनीरद तनु नीलम्।
समय विजय कर चारु चतुर्भुज शोभित सुन्दर शीलम्॥
मणिमय मुकुट मनोहर मस्तक पीत बसन बनमालम्।
कुण्डल मण्डित गण्य मण्डलं चन्दन चर्चितभालम्॥
रुक्मिणी विराजित बाम भाग मनु राग यागजवलभ्यम्।
सिंहासनासीन कमनीय सभा सुविभावित सभ्यम्॥
सुर सुरेन्द्र वैरच्य विरंचि मुर्रषि महर्षि समाजम्।
दीन दया वितरण सदानि वरपावित जनरघुराजम्॥१॥
सखि पश्य कोशल कान्त सुखद कुमारमति सुकुमारकम्।
मैथिलनिवास विलास विलसित मदनमनोऽपहारकम्॥
मणि मंडपे सीतायुत सुषमाभरं सीतावरम्।
सुविवाहकर्म्म विधान मतिकुर्वाणमद्भुत तारकम्॥
मणिमुकुट पीताम्बर सुनव्यमुखारविंदमनिन्दितम्।
मेदुर सुघन मस्तकदिवामणिमिक्तडिद्गणवन्दितम्॥
किंचित्कटाक्ष विकाश वीक्षित जानकी सुषमामुखम्।
गुरुजन निकट लज्जावश गतमधोभावितशशिमुखम्॥
जनकात्मजार्प्पितदृष्टि कंकण कलितकर धृतचन्दनम्।
रघुराज राजसमाज शोभित सानुज रघुनन्दनम्॥२॥

सखि लखन चलो नृप कुवर भलो। मिथिलापति सदन सिया बनरो॥
शिर मौर बसन तन में पियरो। हठ हेरि हरत हमरो हियरो॥

उर सोहत मोतिन को गजरो । रतनारी अखियन मे कजरो ॥
चितये चित चोरत सखि समरो । चितये बिन जिय न जियै हमरो ॥
अलकै अलि अजब लसै चेहरो । झपि झूलि,रह्यो कटि लौ सिहरो ॥
युवती जन को जालिम जहरो । मन बैठत लखत मैन पहरो ॥
पुनि ऐहै नाहिं जनक शहरो । ले रि लाचन लाहु न करु गहरो ।
यक है वहि लखत बड़ो अनरो । पुनि रुकत न रोकहु मन उन रो ॥
चित चहत अरी लगि जाऊ गरो । रघुराज त्यागि घर को झगरो॥३॥

मोहिं तो भरोसो भूरि अपनी कमाई को ।
कबहूं काहू को नही कियो है भलाई को ॥
कियो काम लोभ कोह मोह सो मिताई को ।
रोज रोज पाल्यो निज नारि नाति भाई को ॥
कबहू न पूज्यो साधु लैके आगुआई को ।
पूरी प्रीति पापिन सो नारि हू पराई को ॥
बाढचो है घमण्ड मोह माया ठाकुराई को ।
बेस बजवायो द्वार पाप ही बधाई को ॥
रोज रुजगार कियो जीव ही सताई को ।
सपन्यो न सोच्यो नाथ भक्ति सुखदाई को ॥
धर्म कर्म कीन्ह्यो केते लोक की बड़ाई को ।
कबहूं न पायो पार विषै भोगताई को ॥
बाकी न रह्यो है रघुराज पतिताई को ।
मोहिं ना उधारे पतितपावन नाम गाई को ॥ ४ ॥

मूरख मानत यही वडाई ।
राजा भयो बिभौ धन आधर नहिं सन्तन शिर नाई ।
भोजन मैथुन ऐश करत नित दिय वय वृथा विताई ॥
ह्वै पडित पढि न्याय व्याकरण भरे घमड महाई ।
सन्त चरण परसत सकुचत शठ जोरत धन वहुताई ॥

मन्त्री भयो महामदमातो चलत भुजानि फुलाई।
सन्तन ओर तकत कबहू नहि कालभीति बिसराई ।।
वनिक भयो धन धरचो गाड़ि महि जानत रही सदाई।
कवहु न हरि हर जन के हेतहि कौडिहु कान लगाई ।।
भयो राज सामन्त जगत जो हठि परलोक भुलाई।
करत सन्त अपकार जानि अस मीच नगीच न आई ।।
कलि कुचालि कह लो मुख बरणो देखतही बनि आई।
गुरू होन सव कोउ जग चाहत शिष्य होत सकुचाई ।।
सोई वडो गुरू सबको सोइ ताकी सत्य बड़ाई।
जो रघुराज सदा सन्तन की करत चरण सेवकाई ।। ५ ।।

द्विजदेव

अयोध्या नरेश महाराजा मानसिह का उपनाम द्विजदेव था। द्विजदेव अवध के तालुकेदारो के एसोसियेशन के सभापति थे। इनका देहान्त लगभग ५० वर्ष की अवस्था मे, स० १९३० मे हुआ।

ये शाकद्वीपी ब्राह्मण थे। कवियो और विद्वानो का ये वड़ा आदर करते थे। ये स्वय एक अच्छे प्रतिभाशाली कवि थे। इनका रचा हुआ कोई ग्रन्थ हमारे देखने मे नही आया। इनके उत्तराधिकारी महामहोपाध्याय महाराजा सर प्रताप नारायण सिह के० सी० आई० ई०, उपनाम ददुआ साहव ने "रसकुमुमाकर" नामक अलङ्कार और रस सम्बन्धी हिन्दी-कविता का एक वड़ा सग्रह-ग्रन्थ प्रकाशित किया है। उसमे द्विजदेव के वहुत-से छन्द मिलते है। उसमे से और कुछ अन्य कविता-सग्रहो मे से इनके थाड़े-से छन्द चुनकर हम नीचे प्रकाशित करते है—

जावक के भार पग परत धरा पै मन्द गन्ध भार कुचन परी है छूटि अलकै। "द्विजदेव" तैसियै विचित्र वरुनी के भार आधे आधे दृगन परी है अध पलकै ।। ऐसी छवि देखि अग अग की अपार वार वार लोल लोचन सु कौन के न ललकै। पानिप के भारन सभारित न गात लङ्क लचि लचि जात कच भारन के हलकै ।।१।।

भूले भूले भौर बन भांवरे भरेंगे चहू फूल फूल किंशुक जके से रहि जाय है । "द्विजदेव" की सौ वह कूजनि बिसारि कूर कोकिल कलकी ठौर ठौर पछताय हैं ।। आवत बसन्त के न ऐहै जो पै स्याम तो पै बावरी ! बलाय सो हमारेऊ उपाय हैं । पीहै पहिले ही ते हलाहल मंगाय या कलानिधि की एकौ कला चलन न पाय है ।।२।।

बाके सक हीने राते कन्ज छवि छीने माते झुकि झुकि झूमि झूमि काहू को कछू गनै न । "द्विवदेव" की सौ ऐसी बानक बनाइ बहु भातिन बगारे चित चाह न चहूघा चैन । पेखि परे पात जो पै गातन उछाह भरे बार बार तातै तुम्हे बूझती कछूक बैन । एहो ब्रजराज मेरे प्रेमधन लूटिबे को बीरा खाइ आये कितै आपके अनोखे नैन ।।३।।

कारो नभ कारी निसि कारियै डरागी घटा झूकन बहत पौन आनन्द को कन्द री । "द्विजदेव" सावरी सलोनी सजी स्याम जू पै कीन्हों अभिसार लखि पावस आनन्द री ।। नागरी गुनागरी सु कैसे डरै रैनि डर जाके संग सोहै ये सहायक अमन्द री । बाहन मनोरथ उमाहै सगवारी सखी मैन मद सुभट मसाल मुखचन्द री ।।४।।

काहू काहू भाति राति लागी ती पलक तहां सपने मे आनि केलि रीति उन ठानी री । आप दुरे जाय मेरे नैननि मुदाय कछु हौंहूं बज-मारी ढूढ़िबे को अकुलानी री ।। एरी मेरी आली या निराली करता की गति "द्विजदेव" नेकऊ न परत पिछानी री । जौलौं उठि आपनो पथिक पिय ढूढौ तौलौ हाय, इन आखिन ते नीदई हेरानी री ।।५।।

घहरि घहरि घन सघन चहूधा घेरि छहरि छहरि विष बूद बरसा-वै ना । "द्विजदेव" की सों अब चूक मत दांव परे पातकी पपीहा तू पिया की धुनि गावै ना ।। फेरि ऐसो अवसर न ऐहै तेरे हाथ परे मटकि मटकि मोर सोर तू मचावै ना । हौ तो विन प्रान प्रान चहत तज्योई अब कत नभ चन्द्र तू आकाश चढि धावै ना ।।६।।

बोलि हारे कोकिल बुलाय हारे केकी गन मिखै हारी सखी सब जुगत नई नई । "द्विजदेव" की सो लाज बैरिन कुसग इन अगिनिही

आपने अनीती इतनी ठई ॥ हाय इन कुंजन ते पलटि पधारे स्याम देखन न पाई वह सूरति सुधामई । आवन समै मे दुखदाइनि भई री लाज चलन समै में चल पलन दगा दई ॥७॥

चित चाह अबूझ कहै कितने छवि छीनी गयन्दन की टटकी ।
कवि केते कहै निज बुद्धि उदै यह लीनी मरालन की मटकी ॥
"द्विजदेव जू" ऐसे कुतर्कन मे सब की मति योही फिरै भटकी ।
वह मन्द चले किन भोरी भटू पग लाखन की अखियां अटकी ॥८॥
सोधे समीरन को सरदार मलिन्दन को मनसा फलदायक ।
किंशुक जालन को कलपद्रुम मानिनी बालनहूं को मनायक ॥
कन्त अनन्त अनन्त कलीन को दीनन के मन को सुखदायक ।
साचे मनोभव राज को साज सु आवत आज इतै ऋतुनायक ॥९॥

रामदयाल नेवटिया

सेठ रामदयाल नेवटिया का जन्म कार्तिक शुक्ल १३ सं० १८८२ मे, मडावा (शेखावाटी) मे हुआ । आपके पिता का नाम सेठ मनसाराम था । जन्म के चालीस दिन पीछे आप फतहपुर, जो मंडावा से सात कोस पर है, लाये गये । फतहपुर ही आपके परिवार की निवासभूमि है ।

बालकपन ही से विद्या की ओर आपकी अधिक रुचि थी । थोड़ी ही अवस्था मे आप व्यापक कामों मे दक्ष होगये । सवत् १८९६ मे आपके पिता का देहान्त होगया । स० १९०७ मे आप अजमेर के सेठ प्रतापमलजी मेहता के व्यापार के प्रधान सचालक होकर पूना गये । पूना मे व्यापारिक काम करते हुए भी आपने बड़े परिश्रम से हिन्दी, संस्कृत, गुजराती और उर्दू में अच्छा ज्ञान प्राप्त कर लिया । साधारण अंगरेजी भी आप समझ लेते थे ।

सं० १९१४ में आप अजमेर वापस गये और वहां से कुछ दिन बाद फतहपुर चले आये । तब से वही रहने लगे ।

आप बड़े विद्या-व्यसनी थे । पुस्तकों से आपका बड़ा प्रेम था ।

गीता का प्रतिदिन पाठ करते थे। आपके पुस्तकालय मे हिन्दी और संस्कृत की पुस्तकों का बहुत अच्छा सग्रह है।

आप बड़े मिलनसार, सुशील, विनयी, सदाचारी, उदार, न्याय-प्रिय और शात पुरुष थे। अभिमान तो आपको छू भी नही गया था। मारवाड़ी जाति के आप रत्न थे। आपके समान विद्वान् मारवाडी जाति मे अभीतक कोई नही हुआ। आप समाज-सुधार के बड़े पक्षपाती थे। गुणियो का आदर आप बड़े प्रेम से करते थे।

मुझे आपके समीप रहने का कई वर्षों तक अवसर मिला था। जब कोई शास्त्रीय चर्चा छिड जाती थी तब आपके अगाध पांडित्य का चमत्कार देखकर मनमे बड़ा आनन्द उमड़ आता था। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के आप मित्रो में से थे। राजा शिवप्रसाद से भी आपका पत्र-व्यवहार था।

बालकपन मे आपकी आर्थिक स्थिति बहुत साधारण थी। आपके सद्व्यवहार, कर्त्तव्यपरायणता, सत्याचरण और धर्मनिष्ठा पर लक्ष्मी भी मोहित हो गई और अपने जीवन-काल ही में आप अपने वृहत् परिवार को करोड़ों की सम्पत्ति से सुखी देखकर स्वर्गवासी हुए।

आपका स्वास्थ्य बहुत सुन्दर था। सं० १९७० मे आपने गङ्गोत्री और जमनोत्री की यात्रा की थी। स० १९७४ के अंत मे आप मथुरा आये। वही मेरा आपसे अन्तिम साक्षात्कार हुआ। आप चार बजे प्रात काल उठते शौच और स्नान से निवृत्त होकर पूजा पर बैठ जाते थे। पूजा-पाठ आपने अन्तिम समय तक नही छोडा। आप महीन से महीन अक्षर भी वृद्धावस्था मे बिना चश्मे की सहायता के पढ लेते थे। अभी थोडे ही दिन हुए, आश्विन अमावस्या, स० १९७५ में आपने इस असार संसार को परित्याग किया।

आप हिन्दी के अच्छे कवि थे। आपके रचे हुए तीन ग्रन्थ है। तीनो छप चुके है। उनके नाम ये है—१—प्रेमांकुर २—बलभद्रविजय, ३—लक्ष्मणामङ्गल। कविता मे आप अपना उपनाम कृष्णदास रखते

थे। नीचे हम आपकी कविता के कुछ नमूने उद्धृत करते हैं—

बीत रही सब आयु तदपि बीती नहिं आशा।
अजहु चहु सुख भोग रोग भय बडा तमाशा॥
शिथिल हो गई देह बात पित कफ ने घेरा।
श्वेत केश सदेश समन का लाया नेरा॥
शक्ति-हीन इन्द्री भई, भक्ति लेश नहिं तनक मन।
तृष्णा को तज रे अधम, भजत क्यों न राधारमन॥ १॥

मैं कीनों बहु दोष, एक भरोसे आपके।
तुमही करिहौ रोष, तो पापी की कवनि गति॥ २॥

दूजो आदर ना करै, वाको कछू न दोस।
मैं तेरो तू ना सुनै, यह भारी अफसोस॥ ३॥

सिंधु होय जल बिन्दु, इन्दु सम होय दिवाकर।
अनल कमल को फूल, तूल सम होय धराधर॥
माहुर मधुप समान, भूप भ्राता जिमि जानै।
शत्रु होय निज दास, लोक आज्ञा सब मानै॥
पाप होय हरजाप सम, को दुराय नहिं भू परै।
आनन्द कन्द ब्रजचन्द्र जब, करुणानिधि किरपा करै॥ ४॥

माधव तुम बिन सब जग झूठो।
रवि, ससि, अनिल, अनल, जल थल मे तुमरो ही तेज अनूठो॥
नन्दकिशोर और नहिं जाचू राजी रहो चाहे रूठो।
मै हू अनन्य आपको सेवक "कृष्णदास" पै तूठो॥ ५॥

जग में हरि विन कोइ न संगाती।
वाको मत बिसरो दिन राती॥
पल पल आयु घटै नर तेरी ज्यों दीपक बिच बाती।
चेत चेत नर चेत चतुर हो गइ न लौब फिर आती॥
सब अपने स्वारथ के सङ्गी सुत बनिता अरु नाती।
"कृष्णदास" की आस मिटावे जनम मरन के साथी॥

लक्ष्मणसिंह

राजा लक्ष्मणसिंह यदुवंशी क्षत्रिय थे। जन्म-भूमि आगरा, जन्म-संवत् १८८३, मृत्यु-संवत् १९५३।

राजा लक्ष्मणसिंह संस्कृत, हिन्दी, अरबी, फारसी, बंगला और अंग्रेजी के अच्छे ज्ञाता थे। सन् १८५७वाले सिपाही विद्रोह में इन्होंने अंग्रेजों को बड़ी मदद पहुंचाई थी,इससे सन् १८७०के प्रथम दिल्ली-दरबार में इनको गवर्नमेंट ने राजा की पदवी दी। ये २० वर्ष तक ८०० रु० मासिक पर पहले दरजे के डिप्टी कलक्टर रहे। कांग्रेस के जन्मदाता मिस्टर ह्यूम की इन पर बड़ी श्रद्धा थी। उन्हीं की कृपा से इनकी विशेष उन्नति हुई।

यद्यपि डिप्टी कलक्टरी के कामों से इन्हें अवकाश बहुत कम मिलता था, तो भी हिन्दी की ओर इनका ऐसा प्रेम था कि जो समय बचता उसे ये उसी की सेवा में लगाते थे। गवर्नमेंट की बहुतसी सरकारी किताबों का हिन्दी में उल्था करने के सिवा इन्होंने शकुन्तला, मेघदूत और रघुवंश का अनुवाद भी किया है। मेघदूत का अनुवाद पद्य में और रघुवंश का अनुवाद गद्य में है। ये ही पुस्तकें हिन्दी-जगत में इनको अजर-अमर बनाये रहेंगी। इन पुस्तकों के अनुवाद में इन्होंने अपने पांडित्य का जो चमत्कार दिखाया है वह किसी साहित्य-प्रेमी से छिपा नहीं है। भारतवर्ष तथा योरोप के विद्वानों ने भी इनको हिन्दी का कवि माना है। इनके अनुवाद में यह विशेषता है कि पद्य की कौन कहे, गद्य में भी उर्दू, फारसी का एक शब्द नहीं आने पाया है। फिर भी एक-एक पद सरस, सुपाठ्य और सरलता से भरा हुआ है।

शकुन्तला और मेघदूत के अनुवाद में से इनकी कविता की कुछ छटा हम दिखलाते हैं——

शकुन्तला

कैसे भ्रमर चुम्बन करत।
नागकेसरि को सुअङ्कन रहित रहसिहि भरत॥

सिरस फूलन कान धरि बन युवति मन को हरत।
देत शोभा परम सुन्दर सरस ऋतु लखि परत ॥
रुखन तर मुनि अन्न परयो है। शुककोटर ते यह जु गिरयो है ॥
कहू धरी चिक्कन सिल दीसे। इंगुदिफल जिन पै मुनि पीसे ॥
रहे हरिन हिल ये मनुषन ते। नैन न चौकत बोल सुनन ते ॥
सोहति रेख नदी तट बाटा। बनी टपकि जल वल्कल पाटा ॥
पवन झकोरति है जल कूला। विटप किये जिन उज्जल मूला ॥
नव पल्लव दीखत धुधराये। होम धुआं जिन ऊपर छाये ॥
उपवन अग्र भूमि के माही। कटि के दाभ रहे जहं नाही ॥
चरत फिरत निधरक मृगछौना। जिनके मन शका नेकौ ना ।२।
अधर रुचिर पल्लव नये, भुज कोमल जिमि डार।
अंगन मे यौवन सुभग, लसत कुसुम उनहार ॥ ३ ॥
तो मन की जानत नही, अहो मीत बेपीर।
पै मो मन को करत नित, मनमथ अधिक अधीर ॥ ४ ॥
भानु मन्द कर देत, केवल गन्ध कमोदिनिहि ।
पै शशि मंडल स्वेत, होत प्रात के दरस ते ॥ ५ ॥
कहुं दाभन ते मुख जाका छिओ जब तू दुहिता लखि पावत ही।
अपने कर ते तिन घावन पै तुही तेल हिंगोट लगावत ही ॥
जिहि पालन के हित धान समा नित मूठहि मूठ खवावत ही।
मृगछौना सो क्यो पग तेरे तजै जिहि पूत लौं लाड़ लड़ावत ही ॥ ६ ॥
प्रजा काजे राजा नित सुकृति पै उद्यत रहै।
बडे वेद ज्ञानी हित सहित पूजे सरसुती ॥
उमा स्वामी शम्भू जगतपति नीललोहित प्रभू।
छुटावे मोहूं को विपति अति आवागवन सों ॥ ७ ॥

मेघदूत

सुर युवती जुरि मिलि तहं आवै। पकरि तोहि जल यन्त्र बनावै ॥
रघसि रघसि हीरा कंकन सो। नीर झरावे तो अंगन सों ॥

इन खिलवारन ते यदि तेरो । छुटकारो नहिं होय सवेरो ॥
श्रवन कठोर घोर तब कीजो । यो डरपाय उन्हें मग लीजो ॥१॥
तेरे हू आसू सखा, देगी अवस बहाय ।
सरस हृदय जन होत है, बहुधा मृदुल स्वभाय ॥ २ ॥
तू बिन बोलेहू बरसि, मेटत चातक प्यास ।
सज्जन जन उत्तर यही, पुजवत याचक आस ॥ ३ ॥

गिरिधरदास

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पिता बाबू गोपालचन्द्र का उपनाम गिरिधर-दास था। कविता मे वे इसी नाम का प्रयोग करते थे । कही कही गिरधारी और गिरिधारन का प्रयोग भी मिलता है । इनका जन्म स० १८९० मे और मरण सं० १९१७ मे हुआ । ये हिन्दी के अच्छे कवि थे। इन्होने चालीस ग्रन्थों की रचना की थी । उनमे जरासधवध की विशेष प्रशसा सुनी जाती है। यह महा-काव्य कहा जाता है। कुल २६ वर्ष ४ महीने की आयु मे ४० ग्रन्थों की रचना बडी प्रतिभा का काम है। इनके ग्रन्थ प्राय: अप्रकाशित है। दो एक ग्रन्थों को बाबू हरिश्चन्द्र नें छपवाया था। और कई ग्रन्थों का अब कही पता भी नही चलता। इनके रचित ३८ ग्रन्थों के नाम ये है—

१—वाल्मीकि रामायण—पद्यानुवाद, २—गर्ग संहिता, ३—भाषा एकादशी की चौबीसों कथा, ४—एकादशी की कथा, ५—छन्दार्णव, ६—मत्स्य कथामृत, ७—कच्छप कथामृत, ८—नृसिह कथामृत ९—वावन कथामृत, १०—परशुराम कथामृत, ११—रामकथामृत, १२—बल राम कथामृत, १३—बुद्ध कथामृत, १४—कल्कि कथामृत, १५—भाषा व्याकरण, १६—नीति, १७—जरासधवध महाकाव्य, १८—नहुष नाटक, १९—भारती भूषण, २०—अद्‌भुत रामायण, २१—लक्ष्मी नखशिख, २२—रस रत्नाकर, २३—वार्ता संस्कृत २४—ककारादि सहस्र नाम, २५—गया यात्रा, २६—गयाष्टक, २७—द्वादश दल कमल, २८—स्तुति

पञ्चाशिका, २९—संकर्षणाष्टक, ३०—दनुजारिस्तोत्र, ३१—वाराह स्तोत्र, ३२—शिवस्तोत्र, ३३—श्रीगोपालस्तोत्र, ३४—भगवत्स्तोत्र, ३५—श्री रामस्तोत्र, ३६—श्रीराधास्तोत्र, ३७—रामाष्टक, ३८—कलि कालाष्टक ।

ये अपनी रचना में श्लेष और यमक की अच्छी बहार दिखाते थे। परन्तु नीति और शातिरस की कविता इन्होने बहुत सरल भाषा में लिखी है। हमने इनका कोई ग्रन्थ नही देखा। सग्रह-ग्रन्थो मे कही-कही इनके रचे छन्द उद्धृत है। उन्ही में से चुनकर कुछ छन्द नीचे लिखे जाते है:—

सब केसव केसव केसव के हित के गज सोहते शोभा अपार है।
जब सैलन सैलन सैलन ही फिरै सैलन सैलहि सीस प्रहार है॥
गिरिधारन धारन सों पद के जल धारन लै बसुधारन फार है।
अरि बारन बारन बारन पै सुर बारन बारन बारन बार है॥१॥

गुरुन को शिष्यन सुपात्र भूमिदेवन को मान देहु ज्ञान देहु दान देहु धन सों। सुत को मन्यासिन को वर जिजमानन को सिच्छा देहु भिच्छा देहु दिच्छा देहु मन सों॥ सत्रुन को मित्रन कों पित्रन को जग बीच तीर देहु छीर देहु नीर देहु पन सों। गिरिधरदास दासै स्वामी को अघी को आसु रुख देहु सुख देहु दुख देहु तन सों॥ २॥

बातनि क्यों समुझावति हौ मोंहि मै तुमरो गुन जानति राधे।
प्रीति नई गिरिधारन सों भई कुंज में रीति के कारन साधे॥
घूंघट नैन दुरावन चाहति दौरति सो दुरि ओट ह्वै आधे।
नेह न गोयो रहै सखि लाज सो कैसे रहे जल जाल के बांधे॥३॥

धिक नरेस बिनु देस, देस धिक जहं न धरम रुचि।
रुचि धिक सत्यविहीन, सत्य धिक बिनु विचार सुचि॥
धिक विचारि बिनु समय, समय धिक बिना भजन के।
भजनहु धिक बिनु लगन, लगन धिक लालच मन के॥

मन धिक सुन्दर बुद्धि बिनु , बुद्धि सुधिक बिनु ज्ञान गति ।
धिक ज्ञान भगति बिनु भगत धिक , नहिं गिरिधर पर प्रेम अति ।४।

जाग गया तव सोना क्या रे ।
जो नर तन देवन को दुर्लभ सो पाया अब रोना क्या रे ।।
ठाकुर से कर नेह आपना इद्रिन के सुख होना क्या रे ।
जब वैराग्य ज्ञान उर आया तब चादी औ सोना क्या रे ।।
दारा सुवन सदन मे पड़ के भार सबो का ढोना क्या रे ।
हीरा हाथ अमोलक पाया काच भाव मे खोना क्या रे ।।
दाता जो मुख मागा देवे तब कौडी भर दोना क्या रे ।
गिरिवरदास उदर पूरे पर मीठा और सलोना क्या रे ।।५।।

दोहे

धर्नाहि राखिये विपति हित , तिय राखिय धन त्यागि ।
तजिये गिरिधरदास दोउ , आतम के हित लागि ।। १ ।।
लोभ न कबहू कीजिये , या मे बिपति अपार ।
लोभी को विश्वास नहिं , करे कोऊ ससार ।। २ ।।
लोभी सरिस अवगुन नही , तप नहिं सत्य समान ।
तीरथ नहिं मन शुद्धि सम , विद्या सम धन आन ।। ३ ।।
सकल वस्तु संग्रह करै , आवै कोउ दिन काम ।
वखत परे पर ना मिलै , माटी खरचे दाम ।। ४ ।।
कारज करिय विचारि कै , कर्म लिखी सो होय ।
पाछे उपजै ताप नहिं , निन्दा करै न कोय ।। ५ ।।
पुन्य करिय सो नहिं कहिय , पाप करिय परकास ।
कहिवे सो दोउ घटत है , बरनत गिरिधरदास ।। ६ ।।
पावक बैरी रोग रिन , सेसहु रखिये नाहिं ।
ए थोरे हू बढ़हिं पुनि , महा जतन सो जाहिं ।। ७ ।।
अलस प्रमादी रागरमि , नीति न देखत जौन ।
उर सद असद बिबेक नहिं , अधम अवनिपति तौन ।। ८ ।।

मिल्यो रहत निजप्राप्तिहित , दगा समय पर देत ।
बन्धु अधम तेहि कहत है , जाको मुख पर हेत ॥ ९ ॥
रूपवती लज्जावती , सीलवती मृदु बैन ।
तिय कुलीन उत्तम सोई , गरिमाधर गुनऐन ॥ १० ॥
अति चचल नितकलह रुचि , पति सों नाहि मिलाप ।
सो अधमा तिय जानिये , पाइय पूरब पाप ॥ ११ ॥
जनक वचन निदरत निडर , बसत कुसगति माहि ।
मूरख सो सुत अधम है , तेहि जनमे सुख नाहि ॥ १२ ॥
सुख दुख अरु विग्रह विपति , यामे तजे न सग ।
गिरिधरदास बखानिये , मित्र सोइ वर ढङ्ग ॥ १३ ॥
सुख मे सङ्ग मिलि सुख करै , दुख मे पाछो होय ।
निज स्वारथ की मित्रता , मित्र अधम है सोय ॥ १४ ॥
आप करै उपकार अति , प्रति उपकार न चाह ।
हियरो कोमल सन्त सम , सुहृद सोइ नरनाह ॥ १५ ॥
मन सो जग को भल चहै , हिय छल रहै न नेक ।
सो सज्जन ससार मे , जाके विमल विवेक ॥ १६ ॥
उद्यम कीजै जगत मे , मिलै भाग्य अनुसार ।
मोती मिलै कि सख कर , सागर गोता मार ॥ १७ ॥
विन उद्यम नहि पाइये , कर्म लिख्यो हू जौन ।
विनु जलपान न जाय है , प्यास गङ्ग-तट मौन ॥ १८ ॥
उद्यम में निद्रा नही , नहि सुख दारिद माहि ।
लोभी उर सतोष नहि , धीर अबुध मे नाहि ॥ १९ ॥
सुख दरिद्र सो दूर है , जस दुरजन सो दूर ।
पथ्य चलन सो दूर रुज , दूर सीतलहि सूर ॥ २० ॥
अति सरसत परसत उरज , उर लगि करत विहार ।
चिह्न सहित तन को करत , क्यो सखि हरि? नहि हार ॥ २१ ॥

गौनो करि गौनो चहत , पिय बिदेस बस काजु ।
सासु पासु जोहत खरी , आखि आसु उर लाजु ॥ २२ ॥
पति देवत कहि नारि कह , और आसरो नाहि ।
सर्ग सिढ़ी जानहु यही , वेद पुरान कहाहि ॥ २३ ॥

लछिराम

लछिराम का जन्म पौष शुक्ल १०, स० १८९८ को स्थान अमोढ़ा, जिला बस्ती मे हुआ था। इनके गाव से लगा हुआ एक "चरथी" गाव है। अमोढा-नरेश ने पुत्र-जन्म के उत्सव मे इनकी कविता से प्रसन्न होकर वह गाव सदा के लिए दे दिया, और रहने के लिए एक अच्छा मकान भी बनवा दिया। उसी मे ये सपरिवार आनन्दपूर्वक रहते थे।

१० वर्ष की अवस्था मे लासाचक, जिला सुलतानपुर-निवासी ईश कवि के पास इन्होने साहित्य पढना आरम्भ किया। पाच वर्ष वहा पढ़-कर स० १९१४ में अवधनरेश महाराजा मानसिंह के पास चले गये और उन्ही से साहित्य का मर्म समझने लगे। इनकी बुद्धि बहुत तीव्र थी। इससे थोड़े ही समय मे इन्होने साहित्य मे अच्छी जानकारी प्राप्त करली।

महाराज मानसिंह इन्हे बहुत चाहते थे। उन्होने इन्हे "कविराज" की पदवी दी थी। उन्ही के कारण अवध के सब राजा-रईस इनका बड़ा सम्मान करते थे। कविताद्वारा इन्हे हाथी, घोड़ा, धन, वस्त्र, गाव आदि वस्तुए समय-समय पर उपलब्ध होती रहती थी। इन्होने राजाओ की प्रशसा में अनेक ग्रन्थो की रचना की। इनके रचे हुए ग्रन्थो के नाम ये हैं:—प्रताप रत्नाकर, प्रेम रत्नाकर, लक्ष्मीश्वर, रत्नाकर, राणेश्वर कल्पतरु, महेश्वर विलास, मुनीश्वर कल्पतरु, महेन्द्र भूषण, रघुवीर विलास, कमलानन्द कल्पतरु, मानसिंह जङ्गाष्टक, रामचन्द्र भूषण, सरजू लहरी, हनुमत शतक, राम रत्नाकर, नायिका भेद। इनके प्राय सब ग्रन्थ भारतजीवन प्रेस बनारस में छपे हैं।

कविता तो इनकी ऊँचे दरजे की नहीं है। परन्तु सुनते हैं, कविता पढ़ने की इनमें विचित्र शक्ति थी। श्रोताओं के मन में ये शीघ्र ही प्रभाव जमा लेते थे।

सं० १९६१, भाद्रपद कृष्ण ११, को इन्होंने अयोध्या जी में शरीर छोड़ा।

इनके रचे कुछ छन्द हम नीचे प्रकाशित करते हैं—

भानुवंश भूषण महीप रामचन्द्र वीर रावरो सुजस फैल्यो आगर उमङ्ग में। कवि लछिराम अभिराम दूनो शेषहू सो चौगुनो चमकदार हिमगिरि गंग में॥ जाको भट घेरे तासो अधिक परे हैं और पचगुनो हीराहार चमक प्रसंग में। चन्द मिलि नौगुनो नछत्रन सों सौगुनो ह्वै सहस गुनो भो छीरसागर तरङ्ग में॥१॥

रावन बान महाबली और अदेव और देवनहू दृग जोरयो।
तीनहू लोकन के भट भूप उठाय थके सबको बल छोरयो॥
घोर कठोर चितै सहजै लछिराम अमी जस दीपन घोरयो।
राजकुमार सरोज-से हाथन सो गहि शंभु-सरासन तोरयो॥२॥

भरम गवावै झरबेरी संग नीचन ते कंटकित बेल केतकीन पै गिरत है। परिहरि मालती सु माधवी सभासदनि अधम अरूसन के अंग अभिरत है॥ लछिराम सोभा सरवर में विलास हेरि मूरख मलिन्द मन पल ना थिरत है। रामचन्द्र चारु चरनाम्बुज बिसारि देश बन बन बेलिन बबूर में फिरत है॥३॥

सजल रहत आप औरन को देत ताप बदलत रूप और बसन बरेजे में। ता पर मयूरन के झुंड मतवाले साले मदन मरोरैं महा भरनि मरेजे में॥ कवि लछिराम रंग सावरो सनेही पाय अरज न मानै हिय हरष हरेजे में। गरजि गरजि बिरहीन के बिदारे उर दरद न आवै धरे दामिनी करेजे में॥४॥

बदल्यो बसन सो जगत बदलोई करै आरस में होत ऐसो यामें कहा छल है। छाप है हरा की कै छपाए हौ हरा को छाती भीतर भगा के

छाई छवि झलाझल है ।। लछिराम हौहू धाय रचिहौ बनक ऐसो आखिन खवाये पान जात क्यो अमल है । परम सुजान मनरञ्जन हमारे कहा अञ्जन अधर मे लगाये कौन फल है ।। ५ ।।

गोविन्द गिल्लाभाई

गोविन्द गिल्लाभाई का जन्म सिहोर रियासत भावनगर मे श्रावण सुदी ११, सोमवार स० १९०५ मे हुआ था । इनके पिता का नाम गिल्लाभाई और माता का सावित्री बाई था । ये चौहान राजपूत थे । इनके पूर्वज मारवाड के पीपलोद नामक स्थान मे रहते थे । वहा से वे आपस के झगडे के कारण काठियावाड़ में जाकर बस गये । गोविन्दजी उसी कुल के रत्न थे । इन्हे बालकपन मे विद्यालय की शिक्षा बहुत कम मिल सकी । इन्होने अपने उत्कट परिश्रम से साहित्य विषयक अद्भुत ज्ञान उपार्जन किया था । बहुत दिनों तक सरकारी नौकरी करने के पश्चात् अत मे पेंशन पाते थे । गुजराती साहित्य के ये अच्छे मर्मज्ञ और सुकवि थे । मातृभाषा गुजराती होने पर भी इन्होंने हिन्दी में अच्छे-अच्छे काव्य-ग्रथो की रचना की थी । स० १९२५ से इन्होने कविता करनी शुरू की । हिन्दी मे इन्होने ३२ ग्रथ लिखे थे । उनके नाम ये है—

	ग्रन्थ	रचना-काल	छन्द-सख्या
१	विवेक विलास	१९२५-१९७९	४००
२	लच्छन बत्तीसी	१९२६	३५
३	विष्णु विनय पचीसी	१९३७	२६
४	परब्रह्म पचीसी	,,	२६
५	प्रबोध पचीसी	१९३७	२६
६	सिखनख चद्रिका	१९४१	१५४
७	राधा-रूप-मजरी	,,	१०१
८	भूषण-मजरी	१९४५	११७
९	शृंगार-षोडशी	,,	६९

१०	भक्ति-कल्पद्रुम	१९४५	६५
११	प्रवीण-सागर	,,	४३७
१२	श्रीराधा मुख षोडशी	१९५०	१७
१३	पयोधर पचीसी	१९५१	२६
१४	नैन-मजरी	१९५३	१०५
१५	छवि-सरोजिनी	१९५४	७०
१६	प्रेम-पचीसी	,,	३१
१७	वक्रोक्ति-विनोद (सटीक)	,,	११७
१८	गोविन्द-ज्ञान-बावनी	१९६०	५७
१९	पावस-पयोनिधि	१९६२	११५
२०	शृङ्गार-सरोजिनी	१९६५	७७७
२१	साहित्य-चिंतामणि (प्र०भाग)	,,	१४००
२२	षटऋतु-वर्णन	१९६६	९५
२३	प्रारब्ध-पचासा	१९६६	५३
२४	समस्या-पूर्त्ति-प्रदीप	१९५०-६५	२२२
२५	श्लेष-चन्द्रिका (सटीक)	१९६७	१९०
२६	रत्नावली-रहस्य (सटीक)	१९७१	१५
२७	बोध-बत्तीसी	१९७३	३४
२८	शब्द-विभूषण	१९७४	२००
२९	गोविन्द हजारा (सग्रह)	१९७५	११०१
३०	अन्योक्ति-गोविन्द	१९७७	६०
३१	अलकार-अम्बुधि (अपूर्ण)		
३२	प्रेम-प्रभाकर (सग्रह, अपूर्ण)		४१५ के लगभग

हमने उनके १४ ग्रन्थो का एक सग्रह (गोविन्द-ग्रन्थमाला) देखा है। उसमे साहित्य पर इनका विशेष अधिकार जान पड़ता है। खेद है कि ८ जुलाई, १९२६ को इनका देहान्त होगया।

इनके कुछ छन्द यहा उद्धृत किये जाते है—

कोऊ तो कहत छवि सर मे सरोज भयो सुखमा सुभग ताकी नीको निरधार है। कोऊ तो कहत गोल आरसी अमोल ताकी आभा अभिराम प्रति सोहे मुखकार है ॥ कोऊ तौ कहत चन्द अवनि में उदै भयो ऐसे मुख उपमा को कहत अपार है। "गोविन्द" सुकवि पर मेरे मन जानि पर्यो कनकलता मे फूल लाग्यो आवदार है ॥ १ ॥

सुधा को छिनाइ धरे अपने अधर बीच ताकी मधुराई लखि मिश्री भई मन्द है। षोड़श कला को काटि रदन ललित कला बत्तिस बनाई बैठी मजु मसनद है ॥ पोषन की शक्ति पुनि बिमल बचन परी लोनी सब सम्पनि यों राधे रचि फद है। "गोविन्द" सुकवि तवे कालिमा कलक धरि विचरत व्योम फरियाद हित चद है ॥ २ ॥

बेनी को बिलोकि व्याल पेट को घिसत सदा, मुख को बिलोकि इन्दु हीन कला करि है। काया को बिलोकि कलधौत परे पावक मे स्रौन को निरखि सीप सागर मे परि है ॥ दसन की दुति देखि दारिम दरार खात "गोविंद" गयद गति देखि धूरि धरि है। ताहि ते कहत तोकों पेट तेरो ढाप प्यारी पेट न दिखाव कोऊ पेट मार मरि है ॥ ३ ॥

बेर बेर पावक मे कञ्चन तपाय तऊ, रचक ना रग निज अग को मिटावै है। चदन सिलान पर घिसत अमित तऊ सुन्दर सुगन्ध चारो ओर सरसावै है ॥ पेरत है कोल्हू माहि ऊख को अधिक तऊ मजुल मधुरताई नेक न नसावै है। "गोविन्द" कहत तैसे कष्ट काय पाय तऊ सुजन सुभाव नाहि आप बदलावै है ॥ ४ ॥

दहिबो शरीर अरु लहिबो परम पद चहिबो छनिक माहि सिन्धु पार पाइबो। गहिबो गगन अरु बहिबो बयारि सङ्ग रहिबो रिपुन सङ्ग त्रास नाहि लाइबो ॥ साहिबो चपेट सिह लहिबो भुजग मनि कहिबो कथन अरु चातुर रिझाइबो। "गोविन्द" कहत सोई सुगम सकल पर कठिन कराल एक नेह को निभाइबो ॥ ५ ॥

लोभन तें यश अरु क्रोधन ते गुन पुनि कपट ते सत्यता के वृन्द बिनसात है। भूखन ते मरजाद व्यसन ते बित्त पुनि आपदा ते उर निज

धीरज नसात है ।। ममता से ज्ञान अरु मद तें विनय पुनि चुगली ते सर्व महावंस बिखरात है । "गोविंद" कहत तैसे जाने जिय माँहि हमे दीनता से दुनिया मे माब मिट जात है ।। ६ ।।

सम्पति करन और दारिद दरन सदा, कष्ट के हरन भव तारन तरन है । भौन के भरन चारो फल के फरन महाताप त्रै हरन असरन के सरन है । भक्त उद्धरन और विघन हरन सदा जनम मरन महा दुःख के दरन है । "गोविंद" कहत ऐसे वारिज बरन वर मोद के करन मेरे प्रभु के चरन है ।। ७ ।।

कौमुदी-कुञ्ज

घनाक्षरी

भोजन ज्यो घृत बिन पथ जैसे साथी बिन हाथी बिन दल जैसे दाम बिन बान है । राव रङ्ग रानी बिन कूप जैसे पानी बिन कवि जैसे बानी बिन गर बिन तान है । रसरास रीति बिन मित्र ज्यो प्रतीति बिन ब्याह काज गीत बिन मान बिन दान है । रग जैसे केसर बिन मुख जैसे बेसर बिन प्यारी बिन रैन ज्यों सुपारी बिन पान है ।। १ ।।

विद्या बिन द्विज औ बगीचा बिन आमन को पानी बिन सावन सुहावन न जानी है । राजा बिन राजकाज राजनीति सोचे बिन पुन्य की बसीठी कहो कैसे धौ बखानी है । कहै "जयदेव" बिन हित को हितू है जैसे साधु बिन सङ्गति कलक की निसानी है । पानी बिन सर जैसे दान बिन कर जैसे सील बिन नर जैसे मोती बिन पानी है ।। २ ।।

गुन बिन कमान जैसे गुरु बिन ज्ञान जैसे मान बिन दान जैसे जल बिन सर है । कण्ठ बिन गीत जैसे हेत बिन प्रीत जैसे वेश्या बिन रीत जैसे फल बिन तर है । तार बिन यंत्र जैसे स्याने बिन मन्त्र जैसे नर बिन नारि जैसे पुत्र बिन घर है । बानी बिन कवि जैसे मन मे विचारि देखो धर्म बिन धन जैसे पन्छी बिन पर है ।। ३ ।।

चन्द्र बिन रजनी सरोज बिन सरवर वेग बिन तुरग मतग विना मद को । बिना सुत सदन नितंबिनी सुपति बिन बिन धन धरम नृपति बिन पद को । बिन हरि भजन जगत सोहै जन कौन नोन बिन भोजन

विटप विन छद को। "प्राणनाथ" सरस सभा न सोहै कवि विन विद्या बिन बात न नगर विन नद को ॥ ४ ॥

केते भये यादव सगर सुत केते भये जातहू न जाने ज्यों तरैया परभात की। वलि वेनु अवरीष मानधाता प्रहलाद कहां लौं गनाओ कथा रावन ययात की ॥ तेऊ न बचन पाये काल कौतुकी के हाथ भांति-भांति सेना रची घने दुख घात की। चार-चार दिना को चावउ चाहै करै कोऊ अंत लुटि जैहै जैसे पूतरी बरात की ॥ ५ ॥

गो द्विज को पाले सन्त मारग में चाले निज शत्रु दल घालै रण मे ते मन मोरै ना। सुखद सजीले वीरता मे गरबीले कुल एकहू न ढीले हीनताई के निहोरै ना ॥ जाको संग धारै ताको पार निरवारै दान दाया को संचारै धर्म धारै तौन छोरै ना। युद्धन की पत्री सुनि मोद लहै अत्री अति ऐसे सूर छत्री समता में और जोरै ना ॥ ६ ॥

ऐंठे ऐंठे बोलै अधिकार निज खोलै कहे काम को न डोलै समझाय जब हारिये। द्विज कौन होते कुल चीकने न मोते इहि भांति भाषि सोते में मसाल एक वारिये ॥ तुरत जगाय ताके मुख में लगाय दीजे जनन भगाय छन एक लौ निहारिये। जानो महा खोटा चट पकरि कै झोटा ताको ऐसे सूद सोंटा जोहि जूतन सुधारिये ॥ ७ ॥

न्याव नित सांचे "बलदेव" रंगराचे मामिला को खूब जाचे हाल वांचे ते विसेखा मैं। रचत न रारी उपकारी श्रुति भारी भाव वंश धन धारी कृतकारी रीति रेखा मैं ॥ जागो यश वेश त्यों बड़ाई देस-देस काहू पन्छ को ना पेग औ न लेश लोभ लेखा मैं। सम रङ्क भूप झगरे को करै कूप तेई ईश्वर के रूप हैं अनूप पंच देखा मैं ॥ ८ ॥

भांड़न को भेंटे तिमि मेटे मरजाद दुष्ट लोभ के लपेटे वेटे काके वने काजी है। न्याव मुख देखा कियो रोखन की रेखा कियो लुच्चन मे लेखा कियो कैसे मूढ माजी है ॥ लोक मे न माल परलोक त्यों न पाल कछु पूछते न हाल ठये चाल जालसाजी है। देतो ताहि राजी करै केतो कहो ना जी करै चेतो दगाबाजी करै ए तो पंच पाजी है ॥ ९ ॥

सुन्दर सुभग तन सुखद मुदित मन आनद के घन धन छन हित साज है। दाया दानधारी "बलदेव" उपकारी जग भारी भीर टारी सुचि सील के समाज है ।। देसकाल जानै तिमि औषधि विधानै सब ही को सनमानै ठानै गुण सिरताज है। विसद विचारै त्यो अचारै श्री सचार चारु सेई सिद्ध भेई लघु तेई वैद्यराज है ।। १० ।।

नारी नाहि जानत अनारी कहे गारी देत तारी दै हसत है हजारन को मारा मै । झोली बीच गोली तौन गोली-सी लगत यह तोली कई बार गई प्राणन को पारा मै ।। करनी यही है घर घरनी रिझैबे जोग बसु बैतरनी मिले हिये मे बिचारा मै। बैठे है बधिक से बिसारे बकरूप बनि ऐसे वैद्यराज को बहावै बरिधारा मै ।। ११ ।।

आजु जो कहै तो आठ मास मे न लागे ठीक काल्हि जो कहै तो मास सोरह चलावही। पाच दिन कहे पाच बरस बिताय देहि पाच वर्ष कहे तो पचास पहुचावही ।। भाषत "प्रधान" जो वै ताहू पै न त्यागै द्वार आपन लजात फेर वाहू को लजावही । ऐसे सत्यभाषी सरदार है देवैया जहा काहे को पवैया तहां जीवत लौं पावही ।। १२ ।।

भाँडन को भोज कलावतन को कर्ण जैसे विश्वन को बेनु से उरोज रस लीबे को। बेड़िन के विक्रम औ रामजनी जयचद चुगुल को चतुरभुज भारी मौज कीबे को ।। कहे "अवसेरी" मसखरन को मग जैसे चले विपरीत धिरकार ऐसे जीबे को। सूम के रहत दुइ बातन की तगी एक ईश्वर निमित्त औ कवीश्वर को दीबे को ।। १३ ।।

जगत के कारन करन चारौं बेदन के कमल में बसे वे सुजान ज्ञान धरि कै। पोखन अवनि दुख सोखन तिलोकन के समुद में जाय सोये सेज सेस करि कै ।। मदन जरायो औ सहार्यो दृष्टि ही सो सृष्टि बसे है पहार वेऊ भाजि हरबरि कै। विधि हरि हर बढ इनते न कोऊ तेऊ खाट पै न सोवै खटमलन सो डरि कै ।। १४ ।।

जानै राग रागिनी कवित्त रस दोहा छद जप तप तेग त्याग एक-सी गतन का। "महबूब" उरझि न देखि सके मित्रन की चित्त हर भाति मै

रिझैया नुकतन का ।। जासे जी कबूलै सो न भूलै, भूलै माफ करै साफ दिल आकिल लिखैया हरफन का । नेकी से न न्यारा रहै बदी से किनारा गहै ऐसा मिलै प्यारा तो गुजारा चलै मन का ।। १५ ।।

कूर भये कुवर मजूर भये मालदार सूर भये गुपत असूर भये जबरे । दाता भये कृपन अदाता कहै दाता हम धनी भये निधन निधन भये गबरे ।। साचन की बात न पत्यात कोऊ जग माझ राजदरबारन बुलैये लोग लबरे । भनत "प्रवीन" अब छीन भई हिम्मत सो कलियुग अदलि बदलि डारे सिगरे ।। १६ ।।

बारी औ खगार नाऊ धीमर कुम्हार काछी खटिक दसौधी ये हुजूर को सुहात है । कोल गोड गूजर अहीर तेली नीच सबै पास के रहे ते कहा ऊचे भये जात है ।। "बुद्धिसेन" राजनि के निकट हमेस बसै कूकर बिलार कहा गुण अधिकात है । दूरहि गयद बाधे दूर गुनवान ठाड़े गज औ गुनी के कहा मोल घटि जात है ।। १७ ।।

मद के भिखारी मीन मास के अहारी रहै सदा अनाचारी चारी लिखते लिखावते । नारी कुल धाम की न प्यारी परनारी आग विद्या पढि पढि हू कुविद्या मति धावते ।। आंखिन को काजर कलम से चुराय लेत ऐसे काम करै नेकु शकहु न आवते । जो पै सिहबाहिनी निबाहिनी न होती "चद" कायथ कलकी काके द्वारे गति पावते ।। १८ ।।

सखी उरबसी-सी गरे पहिरे उरबसी-सी पिया उरबसी-सी छवि देखे दुख सरकि जात । कचुकी कसी-सी बहु उपमा लसी-सी रूप सुन्दर धसी-सी परयक पर थिरकि जात ।। कहै "हरचरन" रही चमक बतीसी प्यारी जामे लगी मीसी हिये सौतिन दरकि जात । भुजे मे कसी-सी सिन्धु गंग ज्यों धसी-सी जाके सीसी करिबे मे सुधा सीसी-सी ढरकि जात ।। १९ ।।

कुन्द की कली-सी दंत पांति कौमुदी-सी दीसी बिच-बिच मीसा रेख अमी-सी गरकि जात । बीरी त्यो रची-सी बिरची-सी लखै तिरछी-सी रीसी आंखियां वै सफरी-सी फरकि जात ।। रस की नदी-सी

"दयानिधि" की नदी-सी थाह चकित अरी-सी रति डरी-सी सरकि जात। फन्द मे फसी-सी भरि भुज मे कसी-सी जाकी सीसी करिबे मे सुधा सीसी-सी ढरकि जात ॥ २० ॥

सुनो हो विटप हम पुहुप तिहारे अहैं राखिहो हमे तो शोभा रावरी बढावेंगे। तजिहौ हरषि कै तौ बिलग न मानै कछू जहा-जहा जैहै तहा दूनो जस गावेंगे ॥ सुरन चढेगे नर सिरनि चढेगे नित सुकवि "अनीस" हाथ हाथन बिकावेगे ॥ देस मे रहैंगे, परदेस मे रहैंगे, काहू भेस मे रहैंगे तऊ रावरे कहावेगे ॥ २१ ॥

सुमन मै वास-जैसे सुमन मै आवै कैसे ना कह्यो चहत सो तो हा कह्यो चहत है। सुरसरि सूरतनया मे सुरसति-जैसे बेद के बचन बाचे साचे निबहत हैं ॥ परवा को इन्दु की कला ज्यो रहै अबर मै पर वाको अच्छ परतच्छ ना लहत हैं। बुद्धि अनुमान के प्रमान परब्रह्म-जैसे ऐसे कटि छीन कवि "मोरन" कहत है ॥ २२ ॥

लट की लरक पर भौह की फरकपर नैन की ढरक पर भरि-भरि ढारिये। "हरिकेस" अमल कपोल विहसन पर छाती उकसन पर निसक पसारिये ॥ गहरौही गति पर गहरौही नाभि पर हौ न हटकति प्यारे नैसुक निहारिये। एक प्रानप्यारी जू की कटि लचकीली पर ढीली-ढीली नजर सभारे लाल डारिये ॥ २३ ॥

आये सुख पावती न आये सुख पावती है हिय की न बात कछु "सेवक" जतावती। कहू रहौ कान्ह जू सुहागिन कहावती है चाहती मै यही और न बात बनावती ॥ जाके सुख पाये सुख पावो तुम प्यारे लाल वाहू सुख दीजिये न या मै भरमावती। जामै सुख पावो तुम सोई हम करें याते हमतो तिहारे सुख पाये सुख पावती ॥ २४ ॥

खात है हरामदाम करत हराम काम घर घर तिनही के अपजस छावेंगे। दोजख मे जैहै तब काटि-काटि कीड़े खैहै खोपरी को गृद काग टोटनि उडावेंगे ॥ कहै "करनेस" अबै घूसनि ते वाजि तजै रोजा औ

निमाज अंत जम कढि लावेगे। कविन के मामले मे करे जौन ग्रामी तौन नमकहरामी मरे कफन न पावेगे ॥ २५ ॥

उमडि घुमडि घन आवत अटान ओट छन घन जोति छटा छटकि छटकि जात। सोर करै चातक चकोर पिक चहू ओर मोर ग्रीव मोरि-मोरि मटकि-मटकि जात ॥ सावन लौ आवन सुनो है घनश्याम जू को आंगन लौ आय पाय पटकि-पटकि जात। हिये विरहानल की तपनि अपार उर हार गजमोतिन के चटकि-चटकि जात ॥ २६ ॥

ऊचो कर करै ताहि ऊचो करतार करै ऊनी मन आनै दूनी होती हरकति है। ज्यो-ज्यो धन धरै मचै त्यो-त्यो विधि खरो खैचै लाख भाति धरै कोटि भाति सरकति है ॥ दौलत दूनी मे थिर काहू के न रही "क्षेम" पाछे नेकनामी वदनामी खरकति है। राजा होइ राइ होइ साइ उमराइ होइ जैसी होति नेति तैसी होति वरकति है ॥ २७ ॥

तारे भये कारे तेरे नैना रतनारे भये मोती भये सीरे तू न सीरी अजहू भई। "छीत" कहै पीतमै चकैया मिली तू न मिली गैया तरु छूटी तेरी टेक न छूटी दई ॥ अरुनई नई तेरी अरुनई नई भई चहचही वोली आली तू न वोली ऐ वई। मद छवि भये चद फूले अरविन्द वृन्द गई री विभावरी न रिस रावरी गई ॥ २८ ॥

हाथी के दात के खिलौना बने भाति भाति वाघन की खाल तपी शिव मन भाई है। मृगन की खालन को ओढत है योगी यती छेरी की खाल थोरा पानी भर लाई है ॥ सावर की खालन को वाधत सिपाही लोग गैडा की खाल राजा रायन सुहाई है। कहै कवि "दयाराम" राम के भजन विन मानुष की खाल कछू काम नहि आई है ॥२९॥

जस को सवाद जो पै सुनो कवि आनन सो रस को सवाद जो पै और को पिआइये। जीभ को सवाद वुरो वोलिये न काहू कहू देह को सवाद जो निरोग देह पाइये ॥ घर को सवाद घरनी को मन लिये रहै वन को सवाद सीस नीचे को नवाइये। कहै "द्विजराम" नर जानि कै अजान होत खैवे को सवाद जो पै और को खवाइये ॥३०॥

कौसलकुमार सुकुमार अति मारहू ते आली घिरि आई जिन्हे सोभा त्रिभुवन की। फूल फुलवाई मे चूनत दोऊ भाई "प्रेम" सखी लखि आई गहे लतिका द्रुमन की ॥ चरन लुनाई दृग देखे बनि आई जिन जीती कोमलाई औ ललाई पदुमन की। चलत सुभाई मेरो हियरा डराई हाय गड़ि मति जाय पाय पाखुरी सुमन की ॥३१॥

आजु आली माथे ते सुबेंदी गिरै बार-बार मुख पर मोतिन की लरी लरकति है। धरत ही पग कील चूरे की निकसि जात जब तब गाठि जूरे हू की सरकति है ॥ जानि ना परत "प्रहलाद" परदेस प्रिय उससि उरोजन सों आगी दरकति है। तनी तरकति कर चूरी चरकति अग सारी सरकति आख बाईं फरकति है ॥३२॥

म्यान सों कलमदान करते निकारि तामे स्याही जल विष मे बुझाई बार-बार है। चारु युक्ति जौहर जगावत सनेह सग अकिल अनेक तामे सिकिल सुढार है ॥ "जुगुल किशोर" चलै कागद धरा पै धाय धारै ना दया को नेकु लागे वारपार है। पाइ कै गवार गाइ साफ करैं साइति मे मुनसी कसाई की कलम तरवार है ॥३३॥

बड़े बिभिचारी कुलकानि तजि डारी निज आतम बिसारी अघ ओघ के निकेत है। जटा सीस धारे मीठे बचन उचारे न्यारे न्यारे पथ पारे सुभ पन्थ पीठ देत है ॥ गावत कहानी पर वेद को न मानी ऐसे उमर बिहानी होत आये बार सेत है। कलि ठकुराई में बिराग की बडाई करै माई-माई कहिकै लुगाई करि लेत है ॥३४॥

जोर परे जोर जात भर परे भूमि जात झूमि जात योबन अनङ्ग रग रम है। कहे 'हेमनाथ" सुख सम्पति बिपति जात जात दु खदारिद समूह रसबस है ॥ गढ गिरिजात गरुआई औ गरब जात जात सुख साहिबी समूह सरबस है। बाग कटि जात कुवां ताल पटि जात नद्दीनद घटि जात पै न जात जग जस है ॥३५॥

पौर के किंवार देत घरे सबै गारि देत साधुन को दोष देत प्रीति ना चहत है। मागने को ज्वाब देत बात कहे रोय देत लेत देत भाज देत

ऐसे निबहत हैं ।। बागे हू के बंद देत बारन की गाठ देत परदन की काछ देत काम मे रहत हैं । एते पै सबेई कहैं लाला कछु देत नाही लाला जू तो आठो याम देतई रहत हैं ।।३६।।

अगन बचाये शुभ चारो गन नाये अरु उक्ति उपजाय के बिसारे नाम हरि का । लोभ के अजान मे सयान सब भूलि गये कीबे परे ऐसई अधम ऐसे अरि का ।। कहैं "कवि" लोग हम दान की कहा लौ कहीं मागे से न दियो जाय जासो द्वैक खरिका । सूम के कबित्त करि मन मे गलानि होत परै पछिताइबो छिनारि कैसो लरिका ।।३७।।

दाता घर होती तौ कदर तेरी जानी जाती आई है भले घर बधाई बजवावरी । खाने तहखानन मे आनि के बसेरो लेहु होहु न उदास चित चौगुनो बढावरी । खैहौं न खवैहौं मरि जैहौं तौ सिखाय जैहौ यहि पूत नातिन को आपनो सुभावरी । दमरी न दैहौ कवौ जाने मे भिखारिन को सूम कहै सम्पति सो बैठी गीत गावरी ।।३८।।

राजन की नीति गई मीत की प्रतीति गई नारिनि की प्रीति गई जार जिय भायो है । शिष्यन को भाव गयो पंचन को न्याव गयो साच को प्रभाव गयो झूठ ही सुहायो है ।। मेघन की वृष्टि गई भूमि सो तौ नष्ट भई सृष्टि पै सकल विपरीति दरसायो है। कीजिये सहाय हे कृपाकर गोबिन्द लाल कठिन कराल कलिकाल अब आयो है ।। ३९ ।।

पन्ना के पडोर गढ झन्ना के झवैया झरि झारूदार झासी के भवैया भानपुर के । कहै कवि "कुन्दन" कमायू के कुम्हार भाड दाउद के दरजी दामामी दानपुर के ।। तेली तिलगान के तबोली तेजगढ वाले भावज के भागड सोनार मानपुर के । येते मिलि मारै जूती चुगुल चबाई शीश कालपी के कूंजडे कसाई कानपुर के ।। ४० ।।

ह्वै कै महाराज हय हाथी पै चढै तो कहा जोपै बाहुबल निज प्रजनि रखायो ना । पढि-पढि पण्डित प्रवीण हूं भये तो कहा विनय विवेक युत जोपै ज्ञान गायो ना ।। "अम्बुज" कहत धन धनिक भयो तो कहा दान

करि जोपै निज हाथ जस छायो ना। गरजि-गरजि घन घोरनि कियो तो कहा चातक के चोंच मे जो रच नीर नायो ना ॥ ४१ ॥

जामे दू अधेली चार पावली दुअन्नी आठ तामें पुनि आना रखी सोरह समात है। वत्तिस अधन्नी जामे चौंसठ पईसा होत एक सो अठाइस अधेला गुनमात है। युग शत छप्पन छदाम तामे देखियत दमरी सु पाच शत बारह लखात है। कठिन समैया कलिकाल को कुटिल दैया सलग रुपैया भैया कापै दियो जात है ॥ ४२ ॥

दानी कोउ नाहि न गुलाबदानी पीकदानी गोददानी धनी सोभा इन ही मे लहे हैं। मानत गुनी को गुनही मे प्रकटत देखो याते गुनी जन मन सावधानी गहे हैं। हयदान हेमदान राजदान भूमिदान सुकवि सुनाये औ पुरानन मे कहे हैं। अब तो कलमदान जुजदान जामदान खानदान पानदान कहिबे को रहे हैं ॥ ४३ ॥

चन्द्रमा पै दावा जिमि करत चकोरगन घनन पै दावा कै मयूर हरपात हैं। भानु पर दावा कर विकसत कजपुञ्ज स्वाति बुन्द दावा कर चातक चचात है ॥ सुकवि "निहाल" जैसे करी के कपोलन पै अलिन अवलि करि नित मड़रात हैं। ऐसे महराजन पै दावा कबिराजन को धूतन के द्वारे कहू भूतन न जात हैं ॥ ४४ ॥

साह भाये सूमडा सु बादसाह हीन हद्द खग्गे खगरेटन दुसाला बेच खाई है। भोले भये भूपति कनौडे धनवन्त सब मूरख महन्थ अन्ध देत ना दिखाई है। कायथ कपूत भये कूर रजपूत धूत बनिया बरूथ पेखि पुञ्ज पछिताई है। काके ढिग जाई काहि कवित सुनाई भाई अब कविताई रही फजिहति ताई है ॥ ४५ ॥

सासु के बिलोके सिंहिनी-सी जमुहाई लेइ ससुर के देखे बाघिनी सी मुह बावती। ननद के देखे नागिनी-सी फुफकारे बैठि देवर के देखे डाकिनी-सी डरपावती ॥ भनत "प्रधान" मोछे जारती परोसिन की खसम के देखे खाव खाव करि धावती। करकसा कसाइनि कुबुद्धिनी कुलच्छनी ये करम के फूटे घर ऐसी नारि आवती ॥ ४६ ॥

गृहिनि बियोग गृह त्यागिन विभूति दीन्ही योगिन प्रमोद पुनवतन छलो गयो। ग्रहनि ग्रहेश कियो शनि को सुचित्त लघु व्यालनि स्वतत्र सेस भारते दलो गयो ॥ "फेरन" फिरावत गुनीन गृह नीच द्वार गुनन-विहीन घर बैठे ही भलो भयो। कौन-कौन बाते तेरी कहै एक आनन ते नाम चतुरानन पै चूकतै चलो गयो ॥ ४७ ॥

बार-बार बैल को निपट ऊचो नाद सुनि हुकरत बाघ बिरझानो रस रेला मे। "भूधर" भनत ताकी बास पाइ सोर करि कुत्ता कोतवाल को बगानो बगमेला मे ॥ फुकरत मूषक को दूषक भुजङ्ग तासो जङ्ग करिबे को झुक्यो मोर हद हेला मे। आपस मे पारषद कहत पुकारि कछु रारि-सी मची है त्रिपुरारि के तवेला मे ॥ ४८ ॥

कंज वन मानि "मून" हस गन आइ फिरे गध वन भृङ्ग भीर भग करि डारे तै। पाके फल जानि सुक पुञ्ज पछिताने आइ पाइ कै वसंत बात वृथा पात डारे तै ॥ दूरि ते विलोकि अरुनाई अति फूलन की अमिष अकार गीध वायस विडारे तै। एरे तरु सेमर के सिफल तिहारे कहा आस दिये पच्छिन निरास करि डारे तै ॥४९॥

समै को न जानै सीख काहू की न मानै रारि कठिन को ठाने सो अजानै भई जाति है। पीछे पछितैहै घात ऐसी नहिं पैहै टेक तेरी रहि जैहै कहा टेढी भई जाति है ॥ "सगम" मनावै तोहिं हित की सिखावै सीख जा विन न भावै भौन ताही सो रिसाति है। मोसो अठिलाति विन काम को हठाति प्यारी तू तो इतराति उत राति बीती जाति है ॥ ५० ॥

काके गये बसन पलटि आये बसन सू मेरो कछु बस न रसन उर लागे हौ। भौंहै तिरछी है कवि "सुन्दर" सुजान सोहैं कछु अलसोहैं गोहैं जाके रस पागे हौ ॥ परसौ मे पायहुते परसो मै पाय गहि परसौ मै पाय निसि जाके अनुरागे हौ। कौन बनिता के हौ जू कौन बनिताके हौ सु कौन बनि ताकी वनिता के सग जागे हौ ॥ ५१ ॥

चोथते चकोर चहुओर जानि चन्दमुखी जौ न होती डरनि दसन द्युति दम्पा की। लीलि जाते वरही विलोकि बेनी बनिता की जौ न होती

गूथनि कुसुम सर कम्पा की ।। "पूखी" कवि कहै ढिग भौहै ना धनुष होती कीर कैसे छोडते अधर बिंब झम्पा की । दाख कैसो झौरा झलकति जोति जोबन की चाटि जाते भौ`ा जो न होती रङ्ग चम्पा की ।। ५२ ।।

सोये लोग घर के बगर के केवार खोलि जानि मन माहि निज गई जुग जामिनी । चुप चाप चोरा चोरी चौकति चकित चली पीतम के पास चित चाह भरी भामिनी । पहुची सकेत के निकेत "सभु" सोभा देत ऐसी बन बीथिन बिराजि रही कामिनी । चामीकर चोर जान्यो चपलता भौंर जान्यो चन्द्रमा चकोर जान्यो मोर जान्यो दामिनी ।। ५३ ।।

तन पर भार तीन तन पर भार तीन तन पर भारतीन तन पर भार है । पूजै देवदार तीन पूजै देवदार तीन पूजै देवदार तीन पूजै देवदार है । नीलकण्ठ दारुन दलेल खा तिहारी धाक नाकती न द्वार ते वै नाकती पहार है । आधरै न कर गहे बहिरै न सङ्ग रहे बार छूटे बार छूटे बार छूटे बार है ।। ५४ ।।

सुनो दिलजानी मेरे दिल की कहानी तुम दस्त ही बिकानी बदनामी भी सहूगी मै । देवपूजा ठानी मै निवाज हू भुलानी तजे कलमा कुरान माडे गुनन कहूगी मै । स्यामला सलोना सिरताज सिर कुल्ले दिये तेरे नेह दाग मे निदाग हो दहूगी मै । नन्द के कुमार कुरबान ताडी सूरत पै ताड नाल प्यारे हिन्दुवानी हो रहूगी मै ।। ५५ ।।

कोऊ कहै है कलक कोऊ कहै सिन्धु पक कोऊ कहै छाया है तमोगुन के भास की । कोऊ कहै मृगमद कोऊ कहै राहु रद कोऊ कहै नीलगिरि आभा आसपास की ।। "भजन" जू मेरे जान चन्द्रमा को छीलि विधि राधे को बनायो मुख सोभा के बिलास की । तादिन ते छाती छेद भयो है छपाकर के वारपार दीखत है नीलिमा अकास की ।। ५६ ।।

मलयज गारा करै अगर सिगारा करै गहि कर डारा करै माल मुकतान की । आरती उतारा करै पखा चौर ढारा करै छाहै विसतारा करै बिसद बितान की ।। मुख सो निहारा करै दुख को विसारा करै मनसा इसारा करै सारा अखियान की । मानिक प्रदीपन सो थारा

सजि ताराजू की आरती उतारा करै दारा देवतान की ।। ५७ ।।

कैधौ दृग सागर के आसपास स्यामताई ताही के ये अंकुर उलहि दुति बाढे है ।। कैधो प्रेमक्यारी जुग ताके ये चहूवा रची नीलमनि सरनि की वारि दुख डाढ़े है ।। "मूरति" सुकवि तरुनी की वरुनी न होवै मेरे मन आवै ये विचार चित गाढे है । जेई जे निहारे मन तिनके पकरिवे को देखो इन नैनन हजार हाथ काढे है ।। ५८ ।।

एरे गुनी गुन पाइ चातुरी निपुन पाइ कीजिये न मैलो मन काहू जो कछू करी । वीरन विराने द्वार गये को सुभाव यही मान अपमान काहू रे करी कि जू करी ।। कूर औ कविन्द चले जात है सभा के वीच तोसों तो हटकि "देवीदास पलटू" करी । दरवाजे गज ठाढे कूकरी सभा के मध्य कूकरी सो कूकरी औ तू करी सो तू करी ।। ५९ ।।

भोरहि भुखात ह्वै है कन्द मूल खात ह्वै है दुति कुम्हलात ह्वै है मुख जलजात को । प्यादे पग जात ह्वै है मग मुरझात ह्वै है थकि जै है घाम लागे स्याम कृसगात को ।। "पंडित प्रवीन" कहै धर्म के धुरीन ऐसे मन मे न माख्यो पीन राख्यो प्रन तात को । मात कहै, कोमल कुमार सुकुमार मेरे छौना कहू सोवत विछौना करि पात को ।। ६० ।।

आजु हौ गई ती सभु न्योते नन्दगांव तहा सासति परी है रूपवती वनितान की । घेरि लियो तियनि तमासो करि मोहिं लखै गहि-गहि गुलफ लुनाई तरवान की ।। एकै कल वोलि-वोलि औरन देखावै रीझि रीझि कोमलाई औ ललाई मेरे पान की । घूघुट उघारि एकै मुख देखि-देखि रहै एकै लगी नापन वडाई अखियान की ।। ६१ ।।

नट को न धाम नपुसक को काम नाहि ऋणी को अराम वाम वेश्या न सहेलरी । ज्वारी को न सोच मासहारी को न दया होत कामी को न नातो गोत छाया ना सहेलरी ।। "देवीदास" वसुधा मे वनिक न सुना साधु कूकर को धीरज न माया है सहेलरी । चोर को न यार वटमार को न प्रीति होत लावर ना मीत होत सौत न सहेलरी ।। ६२ ।।

जैसी तेरी कटि है तू तैसा मान करि प्यारी जैसी गति तैसी मति

हिय ते बिसारिये । जैसी तेरी भौह तैसे पथ पै न दीजै पाव जैसे नैन तैसिये बडाई उर धारिये ।। जैसे तेरे ग्रोठ तैसे नैन कीजिये न जैसे कुच तैसे बैन नाहि मुखते उचारिये । एरी पिक बैनी सुन, प्यारे मनमोहन सो जैसे तेरी बेनी तैसी प्रीति बिसतारिये ।। ६३ ।।

गिरि कीजे गोधन मयूर नवकुजन को पसु कीजै महाराज नन्द के बगर को । नर कीजै तौन जौन राधे राधे नाम रटै, तट कीजै बर कूल कालिंदी कगर को ।। इतने पै जोई कछु कीजिये कुवर कान्ह, राखिये न ग्रान फेर हठी के झगर को । गोपी पद पकज पराग कीजै महाराज, तृण कीजै रावरेई गोकुल नगर को ।। ६४ ।।

ब्बुर बहर को बनाय बाग राखियत रूधिबे को सोऊ सुतरु काटियत है । गारी देत नीच हरिचदहू दधीचहू को ग्रापने चना चबाय हाथ चाटियत है ।। ग्राप महा पातकी हसत हरिहरहु को ग्राप है ग्रभागी भूरि भागी डाटियत है । कलि की कलुष मन मलिन किये महत मसक की पाखुरी पयोधि पाटियत है ।। ६५ ।।

डुबकी लै उझकी परचो है केस ग्रानन पै मानो ससिमडल पै स्याम-घन घिरिगो । करन संवारि कै उघारि दीनो "मोतीराम" लोचन लोनाई वैसी पाई है न मिरगो ।। विप्र को बुलाइ मुसकाइ ग्रधरानन मे देन लगी दच्छिना तनिक चीर चिरिगो । गात की गोराई देखि भूली सुधि प्रोहित की लगी टकटकी टका गोमती मे गिरिगो ।। ६६ ।।

सिधु के सपूत सिधुतनया के बधु ग्ररे बिरहीजरं है रे ग्रमद तेरे ताप तें । तू तो दोषी दोष हू ते कालिमा कलकी भयो धारे उर छाप रिषी गौतम के साप तें ।। "लाल" कहे हाल तेरो जाहिर जहान बीच वारिन को बासी त्रासी राहु के प्रताप तें । बाधो गयो मथो गयो पीयो गयो खार भयो बापुरो समुद्र तो-से पूत ही के पाप ते ।। ६७ ।।

मूसे पर साप राखे साप पर मोर राखे बैल पर सिह राखे वाके कहा भीति है । पूतनि को भूत राखे भूत को विभूत राखे छमुख को गजमुख यह बडी रीति है ।। काम पर बाम राखे विष को ग्रमृत राखे ग्राग पर

पानी राखै सोई जग जीति है । "देवीदास" देखो ज्ञानी संकर को सावधानी सब विधि लायक पै राखै राजनीति है ॥ ६८ ॥

कीरति को मूल एक रैन दिन दान देवो धरम को मूल एक सांच पहिचानिवो । वढिवे को मूल एक ऊंचो मन राखिवो है जानिवे को मूल एक भली बात मानिवो ॥ व्याधि मूल भोजन उपाधि मूल हासी "देवा" दारिद को मूल एक आलस बखानिवो । हारिवे को मूल एक आतुरी है ग्न मांझ चातुरी को मूल एक बात कहि जानिवो ॥ ६९ ॥

कौन यह देस कौन काल कौन वैरी मेरो कौन मेरे हितू ताहि ढिग ते न टारिवो । केती निज आमद खरच केतो केतो बल तेहि उनमान बैन मुंह तें निकारिवो ॥ सपति के आवन को कौन मेरो सावन है ताहू को उपाव अरु दाव उर धारिवो । राजनीति राजन को प्रतिदिन "देवीदास" चारि घरी राति रहे इतनो विचारिवो ॥ ७० ॥

पहले विवाद व्यवहार धन को न कीजै जाचिये न तापै आय मांगे ताहि दीजिये । मित्र के घरे में घरनी सों मिलि बैठिये न हंसिये न दूरि बैठि बात छोरि लीजिये ॥ कोऊ भेद पारें तो न भूलें "देवीदास" कहे मन की दुराइये न तातें भये खीजिये । प्रीति खोयो चाहिये तो कीजिये परे सों प्रीति प्रीति राख्यो चाहिये तो इतनो न कीजिये ॥ ७१ ॥

फूस नहीं फांस नही छप्पर पै घास न बंड़ेरी नहीं बास तहां झींगुर झरा करे । दिवार आरपार है सुराख लाख चार है त्यों कोटिन प्रमाण भूत भौन मां फिरा करै ॥ मकरी के मेल है बिछौती तहां रेलपेल गिर-गिट के खेल देखि जियरा डरा करै । गोजर गिरो है सांप बिच्छू सिगरो है नाथ ऐसे-ऐसे भौन है तो डेरा लै कहा करे ॥ ७२ ॥

चंद की मरीचिकान तोरि बिधराय दीन्ह्यो कैधों हीरा फोरि कै कनूका धरि-धरि गये । कैधों काम-मंदिर की झांझरी बनाइ विधि, कैधो सोनजूही के पुहुप झरि-झरि गये ॥ कामिनि मनोरथ के आलवाल "सिवनाथ" मैन के मतंग माते बेलि चरि-चरि गये । अमल कपोलन पै दागि नहि सीतला के डीठि गड़ि-गड़ि गई गाड़ परि-परि गये ॥ ७३ ॥

हैरी लाल तेरे ? सखी, ऐसी निधि पाई कहा ? हैरी खगयान ? कह्यो, हौ तो नहि पाले है । हैरी गिरधारी ? ह्वै है रामदल माहि कहू हैरी घनश्याम ? ह्वै है सीत सरसाले है ॥ हैरी सखी कृष्णचद्र ? चद्र कहू कृष्ण होत ? तब हसि राधे कही, मोर पच्छवारे है । श्याम को दुराय चन्द्रावलि बहराय बोली मेरे कैसे आय है जो तेरे पच्छवारे है ? ॥ ७४ ॥

सवैया

फूलन दे अब टेसू कदम्बन अम्बन मौरन छावन दे री ।
री मधुमत्त मधूपन पुजन कुजन सोर मचावन दे री ॥
क्यो सहि है सुकुमारि "किशोर" अली कलकोकिल गावन दे री ।
आवत ही बनि है घर कन्तहि बीर बसन्तहि आवन दे री ॥१॥
कानन लौ अखिया ये तुम्हारी हथेरी हमारी कहा लगि फैलिहै ।
मूदे तऊ तुम देखति हौ यह कोरै तिहारी कहा धौ सकेलिहै ॥
कान्हर हू को सुभाव यहै उनको हम हाथन ही पर मेलिहै ।
राधे जू मानो भलो कि बुरो अखमूदनो साथ तिहारे न खेलिहै ॥२॥
अबुज कज से सोहत है अरु कचन कुभ थपे से धये है ।
बारे खरे गदकारे महा बटपारे लसे अरु मैन छये है ॥
ऊचे उजागर नागर है अरु पीय के चित्त के मित्त भये है ।
है तो नये कुच ये सजनी पर जौलौ नए नहि तौ लौ नये है ॥३॥
खाय कै पान बिदोरत ओठ है बैठि सभा मे बने अलबेला ।
धोती किनारी की सारी सी ओढ़त पेट बढाय कियो जस थैला ॥
"वशगोपाल" बखानत है सुनो भूप कहाय बने फिरे छैला !
सान करै बड़ी साहिबी की पर दान मे देत न एक अधेला ॥४॥
होत ही प्रात जो घात करै नित पार परोसिन सो कल गाढी ।
हाथ नचावत मूड़ खुजावति पौरि खडी रिसि कोटिक बाढी ॥
ऐसी बनी नखते सिखलौ "ब्रजचन्द" ज्यो क्रोध समुद्र तें काढी ।
ईंट लिये बतराति भतार सो भामिनि भौन मे भूत-सी ठाढी ॥५॥

लोहे की जेहरि लोहे की तेहरि लोहे की पाव पयेजनि गाढी।
नाक में कौड़ी औ कान मे कौडी त्यों कौड़िन की गजरा गति बाढी॥
रूप मै वाको कहा लौ कहौं मनो नील के माठ मे बोरि कै काढी।
ईट लिये बतराति भतार सो भामिनि भौन मे भूत-सी ठाढी॥६॥

"भूप" कहै सुनियो सिगरे मिलि भिच्छुक बीच परौ जिन कोई।
कोई परौ तो निकोई करौ न निकोई करौ तौ रहौ चुप सोई॥
जानत हौ बलि ब्राह्मन की गति भूलि कुपथ भलो नहि होई।
लेइ कोऊ अरु देइ कोऊ पर शुक्र ने आखि अकारथ खोई॥७॥

राधिका माधव एक ही सेज पै धाइ लै सोई सुभाय सलोने।
पारे "महाकवि" कान्ह के मध्य में राधे कहै यह बात न होने॥
साँवरे सो मिलि ह्वै है न सांवरी बावरी बात सिखाई है कोने।
सोने को रंग कसोटी लगै पै कसोटी को रग लगै नहि सोने॥८॥

बात चली चलिबे की जहा फिर बात सुहानी न गात सुहानो।
भूषण साज सकै कहि को "महाराज" गयो छुटि लाज को बानो॥
दो कर मीडति है वनिता सुनि प्रीतम को परभात पयानो।
आपने जीवन को लखि अन्त सुआयू की रेख मिटावति मानो॥९॥

कोऊ न आयो उहा ते सखीरी जहा "मुरलीधर" प्राणपियारे।
याही अदेसे मे बैठी हुती उहि देस के धावन पौरि पुकारे॥
पाती दई धरि छाती लई दरकी अँगिया उर आनन्द भारे।
पूछन को पिय की कुसलात मनो हिय द्वार किवार उघारे॥१०॥

मंगल होत कहै "शिवराज" कहो केहि के दुख होत बिसेखो।
कौन सभा महं वैठि न सोहत को नहि जानत चित्त परेखो॥
कौन निसा ससि को न उदोत भो का लखि कै विरही दुख पेखो।
बाझक पूत विना अँखियान कुहू निसि मे ससि पूरण देखो॥११॥

जोग अजोग विचारे विना सिर सौपत भार महा अति तापै।
गाड़र ऊट किसान करै यह बात कहा कहि जात है कापै॥

"सिंह" जू काग सुहावन होइ तौ काहे को कोऊ मरालहि थापै ।
काम परे पछितांहिगे वे जे गयद को भार धरै गदहा पै ॥१२॥
सासु रिसाति भकै ननदी सखि तू सिखवै सिख सीख के बैना ।
दै ब्रजवास चवाव महा चहुंओर चलै उपहास की सैना ॥
देखत सुन्दरी सावरी मूरति लोक अलोक की लीक लखै ना ।
कैसी करौ हटके न रहै चलि जात तऊ लखि लालची नैना ॥१३॥
जाके लगै गृह-काज तजै अरु मात-पिता हित तात न राखै ।
"सागर" लीन ह्वै चाकर चाहकै धीरज हीन अधीन ह्वै भाखै ॥
व्याकुल मीन ज्यो नेह नवीन मे मानो दई बरछीन की साखै ।
तीर लगै तरवारि लगै पै लगै जनि काहू से काहू की आखैं ॥१४॥
जाके लगी सोइ जानै व्यथा पर पीर में कोइ उपहास करै ना ।
"सागर" जो चुभि जात है चित्त तौ कोटि उपाय करै पै टरै ना ॥
नेकसी ककरी जाके परै वह पीर के मारे सु धीर धरै ना ।
कैसे परै कल ऐरी भटू जब आखि मे आखि परै निकरै ना ॥१५॥
पेट पिराय तौ पीठहिं टोवत पीठ पिराय तौ पाय निहारै ।
दै पुरिया पहले विष की पुनि पीछे मरे पर रोग बिचारै ॥
बीस रुपैया करे कर फीस न देत जवाब न त्यागत द्वारे ।
भाखै "प्रधान" ये वैद्य कसाई ह्वै दैव न मारे तो आपही मारैं ॥१६॥
सूल सुजाक छई लकवा ज्वर पीनस पील को घाव घनेरे ।
और जलदर हू परमेह कहै कवि "राम" कहा लगि हेरे ॥
जाके बिलोकत ही ततकाल चहूदिसि तें दुख आवत घेरे ।
जापै दया करि हाथ गहै तिहि माथ गहै जमराज सबेरे ॥१७॥
साल छ:-सात की दाल दराय कै साहु कह्यो यह लेहु नई है ।
फूक दई लकड़ी बहुतेरिक सांझ ते आधिक रात लई है ॥
खाय लियो अकुताय कै काचही चाकरी चूल्हे निहारि गई है ।
खोय दियो मुजरा दरबार की दाल दधीच की हाड भई है ॥१८॥

घोड गिरचो घर बाहरहो महाराज कछू उठवावन पाऊं।
ऐंड़ो परो बिच पैंडोई माझ चलै पग एक ना कैसे चलाऊं॥
होय कहारन को जुपै आयसु डोली चढ़ाय यहा तक लाऊं।
जीन धरौ कि धरौ तुलसी मुख देउं लगाम कि राम कहाऊं॥१६॥
अर्थ है मूल भली तुक डार सु अच्छर पत्र को देखिकै जीजै।
छद है फूल नवो रस है फल दान के बारिसो सीचिबो कीजै॥
"दान" कहै यो प्रवीनन सो कवि की कविता रस राखि कै पीजै।
कीरति के बिरवा कवि है इनको कबहू कुम्हिलान न दीजै॥२०॥
ज्ञान घटै ठग चोर की सगति मान घटै परगेह के जाये।
पाप घटै कछु पुन्य किये अरु रोग घटै कछु औषध खाये॥
प्रीति घटै कछु मांगन ते अरु नीर घटै रितु ग्रीषम आये।
नारि-प्रसग ते जोर घटै जम-त्रास घटै हरि के गुन गाये॥२१॥
ईट को बन्दन, नीम को चन्दन, नीच को नन्दन, बाम को घूसा।
माते की गान, डफाली की तान, औ गूगा को गान, कपूत को रूसा॥
रङ्क की रीझ, जुआरी की खीझ, अजान की प्रीत, जुवार को चूसा।
राजा को दूसरो, छेरी को तीसरो, रेड को मूसरो, खासर खूसा॥२२॥
साप सुशील, दयायुत नाहर, काक पवित्र औ साचो जुआरी।
पावक सीतल, पाहन कोमल, रैन अमावस की उजियारी॥
कायर धीर सती गनिका, मतवारो कहा मतवारो अनारी।
"मोतियराम" बिचारि कहै नहि देखी सुनी नरनाह की यारी॥२३॥
व्याकुल काम सतावत मोहि पिया बिन नीक न लागत कोई।
प्रीतम से सपने भई भेट भलीबिधि सो लपटाय कै सोई॥
नैन उघारि पसारि कै देखौं तो चौकि परी कतहू नहि कोई।
एरी सखी दुख कासो कहो मुसकाय हसी हसि कै फिरि रोई॥२५॥
पौढी हुती पलगा पर मै निसि ज्ञानरु ध्यान पिया मन लाये।
लागि गई पलकै पल सों पल लागत ही पल मे पिय आये॥

ज्योंही उठी उनके मिलिबे कह जागि परी पिय पास न पाये।
"मीरन" और तो सोय कै खोवत मैं सखि प्रीतम जागि गवाये ॥२५॥

भात मे लोन पहीति मे पाथर डारि करै सब छूति ही छूकर।
मागेहूं सों परसें न कछू खल मैले महा मल को मनो सूकर॥
व्यजन या विवि के है रचे मुख सौह किये मन आवत थूकर।
ये कबहू नहि दूबर होत रसोई के विप्र कसाई के कूकर॥२६॥

दाम की दाल छदाम के चाउर घी अगुरीन लै दूरि दिखायो।
टोनो सो नोन धरचो कछु आनि सबै तरकारी को नोम गनायो॥
विप्र वुलाय पुरोहित को अपनी बिपती सब भांति सुनायो।
साहसी आज सराध कियो सो भलीविधि सो पुरखा फुसलायो॥२७॥

बधु विरोध करे सिगरो झगरो नित होत सुधारस चाटत।
मित्र करै करनी रिपु की धरनीधर देखि न न्याउ निपाटत॥
"राम" कहै विष होत सुधा घर नारि सती पति सो चित फाटत।
भो विधिना प्रतिकूल जबै तब ऊट चढ़ै पर कूकर काटत॥२८॥

साल भरे पर पथ्य लियो षटमास उपास कियो फिर ऐठ्यो।
"माधो" कहै नित मैल छुडावत दातन दीन्हे तुराय धौ कठ्यो॥
कोऊ कहूक जो देइ खवाइ तौ कै कर डारत सोच मे पैठ्यो।
मूड घुटाय औ मूछ मुडाय त्यो फस्त खुलाय तुला चढि बैठ्यो॥२९॥

चीटि न चाटत मूसे न सूघत बास ते माछी न आवत नेरे।
आनि धरे जब ते घर मे तब ते रहै हैजा परोसिन घेरे॥
माटिहू में कछु स्वाद मिलै इन्है खाय सो ढूढत हर्रे-वहेरे।
चौंकि परचो पितुलोक मे बाप सो पूत के देखि सराधके पेरे॥३०॥

आपु को बाहन बैल वली बनिताहू को बाहन सिंहहिं पेखि कै।
मूसे को बाहन है सुत एक सु दूजो मयूर के पच्छ विसेखिकै॥
भूषन है कवि "चैन" फनिंद के बैर परे सब ते सव लेखिकै।
तीनहु लोक के ईश गिरीश सुयोगी भये घर की गति देखिकै॥३०॥

सूरज के रथ लागे रह्यो याके आगे भयो कई वार कन्हैया।
लोमस के लरिकाई के खेल के भूलि गयो जग को उपजैया॥
ऐसो तुरग मगाय के भूपति दान को काढ्यो दरिद्र को छैया।
भुण्डन काक लगे फिरै सग मनो यह काकभुशुडि को भैया॥३२॥
गग नही मुकता भरी माग है चन्द्र नही यह उद्यत भाल है।
नील नही मखतूल को पुज है शेष नही शिर बेनी विसाल है॥
भूति नही मलयागिरि है बिजया है नही बिरहा से बेहाल है।
एरे मनोज सभारि के मारियो ईश नही यह कोमल बाल है॥३३॥
पीनसवारो प्रबीन मिलै तौ कहा लौ सुगन्धी सुगन्ध सुघावै।
कायर कोपि चढै रन मे तौ कहा लगि चारन चाव बढ़ावै॥
जैसे गुनी को मिलै निगुनी तो "पुखी" कहै क्योकर ताहि रिझावै।
जैसे नपुसक नाह मिलै तौ कहा लगि नारि शृगार बनावै॥३४॥
जौ सहजै सब काम करै सहमै त्यहि हेरि हिये कहलाकर।
ना तौ जवान की नोकै बसै निरखे परै औगुन के अति आकर॥
लागै नही सग जागै न नौकरी भागै कहू नृप को लखि साकर।
चोर चटोर ये चूल्हे परै यहि भाति चमार से चूतिया चाकर॥३५॥
सीस कहै परि पाय रहौ भुज यो कहै अङ्क तै जान न दीजै।
जीह कहै बतियाई कियौ कगे स्रौन कहै उनही की सुनीजै॥
नैन कहै छवि सिन्धु सुधारस को निसिबासर पान करीजै।
पायहु प्रीतम चित्त न चैन यो भावतो एक कहा कहा कीजै॥३६॥
अम्बर वीच पयोधर देखि कै कौन को धीरज सो न गयो है।
"भजन" जू नदिया यहि रूप की नाव नही रवि हू अथयो है॥
पथिक रात बसो यहि देस भलो तुमको उपदेस दयो है।
या मग बीच लगै वह नीच जु पावक मे जरि प्रेत भयो है॥३७॥
तुम नाम लिखावती ही हम नाम कहा कहो लीजिये जू।
अब नाव चले सिगरे जल मे थल मे न चले कहा कीजिये जू॥

कवि "किंचित" औसर जो अकनी सकती नही हा पर कीजिये जू।
हम ता अपनो बर पूजती है सपने नहि पीपर पूजिये जू ॥३८॥
खाने का भग नहाने को गग चढ़ै को तुरग ओढ़ै को दुसाला।
धर्म धुरन्धर औ महिषी पति द्वार झुले गज यूथक हाला॥
पान पुरान सोहागिनि सुन्दरि गोद बिराजत सुन्दर बाला।
दो मह एक तो देहु कृपानिधि दो मृगनैनी कि दो मृगछाला ॥३९॥

छप्पय

जिहि मुच्छन धरि हाथ कछू जग सुजस न लीनो।
जिहि मुच्छन धरि हाथ कछू परकाज न कीनो॥
जिहि मुच्छन धरि हाथ कछू परपीर न जानी।
जिहि मुच्छन धरि हाथ दीन लखि दया न आनी॥
मुच्छ नाहि वे पुच्छ सम कवि "भरमी" उर आनिये।
नहि बचन लाज नहि दानगति तिहि मुख मुच्छ न जानिये ॥१॥
तिमिरलग लई मोल चली बाबर के हलके।
रही हुमाऊ साथ गई अकबर के बलके॥
जहागीर जस लियो पीठ को भार सिटायो।
साहजहा करि न्याव ताहि को माड चटायो॥
बलरहित भई पौरुष थक्यो भगी फिरत बन स्यार डर।
औरङ्गजेब करिनी सोई लै दीन्ही कविराज कर ॥२॥
मरै बैल गरियार मरै वह कट्टर टट्टू।
मरै हठीली नार मरै वह पुरुष निखट्टू॥
सेवक मरै सु तीन जौन कछु समै न सुज्झै।
स्वामी मर जु कौन जौन सेवा नहि वुज्झै॥
जजमान सूम मरि जाहि तौ काहि सुमिरि दुख रोइये।
कवि "गड्डु" कहै मरि जाय सो जाहि सुने सुख सोइये ॥३॥
ससिकलक रावन विरोध हनुमत्त सो बनचर।
कामधेनु ते पसू जाय चिन्तामनि पत्थर॥

अति रूपा तिय बाझ गुनी को निरधन कहिये।
अति समुद्र सो खार कमल बिच कण्टक लहिये॥
जाये जु व्यास खेवट्टिनी दुर्वासा आसन डिग्यो।
कवि "गीध" कहै सुनु रे गुनी कोउ न कृष्ण निर्मल गढ्यो॥४॥
हर्सहि गज चढ़ि चल्यो करी पर सिंह विरज्जै।
सिंहहि सागर धर्‍यो सिंधु पर गिरि द्वै सज्जै॥
गिरिवर पर इक कमल कमल पर कोयल बोलै।
कोयल पर इक कीर कीर पर मृगहू डोलै॥
ता ऊपर सिसु नाग के निसुदिन फनिय धरे रहै।
"कवि गड्ड" कहै गुनिजनन सो हंस भार केतो सहै॥५॥
तिलक भाल बनमाल अधिक राजत रसाल छबि।
मोर मुकुट की लटक छटक बरनत अटकत कवि॥
पीताम्बर फहराय मधुर मुसुकान कपोलन।
रच्यो रुचिर मुख पान तान गावत मृदु बोलन॥
रति कोटि काम अभिराम अति दुष्ट निकन्दन गिरिधरन।
आनन्द कन्द ब्रजचन्द प्रभु जय जय जय असरन सरन॥६॥
चातुरानन सम बुद्धि विदित जौं होय कोटि धर।
एक एक धर प्रतिन सीस जौ होय कोटि वर॥
सीस सीस प्रति वदन कोटि करतार बनावै।
एक एक मुख माहि रसन फिर कोटि लगावै॥
रसन रमन प्रति सारदा कोटि बैठि बानी कहहि।
महिजन अनाथ के नाथ की महिमा तबहुं न कहि सकहि॥७॥
गई भूमि फिर मिलै वेलि फिर जमे जरे तें।
फल फूलन ते फले फूल फूलन्त झरे ते॥
"केसव" विद्या निकट निकट विसरी फिर आवै।
बहुरि होय धन धर्म गई सम्पति फिर पावै॥

होइ जो सील सुसील मति जगत हेतु इमि गाइये।
प्रान गयो फिर मिलत पै पत न गई फिर पाइये ॥८॥

दोहे

प्रीतम नही बजार मे, वहै बजार उजार।
प्रीतम मिले उजार मे, वहै उजार बजार ॥ १ ॥
कहा करौ बैकुण्ठ लै, कल्पवृक्ष की छाह।
"अहमद" ढांक सुहावने, जह पीतम गलबाह ॥ २ ॥
गमन समै पटुका गह्यो, छाडन कह्यो सुजान।
प्रानपियारे प्रथम ही, पटुका तजो कि प्रान ॥ ३ ॥
सरस कविन ये हृदय को, बेधत है सो कौन।
असमझवार सराहिबो, समझवार को मौन ॥ ४ ॥
पिता नीर परसै नही, दूर रहै रवि यार।
ता अम्बुज मे मूढ़ अलि, अरुझि परै अविचार ॥ ५ ॥
"व्यास" बडाई जगत की, कूकर की पहिचान।
प्यार करे मुख चाटई, बैर करे तन हानि ॥ ६ ॥
"व्यास" कनक औ कामिनी, ये है करुई बेलि।
बैरी मारै दाव दै, ये मारै हसि खेलि ॥ ७ ॥
तन ताजी असवार मन, नयन पियादे साथ।
जोबन चलो सिकार को, बिरह बाज लै हाथ ॥ ८ ॥
तन कचन को महल है, तामे राजा प्रान।
नयन झरोखा पलक चिक, देखै सकल जहान ॥ ९ ॥
ढीठि डोरि सो मन कलस, काम कुआ मे डारि।
ये नयना तुव नागरी, भरत प्रेमरस बारि ॥ १० ॥
"रज्जब" जाकी चाल सो, दिल न दुखाया जाय।
यहा खलक खिजमति करै, उत है खुसी खुदाय ॥ ११ ॥
वह बृन्दाबन सुखसदन, कुज कदम की छाहि।
कनकमयी यह द्वारिका, ताकी रज सम नाहि ॥ १२ ॥

जस जाग्यो सब जगत मे, भयो अजीरन तोय।
अपजस की गोली दऊ, ततकाले सुधि होय॥ १३॥
तब के नरपति वे रहे, रीझै तो कछु देय।
अब के नरपति ये भये, रीझै औ लिखि लेय॥ १४॥
जो मेढा पीछे हटै, केहरिया छपकन्त।
जो दुर्जन हसि के मिलै, तबै बचैयो कन्त॥ १५॥
दगाबाज की प्रीति यो, बोलत ही मुसकात।
जैसे मेहदी पात मे, लाली लखी न जात॥ १६॥
खेतीबारी बीनती, औ घोड़े की तग।
अपने हाथ सवारिये, लाख होय कोउ सग॥ १७॥
तन तलवारा तिलछियो, तिल-तिल ऊपर सीव।
आला घावा ऊठसी, मत कर साज नकीव॥ १८॥
ना हस करके कर गहे, ना रिस करके केस।
जैसे कन्ता घर रहे, वैसे रहे विदेस॥ १९॥
निकट रहे आदर घटै, दूरि रहे दुख होय।
"सम्मन" या संसार मे, प्रीति करौ जनि कोय॥ २०॥
"सम्मन" चहु सुख देह की, तौ छोडो ये चारि।
चोरी चुगुली जामिनी, और पराई नारि॥ २१॥
"सम्मन" मीठी बात सो, होत सबै सुख पूर।
जेहि नहिं सीखो बोलिबो, तेहि सीखो सब धूर॥ २२॥
गोरे मुख पै तिल लसत, मै जान्यो यह हेत।
रूप खजाने कै मनो, हबसी चौकी देत॥ २३॥
दन्तकथा वा दन्त की, और कही नहिं जात।
फूलझरी सी छुटत जब, हसि-हसि बोलत बात॥ २४॥
लाल माग पटिया नही, मार जगत को मार।
असित फरी पै लै धरी, रकत भरी तरवार॥ २५॥

करनी पार उतारिहै, "धरनी" कियो पुकार।
साकित बाह्मन नहिं भला, भक्ता भला चमार ॥ २६ ॥
मास अहारी जीयरा, सो पुनि कथै गियान।
नागी ह्वै घूघट करै, "धरनी" देखि लजान ॥ २७ ॥
"पलटू" ऐसा सन्त है, सब देखै तेहि माहि।
टेढ सोझ मुह आपना, ऐना टेढा नाहिं ॥ २८ ॥
"पलटू" ऐसी प्रीति करु, ज्यो मजीठ को रग।
टूक टूक कपडा उडै, रग न छोडै सग ॥ २९ ॥
"पलटू" बाजी लाइहौ, दोऊ विधि से राम।
जो मै हारों राम को, जो जीतौं तो राम ॥ ३० ॥
जैसे काठ मे अगिनि है, फूल मे है ज्यो बास।
हरिजन मे हरि रहत है, ऐसे "पलटूदास" ॥ ३१ ॥
दुष्ट मित्र सब एक है, ज्यो कचन त्यो काच।
"पलटू" ऐसे दास को, सपने लगै न आच ॥ ३२ ॥
काम क्रोध जिनके नही, लगै न भूख पियास।
'पलटू' तिनके दरस सो, होत पाप को नास ॥ ३३ ॥
खोजत-खोजत मरि गये, तीरथ वेद पुरान।
'पलटू' सूझत है नही, भेस मे है भगवान ॥ ३४ ॥
जिन देखा सो बावला, को अब कहै सदेस।
दीन दुनी दोउ भूलिया, 'पलटू' सो दरवेस ॥ ३५ ॥
सुनि लो 'पलटू' भेद यह, हसि बोले भगवान।
दुख के भीतर मुक्ति है, सुख मे नरक निदान ॥ ३६ ॥
मरते-मरते सब मरे, मरै न जाना कोय।
'पलटू' जो जियतै मरै, सहज परायन होय ॥ ३७ ॥
'पलटू' पलक न भूलिये, इतना काम जरूर।
खाविंद कब गोहरावई, चाकर रहै हजूर ॥ ३८ ॥

'पलटू' भेद न दीजिये , यह जग बुरी बलाय ।
लिहे कतरनी कांख मे . करै मित्रता धाय ॥ ३९ ॥
'दरिया' सोता सकल जग , जानत नाही कोय ।
जागे मे फिर जागना , जागा कहिये सोय ॥ ४० ॥
'बुल्ला' चल्ल सुनार दे , जित्थे गहना गढिये लाख ।
सूरत आपो आपनी , तू इको रूप ये आख ॥ ४१ ॥
धन जननी धन भूमि धन , धन नगरी धन देस ।
धन करनी धन सुकुल धन , जहां साधु परबेस ॥ ४२ ॥
स्वर्ग सात असमान पर , भटकत है मन मूढ ।
खालिक तो खोया नही , उसी महल मे ढूढ ॥ ४३ ॥
ज्ञान ध्यान तहवां नही , सहज सरूप अपार ।
जन 'गुलाल'दिल सो मिलो , सोई कंत हमार ॥ ४४ ॥
'भीखा' केवल एक है , किरतिम भयो अनन्त ।
एकै आतम सकल घट , यह गति जानहिं सन्त ॥ ४५ ॥
प्रीतम प्रीति लगाइकै , दूर देस मत जाव ।
बसो हमारी नागरी , हम मागै तुम खाव ॥ ४६ ॥
जो जन जाकी सरन है , सरन गहे की लाज ।
मीन धार सन्मुख चलै , बहे जात गजराज ॥ ४७ ॥
आप छके नैना छके , और छके सब गात ।
जा तन चितवत नैन मरि , रोम रोम छकि जात ॥ ४८ ॥
साझ भई दिन अथवा , चकई दीन्हा रोय ।
चलो पिया उस देस को , जहा साझ नहिं होय ॥ ४९ ॥
ब्रज समुद्र मथुरा कमल , वृन्दाबन मकरन्द ।
ब्रज-बनिता सब पुष्प है , मधुकर गोकुलचन्द ॥ ५० ॥
कदम कुज ह्वै हो कबै , श्री वृन्दाबन माह ।
'ललित किसोरी' लाडिले , बिहरेंगे तिहि छांह ॥ ५१ ॥

प्रीतम तुव गुन बेलरी , पसरी मो उर माहि ।
नेह नीर सो नित बढै , क्यों हू सूखत नाहिं ॥ ५२ ॥
कागद भीजत नयन जल , कर काँपत मसि लेत ।
पापी बिरहा मन बसत , बिथा लिखन नहिं देत ॥ ५३ ॥
बायस राहु भुजग हर , लिखत तिया तत्काल ।
लिख-लिखपोछतिफिरलिखति , कारन कौन जमाल ॥ ५४ ॥
पालक मेथी धानिया , सोवा चाहत यार ।
सकुची मुरी पियाज सग , गाजर अस व्यवहार ॥ ५५ ॥
कच्चौरी पिय ऐ सखी , पक्कौरी पिय नाहिं ।
बराबरी कैसे करौ , पूरी परती नाहि ॥ ५६ ॥
अमिली बरसो हो रही , पीपर पास न जाउ ।
जामुनी भेद न पावही , तासों मैं हठ लाउं ॥ ५७ ॥
नारगी हौ पिय सो , यह अनारपन मोंहिं ।
जो मैं पीवैं सेवती , सदा सदाफल होंहिं ॥ ५८ ॥
तोता कत निसदिन रटौ , तूती निपट अजान ।
लाल कहे सों कीजिये , तज मैना की बान ॥ ५९ ॥
सूख छुहारो तन भयो , गिरी परै सब देह ।
किसमिस लिखू सदेसरा , नौज लग्यौ यह नेह ॥ ६० ॥
कर छुई बरटोई नही , तवा टोकनी नाहिं ।
चौके गरुवे थारिया , रस न रसोई माहिं ॥ ६१ ॥
पान झरंते इमि कहे , सुन तरवर बनराय ।
अब के बिछुरे कब मिले , दूर परेंगे जाय ॥ ६२ ॥
अलकावलि मे देखिये , गोरे मुख की लोय ।
ज्यो रूखन में चादनी , झिलमिल-झिलमिल होय ॥ ६३ ॥
गुजा ऐसे हो रहे , मुकता बेसर बाल ।
नैन ओर के स्याम सब , अधर ओर के लाल ॥ ६४ ॥

आजु सखी हम इमि सुन्यो , पहु फाटक पिय गौन ।
पहु अरु हियरे होड है , पहले फाटै कौन ॥ ६५ ॥
आजु दुइज परदेस पिय , ससि निकस्यो इहि ओर ।
मम नयना अरु पीय के , आइ भये इक ठौर ॥ ६६ ॥
मुख ग्रीषम पावस नयन , जिय महियां जडकाल ।
पिय बिन तन मे तीन ऋतु , कबहु न मिटति जमाल ॥ ६७ ॥
जब लगि हिय मे धर सकी , तब लगि धरी जु धीर ।
"मीरन" अब कैसी बनी , अधिक पिरानी पीर ॥ ६८ ॥
तेरे बिरह समुद्र मे , हो जहाज भई कन्त ।
तन मन जोबन डूबियो , प्रेम ध्वजा फहरन्त ॥ ६९ ॥
बिरह दही पनघट गई , तपन न तऊ सिराय ।
भरै धरै सिर गागरी , रीती ह्वै ह्वै जाय ॥ ७० ॥
तुम बिन एती को करै , कृपा जु मेरे नाथ ।
मोहि अकेली जानि कै , दुख राख्यो है साथ ॥ ७१ ॥
"मीरन" प्यारे इमि कह्यो , सपने देखौ मोहि ।
तुम बिन नीद न आवई , कैसे देखौ तोहि ॥ ७२ ॥
कीकर पाकर तार , जामन फलसा आमिला ।
सेव कदम कचनार , पीपल रत्ती तू न तज ॥ ७३ ॥
सारग लै सारग चली , सारग पै गई दीठ ।
सारग लै सारग धरी , सारग गई पईठ ॥ ७४ ॥
सारंग ने सारग गह्यो , सारग बोल्यो आय ।
जो सारग सारग कहै , सारग मुख ते जाय ॥ ७५ ॥
बसे बनज विकसे बनज , निकसे बनज निसङ्क ।
बनज माल बिन लगति है , वन जमाल हरि अङ्क ॥ ७६ ॥
का नहि अबला करि सकै , का न समुद्र समाय ।
काह न पावक जरि सकै , काल काहि नहि खाय ॥ ७७ ॥

सुत नहिं अबला करि सकै , मन न समुद्र समाय ।
धर्म न पावक मे जरै , नाम काल नहिं खाय ॥ ७८ ॥
पान पुराना घी नया , औ कुलवन्ती नारि ।
चौथी पीठ तुरग की , सरग निसानि चारि ॥ ७९ ॥

बरवै

अधम उधारन नमवा सनि कर तोर ।
अधम काम की वटिया गहि मन मोर ॥ १ ॥
मन बच कायक निसिदिन अधमी काज ।
करत-करत मन भरिगा हो महाराज ॥ २ ॥
बिलगराम का बासी मीर जलील ।
तुम्हरि सरन गहि गाहे ये निधिशील ॥ ३ ॥
वालमु हेरि हियरवा उपजै लाज ।
पाख मास मो जानि न परिहै गाज ॥ ४ ॥
पिय से अस मन मिलयू जस पय पानि ।
हसनि भई सवतिया लै बिलगानि ॥ ५ ॥
पीतम तुम कचलोहिया हम गज बेलि ।
सारस कै अस जोरिया फिरहु अकेलि ॥ ६ ॥
पात-पात करि ढूढ्यो सब बन बीनि ।
किहि बन बस मो बालम पर्यो न चीनि ॥ ७ ॥
बालम सुरति बिसरिगै कहत सदेस
एकहू पथिक न बहुरा कस वह देस ॥ ८ ॥
पात-पात करि लूटिसि बिपिन समाज ।
राजनीति यह कसिकसि कस ऋतुराज ॥ ९ ॥
भावै चन्द न चन्दन सुरभि समीर ।
भावै सेज सुहावनि बालम तीर ॥१०॥
ऋतु कुसुमाकर आकर बिरह बिसेखि ।
ललित लतान मितान बितानन्नि देखि ॥११॥

जेठ मास सखि सीतल बर कै छाह ।
करुई नीद सिहंनवा पिय कै बांह ॥१२॥
पिय कर परस सरस अति चन्दन पंक ।
भावक रजनि सुहावन दरस मयंक ॥१३॥
यदि च भवति बुध मिलन किं त्रिदिवेन ।
यदि च भवति शठ मिलन किं निरयेन ॥१४॥
अहिरिन मन की गहिरिनि उतरु न देइ ।
नैना करै मथनिया मन मथि लेइ ॥१५॥
तपन तपै ऋतु ग्रीषम तीषन घाम ।
ताकि तरुनि तन सीतल म्योवै काम ॥१६॥
छांह सघन तरु भावै बालम साथ ।
की प्रिय परम सरोवर सीतल पाथ ॥१७॥
हरिपद रुचिर तरनिया चढ़ मन मोर ।
तर भवसागर अबही दिन रहे थोर ॥१८॥
हलुवा अस हलुवनिया गलवा लाल ।
लाल-लाल द्वै जोबना नैन रसाल ॥१९॥
खेल फाग घन बहुरी बूरि उडानि ।
गावौं बालम बरवा ऋतु नियरानि ॥२०॥
निसिदिन बसै हिरदवा मिलन न होय ।
जिमि पानी के चन्दहिं छुवै न कोय ॥२१॥
पात-पात करि ढूढचो सब बन बीन ।
घटहि हुते मोरे बालम परे न चीन ॥२२॥
सूरज पै सिर ऊपर कतहु न छाह ।
ठाढी पथहिं निहारी कत मेरो नाह ॥२३॥
बालम की सुधि आवत यह गति मोर ।
निकसि-निकसि जिय पैसत ज्यो चक डोर ॥२४॥

बिरहिन ढूढन बन गई बाघ भिटान।
बघवा सूघि न खायसि बिरहिन जान ॥२५॥
नित उठि जाहु पनघटवा आवहु रोय।
बालम की अनुहरवा दिखहु न कोय ॥२६॥
बोली आनि कोइलिया मधूरी बानि।
महुवा रोवै ठाढ आम बौरान ॥२७॥
हरद बरन मोरी देहिआ पियहि बियोग।
कौन बिथा मोहि बूझहु बाउर लोग ॥२८॥
भइ न भेट बालम सन भटकिहु आइ।
धाइ-धाइ बन खाय देखि नहि जाइ ॥२९॥

पद

प्राणी तू हरि सो डर रे।
तू क्यो रहा निडर रे ॥

गाफिल मन रह चेत सबेरा, मन मे राख फिकर रे।
जो कुछ करे बेग तू कर ले, सिर पर काल जबर रे ॥
काले-गोरे तन पर भूला, तन जायेगा जर रे।
यम के दूत पकरकर घीसे, काढे बहुत कसर रे ॥
यम के दूत पकरकर घीसे, काढे बहुत कसर रे।
"ब्रजधूले" प्रभु-पद नौका चढि, भौसागर को तर रे।
हर भज हर भज हर भज प्राणी, हरि को भजन तू कर रे ॥१॥

हुआ है मस्त मन्सूरा चढा सूली न छोडा हक।
पुकारा इश्कबाजो को अहै मरना यही बरहक ॥
जो बोले आशिकां यारा हमारे दिल मे है जी शक।
अहै यह काम शूरो का लगाये पीर से अब तक ॥
शमस तबरेज की सीफत जहा मे जाहिरा अब तक।
निजामुद्दीन सुलताना सभी मेटे दुनी में धक ॥
निरख रहे नूर अल्लाह का रहे जीते रहे जब तक।
हुआ हाफिज दिवाना भी भये ऐसे नही हर एक ॥

सुना है इश्क मजनू का लगी लैला की रहती जक।
जलाकर खाक तन कीन्हा हुये वह भी उसी माफिक॥
"दुलन" जन को दिया मुरशिद पियाला नाम का छकछक।
वही है शाह जगजीवन चमकता देखिये लकलक॥२॥

गाठि परी पिय बोलै न हम से।
निसिदिन जागौं मै पिया की सेजिया, नैना अलसाने निकरिगै घर से।
जो मै जनतिउ पिय रिसिअइहै, काहेक प्रीति लगउतिउ अस ठग से॥
अपने पिया को मै वेगि मनैहौ, सौ तकसीर होत प्रभु जन से।
सुनि मृदु वचन पिया मुसुकाने, "पलटुदास" पिय मिले बडे तप से॥३॥

समझ-बूझ रन चढना साधो खूब लडाई लडना है।
दम-दम कदम परै आगे को पीछे नाहि पछरना है॥
तिल-तिल घाव लगै जो तन मे खेती मेती क्या टरना है।
सवद खैंचि समसेर जेर करि उन पाचो को धरना है॥
काम क्रोध मद लोभ कैद करि मन कर ठौरे मरना है।
खडा रहै मैदान के ऊपर उनकी चोट सभारना है॥
आठ पहर असवार सुरत पर गाफिल नाही परना है।
सीस दिहा साहिब के ऊपर किसकी डर अब डरना है॥
"पलटू" बाना रुण्ड के ऊपर अब क्या दूसर करना है॥४॥

कोइ सफा न देखा दिल का।
साचा बना भिलमिल का॥
कोइ बिल्ली कोइ बगुला देखा पहिरे फकीरी खिलका।
बाहर मुख से ज्ञान छाटते भीतर कोरा छिलका॥
भजन करन मे गजब आलसी जैसे थका मंजिल का।
औरन के पीसन में सुरमा जैसे बट्टा सिल का॥
पढे-लिखे कुछ ऐसेहि वैसे बडा घमड अकिल का।
जहरी बचन यो मुह से निकले साप निकलता बिल का॥

भजन बिना सब जप-तप झूठा झूठ तवक्का फजल का।
क्या कहिये गुरु "देव" न पाया मरहम आख के तिलका॥ ५ ॥

काष्ठजिह्वा स्वामी (देव)।

समझ-बूझ जिय में बन्दे क्या करना है क्या करता है।
गुन का मालिक आपै बनता दोष राम पर धरता है॥
अपना धरम छोडि औरो के ओछे धरम पकरता है।
अजब नशे की गफलत आई साहिब को नहिं डरता है॥
जिनके खातिर जान-माल से बहि-बहि के तू मरता है।
वे क्या तेरे काम पडेगे उनका लहना भरता है॥
'देव" धरम चाहे सो करि ले आवागमन न टरता है।
प्यारे केवल राम से तेरा मतलब सरता है॥ ६ ॥

काष्ठजिह्वा स्वामी (देव)।

हरि-जन हरि के हाथ बिकाने।
भावै कहो जग धृग जीवन है भावे कहौ बौराने॥
जाति गवाय अजाति कहाये साधु सगति ठहराने।
मेटो दुख दारिद्र परानो जूठन खाय अघाने॥
पाच जने परबल परपञ्ची उलटि परे बदिखाने।
छूटी मजूरी भये हजूरी साहिब के मनमाने॥
निरमता निरबैर सभन ते निरसङ्का निरवाने।
"धरनी" काम राम ते अपने चरन कमल लपटाने॥ ७ ॥

अबके बार बकस मोरे साहिब तुम लायक सब जोग हे।
गुनह बकसिहो सब भ्रम नसिहो रखिहो अपने पास हे॥
अछै बिरिछ तर लै बैठैहो तहवा धूप न छाह हे।
चाद न सुरुज दिवस नहिं तहवा नहिं निसु होत बिहान हे॥
अमृतफल मुख चाखन दैहो इतनी अरज हमार हे।
भवसागर-दुख दारुन मिटिहै छुटि जैहै कुल परिवार हे॥
कह "दरिया" यह मगल मूला अनूप फूलै जहा फूल हे॥ ८ ॥

रासरस गोविंद करत बिहार।
सूर-सुता के पुलिन रम्य मह फूले कुन्द मदार॥
अद्‌भुत सतदल विकसित कोमल मुकुलित कुमुद कल्हार।
मलय पवन बह सारद पूरन चंद मधुप झंकार॥
सुधर राय संगीत कलानिधि मोहन नन्दकुमार।
ब्रज-भामिनि संग प्रमुदित नाचत तन चर्चित घनसार॥
उभय स्वरूप सुभगता सींवा कोक कला सुखसार।
'कृष्णदास" स्वामी गिरिधर पिय पहिरे रसमें हार॥ ९ ॥

कहा करौ बैकुण्ठहिं जाय।
जहं नहिं नंद जहं नहीं जसोदा जहं नहिं गोपी ग्वाल न गाय।
जहं नहिं जल जमुना को निरमल और नहीं कदमन की छाय।
"परमानन्द" प्रभु चतुर ग्वालिनी ब्रजरज तजि मेरी जाय बलाय॥१०॥

संतन का सिकरी सन काम।
आवत-जात पनहिया टूटी बिसरि गयो हरि नाम॥
जिनको मुख देखे दुख उपजत तिनको करिबे परी सलाम।
"कुम्भन दास" लाल गिरिधर बिन और सबै बेकाम॥ ११ ॥

जसोदा कहा कहौं हौ बात।
तुम्हरे सुत के करतब मोपै कहत कहे नहि जात॥
भाजन फोरि ढोरि सब गोरस लै माखन दधि खात।
जो बरजौ तौ आंखि देखावै रंचहुं नाहि सकात॥
और अटपटी कहं लौं बरनौं छुवत पानि सों गात।
"दास चतुर्भुज" गिरिधर गुन हौ कहत-कहत सकुचात॥ १२ ॥

भोर भये नव कुंज सदन ते आवत लाल गोवर्द्धनधारी।
लटपट पाग मरगजी माला सिथिल अंग डगमग गति न्यारी॥
बिन गुन माल बिराजत मुख पर नख छत द्वैज चंद अनुहारी।
"छीत स्वामि" जब चितये मो तन तब हौं निरखि गई बलिहारी॥१३॥

प्रात समै उठि जसुमति जननी गिरिधर सुत को उबट न्हवावति ।
करि शृंगार बसन-भूषन सजि फूलन रचि पचि पाग बनावति ॥
छूटे बद बागे अति सोभित बिच-बिच चोव अरगजा लावति ।
सूथन लाल फूदना सोभित आजु कि छवि कछु कहति न आवति ॥
विविध कुसुम की माला उर धरि श्री कर मुरली बेत गहावति ।
लै दरपन देखे श्रीमुख को "गोविंद" प्रभु चरननि सिर नावति ॥१४॥

हम भक्तन के भक्त हमारे ।
सुन अर्जुन परतिज्ञा मेरी यंह ब्रत टरत न टारे ॥
भक्तन काज लाज हिय धरि के पाय पियादे धाये ।
जहं-जह भीर परी भक्तन को तह-तह होत सहाये ॥
जो भक्तन सो बैर करत है सो निज बैरी मेरो ।
देख विचार भक्तहित कारन हांकत हों रथ तेरो ॥
जीते जीत भक्त अपने की हारे हार बिचारो ।
"सूरस्याम" जो भक्त-विरोधी चक्र सुदर्सन मारो ॥ १५ ॥

सब सो न्यारे सब के प्यारे ऐसी रहनी रहिये ।
स्तुति अरु निन्दा छोड पराई जुगल जीभ जस गहिये ॥
दुख-सुख हानि-लाभ सम बर्तन आनि परे सो सहिये ।
"भगवतचरन" सरन गहि गोविद मनवांछित सुख लहिये ॥ १६ ॥

सखी मेरे मन की को जानै ।
कासो कहू सुनै जो चित दै हित की बात वखानै ॥
ऐसो को है अन्तर्यामी तुरत पीर पहचानै ।
"नारायण" जो बीत रही है कब कोई सच मानै ॥ १७ ॥

पाछे ललिता आगे स्यामा प्यारी
ता आगे पिय मारग फूल बिछावत जात ।
कठिन कली बीन-बीन न्यारी करत
प्यारी के चरन कोमल जानि सकुचत जिय गड़िबेऊ डराते ॥

दीरघ लता करसो निरुवारत पाछे
गहे डारि सीस नाहि परसत पल्लव पाव ।
"सूरदास मदन मोहन" पिय की आधीनताई
देखत मेरे री नैन सिरात ॥१८॥

गौर श्याम बदनारविंद पर जिसको नीर मचलते देखा ।
नैन बान मुसकान संग फस फिर नहिं नेक संभलते देखा ॥
"ललितकिशोरी" जुगल इश्क मे बहुतों का घर घलते देखा ।
डूबा प्रेमसिंधु का कोई हमने नही उछलते देखा ॥१९॥

अवधू रहिया हाटे-बाटे रूख-बिरखि की छाया ।
तजिबा काम क्रोध लोभ मोह संसार की माया ॥२०॥

गोरखनाथ ।

खुसरो की कविता

पहेलियां

श्याम बरन और दांत अनेक, लचकत जैसी नारी ।
दोनो हाथ से खुसरो खींचे, और कहे तू आरी ॥

आरी ।

पौन चलत वह देह बढावे । जल पीवत वह जीव गंवावे ।
है वह प्यारी सुन्दर नार । नार नही पर है वह नार ॥

आग ।

फारसी बोली आई ना । तुर्की ढूंढी, पाई ना ॥
हिन्दी बोली आरसी आए । खुसरो कहे कोइ न बताए ॥

आरसी ।

बाला था जब सब को भाया । बढा हुआ कछु काम न आया ॥
खुसरा कह दिया इसका नांव । अर्थ करो या छोडो गांव ॥

दिया ।

नारी से तू नर भई औ श्याम-बरन भइ सोय ।
गली-गली कूकत फिरे कोइलो-कोइलो लोय ॥

कोयला ।

सावन-भादो बहुत चलत है माघ-पूस मे थोरी।
अमीर खुसरो यों कहे तू बूझ पहेली मोरी॥

मोरी।

एक नार तरवर से उतरी सर पर वाके पाव।
ऐसी नार कुनार को मै ना देखन जाव॥

मैना।

हाड़ की देही उज्जल रग। लिपटा रहे नार के सग॥
चोरी की ना खून किया। वाका सिर क्यो काट लिया॥

नाखून।

बीसो का सिर काट लिया। ना मारा ना खून किया।

नाखून।

एक नार तरवर से उतरी मा सो जनम न पायो।
बाप को नाव जो वासो पूछ्यो आधो नाव बतायो॥
आधो नांव बतायो खुसरो कौन देस की बोली।
वाको नाव जो पूछ्यो मैने अपने नाव न बोली॥

निबोली।

झिलमिल का कुआ रतन की क्यारी।
बताओ तो बताओ नहि दूगी गारी॥

दर्पण।

आना-जाना उसका भाए। जिस घर जाये लकडी खाये।

आरी।

आवे तो अंधेरी लावे। जावे तो सब सुख ले जावे॥
क्या जानू वह कैसा है। जैसा देखो वैसा है॥

आख।

दर्पण।

हाथ में लीजे। देखा कीजै।
एक राजा की अनोखी रानी। नीचे से वह पीवे पानी॥

दिया की वत्ती।

एक नार ने अचरज किया। साप मार पिंजरे मे दिया॥
जों-जो सांप ताल को खाए। ताल सूख साप मर जाए॥

दिया की बत्ती।

एक अचम्भा देखो चल। सूखी लकड़ी लागे फल॥
जो कोई इस फल को खावे। पेड छोड कहिं और न जावे॥

बर्छी।

उज्जल बरन अधीन तन, एक चित्त दो ध्यान।
देखत में तो साधु है, पर निपट पाप की खान॥

बन्दूक।

एक तरुवर का फल है तर। पहले नारी पीछे नर॥
वा फल की यह देखो चाल। बाहर खाल और भीतर बाल॥

भुट्टा।

आगे-आगे बहिना आई पीछे-पीछे भइया।
दात निकाले बाबा आए बुरका ओढे मइया॥

भुट्टा।

श्यामबरन पीताम्बर काधे मुरलीधर नहिं होय।
बिन मुरली वह नाद करत है, बिरला बूझे कोय॥

भौंरा।

अचरज बंगला एक बनाया। ऊपर नीव तले घर छाया।
बास न बल्ली बन्धन घने। कह खुसरो घर कैसे बने॥

बए का घोंसला।

एक नार करतार बनाई। सूहा जोडा पहिन के आई॥
हाथ लगाये वह शर्माय। या नारी को चतुर बनाय॥

बीर बहूटी।

धूपों से वह पैदा होवे छाव देख मुर्झाये।
एरी सखी मै तुझसे पूछूं हवा लगे मर जाये॥

पसीना।

खेत मे उपजे सब कोई खाय । घर मे होवे घर खा जाय ।

फूट ।

एक नार कूए में रहे । वाका नीर खेत मे बहे ॥
जो कोई वाके नीर को चाखे । फिर जीवन की आस न राखे ॥

तलवार ।

डाला था सबके मन भाया । टाग उठाकर खेल बनाया ।
कमर पकड के दिया ढकेल । जब होवे वह पूरा खेल ॥

झूला ।

एक पुरुष बहुत गुन भरा । लेटा जागै सोवे खडा ॥
उलटा होकर डाले बेल । यह देखो कर्तार का खेल ॥

चरखा ।

नई की ढीली पुरानी की तङ्ग ।
बूझो तो बूझो नही चलो मेरे सङ्ग ॥

चिलम ।

चालीस मन की नार रखावे, सूखी जैसे तीली ।
कहने को पर्दे की बीबी,पर वह रग रगीली ॥

चिलम ।

मिला रहे तो नर रहे, अलग होय तो नार ।
सोने का-सा रङ्ग है,कोइ चतुरा करे विचार ॥

चना ।

दानाई से दात उस पै लगाता नही कोई ।
सब उसको भुनाते है पै खाता नही कोई ॥

रुपया ।

जब काटो तब ही बढे, बिन काटे कुम्हिलाय ।
ऐसी अद्भुत नार का, अन्त न पायो जाय ॥

दीपशिखा ।

एक पुरुष का अचरज लेखा । मोती फलती आखो देखा ॥

जहा से उपजे वहाँ समाय। जो फल गिरे सो जल-जल जाय॥

फुआरा।

बात की बात ठठोली की ठठोली।
मरद की गाठ औरत ने खोली॥

ताला।

आदि कटे से सबको पारे। मध्य कटे से सबको मारे॥
अन्त कटे से सबको मीठा। खुसरू वाको आखों दीठा॥

काजल।

जल कर उपजे जल मे रहे। आखो देखा खुसरू कहे॥

काजल।

चार अगुल का पेड सवा मन का पत्ता।
फल लगे अलग-अलग पक जाय इकट्ठा॥

चाक।

पानी मे निसदिन रहे, जाके हाड़ न मास।
काम करे तरवार का, फिर पानी मे बास॥

कुम्हार का डोर।

एक कहानी मै कहू, तू सुन ले मेरे पूत।
बिना परो वह उड गया, बांध गले मे सूत॥

गुड्डी।

सर पर जाली पेट से खाली। पसली देख एक-एक निराली॥

मोढा।

मुकरियां

बरस-बरस वह देस में आवे। मुह से मुह लगा रस प्यावे॥
वा खातिर म खरचे दाम। ऐ सखी साजन ना सखी आम॥
कस के छाती पकड़े रहे। मुह से बोले बात न कहे॥
ऐसा है कामिन का रगिया। ऐ सखी साजन ना सखी अगिया॥
पड़ी थी मै अचानक चढ आयो। जब उतरयो तो पसीनो आयो॥

सहम गई नहि सकी पुकार । ऐ सखी साजन ना सखी बुखार ॥
रात समय वह मेरे आवे । भोर भए वह घर उठ जावे ॥
यह अचरज है सब से न्यारा । ऐ सखी साजन ना सखी तारा ॥
मद भर जोर हमे दिखलावे । मुफत मरे छाती चढ आवे ॥
छूट गया सब पूजा-जप । ऐ सखी साजन ना सखी तप ॥
नगे पाव फिरन नहि देत । पाव से मिट्टी लगन नहिं देत ॥
पाव का चूमा लेत निपूना । ऐ सखी साजन ना सखि जूता ॥
न्हाय धोय सेज मेरी आयो । ले चूमा मुह मुहहिं लगायो ॥
इतनि बात पै थुक्कम थुक्का । ऐ सखी साजन ना सखि हुक्का ॥
सारी रैन मोरे सग जागा । भोर भये तब बिछुड़न लागा ॥
वाके बिछुड़त फाटे हिया । ऐ सखी साजन ना सखि दिया ॥
वह आवे तब शादी होय । उस बिन दूजा और न कोय ॥
मीठे लागे वाके बोल । ऐ सखी साजन ना सखि ढोल ॥
जब मागू तब जल भर लावे । मेरे मन की तपन बुझावे ॥
मन का भारा तन का छोटा । ऐ सखी साजन ना सखी लोटा ॥
जब मेरे मन्दिर मे आवे । सोते मुझको आन जगावे ॥
पढत फिरत वह बिरह के अच्छर । ऐ सखी साजन ना सखी मच्छर ॥
बेर बेर सोवतहिं जगावे । ना जागू तो काटे खावे ॥
व्याकुल हुई मै हक्की-बक्की । ऐ सखी साजन ना सखी मक्खी ॥

दो सखुना हिन्दी

प्रश्न	उत्तर
रोटी जली क्यो, घोड़ा अडा क्यो, पान सडा क्यो	फेरा न था
अनार क्यो न चक्खा, वजीर क्यो न रक्खा	दाना न था
गोस्त क्यो न खाया ? डोम क्यो न गाया ?	गला न था
राजा प्यासा क्यो ? गदहा उदासा क्यो ?	लोटा न था
ढोलकी क्यो न बाजी ? दही क्यो न जमी ?	मढी न थी

प्रश्न	उत्तर
सितार क्यो न बजा ? औरत क्यो न नहाई ?	परदा न था
घर क्यों अंधियारा ? फकीर क्यो बिगडा ?	दिया न था

ढकोसले

भादो पक्की पीपली, झड़-झड़ पडे कपास ।
बी मेहतरानी दाल पकाओगी या नगा ही सो रहू ॥ १ ॥
कोठी भरी कुल्हाडिया, तू हरीरा करके पी ।
बहुत ताउल है तो छप्पर से मुह पोछ ॥ २ ॥
पीपल पकी पपोलिया, झड-झड़ परे है बेर ।
सर मे लगा खटाक से, वाह वे तेरी मिठास ॥ ३ ॥
भैस चढी बबूल पर, और लप-लप गूलर खाय ।
दुम उठाकर देखा तो पूरनमासी के तीन दिन ॥ ४ ॥
गोरी के नैना ऐसे बडे जैसे बैल के सीग ॥ ५ ॥
खीर पकाई जतन से, और चरखा दिया जला ।
आया कुत्ता खा गया, तू बैठी ढोल बजा ॥
ला पानी पिला ॥ ६ ॥

दूसरों की पहेलियां

हाथी हाथ हथिनिया काधे । चले जात है बकुचा बाधे ॥
गज और गजी ।

आधा नर आधा मृगराज । जुद्ध बिआहे आवै काज ॥
आधा टूटि पेट मा रहै । बासू केरि खगिनिया कहै ॥
नरसिहा ।

लम्बी-चौड़ी आंगुरि चारि । दुहू ओर तें डारेनि फारि ।
जीव न होय जीविका गहै । बासू केरि खगिनिया कहै ॥
कघी ।

भीतर गूदर ऊपर नागि । पानी पियै परारा मागि ॥
तिहि की लिखी करारी रहै । बासू केरि खगिनिया कहै ॥
दवात ।

अगहन पैठ चइत के प्याट । तेहि पर पंडित करै झप्याट ।।
है नेरे पइही ना हेरे । पंडित कहै बिगहपुर केरे ।।
कचौरी ।

जल मे रहै झूठ नहि भाखै , बसै सु नगर मझार ।
मच्छ कच्छ दादुर नही , पंडित करौ विचार ।।
घड़ी ।

स्याम बरन पर हरि नही , जटा धरे नहि ईस ।
ना जानू पिया कौन है , पंक लगाये सीस ।।
कसेरू ।

सीस जटा पोथी गहे , सेत बसन गल माँहि ।
जोगी जंगम है नही , ब्राह्मन पंडित नाँहि ।।
लहसुन ।

स्याम बरन पीताम्बर काधे , मुरलीधर नहि होय ।
बिन मुरली बहु नाद करत है , बिरला बूझे कोय ।।
भौरा ।

सिर पर सोहै गंगजल , मुण्डमाल गल माँहि ।
बाहन वाको वृषभ है , शिव कहिये कै नाँहि ।।
रहट ।

देखो एक अनोखी नारी । गुन उसमें एक सबसे भारी ।
पढी नही अरु अचरज आवै । मरना जीना तुरत बतावै ।।
नाडी ।

फाटचो पेट दरिद्री नाम , उत्तम घर में वाको ठाम ।
श्री को अनुज विष्णु को सारो , पंडित होय सो अर्थ विचारो ।।
शङ्ख ।

नर के पेट जो नारी बसै । पकड़ हिलाये खिल-खिल हसै ।
पेट फाड जो नारी गिरी । मोको लागी प्यारी खरी ।।
गिरी ।

चहूं ओर फिर आई। जिन देखी तिन खाई॥
खाई।

एक नारि वह है बहुरङ्गी। घर से वाहर निकसे नगी॥
उस नारी का यही सिंगार। सिर पर नथुनी मुह पर वार॥
तलवार।

आधा भक्तन मुख वसै। आधा गुनियन साथ।
वाहि पसारी देत है। पुड़ी वांधि कै हाथ॥
हरताल।

पहेली

सुनरी सहेली! मेरी पहेली, वावल घर मे रही अलवेली।
माता पिता ने लाड से पाला, समझा मुझे उस घरका उजाला॥
एक वहन थी एक वहनेली॥१॥
योही वहुत दिन गुड़िया खेली, कभी अकेली दुकेली।
जिससे कहा चल तमाशा दिखला, उसने उठाकर गोदी मे लेली॥२॥
कुछ-कुछ मोहि समझ जो आई, एक जा ठहरी मोरी सगाई।
आवन लागे वाम्हन नाई, कोई ले रुपया कोई ले धेली॥३॥
व्याह का मेरे समां जव आया, तेल चढाया मढा छवाया।
सालू सूहा सभी पिन्हाया, मेहदी से रग दिये हाथ हथेली॥४॥
सासरे के लोग आये जो मेरे, ढोल दमामे वजे घनेरे।
सुभ घड़ी सुभ दिन हुए जो फेरे, सैयां ने मोहि हाथ मे ले ली॥५॥
आये वराती सव रस रंग के, लोग कुटुम के सव हस-हसके।
चावत ये यही घर से निकसे, और के घर मे जाय धकेली॥६॥
ले के चली थी साथ जव अपने, रोवन लागे फिर सव अपने।
कहा कि तू नहि वस की अपने, जा वच्ची! तेरा दाताही वेली॥७॥
सखी! पिया के साथ गई मै, ऐसे गई फिर वहीं रही मै।
किससे कहूं दुख हाय! दई मै, सैयां ने मोरी वाहें गहेली॥८॥

सास जो चाहे सोही सुनावे , ननद भी बैठी बातें बनावे ।
क्या है! करू कुछ बन नहिं आवे , जैसी पडी मै वैसी ही झेली ॥ ९ ॥
जिया बियाकुल रोवत अखिया , कहा गई सब सग की सखिया ।
शौक रग गुडिया ताक पै रखिया , न वो घर है न वो हवेली ॥१०॥
बहादुर शाह "ज़फर" (दिल्ली के अन्तिम बादशाह)

खेती की कहावतें

१ अग्निकोन जब बहै समीरा । पडे काल दुख सहै शरीरा ।
२ उत्तर से जल फूहौं पड़े । मूस साप दोनो अवतरे ॥
पच्छिम समया नीको जानो । आगे बहै तुषार प्रमानो ॥
जो कहु बहै ईसान को कोना । आवै विस्वा दो-दो दूना ॥
जो कहु हवा अकाशै जाय । पडे न बद काल पड़ जाय ॥
३ सावन सूखे धान, भादौ सूखे गेहू ।
४ अद्रा बरसे पुनर्वस जाय । दीन आन कोऊ न खाय ॥
५ पानी बरसे आधा पूस । आधा गेहू आधा भूस ॥
६ सावन सूखा स्यारी । भादो सूखा उन्हारी ॥
७ सावन पहिली चौथ मे , जो मेघा बरसाय ।
तो भाखे यो भड्डरी , साख सवाई जाय ॥
८ हथिया पूछ डोलावे । घर बैठे गेहू आवे ॥
९ हथिया बरसे चित्रा मडराय । घर बैठे किसान रिरियाय ॥
१० कर्क बुवावे काकरी , सिंह अबोनो जाय ।
ऐसा बोले भड्डरी , कीड़ा फिर-फिर खाय ॥
११ जो कहु मघा मे बरसै जल । सब नाजो में होगा फल ॥
१२ चित्रा गेहू स्वाती भूसा । अनुराधा मे नाज न भूसा ॥
१३ जो कहु बरसै पूस । आधा गेहू आधा भूस ॥
१४ अद्रा रेंट पुनरबस पाती । लगै चिरैया दिया न बाती ॥
१५ चटका मघा न चटका उत्तर । दूध भात मे परगा मूसर ॥

१६ मघा, भुम्मि अघा ।

१७ मघा न मारे पूर्वा सवारे । उत्तर भर खेत निहारे ॥

१८ जब जेठ चलै पुरवाई । तब सावन धूल उड़ाई ॥

१९ आये मेख, हरी न देख । आये मेघ, हरी-हरी देख ॥

२० चैत मे हुई फसल तैयार । काट दाय घर लाओ यार ॥
बेर किये होवे नुकसान । बेर मे नाही भला किसान ॥

२१ गेहू जौ सब पछिवा पावे । तब जल्दी मे दावा जावे ॥

२२ दो दिन पछिवा छ. पुरवाई । गेहू जौ को लेव दवाई ॥
ताके बाद ओसावे सोई । भूसा दाना अलगे होई ॥

२३ चना अधपका जौ पका काटे । गेहू बाली लटका काटे ॥

२४ सात स्वाती धान उपाट ।

२५ लगी बसन्त, ऊख पकन्त ।

२६ भादौ मास तीज अँधियारी । मेह न बरसे खेत बहारी ॥
न बरसे न गरजे, न चमके अधरात ।
तुम पिय जावो मालवा, हम जाये गुजरात ॥

२७ काहे पडित पढ-पढ मरो । पूस अमावस की सुधि करो ॥
मूल विसाखा पूरबाखाड । झूरा जान लो बहरे ठाड़ ॥

२८ ढोकी बोले जाय अकास । देशी ठहरे उडे अकास ॥

२९ लालपियर जब होय अकास । तब नाही बरसा की आस ॥

३० चमकै पश्चिम उत्तर ओर । नित जानो पानी है जोर ॥

३१ चीत के बरसे तीन जाय । मोथ मास उखार ॥

३२ न होय करम लिख पूरा । पर न टरै खेत का घूरा ॥

३३ छिन पुरवैया छिन पछियाव । छिन-छिन बहै बबूला बाव ॥
बादल ऊपर बादल धावै । तब भड्डर पानी बरसावै ॥

३४ पूरवा बादल पच्छिम जाय । वासे वृष्टि अधिक बरसाय ॥
जो पच्छिम से पूरब जाय । वर्षा बहुत न्यून हो जाय ॥

३५ जब निकले लका का राय । धेनु दूध न बेलो जाय ॥

३६ हस्त के बरसे तीन होय, शाली शक्कर मास।
हस्त के बरसे तीन जाय, तिल कोदों कपास॥
३७ जो बरसे स्वाति। चरखा चलै न बोले तात॥
३८ माघ महावट पूस बिनौरा। फागुन बरसे न खोरा॥
३९ शशि ऊगत और मंगल, पूस अमावस होय।
दुगुना तिगुना चौगुना, नाज महेंगो होय॥
४० वायु चलेगी पच्छिमा। माड कहा से चखना॥
वायु चले जो उत्तरा। माड पिवेंगे कुत्तरा॥
वायु चलेगी दखिना। डोला पानी लखना॥
वायु चलेगी पुरवा। पियो माड का कुरवा॥
४१ बुद्ध वृहस्पति दो भले, शुक्र न भले बखान।
रवि मंगल बौनी करै, द्वार न आवै धान॥
४२ नैऋत भूम बूंद ना परै। राजा परजा भूखो मरै॥
४३ पछिवा आई बादली, राड कुसुम्बी जाव।
वह बरसै यह घर करै, उन को यही स्वभाव॥
४४ पुरवाई कहर चले, राँड मूड से न्हाय।
वह लै आवै बादली, यह कोऊ लै जाय॥
४५ बिन भादों के बरसे। बिन माता के परसे॥
४६ ढेले पर जब चील बोलै। गली-गली में पानी डोलै॥
४७ माघमास जो पडै न शीत। महगा नाज जानियो मीत॥
४८ धनुष पडै बागली। मेह साझ या साकली॥
४९ रात मे बोले काकुला, दिन मे बोले स्याल।
तो यो भाखे भड्डुरी, निश्चय पड़ै अकाल॥
५० दूर गुडसा दूर पानी, नियर गुडसा नियर पानी।
५१ कातिक अमावस देखै जोसी। मंगल शनी भौम को होसी॥
स्वाती नक्षत्र और पुष्पयोग। काल पडे और नासै लोग॥

५२ सावन बदी एकादशी, बादल ऊगे सूर।
तो बतावै भड्डुली, घर पर बाजै तूर॥

५३ सर्व तपै जो रोहिनी, सर्व तपै जो मूल।
पडवा तपै जो जेठ की, उपजै सातो फूल॥

५४ सोम शुक्र शनीचरी, पूस अमावस होय।
घर-घर होय बधावरी, बुरा न माने कोय॥

५५ पूस उजेली सप्तमी, अष्टमी नौमी गाज।
मेघ होय तो जान लो, अब शुभ होइ है काज॥

५६ पुष्य पुनरबस ना भरे ताल। सो फिर भरिहै अगली साल॥

५७ वायु चले ईशान। तो खाना खाय किसान॥

५८ पवन चले पुरवाई। बादल काट लगाई॥

५९ पूस मासकी सप्तमी, जो पानी नहिं देव।
आरद्रा बरष सही, जल थल एक करेव॥

६० पूस अंधेरी सप्तमी, भिन-भिन बादल होय।
सावन सुदी पूनो, बरषा अच्छी होय॥

६१ पूस बदी दशमी दिवस, बादल चमके बीज।
तो बरषे भरे भादों, साधो खेलो तीज॥

६२ पाच मगल होवे फागुनो, पूस पांच शनि होय।
काल पड़े कह भड्डुरी, बीज बोओ मति कोय॥

६३ पुरवाई बहुतै बहै, विधवा पान चबाय।
वे ले आवे नीर को, वे काहू सग जाय॥

६४ सावन शुक्ला सप्तमी, चन्दा छिटिक करै।
के जल देखे कूप मे, कि कामिनि शीश धरै॥
सावन शुक्ला सप्तमी, उगत जो देखे भान।
या जल मिलि है कूप मे, या गङ्गा अस्नान॥

६५ प्रथम बयार पूरब की लीजै। ऊंचे आन महाजर कीजै।
पच्छिम व्यार चलै मरदाना। सीचो खेती आय किसाना॥

६६ सावन पहिली पंचमी, जोर की चलै बयार।
तुम जाना पिय मालवा, हम जावे पितुसार ।।

६७ सावन शुक्ला सत्तमी, उभरे निकले भान।
हम जाये पिति माइके, तुम कर लो गुजरान ।।

६८ अद्रा भरना रोहणी, मघा उत्तरा तीन।
आन मगल आधी चले, तब लो बरसा छीन ।।

६९ अद्रा तो बरसे नही, मृगशिरा पौन न जोय।
भाषै एसा भड्डुरी, वरसा बूद न होय ।।

७० कृष्ण असाढी प्रतिपदा, जो उत्तर गरजन्त।
शास्त्री शास्त्री यो भखै, निश्चय काल पड़न्त ।।

७१ धूर असाढी बिज्जुली, चमक निरन्तर जोय।
सोम सुक्र और गुरु परै, भारी बरसा होय ।।

७२ धुर असाढ की अष्टमी, शशि निर्मल जो दीख।
पीव जाय के मालवा, मागत फिरि है भीख ।।

७३ नवी असाढ़ी बादली, जो गरजै घनघोर।
कहे भड्डुरी ज्योतिषी, काल पडै अहु ओर ।।

७४ दशी असाढी कृष्ण को, मङ्गल रोहिनी होय।
सस्ता धान बिकायगो, हाथ न छुइ है कोय ।।

७५ असाढी पूनो के दिना, गाज बीज बरसन्त।
भाषै लक्षण कालिका, आनन्द मानो सन्त ।।

७६ दिवस बादरा रात को तारे। चलो कन्त जह जीवे वारे ।।

७७ दिन को बादर रातमे चदर। बहै रवी भद्दर भद्दर।
कहै भड्डुरी बरषा नाही। सिगरी जिन्से जाहिं सुखाहिं ।।

७८ तीतर पखी बादरी, विधवा कज्जल रेख।
ये बरषै वहे घर करै, या में मीन न मेख ।।

७९ दिन को बादल रात तरैया। ये नारायण कहा करैया ।।

८० काले बादल डरावने, धौले बरसनहार ।।

८१　दिन सात चले जो बादा । सूखे जल सातों खाडा ॥
८२　खेती करै खाद से भरै । सौ मन कोठला मे लै धरै ॥
८३　वही किसानी मे है पूरा । जो छोडे हड्डी का चूरा ॥
८४　जेकर खेते पडा न गोबर । उहि किसान का जानो दूबर ॥
८५　जोत न माने अरसी चना । कहा न माने हरामी जना ॥
८६　मैंदै गेहू, ढेलै चना ।
८७　गेहू बाहे, धान बिदाहे ।
८८　गेहूं गवा काहे । कातिक के चौबाहे ॥
८९　जोते खेत घास न टूटै । ताकर भाग साझ ही फूटै ॥
९०　एक बात तुम सुनो हमारी । एक बैल ते भली कुदारी ॥
९१　कच्चा खेत न जोतै कोई । नाही बीज न अकुरे होई ॥
९२　गेहू भवा काहे । सोलह दाय बाहे ॥
९३　दखिनी कुलाविनी । माघ पूस सुलाविनी ॥
　　माघ पूस में दखिना । भले मेंह को लखना ॥
९४　माघ उजाली तीज को, बादल बिजली देख ।
　　गेहू जो सयम करो, महगो होवे पेख ॥
९५　चैत मास उजाले पाख, अठवे दिवस बरसता राख ॥
　　नवे दिवस जब बिजली होवे, ता देश काल हलाहल होवे ॥
९६　चित्रा स्वाती बिसेखरी, जो बरखे आसाढ़ ।
　　चलो पिया परदेश अब, भारी परिहै काल ॥
९७　आसाढमास पूनो दिवस, बादल घेरै चन्द ।
　　तो भड्डर जोसी कहै, होवे परम अनन्द ॥
९८　चढते बरसे आद्रा, उतरत बरसे हस्त ।
　　कितनो राजा डाड़ले, आनन्द रहे गृहस्त ॥
९९　मगल पड़े तबाही, बुद्धे पडे अकाल ॥
　　जो अन्त होवे शनीचरी, निश्चय परिहै काल ॥
१००　भूलो वावल फिरै गंवारा, कातिक मागे मेह ।

१०१ पुरबा पूनो गरजै। दिना बहत्तर बरसै ॥

१०२ सावन केरे प्रथम दिन, उगत न दीखै भान।
चार महीना बरसै पानी, याको है परमान ॥

१०३ माघ मास मे बेचो बोई। फिर बैसाख में तमसो धोई ॥
जेठ मास जो तपै निरासा। तो जानो बरषा की आसा ॥

१०४ सावन पहिली पंचमी, चन्दा छिटिक करै।
की जल देखे कूप मे, कि सुन्दरि नीर भरै ॥

१०५ चना चित्रा चौगुना, स्वाती गेहू होय।

१०६ कोठी चढे पुकारे जई। खिचडी खाकर क्यो न बई ॥
जो कहु बोते बीघा चार। तो मैं डरती कुठिला फार ॥

१०७ अगहन बवा। कहु मन कहु सवा ॥

१०८ पूस न बोये, पीस खाये।

१०९ अगाई, सो सवाई।

११० कातिक बोये अगहन भरे। ताको हाकिम फिर का करे ॥

१११ रोहिनी मृगसिरा जोबोये मका। उर्द मडुआ नहिं आवे टका ॥
मिरगसीर में बोये चैना। जमीदार को कुछ नहिं दैना ॥
बोये बाजरा आये पुक्ख। फिर मन कैसे भोगे सुक्ख ॥

११२ बुध बोनी, सुल लावनी।

११३ हथिया मे हाथकुड़ चित्रा मे फूल। चढत सवातीझप्पा झूल ॥

११४ जब बर्र बरोठे आई। तब रबी की होय बोवाई ॥

११५ जो छिछी गेहू सास लो, मेढक छप्पे ज्वार।
जिन के छिछी ऊख है, वे फिरते घर बार ॥

११६ दिवाली को बोवे दिवालिया।

११७ आगे गेहू पीछे धान। उसको कहिये बड़ा किसान ॥

११८ भुइ भई काली काहे। जीव अश अधिकाहे ॥

११९ पुक्ख पुनर्बस बोवे धान। मघा श्लेखा खेती आन ॥

१२० आधी हथिया मूर मुराई। आधी हथिया सरसो राई ॥

१२१ अगहन बोवे जौवा । होय तो होय नही खाय कौआ ॥
१२२ पहले काकड़ पीछे धान । उन को कहिये पूर किसान ॥
१२३ सावन सावा अगहन जौ । जितना बोवे उतना लौ ॥
१२४ मका जोंधरी औ बजरी । उनको बोवे कुछ बिररी ॥
१२५ गाजर गजी और मूरी । इन को बोवे कुछ दूरी ॥
१२६ घनी-घनी जो सनई बोवे । तो सुतरी की आसा होवे ॥
१२७ गेहू गिरुई चरका धान । बिना आन के मरा किसान ॥
१२८ माघ मे बादर लाल धरै । तब जानो सच पाथर परै ॥
१२९ ऊख कवाई काहे से । स्वाती पानी पाये से ॥
१३० जब बरषा चित्रा मे होय । सिगरी खेती जाये खोय ॥
१३१ खादी कूडा ना टरै, कर्म लिखा टर जाय ॥
"रहिमन" कहे बुझाय के, खेत पास पर जाय ॥
१३२ फागुन माहिं बहै पुरवाई । तब गेहू मे गिरुई धाई ॥
१३३ चित्रा गेहू अद्रा धान । इनके गेरुई न उनके घाम ॥
१३४ अद्रा धान पुनर्वसु पतिया । गये किसान जब बई चिरैया ॥
१३५ मघ्वा मकड़ी पुरवा डास । उत्तरा मे है सब की नास ॥
१३६ हरिन फलागन काकरी, पैंग-पैंग कपसार ।
कहियो जाय किसान से, बोवे घनी उखार ॥
१३७ पुक्ख पुनर्बस बोवे धान । अश्लेखा जुधरी परमान ॥
मघा मसीना बोवे रेल । तब दीजे परहल मे ठेल ॥
१३८ पुक्ख पुनर्वस बोवे धान । अश्लेखा जोधरी परमान ॥
मघा मसीनो बरसे झार । हल दोजै कोठल में डार ॥
१३९ कोठिला बैठे बोले जई । आधे अगहन काहे न बई ॥
१४० नरसी गेहू सरसी जौ । अति के बरसे चना बो ॥
१४१ कदम-कदम पर बाजरा, मेढक कूदे ज्वार ।
ऐसे जो बोवे कोई, घर-घर भरे कोठार ॥

१४२ आलू बोवे अंधेरे पाख। खेत मे डारे कूडा राख॥
समय-समय पर करै सिंचाई। दूना आलू घर मे आई॥

१४३ छछी भली जौ चना, छछी भली कपास।
जिनकी छछी ऊखड़ी, उनकी छोडो आस॥

१४४ जो तेरे कुनबा घना। तो क्यो न बोये चना॥

१४५ दो तौई, घर खोई।

१४६ मकड़ा घासा पूरा जाला। बीज चने का भर-भर डाला॥

१४७ छीछा सालिम सालटा, छिछी भली कपास।
जिनकी छीछी ऊख है, उनकी छोड़ो आस॥

१४८ सन घना बन बेगरा, मेढक फन्दे ज्वार।
पैर-पैर पर बाजरा, करै दरिद्रै पार॥

१४९ जौ गेहू बौवै पाच पसेर। मटर की बीघा तीन सेर॥
बौवै चना पसेरी तीन। सेर तीन की जुधरी कीन्ह॥
दो सेर मोथी अरहर मास। डेढ सेर बीघा बीज कपास॥
पाच पसेरी बीघा धान। तीन पसेरी जड़हन मान॥
डेढ सेर बजरा बजरी सवा। कोदो काकुन सवैया बवा॥
सवासेर बीघा सावा जान। तिल्ली सरसो अजुरी मान॥
बिर्रै कोदों सेर बोआव। डेढ सेर बीघा तीसी नाव॥
यहि विधि से जब बवै किसान, दूना लाभ खेत में जान॥

१५० गोहू भवा काहे। असाढ के दो बाहे॥

१५१ तेरह कातिक, तीन असाढ।

१५२ नौ नसी एक कसी। नौ आहन, एक बाहन॥

१५३ वाली मोटी भई काहे। असाढ के दो बाहे॥

१५४ बीज पड़े फल अच्छा देत। जितना गहरा जोते खेत॥

१५५ जोधरी जोते तोड़ मरोर। तो वह डारे कोठला फोर॥

१५६ बाहे क्यों न असाढ एकबार। अब क्यो बाहे बारम्बार॥

१५७ दस बाहो का माडा। बीस बाहों का गाडा॥

१५९ जो ढेले दे तोर मरोर । ताको कोठिला दूंगी फोर ।।
१६० मेंड़ बांध दस जोतन दे । दस मन बीघा मोसे ले ।।
१६१ सावन न मारे लीटक बेटा । अब देखे क्या खाओ बेटा ।।
१६२ असाढ़ जोते लडके बारे, सावन भादो हरवाहे ।
क्वार जोते घर का बेटा, तब ऊंचे उनहारे ।।
१६३ भैंसा बरद की खेती करे, करजा काढि बिरानो खाय ।
बधिया ऐंचत है येहरी को, भैंसा ओहरी को ले जाय ।।
१६४ थोडा जोतै बहुतै गावै, ऊंची बाधे आड ।
ऊंचे पर खेती करै, पैदा होवै भाड ।।
१६५ खाद पडे तो खेत । नही तो कूडा रेत ।।
१६६ खाद देय तो होवै खेती । नही तो रहे नदी की रेती ।।
१६७ असाढ मे खाद खेत में जावे । तब भर मूठी दाना पावे ।।
१६८ गोबर मैला नीब की खली । यह से खेती दूना फली ।।
१६९ गोबर राखी पानी सड़े । तब खेतो मे दाना पड़े ।।
१७० जेह कर उखड़े लगी लवाह । तेह पर आवे बड़ी तवाह ।।
१७१ करमहीन खेती करै । बधिया मरै कि सूखा परै ।।
करमहीन खेती करें । पाला पडे कि ओला गिरे ।।
चना में सर्दी अधिक समाई । ताको जान गदहिला खाई ।।
धान गिरे सौभागे का । गेहूं गिरे अभागे का ।।
१७२ माघै पूस बहै पुरवाई । तब सरसो को माहू खाई ।।
१७३ बैल बगोदा निरघिन जोय । वह घर उरहन कबहु न होय ।।
बैल मरखना चमकुल जोय । वा घर उरहन नित उठि होय ।।
१७४ बरद मुसहरा जो कोई ले । राज भङ्ग पल में कर दे ।।
तिरिया बाल सबकुछ छुटिजाय । भीख मांग के घर-घर खाय ।।
१७५ मतकोई लीजै मसुरिहा बाहन । खसम मार के डाले पावन ।।
१७६ बड़सिंगा जनि लीजो मोल । कुएं में डालो रुपया खोल ।।

१७७ ताका भैसा निठरा बैल । नार कुलक्षण बालक छैल ॥
इनसे बाचें चतुरा लोग । राज छोड के साधे जोग ॥

१७८ ना मोंहि नाधो उलिया कुलिया, ना मोंहि नाधो दाये ।
बीस बरस तक करौ बरदई, जो ना मिलिहै गायें ॥

१७९ सन्थर जोते पूत चरावे । लगते जेठ भुसौला छावे ॥
भादौं मास उठे जो गरदा । बीस बरस तक जोतो बरदा ॥

१८० है उत्तम खेती वाकी । होय मेवाती गोई जाकी ॥

१८१ पतली पिण्डुरी मोटी रान । पूछ होय भुईं मे तरियान ॥
जाके होवैं ऐसो गोई । वाको तकै और सब कोई ॥

१८२ करिया काछी धारा बान । इन्हे छाडि जनि बेसहो आन ॥
कार कछौली सुनरे बान । इन्है छोडि जनि बिसह्यो आन ॥

१८३ जोते का पुरबी , लादे क दमोय ।
हेगा को काम दे , जो देवहा होय ॥

१८४ सीग मुड़े माथा उठा , मुह का होवे गोल ।
रोम नरम चचल करण , तेज बैल अनमोल ॥

१८५ एक हल हत्या , दो हल काज ।
तीन हल खेती , चार हल राज ॥

१८६ मुह का मोट माथ का महुआ । इनही का कुछ कहिये रहुआ ॥
धरती नही हराई जोतै । बैठ मेंड पर पागुर करै ॥

१८७ मुह का मोट मायका महुआ । इन्है देखि जनि भूल्यो रहुआ ॥
चरक भरौती माथे मे महुआ ।
दाम परे तो आधे तरे । नही रुपया पानी में परे ॥

१८८ जहा परे फुलवा की लार । झाड़ू लेके बुहारो सार ॥

१८९ कान कछाटा झबरे कान । इन्हे छाडि जनि लीजो आन ॥

१९० निटिया बरद छोकरा हारी । दूब कहै मोर काहि उखारी ॥

१९१ बैल लीजे कजरा । दाम दीजै - अगरा ॥

१९२ बैल बिसाहन जाओ कन्ता । भूरे का मत देखो दन्ता ॥

१९३ लम्वे-लम्वे कान, औ ढीला मुतान।
छोडो-छोड़ो किसान, न तो जात है प्रान॥
१९४ विन बैलन खेती करै, विन भैयन के रार।
बिन मेहरारू घर करै, चौदह साख लवार॥
१९५ सात दात उदन्ता को, रङ्ग जो कालो होय।
इन्हे कवहुं न लीजिये, दाम चहे जो होय॥
१९६ हिरन मुतान और पतली पूछ, वैल वेसाही कन्त वे पूछ।
१९७ वाधा वछडा जाय मठाय, वैठा ज्वान जाय तुदियाय॥
१९८ फेंट वंधीला देह गठीला, आखो का चमकीला।
भाषै नानकचन्द मर्द है, वर्ध कन्ध का नीला॥
१९९ वरद विसाहन जाओ कन्ता। कुवरा का मत देखो दन्ता॥
२०० घोची देखे वहि पार। थैली खोले यहि पार॥
२०१ छद्दर कहै मै आऊं जाऊं। सद्दर कहै गुसैये खाऊं॥
नौदर कहै नौ दिशि धाऊ। हित कुटुम्ब उपरोहित खाऊं॥
२०२ स्वेत रङ्ग और पीठ वरारी। ताहि देखि जनि भूल्यो लारी॥
२०३ सौख कहे देख मोर कला। वे मेहरी का करू घरा॥
२०४ छोट सीग और छोटी पूंछ। ऐसे को ले लो वे पूंछ॥
२०५ उदन्त वरदे उदन्त व्याये। आप जाय न खसमे खाये॥
२०६ दांत गिरे और खुर घिसे, पीठ बोझ नहिं लेय।
ऐसे वूढे वैल को, कौन वांध भुस देय॥
२०७ भैंस कन्देलिया पिय लाये। मांगे दूध कहां से आये॥
२०८ बांसड़ और मुह धौरा। उन्हें देख चरवाहा रौरा॥
२०९ सूढा वैल बिसाहे, झिन्ना कपडा लेय।
आपुन करै नसौनी, दैवै दूषण देय॥
२१० नीले कन्वा वैगन खुरा। कवहु न निकले कन्था बुरा॥
२११ छोटा मुह ऐठा कान। यही वैल की है पहिचान॥
२१२ मियनी वैल वड़ो वलवान। तनिक में करे ठाढे कान॥

२१३ सीग गिरेला बरद के, औ मनई का कोढ।
यह नीके न होंयगे, चाहे बद लो होड़ ॥
२१४ बैल तरकना टूटी नाव, ये काहू दिन दैहै दाव ॥
२१५ बैल चौकना जोत में, औ चमकीली नार।
ये बैरी है जान के, लाज रखे करतार ॥
२१६ पूछ छिया छोटे कान। ऐसे बरद मिहनती जान ॥
२१७ उजर बरौनी मुह का महुआ। बाका देख हरवाह रोवा ॥
२१८ जब देखो पिय सम्पति थोडी। बिसहो गाय बिआउर घोड़ी ॥
२१९ वह किसान है पातर। जो बरदा राखै गादर ॥
२२० बरद बगौदा मरकहा होय। वह घर उरहन नित-नित होय ॥
२२१ बरद बिसाहन जाओ कन्ता। खीरे का जनि देखो दन्ता ॥
जहा परे खीरे की खुरी। तो कर डारे चपरा पुरी ॥
जहा परे खीरे की लार। बढनी लेके बुहारो सार ॥
जहा देखो पटवा की डोर। तहा दीजो थैली छोर ॥
२२२ दो हर खेती एक हर वारी। एक बैल से भलो कुदारी ॥
२२३ दस हल राव आठ हल राना। चार हलों का बडा किसाना ॥
२२४ पाच शनीचर पाय रवि, पाच मंगल जो होय।
छत्तर टूट धरनी पडे, की अन्न महगो होय।
२२५ या तो बोये कपास अरु ईख। नाहीं मांग के खाये भीख ॥
२२६ जो हल जोने खेती वाकी। और नही तो जाकी ताकी ॥
२२७ जो तू भूखा माल का। तो ईख कर लो नाल का ॥
२२८ बहु बोना बहु कटियान, और बहुतै बोया चना।
कहै मनोहर जगली, जावेंगे ये तीनो जना ॥
२२९ चना, चैत घना।
२३० गेहूं बाहा, धान गाहा। ईख गुड़ाई से है आहा ॥
२३१ मंगल बारी पड़े दिवारी। रहै किसान रोये व्योपारी ॥
२३२ साठी पके साठवे दिन। जो पानी पावे आठवें दिन ॥

२३३ सबी किसानी हेठी । अगहनिया पानी जेठी ॥

२३४ अगहन मे सरवा भर । फिर करवा भर ॥

२३५ कदम-कदम पीपल मुकदम , गेहू ठाकुर जौ दीवान ।
अरहर चेरी चना गुलाम , सरसो ठाढे करे सलाम ॥

२३६ अहिर मिताई बादर की छाई । होवे-होवे नाही नाई ॥

२३७ गेहू बाहे से,चना दलाये से । धान गाहे से,मक्की निराये से—
ईख कमाये से ॥

२३८ दो पत्ती क्यो न निराये । अब बीनत क्यो पछिताये ॥

२३९ नित्तै खेती दुसरे गाय । नहि देखै ते कर जाय ॥

२४० मीन शनीचर कर्क गुरु , जो अव्वल मंगल होय ।
गेहू गोरस गुडारी , बिरलै विलसे कोय ॥

२४१ ठाढी खेती गाभिन गाय । तब जानो जब मुंह में जाय ॥

२४२ बबूल का पाटा सिरसका हल , हरयानी का बैल ।
छूछे हाथे लेय के , बैठे चौसर खेल ॥

२४३ ईख करै सब कोई । जो बीच मे जेठ न होई ॥

२४४ प्रीति तो कीजै ईख सी , जामे रस की खानि ।
जहा गाठ तह रस नही , यही प्रीति की बानि ॥

२४५ ईख तक खेती , हाथो तक बनिज ।

२४६ आसपास रबी , बीच मे खरीफ ।
नोन मिरच डाल के , खा गया हरीफ ॥

२४७ परहथ बनिज सन्देसे खेती । बे बर देखे ब्याहे बेटी ॥
द्वार पराये गाडे खाती । ये चारो मिल पीटे छाती ॥

२४८ अगहन मे न दी थी कोर । तेरे बैल क्या ले गये चोर ॥

२४९ तीन कियारी तेरह गोड़ । तब बाढ़े ऊख की पोर ॥

२५० उठ के बजरा यों हंस बोले । खाये बूढ युवा हो जावे ॥

२५१ इतवार करे धनवन्तर होय । सोम करे सेवा फल होय ॥
बुध बीफ शुक्रै भरै बखार । शनि मगल बीज न आवे द्वार ॥

२५२ ऊचे चढ के बोला मडुवा । सब नाजो का मै हू भडुआ ॥
आठ दिना मुझको जो खाय । भले मर्द से उठा न जाय ॥

२५३ माढी मे साढी बोवे , बाढी में बाड़ी ।
ईख म जो धान बोवे , फूँको वाकी डाढी ।।

२५४ कमती फरै गाजा बाजा । जौनै लागै तौनै राजा ॥

२५५ भली जाति कुरमिन की , खुरपी हाथ ।
अपना खेत निराये , पिय के साथ ॥

२५६ जिसका ऊचा बैठना , जिसका खेत निचान ।
उनका बैरी का करे , जिनके मीत दिवान ॥

२५७ बाढे पुत्र पिता के धर्मा । खेती उपजे अपने कर्मा ॥

२५८ घर की खुन्स ज्वर की भूख , छोट दमाद बराहे ऊख ।
पातर खेती भकुआ भाई , घाघ कहै दुख कहां समाई ॥

२५९ धान पान उखेरा । ये पानी का चेरा ॥

२६० रूध बाधके फाग दिखाये । सो किसान मेरे मन भाये ॥

२६१ खेती करै ऊख कपास । घर करै व्योहरिया पास ॥

२६२ उर्द मोथी की खेती करियो । कुरिया तोड़ ऊसरमेधरियो ॥

२६३ खेती करे अधिया । न बैल मरै न बधिया ॥

२६४ अगसर खेती अगसर मार । घाघ कहै ये कबहू न हार ॥

२६५ ऊख सरौती दिवला धान । इन्हे छाड जनि बोओ आन ॥

२६६ असाढ मास जो घूमा कीन । ताकी खेती होवै हीन ॥

२६७ एक वायु जो वह है ऊता । मेढे बाध पियाओ पोता ॥

२६८ एक मास ऋतु आगे धावै । आधा जेठ असाढ कहावै ॥

२६९ साठी होवे साठ दिना । जब पानी बरसे रात दिना ॥

२७० ईख तो कर ले राड । और देरे उसे साड ॥

२७१ काटा बुरा करील का , औ बदरी का घाम ।
सौत बुरी है चून की , औ साझे का काम ।

२७२ रड़ है गेहू कुस है धान । गडरा की जड़ जडहन जान ॥
फूली घास रो देंय किसान । उसमे होय आन का तान ॥
२७३ गेहू गिरे अभागे का । धान गिरे सौभागे का ॥
२७४ जब सैल खटाखट बाजे । तव चना खूब ही गाजे ॥
२७५ सरसे अरसी, निरसे चना ।
२७६ चार छावँ छः निरावे । तीन खाट दो वांट ॥
२७७ बाह न जाने मसुरी चना । हित न जाने हरामी जना ॥
२७८ बिररै जोत पुराने बिया । ताकी खेती कुछ न हुआ ॥
२७९ छाड़ै खाद जोत गहराई । तब खेती का मजा दिखाई ॥
२८० खूब जोतै औ नावै खाद । तव देखे गेहू का स्वाद ॥
२८१ माघ मास की बादरी , और क्वार को घाम ।
यह दोनो जो कोउ सहे , करे पराया काम ॥
२८२ मर्द निकौनी बरदै दाय । दुबरी चलने मे दुख पाय ॥
२८३ ऊख गोड़ के तुरतै गावै । तो फिर ऊख बहुत सुख पावै ॥
२८४ सावन भादो खेत निरावे । तब गृहस्थ बहुतै सुख पावै ॥
२८५ पानी बरसे बहन न पावे । तब खेती को मजा दिखावे ॥
२८६ जब बरसे तब बाधो क्यारी । पूरा किसान जो हाथ कुदारी ॥
२८७ खेती करे साझ घर सोवै । काटे चोर हाथ धर रोवै ॥
२८८ खेत बे पनिया जोतो तब । ऊपर कुआ खुदाओ जब ॥
२८९ खेत बे पानी बुड्ढा बैल । सो गृहस्थ साझै गहै गैल ॥
२९० बांध कुदारी खुरपी हाथ । लाठी हंसिया राखै साथ ॥
काटै घास निरावै खेत । पूरा किसान वही कहि देत ॥
२९१ चना सीच पर जब हो आवै । ताको पहिले तुरत खुटावै ॥
२९२ कुडहल भदई बोओ यार । तब चिउरा की होय बहार ॥
२९३ पहिले छाओ तीन घरा । सार भुसौला औ बड़हरा ॥
२९४ अति ऊचे भुइं धरन पै , भुजगन के अस्थान ।
तुलसी अति नीचे सुखद , ऊख अन्न अरु पान ॥

२९५ कामिन गरभ औ खेती पकी । ये दोनो है दुर्बल बदी ।।
२९६ जो तुम देव नील की जूठी । सब खादो में रही अनूठी ।।
२९७ सन के डण्ठल खेत छिटावे । तिनते लाख चौगुनो पावें ।।
२९८ जो कपास न गोड़ी । उसके हाथ न लागै कौड़ी ।।
२९९ कपास चुनै, खेत खनै ।
३०० हल लगा पताल । तो टूट गया काल ।।
३०१ बाहन कीन्हो मोटा । बीज बतावें खोटा ।।
३०२ गेहू आये बाल । खेत बनाओ ताल ।।
३०३ बोओ गेहू काढ कपास । फिर होवे ना ढेला घास ।।
३०४ काले फूल न आया पानी । धान मरा अधबीच जवानी ।।
३०५ दक्खिन घेरे पुरवा बरसै । पछुवा चलते किसान तरसै ।।
३०६ तरकारी है तरकारी । यामे पानी की अधिकारी ।।
३०७ छोटी नसी , धरती हंसी ।
३०८ तोड़ दीन क्यारी । खेत गा उजारी ।।

लोकोक्तियां

१ अपनी करनी पार उतरनी ।
२ औसर चूकी डोमनी गावे ताल बेताल ।
३ अरहर की टट्टी गुजराती ताला ।
४ अपनी नीद सोना अपनी नीद उठना ।
५ अति का भला न बरसना, अति की भली न धुप्प ।
अति का भला न बोलना, अति की भली न चुप्प ।।
६ अपनी-अपनी ढापुली अपना-अपना राग ।
७ अनमाँगे मोती मिले माँगे मिले न भीख ।
८ अमानत मे खयानत ।
९ अयाना जाने हीया सयाना जाने किया ।
१० अस्सी की आमद चौरासी का खर्च । अधजल गगरी छलकत जाय । आप काज महा काज ।

११ आगे नाथ न पीछे पगा।
१२ आधी छोड़ पूरी को धावे। ऐसा डूबे थाह न पावे।
१३ आग फूस मे वैर।
१४ आप मरे जग परलय।
१५ आखो के अन्धे नाम नैनसुख।
१६ आप डूबा तो जग डूबा।
१७ आदमी का आदमी ही शैतान है।
१८ आती बहू जनमता पूत सब को अच्छा लगता है।
१९ आग लगते झोंपड़ा जो निकले सो लाभ।
२० आम के आम गुठलियो के दाम।
२१ इस हाथ दे उस हाथ ले।
२२ उल्लू की दुम फाख्ता।
२३ उधार का खाना, फूस का तापना।
२४ उत्तम खेती मध्यम बान, निकृष्ट चाकरी भीख निदान॥
२५ उलटा चोर कोतवाल को डाड़े।
२६ उघरे अन्त न होय निबाहू। कालनेमि जिमि रावण राहू॥
२७ ऊट के मुह मे जीरा।
२८ ऊधौ का लैन माधौ का दैन।
२९ ऊची दुकान फीका पकवान।
३० ऊट की चोरी निहुरे-निहुरे।
३१ ऊट के गले बिल्ली।
३२ ऊट बिलाई ले गई तब हाजी-हांजी करना।
३३ एक नारी, सदा ब्रह्मचारी।
३४ एक पथ दो काज।
३५ एक तो गिलोय कड़ुवी दूसरे नीम चढ़ी।
३६ एक तवे की रोटी, क्या मोटी क्या छोटी।
३७ एक अनार सौ बीमार।

३८ ओछे की प्रीति बालू की भीति ।

३९ ओंखली मे सिर दिया तो मूसलो का क्या डर ।

४० अन्धेर नगरी अनबूझ राजा ।

४१ अन्धी पीसे कुत्ते खाय ।

४२ अन्धा क्या चाहे दो आख ।

४३ अन्धे के हाथ बटेर ।

४४ अन्धा बाटे रेवडी अपनों ही को दे ।

४५ अन्ते मता सो गता ।

४६ कतहुं सुधाइहु ते बड़ दोषू ।

४७ करले सो काम और भजले सो राम ।

४८ कभी नाव लढे पर कभी लढा नाव पर ।

४९ करघा छोड तमासे जाय, नाहक चोट जुलाहा खाय ।

५० करे तो डर न करे तो भी डर ।

५१ कहां राजा भोज कहा गगा तेली ।

५२ कारज धीरे होत है काहे होत अधीर ।

५३ काला अक्षर भैंस बराबर ।

५४ काम परे ही जानिये जो नर जैसो होय ।

५५ काल करै सो आज कर आज करै सो अब्ब ।
पल में परलै होयगी फेर करोगे कब्ब ॥

५६ कागा चलै हंस की चाल ।

५७ काल के हाथ कमान, बूढा बचे न ज्वान ।

५८ काजर की कोठरी में धब्बे का डर ।

५९ काम जो आवै कामरी का लै करे कमाच ।

६० काबुल गये मुगल बनि आये बोलन लागे बानी । आब-आब करि मरि गये मिरहाने धर्यो रहो पानी ॥

६१ काजी जी क्यों लटे, शहर के अदेशे ।

६२ किस बित्ते पर तत्ता पानी ।

६३ किसी को बेगन पथ बराबर, किसी को बिष बराबर।
६४ कानी के ब्याह मे सौ जोखों।
६५ कै हसा मोती चुगे, कै लघन मर जाय।
६६ कोयले की दलाली मे हाथ काले।
६७ पैसा नही हो पास, तो मेला लगे उदास।
६८ कौन किसी के आवे जावे दाना पानी लावे।
६९ गरीबी मे आटा गीला।
७० का वर्षा जब कृषी सुखाने, समय चूकि पुनि का पछताने।
७१ खरी मजूरी चोखा काम।
७२ खाना शराकत रहना फराकत।
७३ खुशामद से आमद होती है।
७४ खेती खसम सेती।
७५ खौरई कुतिया मखमली झूल।
७६ खोदा पहाड़ और निकली चुहिया।
७७ खूटे के सिर बछड़ा नाचे।
७८ गधे को गुलकन्द गवार को पापड़।
७९ गाय न बाछी नीद आवे आछी।
८० गाव का जोगी जोगना आन गाव का सिद्ध।
८१ गुरू तो गुड़ ही रहे चेला चीनी हो गये।
८२ गुड़ खाय गुलगुलो से परहेज।
८३ गुरू कीजै जान और पानी पीजे छान।
८४ घर की खाड किरकिरी बाहर का गुड़ मीठा।
८५ घर की मुरगी साग बराबर।
८६ घर का भेदी लंका ढावे।
८७ घर ब्याह, बहू कंडो को डोले।
८८ घोड़ों को घर कितनी दूर।
८९ घोड़ा घास से यारी करे तो खाय क्या?

९० घर आये नाग न पूजिये बामी पूजन जाय ।
९१ घुसिया हाकिम रुसिया चाकर ।
९२ घोडे का गिरा सम्हल सकता है नजर का गिरा नही ।
९३ चतुर को चौगुनी मूरख को सौगुनी ।।
९४ चमडी जाय पर दमडी नही जाय ।
९५ चना और चुगल मुह लगे अच्छे नही ।
९६ चमार को अरस पर भी बेगार ।
९७ चार दिन की चादनी फेर अधेरी रात ।
९८ चाकरी में ना करी क्या ।
९९ चिराग तले अधेरा ।
१०० चीज न राखे आपनी चोरे गाली देय ।
१०१ चोरी और मुह जोरी ।
१०२ चोर की मा कोठी में मूड देकर रोती है ।
१०३ चोर की डाढी मे तिनका ।
१०४ चोर से कह तू चोरी कर और शाह से कह तू घर पै रह ।
१०५ चोर-चोर मौसाइते भैया ।
१०६ जूआ मीठी हार ।
१०७ चौबे छब्बे होने गये दुबे रह गये ।
१०८ छछून्दर के सिर में चमेली का तेल ।
१०९ छीकते ही नाक कटी ।
११० छोटे मुह बडी बात ।
१११ छोड़े गाव से नाता क्या ।
११२ चन्दन की चुटकी भली गाडी भरो न काठ ।
११३ झगड़े की जड़, जमीन, जन, जर ।
११४ जबतक स्वास तब तक आस ।
११५ जहां जाय भूखा तहा पड़े सूखा ।
११६ जहा रूख नही, वहां अरड ही रूख ।

११७ जर है तो नर है नहीं तो पूरा खर है ।

११८ जन्म के दुखी नाम चैनसुख ।

११९ जान है तो जहान ।

१२० जाकर जिहि पर सत्य सनेहू । सो तिहि मिलत न कछु सदेहू ॥

१२१ जामन होय मलीन सो पर संपदा सहै न ।

१२२ जाको राखै साइया मारि न सकिहै कोय ।

१२३ जाके पाय न फटी बिवाई । सो क्या जाने पीर पराई ॥

१२४ जिसकी लाठी उसकी भैंस ।

१२५ जिसकी जूती उसका सिर ।

१२६ जिसको पिया चाहे वही सुहागन ।

१२७ जिन खोजा तिन पाइया गहरे पानी पैठ ।

१२८ जिसका खाइये उसका गाइये ।

१२९ जिसके हाथ लोई, उसका सब कोई ।

१३० जिय बिनु देह नदी बिनु वारी । तैसे हि नाथ पुरुष बिनु नारी ॥

१३१ जैसे कथा घर रहे तैसे गये विदेश ।
जैसी तेरी तोमरी वैसे मेरे गीत ।

१३२ जैसे गंगा न्हाये तैसे फल पाये ।

१३३ जैसे नागनाथ तैसे सांपनाथ ।

१३४ जैसे बहे बयारि पीठ तब तैसी दीजै ।

१३५ जैसा देश वैसा भेष ।

१३६ जो बिंध गया सो मोती ।

१३७ जो धन दीखे जात, आधा दीजै बाट ।

१३८ जो गरजता है सो बरसता नहीं ।

१३९ जो चोरी करता है वह मोरी रखता है ।

१४० जोरू चिकनी मिया मजूर ।

१४१ जो तोकूं कांटा बुवै ताहि बोय तू फूल ।

१४२ जो बोले सो घी को जाय ।

१४३ जोड़-जोड़ मर जायगे । माल जमाई खायगे ॥
१४४ जोगी था सो उठ गया आसन रही भभूत ।
१४५ जब ओढ़ लीनी लोई । तो क्या करेगा कोई ॥
१४६ जन्म न देखा बोरिया सपने आई खाट ।
१४७ टके की बुढिया नौ टका मूड मुडाई ।
१४८ डूबा वंश कबीर का उपजे पूत कमाल ।
१४९ तमाम रात पीसा और पारी में सकेला ।
१५० तन पर नहिं लत्ता पान खाय अलबत्ता ।
१५१ ताजी मारे तुरकी कांपे ।
१५२ तिरिया तेल, हमीरहठ, चढे न दूजी बार ।
१५३ ताकी न रक्खे बाकी ।
१५४ तीन बुलाये तेरह आये ।
१५५ तीन पाव आटा पुल पर रसोई ।
१५६ तीरथ गये मुडाये सिद्ध ।
१५७ तीन लोक से मथुरा न्यारी ।
१५८ तेली का तेल जले मसालची का सिर दूखे ।
१५९ तुझको पराई क्या पडी अपनी निबेड तू ।
१६० तुरत दान महा कल्याण ।
१६१ तुम डार-डार हम पात ।
१६२ दया बिनु सन्त कसाई ।
१६३ दान वित्त समान ।
१६४ दिल को करार तब सूझे त्योहार ।
१६५ दुबले मारे शाहमदार ।
१६६ दूर के ढोल सुहावन ।
१६७ दूध का जला छाछ को फूंक फूंक पीता है ।
१६८ न्यारा पूत परोसी दाखिल ।
१६९ नई नाइन बांस का नहन्ना ।

१७० नया नौ दिन पुराना सौ दिन ।
१७१ नक्कारखाने में तूती की आवाज ।
१७२ न नाम लेवा न पानी देवा ।
१७१ नजर चूकी माल दोस्तों का ।
१७४ नाई बाल कितने ? जिजमान आगे आ जायंगे ।
१७५ नाच न जाने आगन टेढ़ा ।
१७६ नाम बड़े दर्शन थोड़े ।
१७७ नाना के आगे ननिहार की बाते ।
१७८ नाम भानमती औ झोली मे सिर ।
१७९ नानी तो क्वारी मर गई नन्ना के नौ-नौ व्याह ।
१८० नौ नगद न तेरह उधार ।
१८१ नौ दिन चले अढाई कोस ।
१८२ नीम हकीम खतरे जान । नीम मुल्ला खतरे ईमान ।।
१८३ नौ सौ चूहे खाय बिलाई हज को चली ।
१८४ पढ न लिखे और नाम विद्यासागर ।
१८५ पराधीन सपनेहु सुख नाही ।
१८६ पढे तो है पर गुने नही ।
१८७ परदेशी की प्रीति फूस का तापना ।
१८८ पांचों घी मे ।
१८९ पौबारह है ।
१९० पानी पी घर पूछना नाही भलो विचार ।
१९१ प्रीति का निबाहना खांडे की धार है ।
१९२ पांसा पडे सो दांव, राजा करे सो न्याव ।
१९३ पांच पंच तहां परमेश्वर ।
१९४ पैसे की हांड़ी गई तो कुत्ते की जाति तो जानो
१९५ पंच कहे बिल्ली सो बिल्ली ।
१९६ बन्दर क्या जाने अदरक का स्वाद ।

१९७ बन्दर के गले मे मोतियो की माला ।
१९८ धनी के सब साथी ।
१९९ बगल में तोशा किसका भरोसा ।
२०० बार-बार चोर की तो एक बार साह की ।
२०१ बद अच्छा बदनाम बुरा ।
२०२ बाहर वाले खा गये घर के गावे गीत ।
२०३ बाप ने मारी पोदनी बेटा तीरन्दाज ।
२०४ बावन तोले पाव रत्ती ।
२०५ बारह वर्ष दिल्ली मे रहे क्या भाड़ झोका ?
२०६ बारे की मा न मरे और बूढ़े की जोरू ।
२०७ बावरे गाव मे ऊट आया ।
२०८ बाजार किसका ? जो लेकर दे उसका ।
२०९ बाह गहे की लाज ।
२१० बिच्छू का काटा रोवे, साप का काटा सोवे ।
२११ बाझ क्या जाने प्रसूत की पीड़ा ?
२१२ बूर का लड्डू खायगा सो पछतायगा न खायगा वह भी पछतायगा ।
२१३ वे ही मिया दरबार को, वे ही चूल्हा फूकने को ।
२१४ बैठे से बेगार भली ।
२१५ बैल दीजे जायफल क्या बोले क्या खाय ?
२१६ बैलन कूदा कूदी गौन ।
२१७ भरी जवानी मझा ढीला ।
२१८ भरभूजे की लडकी केसर का तिलक ।
२१९ भीख के टुकडे बाजार में डकार ।
२२० भूले बनिया भेड़ खाई । अब खाऊ तो राम दोहाई ॥
२२१ भूख मे किवाड ही पापड ।
२२२ भूख में गूलर ही पकवान ।
२२३ भूखा बगाली भात-भात ।

२२४ भूलि गई राव रङ्ग भूलि गई जिकडी, तीन चीज याद रही नून तेल लकडी।

२२५ भेंड़ की लात घोंटू तक।

२२६ मन मे राम बगल मे ईंटे।

२२७ मरना बिचारा तो डरना कैसा ?

२२८ मरता क्या न करता।

२२९ मन चङ्गा तो कठौती मे गङ्गा।

२३० मन के हारे हार है मन के जीते जीत।

२३१ मन उमराव करम दरिद्री।

२३२ मक्खी बैठी शहद पर रही पङ्ख लपटाय।
हाथ मलै और शिर धुनै लालच बुरी बलाय॥

२३३ माह नगे वैसाख भूखे।

२३४ मार मार तो किये जा नामर्दी तो ईश्वर ने दी।

२३५ मान का बीडा हीरा के समान।

२३६ मान न मान मै तेरा महमान।,

२३७ मानो तो देव नही तो पत्थर।

२३८ मान का पान बहुत है।

२३९ मीठा और भर कठौता।

२४० मीठा-मीठा लप-लप, कडुवा-कडुवा थू-थू।

२४१ मुल्ला की दौड मस्जिद तक।

२४२ मूडा जोगी पिसी दवा।

२४३ मूरख की सारी रैन, छैल की एक घड़ी।

२४४ मूल से व्याज प्यारा होता है।

२४५ मेंडकी को जुकाम।

२४६ यथा राजा तथा प्रजा।

२४७ यथा नाम तथा गुण।

२४८ रसोई का विप्र कसाई का कूकर।

२४९ रख पत रखा पत।

२५० राजा किसके पाहुने, जोगी किसके मीत ।

२५१ राम-राम जपना । पराया माल अपना ।।

२५२ राम भरोसे जे रहे परबत पर हरियाय ।

२५३ राई से पर्वत करै पर्वत राई माहि ।

२५४ राग का घर खाँसी । लड़ाई का घर हासी ।।

२५५ राड़ साड सीढी सन्यासी । इनसे बचे जो सेवै काशी ।

२५६ लकीर के फकीर ।

२५७ कमजोर की जोरू सब की सरहज ।

२५८ लड़का बगल मे, ढढोरा नगर मे ।

२५९ लातो के देव बातो से नही मानते ।

२६० लीक-लीक गाडी चलै , लीक हि चले कपूत ।
लीक छाड़ि तीनो चले , सायर, सिंह, सपूत ।।

२६१ देश चोरी परदेश भीख ।

२६२ देह धरे का दण्ड है सब काहू को होय ।

२६३ देखी तेरी कालपी बामनपुरा उजार ।

२६४ दोनो दीन से गये पाडे , हलुवा मिला न माडे ।

२६५ दाल भात मे मूसरचन्द ।

२६६ दुबिधा मे दोऊ गये माया मिली न राम ।

२६७ देखा देखी साधे जोग । छीजी काया बाढ्यो रोग ।

२६८ धोबी का कुत्ता घर का न घाट का ।

२६९ नये चिकनिया अडी का फुलेल ।

२७० नदी में रहकर मगर से बैर ।

२७१ लिखें मूसा पढे ईसा ।

२७२ लूट के मूसर भी भले हैं ।

२७३ लोहू लगाकर शहीदो मे दाखिल ।

२७४ शाम के मरे को कब तक रोवे ।

२७५ शिकार के समय कुतिया हगासी ।

२७६ सब के दाता राम ।

२७७ सत मति छोडे सूरमा सत छोड़े पति जाय ।
२७८ सेत-सेत सब एक से कर्र कपूर कपास ।
२७९ सखी से सूम भला जो तुरत देय जवाब ।
२८० सखी के माल पर पडे सूम की जान पर ।
२८१ सब दिन जात न एक समान ।
२८२ सभी बात खोटी मुख्य दाल रोटी ।
२८३ सदा दिवाली साधु की जो घर गेहू होय ।
२८४ साप मरै न लाठी टूटै ।
२८५ साच को आच नही ।
२८६ सावन सूखे न भादो हरे ।
२८७ सावन के अन्धे को हरा ही हरा दीखता है ।
२८८ सिर पर पडी बजाये सिद्धि ।
२८९ सूरदास कारी कामरि पै चढै न दूजो रङ्ग ।
२९० सुन खगेश अस को जग माही । प्रभुता पाय जाहि मद नाही ॥
२९१ सौकीन बुढिया चटाई का लहंगा ।
२९२ सो घर सत्यानाश जहा है अति बल नारी ।
२९३ हर्रा लगै न फिटकरी रग चोखा ही आवै ।
२९४ हम तुम राजी, तो क्या करैगा काजी ।
२९५ हानि लाभ जीवन मरन, यश अपयश विधि हाथ ।
२९६ हाथ पाव की काहिली मुह में मूछे जांय ।
२९७ हाथकगन को आरसी क्या ।
२९८ हाथी के दात दिखाने के और होते है और खाने के और ।
२९९ हिमायत की गधी ऐराकी के लात मारती है ।
३०० हिसाब जौ-जौ का दान सौ-सौ का ।
३०१ हुक्के की मारी आग बाकी का मारा गाव ।
३०२ हाथी के पैर मे सब का पैर ।
३०३ होनहार बिरवान के होत चीकने पात ।
३०४ अति भक्ति चोर के लक्षण ।

३०५ अटका बनिया दे उधार ।

३०६ अपना वही जो आवै काम ।

३०७ अपनी फूटी न देखे दूसरे की फूली निहारे ।

३०८ अन्नदान महादान ।

३०९ आदमी मे नउआ, जानवर मे कउआ ।

३१० आदमी जानिये वसे, सोना जानिये कसे ।

३११ आशा का मरे निराशा का जिये ।

३१२ आंत भारी तो माथ भारी ।

३१३ आमों की कमाई, नीबुओं में गमाई ।

३१४ आख का अन्धा गाठ का पूरा ।

३१५ आख हुईं चार, तो दिल में आया प्यार ।

३१६ आख हुई ओट, तो दिल मे हुआ खोट ।

३१७ आसमान से गिरा खजूर मे अटका ।

३१८ इक लख पूत सवालख नाती । ता रावण घर दिया न बाती ॥

३१९ उतावला सो बावला, धीरा सो गम्भीरा ।

३२० उखली में सिर दिया तो मूसलो का क्या डर ।

३२१ ऊजड खेडा, नाम निबेडा ।

३२२ ऊंट बहै गदहा थाह ले ।

३२३ ऊची दुकान का फीका पकवान ।

३२४ एकान्त बासा, झगडा न हासा ।

३२५ टाट का लगोटा नवाब से यारी ।

३२६ तिल गुड़ भोजन नीच मिताई । आगे मीठ पाछे कडुआई ।

३२७ तेली जोरे परी-परी महमान लुटावे कुप्पा ।

३२८ दमडी की बुलबुल टका हलाली ।

३२९ दिया तले अधेरा ।

३३० दुविधा में दोनो गये माया मिली न राम ।

३३१ नामी बनियाँ कमाया खाय । नामी चोर मारा जाय ॥

३३२ नाक कटी पर हठ न हटी ।

३३३ नौकरी की पत्थर पर जड है।
३३४ नौ की लकड़ी, नब्बे खर्चे।
३३५ पर उपदेस कुसल बहुतेरे।
३३६ पराये पीर को मलीदा, घर के देव को धतूरा।
३३७ पराये धन पर लक्ष्मीनरायन।
३३८ पढ़े फारसी बेचे तेल। ये देखो कर्ता के खेल।
३३९ पर धन राखे मूरखचद।
३४० सतोखी सदा सुखी।
३४१ पराई हसी गुड से मीठी।
३४२ पैसा करे काम बीबी करे सलाम।
३४३ फिर पछताये क्या हुआ जब चिड़िया चुग गई खेत।
३४४ बहती गङ्गा हाथ पखार लो।
३४५ बडे मिया सो बड़े मिया छोटे मिया सुभान अल्ला।
३४६ बात गये कुछ हाथ नही।
३४७ बाप मरा घर बेटा हुआ, इसका टोटा उसमे गया।
३४८ बिच्छू का मन्तर न जाने साप के बिल मे हाथ डाले।
३४९ बीती ताहि बिसारदे आगे की सुधि लेहु।
३५० मरी बछिया ब्राह्मण के नाम।
३५१ मच्छड़ मार के ऐंठा सिह।
३५२ मन मे बसे सो सुपना देखे।
३५३ मरद की बात और गाड़ी का पहिया आग को चलता है।
३५४ मागे आवे न भीख, तो सुर्ती खाना सीख।
३५५ मारे सिपाही, नाम सरदार का।
३५६ मिजाज क्या है तमाशा, घड़ी मे तोला घड़ी मे माशा।
३५७ मिस्सो से पेट भरता है किस्सो से नही।
३५८ मिया रोते क्यो हो ! सूरत ही ऐसी।
३५९ मिया के मिया गये, बुरे-बुरे सुपने आये।
३६० रहै न बास न बजे बासुरी।

३६१ राड सांड और नकटा भैसा। ये बिगडे तो होवे कैसा ॥
३६२ लड़ना दे पर बिछुडना न दे।
३६३ लैना देना कुछ नही लडने को मौजूद।
३६४ वक्त पडै बाका, लोग गधे को कहे काका।
३६५ बेश्या बरस घटावही, योगी बरस बढाव।
३६६ सुख कहना जन से, दुख कहना मन से।
३६७ हाथ कगन को आरसी क्या।
३६८ आधा तजे पडित सरवस तजै गवार।
३६९ आधे गाव दिवाली आधे गाव फाग।
३७० अधेला न दे अधेली दे।
३७१ आधे माघे कमरी काधे।
३७२ आदमी-आदमी अतर, कोई हीरा कोई ककर।
३७३ इधर न उधर, ये बला किधर।
३७४ उधार देना, झगडा लेना।
३७५ उधार दीजै दुश्मन कीजै। उधार दिया गाहक खोया।
३७६ एक दिन का पाहुना दूसरे दिन का अनखावना।
३७७ करनी खाक की, बात लाख की।
३७८ करनी न करतूत, चलियो मेरे पूत।
३७९ करनी न करतूत, लडने को मौजूद।
३८० कडुआ स्वभाव, डूबती नाव।
३८१ कलाल की बेटी डूबने चली, लोगो ने कहा मतवाली है।
३८२ काली घटा डरावनी और धौली बरसनहार।
३८३ खाय तो घी से, नही जाय जी से।
३८४ खाली बनिया क्या करै, इस कोठी के धान उस कोठी मे धरै।
३८५ खरबूजे को देख कर खरबूजा रग पकडता है।
३८६ खावै बकरी की तरह और सूखे लकड़ी की तरह।
३८७ गधा गिरा पहाड से और मुर्गी के टूटे कान।
३८८ गाल वाला जीतै, और माल वाला हारे।
३८९ ऐसा काम हमेशा कर, जिसमे कभी न होवे डर।

३९० ऐसी कहो न बात, कि सबका हिले हाथ ।
३९१ अन्धे के आगे रोये, अपने दीदा खोये ।
३९२ काम प्यारा कि चाम ?
३९३ काम रहे तक काजी, न रहे तो पाजी ।
३९४ किसी का मुह चले किसी का हाथ ।
३९५ कफन सिर से बांधे फिरता है ।
३९६ खर गुड एक ही भाव बिकाय ।
३९७ खाली चना, बाजे घना ।
३९८ गया वक्त फिर हाथ आता नही ।
३९९ गगरी दाना, सूत उताना ।
४०० गाडर राखी ऊन को बैठी चरे कपास ।
४०१ गों निकली, आख बदली ।
४०२ घर मे मडुआ की रोटी, बाहर लम्बी धोती ।
४०३ घडी भर की बेसरमी सब दिन का आराम ।
४०४ घी खाना शक्कर से, दुनिया ठगिये मक्कर से ।
४०५ घर बैठे गगा आई ।
४०६ जहा न पहुचे रवि, तहा पहुचे कवि ।
४०७ जबान शीरी, मुल्क गीरी ।
४०८ जगन्नाथ के भात, जगत पसारे हाथ ।
४०९ जाका कोडा ताका घोड़ा ।
४१० जागे सो पावे, सोवे सो खोवे ।
४११ जाके घर मे नौसे गाय, सो क्या छाछ पराई खाय ।
४१२ जाके घर मे माई, ताकी राम बनाई ।
४१३ जोगी काके मीत, कलंदर किसके भाई ।
४१४ जब आया देही का अन्त, जैसा गधा वैसा सन्त ।
४१५ जब भये सौ, तब भाग गया भौ ।
४१६ झरबेरी के जगल में बिल्ली शेर ।
४१७ टके की मुर्गी छै टके महसूल ।